

छान्दोग्योपनिषद्

जिसका भाषा टीका

मध्यदेशीय भाषा में रायबहादुर बाबू ज़ालिम
सिंह निवासी ग्राम अकबरपुर ज़िला
फ़ैज़ाबाद ने पण्डित गंगाधर और
पण्डित महावीर प्रसाद की
सहायता से किया

तिसको

श्रीमान् परमधार्मिक शुभगुणनिधान
मुंशी विष्णुनारायण जी भार्गव ने
सर्व लोकहितार्थ

पहिली बार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेख़ाने में छापा
सन् १९१७ ई०

भूमिका।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदमुच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् । एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् । मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

जब मेरा जन्म हुआ, विद्याका प्रकाश न था, अन्धकार चारों तरफ़ छायाथा, मार पीट मची थी, यवनों का राज था, जो चाहा सो किया, कोई किसी को पूछता न था, धर्म की जगह अधर्म, नीति की जगह अनीति, शान्ति की जगह अशान्ति फैली थी, बली निर्बली को खाये जाते, दुर्जन सज्जन को तंग करते, दीन दुःखी को दुष्ट पकड़ लेजाते, और मार मार कर उनका धन हरण करते, परमात्मा ने देखा कि अब यवनों के पूर्व कर्मफल दे चुके, उनके पाप का प्याला भरगया, उसने उसको उलट दिया, अंग्रेज़ी सेना देश में घुसकर फैलगई, यवनों की सेना भाग निकली. दो साल के अन्दरही अन्दर औरका और होगया. पाठशालायें बड़े बड़े नगरों में खुलगईं, और लड़के पढ़ने लगे. मैंने भी अपना नाम अकबरपुर के स्कूल में लिखादिया, बाबू रामचन्द्रसेन वैद्य ने जो उस समय इन्स्पेक्टर स्कूलों के थे मेरी

परीक्षा ली, मुझको पढ़ने में तीव्र पाकर अंग्रेज़ी अक्षर का आरम्भ करादिया. बहुत दिनों तक छिपा छिपा कर अंग्रेज़ी पढ़ता रहा, जब अकबरपुर के स्कूल की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होगया, तब फ़ैजाबाद के स्कूल को भेजा गया. वहां से श्रीअयोध्याजी को अकसर हर रविवार को जाता, और जो बड़े बड़े महात्मा बाबा माधोदास, बाबा रघुनाथदास, बाबा जुगलासरन, और पण्डित उमादत्त तिवारीजी के नाम से प्रसिद्ध थे, उनका दर्शन करता, और उनके प्रसाद करके मेरी उपासना श्रीहनुमान्‌जी में जमी, और तत्पश्चात् राम में. जब मैं डाकख़ानेजात गोंड़ा बहरायच का इन्स्पेक्टर हुआ, मेरी श्रद्धा राम और कृष्ण में बढ़ गई, तुलसीकृत रामायण को पढ़ता, और सत्यनारायण की कथा सुनता. मुझको एकबार ऐसा संशय उत्पन्न हुआ कि जो मांस खाते हैं वह नरक को प्राप्त होते हैं. यह शङ्का दिन प्रतिदिन बढ़ती गई, और दिन प्रतिदिन पण्डितों करके दृढ़ होती गई. एक परमहंस गोंड़ा में आये, और जब मैं उनके पास गया, और अपनी शङ्का को प्रकट किया उसपर वह बहुत हँसे, और कहने लगे कि मांस मदिरा खा कर न कोई नरक को जाता है, और न खा करके कोई स्वर्ग को जाता है; जो कुछ खाया जाता है वह मलमूत्र होकर निकल जाता है; और सात वर्ष के पीछे स्थूलशरीर औरका और होजाता है, तुम अपने स्वरूप के जानने के लिये पुरुषार्थ करो. जो कुछ उपदेश दिया करते उसको सुना करता, परन्तु अपने स्वरूपकज्ञान को न प्राप्त हुआ. कुछ काल के पीछे मैं लखनऊ को बदल आया. और रामगीता के ऊपर पण्डित यमुनाशङ्कर वेदान्ती करके रचित टीका को देखा. जी फरक उठा, और विचार किया कि जो इस टीका का कर्ता है वह अवश्य विज्ञानी होगा. उनका खोज करने लगा.

कुछ काल के पीछे उनका दर्शन मिला, मेरी अटल श्रद्धा उनके वाक्य में, और उनकी अतिकृपा मेरे ऊपर ऐसी हुई कि यावत संशय थे सब नष्ट होगये, और मेरा आत्मा हस्तामलकवत् मुझ को दीखने लगा. अब मैं स्वस्वरूप में स्थित हूं.

हे प्रिय पाठको ! संस्कृतविद्या को भली प्रकार न जानने से विना सहायता किसी पण्डित के संस्कृत ग्रन्थों के विचार में मुझ को बड़ा अर्चन पड़ा करता था, सोचते सोचते यह विचार में आया कि यदि ऐसी कोई टीका की जाय कि जिसके द्वारा विना सहायता किसी पण्डित के जो हानि होरही है वह दूर होजाय. जब इस निकाली हुई श्रेणी को दो चार विद्वानों ने पसन्द किया, तब तदनुसार टीका का रचना आरम्भ किया गया. भगवद्गीता, रामगीता, अष्टावक्रगीता, सांख्यकारिका, विष्णुसहस्रनाम, परापूजा, ईष, केन, कठ, माण्डूक्य, मण्डुक, प्रश्न, ऐत्तरेय, तैत्तिरीय की टीका इसी ढंगपर की गई जो सबको प्रिय लगती है.

जब मैं हरिद्वार को संवत् १९७१ में गया तब कई एक साधु मुझ से मिले, और इच्छा प्रकट की किं यदि छान्दोग्योपनिषद् की टीका इसी श्रेणीपर और ऐसीही सरल मध्यदेशी भाषा में कर दिया जाय तो लोगों का बड़ा कल्याण हो. मैंने उनसे कहा कि मैं वाक्य-दानका प्रदान तो नहीं करता हूं, पर यदि अपने अन्तःकरण प्रवेशित परमात्मा की प्रेरणा होगी तो बशर्ते अवकाश काल व जीवन प्रयत्न करूंगा. वहां से वापिस आनेपर पण्डित गङ्गाधर और पण्डित महावीरप्रसाद और अंग्रेज़ी में अनुवाद किये हुये ग्रन्थों की सहा-यता करके छान्दोग्योपनिषद् की टीका की, निर्विघ्न समाप्ति हुई. जिसके लिये मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं, हे पाठकजनो ! जैसे सामवेद गान करके पढ़ा जाता है, वैसेही यह छान्दोग्योपनिषद्

भी गाकर पढ़ाजाता है वह बाह्यफल स्वर्गादिक को देता है, और यह अभ्यन्तर फल ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करके जीवात्मा को अजर अमर बना देता है, और जीव ईश्वर के भेदको हटाकर दोनों को ऐक्य कर देता है.

हे पाठकजनो ! शङ्कराचार्यजी ने उपनिषद् का अर्थ इस प्रकार किया है, "उप, नि, षद्" उपका अर्थ समीप, नि का अर्थ अत्यन्त, और षद् का अर्थ नाश, अतः संपूर्ण "उपनिषद्" शब्द का अर्थ यह हुआ कि जो जिज्ञासु श्रद्धा और भक्ति के साथ उपनिषदों के अत्यन्त समीप जाता है, यानी उनका विचार करता है, वह आवागमन के क्लेशों से निवृत्त होजाता है, और किसी किसी आचार्यों ने इसका अर्थ ऐसा भी किया है. उप=समीप, नि=अत्यन्त, और षद्=बैठना, यानी जो जिज्ञासु को अध्ययन अध्यापन के द्वारा ब्रह्म के अतिसमीप बैठने के योग्य बना देता है वह उपनिषद् कहा जाता है.

हे पाठकजनो ! सृष्टि रचने के पहिले सृष्टिउत्पत्ति निमित्त जब ईश्वर में इच्छा उठती है तो एक बड़ा घोरशब्द अर्थरहित गूंज के साथ निकलता है, जैसे अंजन में होता है, और वह बड़ी देरतक रहता है, उस शब्द को सुनकर जो जीवन्मुक्त ऋषि होते हैं, वे ॐ, अथवा अ, उ, म, में आरोप कर लेते हैं, और जब वह शब्द फट जाता है तब उसमें से आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी सूक्ष्मरूप से निकल आते हैं, और वह शब्द शान्त होकर लोप होजाता है. इन पांच तत्त्वों करके संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है, इसलिये जो कुछ सृष्टि है सब ॐरूपही है. इस कारण ॐकार की उपासना अतिश्रेष्ठ है, यह ईश्वर का प्रथम नाम है, जो इन तीन अ, उ, म, अक्षरों के अर्थ को समुझकर

और इन्हीं में विश्व, तैजस, प्राज्ञ, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, जीव, हिरण्यगर्भ, ईश्वर को आरोप करके भजता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, और आवागमन से रहित होजाता है. यही कारण है कि इस छान्दोग्योपनिषद् में प्रथम उपासना उद्गीथ की है, इस उपनिषद् के दो खण्ड हैं, एक पूर्वार्ध है, जिसमें सगुण ब्रह्मकी उपासना है, और तिसका फल ब्रह्मलोक की प्राप्ति कहा है, और दूसरा उत्तरार्ध है, जिसमें प्राण की उपासना, पञ्चाग्निविद्या, वैश्वानरविद्या, भूमाविद्या, और दहराविद्या की ज्येष्ठता, श्रेष्ठता का निरूपण कियागया है, इनके विचार करके यह जीवात्मा ही ब्रह्म है, ऐसा हस्तामलकवत् अनुभव में दीखने लगता है, यह उपनिषद् दुःखका नाशक और आनन्द का उत्पादक है.

हे पाठकजनो ! इस टीका में पहिले मूलमन्त्र दिया है, फिर पदच्छेद, फिर वाम अङ्गकी ओर संस्कृत अन्वय, और दाहिने अंग की ओर पदार्थ, यदि वाम अंगकी ओर का लिखाहुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ा जावे तो संस्कृत अन्वय मिलेगा, यदि दहिने अंग का लिखा हुआ ऊपर से नीचेतक पढ़ा जावे तो पूरा अर्थ मन्त्रका मध्यदेशी भाषा में मिलेगा, और यदि बायें तरफ़ से दहिने तरफ़ को पढ़ा जावे तो हरएक संस्कृत पदका अथवा शब्द का अर्थ भाषा में मिलेगा.

जहांतक होसका है हरएक संस्कृत पद का अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखा गया है, इस टीका के पढ़ने से संस्कृत विद्याकी उन्नति उनको होगी, जिनको संस्कृत की योग्यता न्यून है, मन्त्र का पूरा पूरा अर्थ उसीके शब्दों सेही सिद्ध किया गया है, अपनी कोई कल्पना नहीं की गई है, हां कहीं कहीं संस्कृत पद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करने के लिये ऊपर से लिखा गया है, और उसके प्रथम यह

+ चिह्न लगा दिया गया है, ताकि पाठकजनों को विदित हो जावे कि यह पद मूलका नहीं है.

विद्वान् सज्जनों की सेवा में प्रार्थना है कि यदि कहीं अशुद्धि हो, अथवा अर्थ स्पष्ट न हो तो कृपा करके उसको ठीक करलें, और मेरी भूल चूक को क्षमा करें, और शुद्ध अन्तःकरण से आशीर्वाद दें कि यह मुझ करके रचित टीका मुमुक्षुजनों को यथोचित फल-दायक हो, और इसकी स्थिति चिरकालपर्यन्त बनी रहै.

लाला शिवदयालसिंहात्मज

रायबहादुर ज़ालिमसिंह

ग्राम अकबरपुर ज़िला फ़ैज़ाबाद (अवध)

व

पो॰ मा॰ जनरल, रियासत गवालियर लश्कर.

ॐ

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ छान्दोग्योपनिषदो व्याख्या
पञ्चजनभाषया आरभ्यते ॥

हरिः ॐ

मूलम् ।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, इति, एतत्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उप, आसीत, ॐ, इति, हि, उत्, गायति, तस्य, उपव्याख्यानम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐकार को
इति	ऐसे	इति	उच्चारण करके
एतत्	इस	+सामवेदः	सामवेद
अक्षरम्	अक्षर	उद्गायति	गान करता है
उद्गीथम्	उद्गीथ को	तस्य	तिसी ॐकारका
हि	निश्चयपूर्वक	उपव्याख्यानम्	व्याख्यान
उपासीत	सेवनकरे याने उपासना करै	+प्रवर्त्तते	आरंभ किया जाता है
+ यत्	जिस		

भावार्थ ।

ॐ और उद्गीथ अक्षर एक ही हैं, अक्षर का अर्थ यहां अवि-नाशी के हैं, जो अविनाशी है, वही ॐ है, कोई कोई आचार्य अक्षर शब्द के दो भाग करते हैं, अक्ष+र, अक्ष का अर्थ नेत्रादि इन्द्रियां हैं, र-का अर्थ रहनेवाला है, जो इन्द्रियों के बिषे रहनेवाला हो वही अक्षर है, वही अविनाशी ब्रह्म है, उसीको उद्गीथ भी कहते हैं, उद् माने सब से बड़ेके हैं, और गी-का अर्थ जो गाया गया है, थ-का अर्थ स्थान है, याने जो स्थान सब से बड़ा है, और जो सब वेदों करके गाया गया है, उसका ध्यान करना चाहिये, जब ईश्वर ने जीवों के कर्मफल भोगार्थ सृष्टि रचने की इच्छा की तो प्रथम शब्द ध्वन्यात्मक ॐ ऐसा निकला, उसीसे उसके पश्चात् वर्णात्मक शब्द " एकोहं बहु स्यां " उत्पन्न भया, याने ॐकार रूप ब्रह्म एक मैं बहुत प्रकारसे होऊँ, यह इच्छा होतेही चराचर सृष्टि उत्पन्न होगई, इसलिये जितनी सृष्टि है, चाहे वह प्रकट भाव से हो, अथवा अप्रकट भाव से हो वह सब ब्रह्म रूपही है, अथवा ॐकाररूप है, वेदों में जो ऋचा के पहिले अथवा पीछे ॐ-का प्रयोग किया जाता है, वह यह बताता है कि जो कुछ ॐ शब्दके पश्चात् कहा जायगा या ॐ के पहिले कहा गया है, वह सब ॐकाररूपही है, उससे पृथक् कोई वस्तु नहीं है, ॐ-कार में तीन अक्षर हैं, अ + उ + म अ से मतलब जाग्रत् का अभिमानी देवता विश्व है, उ से स्वप्न का अभिमानी देवता तै-जसहै, म से सुषुप्ति का अभिमानी देवता प्राज्ञहै, याने इन तीनों अवस्थाओं के जो पृथक् पृथक् अभिमानी देवताहैं, वे ॐकाररूप ही हैं, और मायाविशिष्ट ब्रह्म, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् यह भी ॐकाररूप ही हैं, याने ईश्वरसे लेकर तृणपर्यन्त सब ॐकार-रूप ही हैं. यह ॐकार परमात्मा का मुख्यनाम है, इस नाम के उच्चारण से परमात्मा प्रसन्न होताहै, जो वैदिक कर्म ॐ उच्चारण करके मंत्र द्वारा किया जाता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपो रसः । अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एषाम्, भूतानाम्, पृथिवी, रसः, पृथिव्याः, आपः, रसः, अपाम्, ओषधयः, रसः, ओषधीनाम्, पुरुषः, रसः, पुरुषस्य, वाक्, रसः, वाचः, ऋक्, रसः, ऋचः, साम, रसः, साम्नः, उद्गीथः, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषाम्	इन	रसः	सार है
भूतानाम्	चराचर भूतोंका	पुरुषस्य	मनुष्यका
पृथिवी	पृथ्वी	वाक्	वाणी
रसः	कारण है	रसः	सार है
पृथिव्याः	पृथ्वीका	वाचः	वाणीका
आपः	जल	ऋक्	ऋचा
रसः	कारण है	रसः	सार है
अपाम्	जलका	ऋचः	ऋचाका
ओषधयः	अन्नादिक	साम	सामवेद
रसः	सार है	रसः	सार है
ओषधीनाम्	अन्नादिकका	साम्नः	सामवेद का
पुरुषः	मनुष्य	उद्गीथः	ॐकार
		रसः	सार है

भावार्थ ।

चराचर जीवोंकी उत्पत्ति स्थिति पृथिवी से होती है, और इसी में सब जीव मरकरके लीन भी होते हैं, इसलिये यह पृथ्वी सब जीवों का कारण है, पृथ्वी का जल कारण है, क्योंकि जल से पृथ्वी की उत्पत्ति है, जल से अन्नादिक उत्पन्न होते हैं, याने अन्नादिक जल का सार है, अन्नादिक से मनुष्य की उत्पत्ति है, इसलिये अन्नादिकों का सार मनुष्य है, मनुष्यों का सार वाणी है, वाणी का सार ऋचा है, ऋचा का सार सामवेद है, सामवेद का सार ॐकार है, यह भी अर्थ होसकता है कि पृथ्वी का अभिमानी देवता सब जीवों से बढ़करके है, जल का अभिमानी देवता वरुण पृथ्वी के अभिमानी देवता से बढ़कर है, वरुण से बढ़कर सोमहै,सोमसे बढ़कर सरस्वती है,सरस्वती से बढ़कर ऋचा है, और ऋचा से बढ़कर प्राण है, प्राण से बढ़कर नारायण है, उद्गीथ सब से बढ़करके है, उससे बढ़कर और कोई नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एष रसानाᳪंरसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, रसानाम्, रसतमः, परमः, परार्ध्यः, अष्टमः, यत्, उद्गीथः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो		रसानाम्=सार वस्तुओं का	
एषः=यह		रसतमः=सार है	
अष्टमः=आठवां		परमः=अतिश्रेष्ठ है	
उद्गीथः=ॐकार है		परार्ध्यः=श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है	
सः=वही			

भावार्थ ।

जितनी सार वस्तु होती है याने सूक्ष्म होती है, उतनी वह पूजनीय है, पृथिवी और जलका सार अन्नादिक है; इसलिये पृथिवी और जलकी अपेक्षा अन्नादिक अधिक पूजनीय है; इसी कारण अन्न को देवता कहा है, "अन्नंब्रह्मेति" अन्नका सार पुरुष है, इसलिये अन्न की अपेक्षा पुरुष अधिक पूजनीय है, और पुरुष का सार वाणी है, जिस पुरुष की जिह्वापर सरस्वती का वास होता है, वह अधिक पूजनीय होताहै, और वाणी का सार ऋचा है, याने जो पुरुष वेद का जाननेवाला है वह और भी अधिक पूजनीय है, और ऋचों का सार सामवेद है, इसलिये जो पुरुष सामवेदी है, और सामवेदों के मंत्रों करके परमात्मा का गान करता है, वह और भी अधिक पूजनीय है, और सामवेद का सार ॐ, या उद्गीथ है, इसी उद्गीथ या ॐ की उपासना जो महात्मा पुरुष करता है, वह अतिपूजनीय है, यह उद्गीथ, रसतमः, परमः, परार्ध्यः, इन तीन विशेषणों करके युक्त होने से श्रेष्ठसे श्रेष्ठ माना गया है, इस कारण जो पुरुष इसकी उपासना करता है, वह भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ब्रह्मरूप होजाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कतमा, कतमा, ऋक्, कतमत्, कतमत्, साम, कतमः, कतमः, उद्गीथः, इति, विमृष्टम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
कतमा	=कौन	ऋक्	=ऋचा है
कतमा	=कौन	कतमत्	=कौन

कतमत्=कौन	+ यत्=जो
साम=सामवेद है	इति=इसप्रकार
+ च=और	विमृष्टम्=विचार करने योग्य
कतमः=कौन	भवति=है
कतमः=कौन	
उद्गीथः=ॐकार है	

इसका अन्वय अगले मंत्र से है ।

भावार्थ ।

तब ऋचा क्या है, साम क्या है, उद्गीथ क्या है, यह विचार के योग्य है, कतमा कतमा शब्द वहां लाते हैं जहां किसी समूह में से किसी विशेष के निमित्त प्रश्न किया जाता है, यहां ऋक्, साम, और उद्गीथ, ये तीनों शब्द पृथक् पृथक् अर्थ के बोधक हैं, और एक एक व्यक्ति के वाचक हैं, तब कतमा कतमा क्यों लाया गया, इसके उत्तर में भाष्यकार कहते हैं कि यद्यपि यह तीनों शब्द एक एक व्यक्ति के वाचक हैं, परंतु एकही के भिन्न भिन्न भाग को बताते हैं, जैसे ऋचा कहने से ऋचामात्र का ग्रहण होता है, प्राण के कहने से प्राणमात्र का बोध होताहै, साम के कहने से खंड व मंत्रादिकों का बोध होता है, किसी विशेष ऋचा या प्राण या सामवेद के विशेष मंत्रों का बोध नहीं होता है, इसकारण कतम शब्द लाने की आवश्यकता थी ॥४॥

मूलम् ।

वागेवर्क्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः । तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क्च साम च ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, एव, ऋक्, प्राणः, साम, ॐ, इति, एतत्,

अक्षरम्, उद्गीथः, तत्, वा, एतत्, मिथुनम्, यत्, वाक्, च, प्राणः, च, ऋक्, च, साम, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
वाक्=वाणी	एतत्=यह
एव=ही	मिथुनम्=जोड़ी
ऋक्=ऋचा है	वा=निश्चयकरके
च=और	+ निर्दिश्यते=कहीजाती है
प्राणः=प्राण ही	+ तत्=सोई
साम=सामवेद है	ऋक्=ऋचा
इति=इसप्रकार	च=और
एतत्=यह	वाक्=वाणी है
अक्षरम्=अक्षर	च=और
ॐ=ॐकार	+ तत्=सोई
उद्गीथः=उद्गीथ है	प्राणः=प्राण
यत्=जो	च=और
तत्=वह	साम=सामवेद है

भावार्थ ।

जो वाणी है सोई ऋचा है, जो प्राण है सोई सामवेद है, याने वाणी विना ऋचा के उच्चारण नहीं होसकती है, और प्राण विना सामवेद का गान नहीं होसकता है, अथवा वाणी, ऋचा, सामवेद, यह तीनों प्राण के आश्रय हैं, जबतक प्राण है तबतक ये तीनों हैं, और जबतक यह तीनों हैं तबतक प्राण है, तीन यानी वाणी, ऋचा, साम, एक तरफ करके और प्राण को दूसरी तरफ करके यदि अनुभव किया जाय तो केवल एकही

मिथुन होता है, और यदि वाणी और ऋचा का एक मिथुन और प्राण व सामवेद का एक मिथुन समझा जाय तो दो मिथुन होते हैं, ये दोनों मिथुन अविनाशी ॐकार उद्गीथ हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सꣳसृज्यते । यदा वै मिथुनौ समागच्छतआपयतो वै तावन्योन्यस्यकामम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, मिथुनम्, ॐ, इति, एतस्मिन्, अक्षरे, सम्, सृज्यते, यदा, वै, मिथुनौ, सम्, आ, गच्छतः, आपयतः, वै, तौ, अन्योन्यस्य, कामम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	वै	निश्चयकरके
तत्	वह	तौ	ये दोनों
एतत्	यह	मिथुनौ	जोड़ी
मिथुनम्	जोड़ी	समागच्छतः	संयोग करती हैं
एतस्मिन्	इस में यानी	च	और
अक्षरे	अविनाशी	अन्योन्यस्य	एक दूसरे के
ॐ	ॐकार में	कामम्	मनोरथ को
संसृज्यते	मिलायीजातीहै	आपयतः	पूर्ण करती हैं
तदा	तब		

भावार्थ ।

जैसे स्त्री और पुरुष के संयोग से आनंद मिलता है, और मनोगत कामना की सिद्धि होती है, उसी प्रकार जब वाक् और प्राण मिलते हैं, और ऋचा और सामवेद का संयोग होता है, और इन दोनों जोड़ियों का संयोग अविनाशी ॐकार से होता है, तब उपासक की कामना पूर्ण होती है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

आपयिता, ह, वै, कामानाम्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	+ सः	वह
विद्वान्	विद्वान्पुरुष	+ विद्वान्	विद्वान् पुरुष
एतत्	इस	वै	अवश्य
अक्षरम्	अविनाशी	+ यजमानस्य	यजमानके
उद्गीथम्	ॐकारको	कामानाम्	मनोरथोंका
एवम्	इसप्रकार	आपयिता	पूर्णकरने वाला
ह	निश्चयके साथ	भवति	होता है
उपास्ते	सेवनकरता है		

भावार्थ ।

जो विद्वान् पुरुष कहे हुये प्रकार ॐकार का सेवन करता है,

और फिर यजमान को यज्ञ कराता है, वह यजमान के सब कामनाओं का पूर्ण करनेवाला होता है, याने उसके द्वारा यजमान और उसकी पत्नी के मनमें जो जो लौकिक व पारलौकिक कामना उठती हैं, वह सब पूर्ण होती हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वैकामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, वा, एतत्, अनुज्ञाक्षरम्, यत्, हि, किंच, अनुजानाति, ॐ, इति, एव, तत्, आह, एषा, उ, एव, समृद्धिः, यत्, अनुज्ञा, समर्धयिता, ह, वै, कामानाम्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
वा=और	यत्=जो
तत्=वह	किंच=कुछ
एतत्=यह यानी ॐकार	अनुजानाति=आज्ञादेताहै
अनुज्ञाक्षरम्=आज्ञावाचक शब्द है	तत्=उसको
हि=क्योंकि	ॐ=ॐ
पुरुषः=विद्वान् पुरुष	इति=ऐसाकहकरके
	एव=ही
	आह=देता है

यत्=जो
अनुज्ञा=ऐसी आज्ञा है
एषा एव=वही
उ=प्रसिद्ध
समृद्धिः=संपत्ति है
यः=जो
विद्वान्=विद्वान् पुरुष
एतत्=इस
अक्षरम्=अक्षर
उद्गीथम्=ॐकार को
एवम्=इस प्रकार
उपास्ते=सेवन करताहै
+सः=वह विद्वान्
+यजमानस्य=यजमान के
कामान्=मनोरथों का
वै=निश्चय करके
समर्धयिता=पूर्ण करने वाला
भवति=होता है

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुये प्रकार ॐकारशब्द आज्ञा का वाचक है, क्योंकि जब अध्वर्यु, होता और उद्गाता को ॐ कहकरके आज्ञा देता है कि वेदकी ऋचाओं करके यज्ञमें अपने कर्म का आरम्भ करो और वे उसके आज्ञानुसार करने लगते हैं तब वह आज्ञा संपत्तिका कारण होती है, जो विद्वान् पुरुष ॐकार को भली प्रकार सेवन करके यजमान से यज्ञ कराता है वह विद्वान् यजमान के मनोरथों का पूर्ण करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

तेनेयं त्रयी विद्या वर्त्तत ॐमित्याश्रावयत्योमिति शꣳसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, इयम्, त्रयी, विद्या, वर्त्तते, ॐ, इति,

आश्रावयति, ॐ, इति, शंसति, ॐ, इति, उद्गायति, एतस्य, एव, अक्षरस्य, अपचित्यै, महिम्ना, रसेन ॥

अन्वयः	पदार्थ
+अध्वर्युः	यजुर्वेदी ऋत्विज
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कहकरके
आश्रावयति	देवता या यजमान को श्रवणकरवाता है
+ होता	ऋग्वेदी ऋत्विज
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कहकरके
शंसति	प्रशंसा करता है
+उद्गाता	सामवेदी ऋत्विज
ॐ	ॐ
इति	ऐसा कहकरके
उद्गायति	गान करता है
+च	और
तस्य	उसी
एव	ही
अक्षरस्य	ॐकार के
अपचित्यै	महत्त्वके लिये यानी परब्रह्म के लिये
महिम्ना	महापुरुषों करके याने ऋत्विग् यजमानादि करके
+च	और
रसेन	व्रीहि यवादि और घृत करके
तेन	उस ॐकार के द्वारा
इयम्	यह
त्रयी विद्या	तीन वेदों में कहा हुवा सोमयज्ञादि कर्म
वर्त्तते	किया जाता है

भावार्थ ।

यज्ञ में मुख्य ऋत्विज अध्वर्यु होता है, और वह यजुर्वेदी होता है, क्योंकि आध्वर्यव का विशेष सम्बन्ध यजुर्वेद से ही है, उस अध्वर्यु की आज्ञा पाकरके यानी जब वह कहता है ॐआ-श्रावय जिसको प्रेष कहते हैं, तब ऋग्वेदी होता ऋत्विज, और सामवेदी ऋत्विज उद्गाता अपने अपने यज्ञियकर्म हौत्र और औद्गात्र यज्ञ में करने लगते हैं, यह कह आये हैं कि ॐकारही पर ब्रह्म है, इसलिये इसके प्रसन्नता निमित्त ऋत्विज, यजमाना-दिक और घृतादि होमद्रव्य करके ॐकार के द्वारा तीनों वेदों में कहा हुवा सोमयज्ञादि कर्म किया जाता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोप-निषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षर-स्योपसंख्यानं भवति ॥ १० ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तेन, उभौ, कुरुतः, यः, च, एतत्, एवम्, वेद, यः, च, न, वेद, नाना, तु, विद्या, च, अविद्या, च, यत्, एव, विद्यया, करोति, श्रद्धया, उपनिषदा, तत्, एव-वीर्यवत्तरम्, भवति, इति, खलु, एतस्य, एव, अक्ष-रस्य, उपसंख्यानम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	=और	एतत्	=इस ॐकार अक्षर को
यः	=जो पुरुष		

एवम्=कहे हुये प्रकार
खलु=अच्छी तरह
वेद=जानता है याने उसके तात्पर्य को समुझता है
च=और
यः=जो
न=नहीं
वेद=जानता है या नहीं समुझता है
+तौ=वे
उभौ=दोनों
तेन=उस ॐकार करके
एव=ही
+कर्म=यज्ञादि कर्म को
कुरुतः=करते हैं
तु=चूंकि
विद्या=ज्ञान
नाना=पृथक् है
च=और
अविद्या=अज्ञान
नाना=पृथक् है
+अतः=इसलिये
यत्=जिस कर्म को
विद्यया=ज्ञान करके
श्रद्धया=श्रद्धा करके
च=और
उपनिषदा=भक्ति करके
+यः=जो
करोति=करता है
+तस्य=उसका
तत्=वह कर्म
एव=निश्चय करके
वीर्यवत्तरम्=अधिक फल का देनेवाला
भवति=होता है
इति=इस प्रकार
एतस्य=इस
अक्षरस्य=ॐकार का
उपसंख्यानम्=व्याख्यान
भवति=है

भावार्थ ।

जो पुरुष ॐकार का अर्थ समुझता है, और जो नहीं समु-

भता है, दोनों ॐकार उच्चारण करके यज्ञादि कर्म करने के अधिकारी हैं, पर जो विद्वान् पुरुष ॐकार के अर्थ को समुझ कर यज्ञादि कर्म करता है, उसका वह कर्म विशेष फलका देनेवाला होताहै, क्योंकि विद्या और है, अविद्या और है, और इन दोनों का फल भी पृथक् पृथक् है, ज्ञानद्वारा कर्मकर्त्ता ऊर्ध्वलोक को जाता है, जहां विशेष सुख है, और अज्ञान करके कर्मकर्त्ता अधोलोक को प्राप्त होता है, जहां ऊर्ध्वलोक की अपेक्षा न्यून सुख है ॥ १० ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥१॥

पदच्छेदः ।

देवासुराः, ह, वै, यत्र, संयेतिरे, उभये, प्राजापत्याः, तत्, ह, देवाः, उद्गीथम्, आजह्रुः, अनेन, एनान्, अभिभविष्यामः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्र	जिसकाल	ह वै	अच्छे प्रकार
उभये	दो प्रकार की	तत्	श्रेष्ठता निमित्त
देवासुराः	इन्द्रियोंकी सात्विक और तामस वृत्तियां	संयेतिरे	एक दूसरे से झगड़ा करती भईं
प्राजापत्याः	कश्यपकी संतान देव और दैत्योंकीभांति	तत्र	तिस समय
		देवाः	सात्त्विक वृत्तियां

उद्गीथम्=ॐकार को	अनेन=इस ॐकार के द्वारा
आजह्रुः=स्वीकार करती भई	एनान्=इन तामसी वृत्तियों को
इति=ऐसा	अभिभविष्यामः=हम पराजित करेंगी
+विचार्य=विचार करके कि	

भावार्थ ।

एकही पुरुष में इन्द्रियों की दो प्रकार की वृत्तियां रहती हैं, एक सतोगुणी और दूसरी तमोगुणी, ये दोनों प्रकार की वृत्तियां आपुस में विषयभोगार्थ इस तरह से लड़ती हैं जैसे कश्यप ऋषि के संतान देवता और असुर यज्ञविषे बलि के निमित्त लड़ते हैं, और जिस प्रकार असुर को बलवान् पाकरके देवता विष्णुका शरण लेते हैं उसी प्रकार सतोगुणी वृत्तियां तमोगुणी वृत्ति को बलवान् पाकर उद्गीथनामक परब्रह्म के शरण को प्राप्त होती हैं, यह सोच करके कि हम उसके द्वारा तमोगुणी वृत्तियों पर जय को प्राप्त होंगी ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, नासिक्यम्, प्राणम्, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, तम्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन,

उभयम्, जिघ्रति, सुरभि, च, दुर्गन्धि, च, पाप्मना, हि, एषः, विद्धः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां	विविधुः	संबंध करती भई
ह	निश्चय करके	तस्मात्	इसलिये
नासिक्यम्	नासिकासंबंधी	तेन	उस पाप करके
प्राणम्	प्राण चेतनरूप	+ जीवः	जीव
उद्गीथम्	उद्गीथ को	सुरभि	सुगन्धि
उपासां चक्रिरे	सेवनकरती भई	च	और
च	और	दुर्गन्धि	दुर्गन्धि
असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां	उभयम्	दोनों को
तम्	नाक में रहने वाले उस चैतन्य प्राण को	जिघ्रति	सूंघता है
पाप्मना	अपने अधर्म करके	हि	क्योंकि
		एषः	नासिका अभिमानी देवता
		+ तेन	उस
		पाप्मना	पाप करके
		विद्धः	संयुक्त है

भावार्थ ।

जिस नासिकासम्बन्धी चेतनरूप प्राणनामक उद्गीथ को इन्द्रियों की सतोगुणी वृत्तियां सेवन करती भई याने उपासना करती भई उसी नासिकासम्बन्धी प्राण को तमोगुणी वृत्तियां स्पर्श

करके अशुद्ध करती हैं, इस लिये जीव सुगंधि और दुर्गंधि दोनों को सूंघता है, क्योंकि उसका नासिकाभिमानी देवता प्राण दोनों प्रकार की वृत्तियों से संसर्ग रखता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताꣳहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, वाचम्, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, ताम्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तया, उभयम्, वदति, सत्यम्, च, अनृतम्, च, पाप्मना, हि, एषा, विद्धा ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	ह	स्पष्ट
+देवाः	देवता याने इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां	उपासांचक्रिरे	उपासना करती भई
		च	और
वाचम्	वाणी को अथवा वाणी विषे स्थित चेतन प्राण को	ताम्	उसी वाणी विषे स्थित चेतन प्राण को
		असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
उद्गीथम्	ॐकाररूपसे	ह	भी

पाप्मना=पापसे संसर्ग	तस्मात्=तिसी कारण
विविधुः=करती भई	तया=उस वाणी
च=और	करके
हि=जिस कारण	+जनः= पुरुष
एषा=यह वाणी	सत्यम्=सत्य
पाप्मना=पापके संसर्ग	अनृतम्=असत्य
करके	उभयम्=दोनों को
विद्धा=युक्त है	वदति=बोलता है

भावार्थ ।

जैसे जिस जिस स्थान में देवता वास करते थे, उस उस स्थान को असुर भ्रष्ट कर देतेथे, उसी तरह सात्त्विक वृत्तियां शरीर के जिस जिस इन्द्रिय में वास करने लगीं, उसी इन्द्रिय को तमोगुणी वृत्तियां पाप करके अशुद्ध करती भईं, जब सतोगुणी वृत्तियां वाणी बिषे स्थित चेतन प्राण को उपासना करती भईं, तब तिस वाणी बिषे स्थित चेतन प्राण को तमोगुणवृत्तियां पाप से भ्रष्ट करती भईं, और इस प्रकार पाप से संयुक्त हुई वाणी द्वारा पुरुष सत्य व असत्य दोनों बोलता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, चक्षुः, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्,

पश्यति, दर्शनीयम्, च, अदर्शनीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
अथ	फिर
+देवाः	देवता याने इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
चक्षुः	चक्षुमें स्थित चेतन को याने चक्षु-अभिमानी देवता को
उद्गीथम्	ॐकाररूप से
ह	भलीप्रकार
उपासांचक्रिरे	उपासना करती भई
च	और
तत्	तिसी चक्षुके बिषे स्थित चैतन्य को अथवा चक्षु-अभिमानी देवता को

अन्वयः	पदार्थ
असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
ह	भी
पाप्मना	पाप करके
विविधुः	संसर्ग करती भई
तस्मात्	तिसी कारण
+च	निश्चय करके
+जनः	पुरुष
तेन	उस चक्षु द्वारा
उभयम्	दोनों
दर्शनीयम्	देखने के योग्य
च	और
अदर्शनीयम्	न देखने के योग्य वस्तुको
पश्यति	देखता है
हि	क्योंकि
एतत्	यह नेत्र
पाप्मना	स्पर्शपाप करके
विद्धम्	दोषयुक्त है

भावार्थ ।

जिस चक्षु अभिमानी देवता को ओंकाररूप से इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां उपासना करती भई उसी चक्षुअभिमानी देवता को तमोगुणी वृत्तियां स्पर्शपाप करके भ्रष्ट करदेती भई, और यही कारण है कि पुरुष जो देखने योग्य वस्तु है और जो नहीं देखने योग्य वस्तु है उन दोनों को देखता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, श्रोत्रम्, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, शृणोति, श्रवणीयम्, च, अश्रवणीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	और	श्रोत्रम्	श्रोत्रमें स्थित चेतन को याने श्रोत्राभिमानी देवता को
अथ	फिर		
+देवाः	इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां		

उद्गीथम्=ॐकाररूपसे
उपासांचक्रिरे=उपासना करती भईं
ह=अफसोसहै कि
तत्=तिसी श्रोत्र में स्थित चैतन्य को अथवा श्रोत्राभिमानी देवता को
असुराः=इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
पाप्मना=पाप करके
विविधुः=छेदती भईं याने संसर्ग करती भईं
तस्मात्=इसलिये
+जनः=पुरुष
तेन=उस श्रोत्रके द्वारा
उभयम्=दोनों
श्रवणीयम्=सुनने योग्य
च=और
अश्रवणीयम्=न सुनने योग्य शब्द को
शृणोति=सुनता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह श्रोत्र
पाप्मना=स्पर्श पाप करके
विद्धम्=छिदा है याने दोषयुक्त है

भावार्थ ।

फिर इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां श्रोत्राभिमानी देवता को ॐकाररूप से उपासना करती भईं, तिसी श्रोत्राभिमानी देवता को तमोगुणी वृत्तियां भी स्पर्श करके अशुद्ध करती भईं, और यही कारण है कि पुरुष सुनने योग्य और न सुनने योग्य शब्दों को सुनता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पा-

प्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳसंकल्पयते संकल्प-
नीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, मनः, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, तत्, ह, असुराः, पाप्मना, विविधुः, तस्मात्, तेन, उभयम्, संकल्पयते, संकल्पनीयम्, च, असंकल्पनीयम्, च, पाप्मना, हि, एतत्, विद्धम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
अथ	फिर
+ देवाः	इंद्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
हि	निश्चयकरके
मनः	मनमेंस्थित चेतन को याने मन-अभिमानी देवताको
उद्गीथम्	ॐकाररूपसे
ह	भलीप्रकार
उपासांचक्रिरे	उपासना करतीभईं
च	और
तत्	तिसी मन अभिमानी देवताको
असुराः	इंद्रियों की तामस वृत्तियां
ह	भी
पाप्मना	पाप करके
विविधुः	छेदती भई याने दोषयुक्त करती भई
+ च	और
तस्मात्	तिसीकारण
+ जनः	पुरुष
तेन	उस मन करके
उभयम्	दोनों

संकल्पनीयम् = संकल्पके योग्य
+ च = और
असंकल्पनीयम् = संकल्पके अयोग्य वस्तुको

संकल्पयते = इच्छा करता है
हि = क्योंकि
एतत् = यह मन
पाप्मना = स्पर्शपापकरके
विद्धम् = छिदा है याने दोषयुक्त है

भावार्थ ।

जब इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां मनअभिमानी देवता को ॐकाररूप से उपासना करती भईं तब तिस मनअभिमानी देवता को इन्द्रियों की तामसवृत्तियां स्पर्श करके पाप से संयुक्त करती भईं, और यही कारण है कि पुरुष मन करके संकल्प के योग्य और संकल्पके अयोग्य वस्तुके पाने की इच्छा करता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्त्वा विध्वꣳसेत ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, यः, एव, अयम्, मुख्यः, प्राणः, तम्, उद्गीथम्, उपासांचक्रिरे, तम्, ह, असुराः, ऋत्वा, विदध्वंसुः, यथा, अश्मानम्, आखणम्, ऋत्वा, विध्वंसेत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	और	ऋत्वा	प्राप्त होकर के याने तिस को स्पर्श करके
अथ	फिर	असुराः	इन्द्रियों की तामस वृत्तियां
यः	जो	ह	पूरीतौर से
अयम्	यह प्रसिद्ध	विदध्वंसुः	नष्ट होती भई
मुख्यः	मुखमें रहने वाला	यथा	जैसे
प्राणः	चेतन प्राण है	+ लोष्टः	माटीका बर्तन
तम्	उसको	आखणम्	कठिन
+ देवाः	इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां	अश्मानम्	पत्थरपर
उद्गीथम्	ॐकाररूपसे	ऋत्वा	गिर करके
उपासांचक्रिरे	उपासना करतीभई	विध्वंसेत	फूटजाता है
च	परन्तु		
तम्	तिसको		

भावार्थ ।

जब सात्त्विकवृत्तियां मुख्य प्राण की उपासना करती भई तब तिसीको इन्द्रियों की तमोगुणवृत्तियां भी स्पर्श करने को चाहीं; परन्तु स्पर्श करतेही नाश को प्राप्त हुईं, जैसे मिट्टी का बर्त्तन सख़्त पत्थर पर गिरने से चूर चूर होजाता है, और उस पत्थर की कोई हानि नहीं होती तैसे मुख्य प्राण ज्यों का त्यों बना रहा, उसको कोई हानि नहीं पहुँची ॥ ७ ॥

मूलम् ।

एवं यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳहैव सविधꣳसते । य एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, यथा, अश्मानम्, आखणम्, ऋत्वा, विध्वंसते, एवम्, ह, एव, सः, विध्वंसते, यः, एवंविदि, पापम्, कामयते, यः, च, एनम्, अभिदासति, सः, एषः, अश्माऽऽखणः ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एवंविदि	इस प्रकार प्राण को जाननेवाले पुरुष के तरफ
पापम्	पाप
+कर्तुम्	करने के लिये
कामयते	इच्छा करताहै
च	और
यः	जो
एनम्	प्राणवेत्ता को
अभिदासति	दुःख देताहै
सः	वह

अन्वयः	पदार्थ
एवमेव	इस प्रकार
ह	भलीभांति
विध्वंसते	नष्ट होजाताहै
यथा	जैसे
आखणम्	कठिन
अश्मानम्	पत्थर पर
ऋत्वा	गिरकर
+लोष्टः	माटीका बर्तन
विध्वंसते	नष्ट होजाताहै
च	क्योंकि
सः	वह
एषः	यह याने प्राणवेत्ता

आखणः } = कठिन
अश्मा } पत्थर के

एवम् = { तुल्यहै यान अविकारी ब्रह्मरूप है

भावार्थ ।

यह मंत्र प्राण की उपासना के महत्त्व को दिखाता है, यह कहते हुये कि जो कोई प्राण के उपासक को पापवृत्ति से देखता है या उसको दुःख पहुँचाने की इच्छा करता है वह इस तरह से नष्ट होजाता है जैसे मिट्टी का बर्त्तन कठिन पत्थर पर गिरकर चूर चूर होजाता है, यह प्राण अविकारी ब्रह्मरूप है, सब पाप-कर्मों को भस्म करदेता है, जैसे वशिष्ठ के ब्रह्मदंडने लड़ाई में विश्वामित्र के शस्त्रप्रहार को निष्फल कर दियाथा ॥ ८ ॥

मूलम् ।

नैवैते न सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति। एतमु एवान्ततो वित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

न, एव, एतेन, सुरभि, न, दुर्गन्धि, विजानाति, अपहतपाप्मा, हि, एषः, तेन, यत्, अश्नाति, यत्, पिबति, तेन, इतरान्, प्राणान्, अवति, एतम्, उ, एव, अन्ततः, अवित्त्वा, उत्क्रामति, व्याददाति, एव, अन्ततः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
न एव	तामस वृत्ति करके नहीं बिधा है जो
च	और
अपहत-पाप्मा	जिससे पाप नष्ट होगयाहै
एषः	वह मुख्यप्राण
एतेन	इस नासिका द्वारा
दुर्गन्धि	दुर्गन्धि को
च	और
सुरभि	सुगन्धि को
न	नहीं
विजानाति	जानता है
तेन	उसी विशुद्ध प्राण द्वारा
+पुरुषः	पुरुष
यत्	जो कुछ
अश्नाति	खाता है
च	और
यत्	जो कुछ
पिबति	पीता है

अन्वयः	पदार्थ
तेन	उस खान पान करके
इतरान्	अन्य
प्राणान्	नासिकाआदि बिषे प्राणरूपी देवताओं को
उ	अच्छे प्रकार
अवति	पालन करताहै
+यदा	जब
एतम्	खानपानको
अवित्त्वा	न पाकरके
अन्ततः	मरणके समय
एव	निश्चय करके
+घ्राणादिप्राणसमुदायः	नासिकाआदि अभिमानी देवता का समूह
उत्क्रामति	भाग निकलता है
+ तर्हि	तब
इति	इसीकारण
+पुरुषः	पुरुष

अन्ततः=मरते समय	व्याददाति=मुखखोल
एव=निश्चयकरके	देता है

भावार्थ ।

इस मंत्र में मुख्य प्राण के कई विशेषण हैं, पहिला विशेषण यह है कि वह प्राण तामसवृत्तियों करके नहीं बिधा है, दूसरा विशेषण यह है कि वह सुगन्धि और दुर्गन्धि से कोई संसर्ग नहीं रखता है, तीसरा विशेषण यह है कि नासिका आदि विषे जो देवता हैं उनको वह पालन करता है, यदि प्राण न रहे तो इन्द्रियाभिमानी देवता खान पान को न पाकरके अपने अपने स्थान से निकल भागें, और जब पुरुष मरण को प्राप्त होजाता है, तब उसका मुख खुलजाता है; प्राण के रहने का स्थान मुख है, और मुख में अग्नि का वास है, और अग्नि शुद्ध है, इस लिये मुख्य प्राण अग्निस्थान के कारण घ्राणादि इन्द्रियों में स्थित प्राणोंकी अपेक्षा अतिशुद्ध है, शास्त्रानुसार क्षुधा, पिपासा, प्राण की ऊर्म्मि हैं, इसलिये जबतक शरीर में प्राण रहता है तब तक वह खान पान करता है, और इस खान पान करके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय पुष्ट होती हैं; और जब प्राण निकलने लगता है, तब वह क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकती हैं, इससे यह प्रसिद्ध है कि इन्द्रियाभिमानी देवता सब मुख्य प्राण के आधीन हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तछंहाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, अङ्गिराः, उद्गीथम्, उपासांचक्रे, एतम्, उ, एव, आङ्गिरसम्, मन्यन्ते, अङ्गानाम्, यत्, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ दाल्भ्यः	= दल्भ्यऋषि का पुत्र	एतम्	= इसीमुख्य प्राणको
+ बकः	= बकऋषि	एव	= ही
तम्	= उसीमुख्य प्राणको कि यह अङ्गिरा है (याने उद्गीथ है)	+ ऋषयः	= मुनिलोग
+ इति	= ऐसीबुद्धिकरके	आङ्गिरसम्	= अंगिरा के पुत्र बृहस्पति
उद्गीथम्	= उद्गीथकी	मन्यन्ते	= मानते हैं
उपासांचके	= उपासनाकरताभया	यत्	= क्योंकि
+ च	= और	सः	= वह मुख्यप्राण
		अङ्गानां	= सबअङ्गों का
		रसः	= पोषकहैयाने सबका परवरिश करने वाला है

भावार्थ ।

अंगिरा शब्द का अर्थ मुख्य प्राण है, जब से मुख्य प्राण की उपासना अङ्गिरा ऋषिने की तब से उसका याने मुख्य प्राण का नाम भी अंगिरा पड़गया, क्योंकि उपास्य उपासक में भेद नहीं रहता है, उद्गीथ और अंगिरा एक ही हैं, क्योंकि यह दोनों प्राणरूप हैं, और इसी प्रकार अंगिरा पिता और आंगिरस पुत्र याने कारण कार्य दोनों एक ही हैं, क्योंकि जैसे उपास्य उपासक में भेद नहीं रहता है, वैसे ही कार्य कारण में कोई भेद नहीं रहता है, इस प्रकार दल्भ्यऋषि के पुत्र बकऋषि मुख्य प्राण

को अंगिरा मानकर ॐकार की उपासना की, और और ऋषि लोग भी ऐसी ही उपासना करते भये ॥ १० ॥

मूलम् ।

तेनतꣳह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, बृहस्पतिः, उद्गीथम्, उपासांचक्रे, एतम्, उ, एव, बृहस्पतिम्, मन्यन्ते, वाक्, हि, बृहती, तस्याः, एषः, पतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वाक्	=वाणी	उद्गीथम्	=ॐकाररूप से
बृहती	=बृहती है	बृहस्पतिः	=बृहस्पति
हि	=इसलिये	ह	=निश्चय करके
एषः	=यह याने बृहस्पति	उपासांचक्रे	=उपासना करता भया
तस्याः	=उस बृहती का या वाक् का	उ	=और
पतिः	=स्वामी है	एतम्	=मुख्य प्राणको
तेन	=तिस कारण	एव	=ही
तम्	=उस मुख्य प्राण को	+ऋषयः	=मुनिलोग
		बृहस्पतिम्	=बृहस्पति
		मन्यन्ते	=मानते हैं

भावार्थ ।

इस मुख्य प्राणकी उपासना बृहस्पति ऋषि ने उद्गीथ मान

करके की, इसीकारण ऋषियों ने मुख्य प्राण को बृहस्पति माना है, क्योंकि उपास्य उपासक में कोई भेद नहीं होता है, जो उपास्य है वही उपासक है, वाक्ही बृहती है, और बृहती का स्वामी बृहस्पति याने मुख्य प्राण है, क्योंकि वाक् मुख्य प्राण के आधीन है, जब तक पुरुष में मुख्य प्राण रहता है तब तक वाक् भी रहती है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

तेनतꣳहायास्य उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवायास्यम् मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, आयास्यः, उद्गीथम्, उपासांचक्रे, एतम्, उ, एव, आयास्यम्, मन्यन्ते, आस्यात्, यत्, अयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	चूंकि	उपासांचक्रे	उपासना करता भया
आयास्यः	आयास्य ऋषि	उ	और
आस्यात्	मुख से	एतम्	इसी मुख्य प्राण को
अयते	निकला है	एव	ही
तेन	इसलिये	+मुनयः	मुनिलोग
सः	वह	आयास्यम्	आयास्य नाम करके
तम्	मुख्य प्राण को	मन्यन्ते	मानते हैं
उद्गीथम्	ॐकाररूप से		

भावार्थ ।

जिस कारण आयास्य ऋषि (आस्यात् अयते इति आयास्यः) मुख से उत्पन्न हुवा है, तिसी कारण उसने मुख्य प्राण की उपासना ॐकाररूप से की है, और तिसी कारण यह मुख्य प्राण आयास्य नाम करके प्रसिद्ध हुवा है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

तेनतꣳह बको दाल्भ्यो विदांचकार । स ह नैमिशीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामाना-गायति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

तेन, तम्, ह, बकः, दाल्भ्यः, विदांचकार, सः, ह, नैमिशीयानाम्, उद्गाता, बभूव, सः, ह, स्म, एभ्यः, कामान्, आगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
दाल्भ्यः	दल्भ्य ऋषि का पुत्र
बकः	बक ऋषि
तम्	उस मुख्य प्राण को
ह	निश्चय करके
विदांचकार	जानता भया याने उपासना करता भया
तेन	इस कारण
सः	वह बक ऋषि
ह	प्रसिद्ध
नैमिशीयानाम्	निमिशक्षेत्र के यज्ञकर्त्ता ऋषियों का
उद्गाता	उद्गातानामक ऋत्विज
बभूव	हुवा

सः=वही उद्गाता बक ऋषि	कामान्=मनोरथों को
ह=निश्चय करके	आगायति स्म=कहता भया याने पूर्ण करता भया
एभ्यः=इन यज्ञकर्त्ता ऋषियों के	

भावार्थ ।

दल्भ्यऋषिका पुत्र बकऋषि मुख्य प्राण के अर्थ को भली प्रकार जानता भया, और इसीलिये वह नैमिशारण्यक्षेत्रमें यज्ञ करनेवाले ऋषियों का उद्गाता नाम से ऋत्विज हुवा, जो सामवेदी होता है और यजुर्वेदी अध्वर्यु की आज्ञासे यज्ञमें सामवेद की शाखानुसार काम करता है, वह उद्गाता होता है, सो यह उद्गाता बकऋषि उन यज्ञकर्त्ता ऋषियों के मनोरथों को पूर्ण करता भया, याने जिस मनोरथानिमित्त उन्होंने यज्ञ किया था वे सब सफल हुये ॥ १३ ॥

मूलम् ।

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

आगाता, ह, वै, कामानां, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपास्ते, इति, अध्यात्मम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो पुरुष	+मुख्यप्राणं=मुख्य प्राणको
एवम्=कहेहुये प्रकार	एतत्=इस
विद्वान्=जानता हुवा	अक्षरम्=अविनाशी

उद्गीथम्=ॐकाररूप से
उपास्ते=उपासना करता है
+सः=वह पुरुष
कामानाम्=सब मनोरथों का
वै=निश्चय करके
आगाता=कहनेवाला यानै पूर्ण करनेवाला
भवति=होता है
ह=इस प्रकार
अध्यात्मम्=यह अध्यात्म-विद्या
इति=समाप्त हुई

भावार्थ ।

यह मन्त्र ॐकार के उपासना की फल स्तुति के निमित्त है, जो पुरुष ऊपर कहेहुये प्रकार मुख्य प्राण की अविनाशी ॐकार-रूप से उपासना करता है, वह सब मनोरथों का सिद्ध करनेवाला होता है, "देवो भूत्वा देवानप्येति" इस श्रुति के अनुसार उपासक उपास्यरूप होजाता है, चूंकि ॐकार अविनाशी है इसलिये उपासक भी अविनाशी ब्रह्मरूप होजाता है ॥ १४ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यꣳस्तमो भयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अधिदैवतम्, यः, एव, असौ, तपति, तम्,

उद्गीथम्, उपासीत, उद्यन्, वै, एषः, प्रजाभ्यः, उद्गायति, उद्यन्, तमः, भयम्, अपहन्ति, अपहन्ता, ह, वै, भयस्य, तमसः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अधिदैवतम्	देवता विषयक उद्गीथ की उपासना
+प्रस्तुतम्	शुरू होती है
यः	जो
असौ	यह सूर्य
एव	प्रत्यक्ष
×उद्यन्	निकलता हुवा
तपति	तपता है
+च	और
यः	जो
एषः	यह सूर्य
उद्यन्	निकलता हुवा
प्रजाभ्यः	प्रजा के कल्याणार्थ
वै	निश्चय करके
उद्गायति	उद्गीथ को गाता है

अन्वयः	पदार्थ
+किंच	और
+यः	जो
उद्यन्	निकलता हुवा
तमः	अंधकार को
+च	और
भयम्	अंधकार के भय को
अपहन्ति	नष्ट करता है
तम्	उसी सूर्य को
उद्गीथम्	ॐकाररूप से
उपासीत	सेवन करे
+यः	जो पुरुष
एवम्	इस प्रकार
वेद	जानता है
× सः	वह
ह	ही
भयस्य	संसारके भय का

+च=और	अपहन्ता=नाश करने
तमसः=अज्ञान का	वाला
वै=निश्चय करके	भवति=होता है

भावार्थ ।

अध्यात्मविषयक उद्गीथ की उपासना के बाद देवताविषयक उद्गीथ की उपासना शुरू होती है, उपासक को चाहिये कि जो यह प्रत्यक्ष सूर्य निकलता है, और प्रजा के कल्याणार्थ प्रकाश देताहै, और जो अन्धकार और अन्धकार के भय को नाश करता है, उस बिषे उद्गीथ या ॐकार की उपासना करै, जो पुरुष इस प्रकार उपासना करता है वह संसार के भय का और अज्ञान का नाशक होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

समान उ एवायं चासौ चोष्णोयमुष्णोसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिममं चोद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

समानः, उ, एव, अयम्, च, असौ, च, उष्णः, अयम्, उष्णः, असौ, स्वरः, इति, इमम्, आचक्षते, स्वरः, इति, प्रत्यास्वरः, इति, अमुम्, तस्मात्, वा, एतम्, इमम्, अमुम्, च, उद्गीथम्, उपासीत ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अयम्=यह शरीर बिषे स्थित प्राण	असौ={ उस सूर्य बिषे स्थित प्राण दोनों
च=और	

समानः=तुल्य हैं
च=और
इति=जैसे
अयम्=यह शरीर बिषे स्थित प्राण
उष्णः=गर्म है
इति=उसी प्रकार
असौ=वह सूर्य बिषे स्थित प्राण
एव=भी
उष्णः=गर्म है
इति=जिस प्रकार
इमम्=शरीर बिषे स्थित प्राणको
स्वरः=स्वर
इति=करके
आचक्षते=लोग कहते हैं
वा=उसी प्रकार
अमुम्=सूर्य बिषे स्थित उस प्राण को
प्रत्यास्वरः=प्रत्यास्वर
इति=करके
आचक्षते=लोग कहते हैं
तस्मात्=इसलिये
इमम्=इस शरीर बिषे स्थित प्राण में
उ=और
अमुम्=उस सूर्य बिषे स्थित प्राण में
एतम्=इस उद्गीथ की
उद्गीथम्=ॐकाररूप से
उपासीत=उपासना करे

भावार्थ ।

जो प्राण इस शरीर बिषे स्थित है, वही प्राण सूर्य बिषे भी स्थित है, और जैसे शरीर बिषे वाला प्राण गर्म है, वैसेही सूर्य बिषे स्थित प्राण भी गर्म है, जिस तरह शरीर बिषे स्थित प्राण को स्वर कहते हैं, उसी प्रकार सूर्य बिषे स्थित प्राण का प्रत्यास्वर कहते हैं, इसलिये उपासक को चाहिये कि सूर्य बिषे स्थित प्राण को अपने बिषे स्थित प्राणसे अभेद जानकर उसमें उद्गीथ की उपासना करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोपानः । अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक् तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, व्यानम्, एव, उद्गीथम्, उपासीत, यत्, वै, प्राणिति, सः, प्राणः, यत्, अपानिति, सः, अपानः, अथ, यः, प्राणापानयोः, सन्धिः, सः, व्यानः, यः, व्यानः, सा, वाक्, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, वाचम्, अभिव्याहरति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
व्यानम्	व्यान की
एव	ही
उपासीत	उपासना करै
यत्	जिस वायु को
+पुरुषः	पुरुष
प्राणिति	बाहर निकालता है
सः	वह
वै	ही
प्राणः	प्राण है
यत्	जिस वायु को
+पुरुषः	पुरुष
अपानिति	नीचे को निकालता है
सः	वह
खलु	ही
अपानः	अपान है
अथ	और
यः	जो वायु

अन्वयः	पदार्थः	अन्वयः	पदार्थ
प्राणापानयोः	= प्राण अपान का	अप्राणन्	= प्राण के व्यापार को रोकता हुवा
सन्धिः	= मध्यस्थ है	+च	= और
सः	= वही	अनपानन्	= अपान के व्यापार को रोकता हुवा
व्यानः	= व्याननाम से प्रसिद्ध है	+पुरुषः	= पुरुष
यः	= जो	वाचम्	= वाणी को
व्यानः	= व्यान वायु है	अभिव्याहरति	= उच्चारण करता है
सा	= वही		
वाक्	= वाणी है		
तस्मात्	= इसलिये		

भावार्थ ।

जो वायु इन्द्रियों के बिषे स्थित है, और जो ऊपर को जाता है, वह प्राणवायु है, और वह वायु जो गुदा आदि इन्द्रियों के बिषे स्थित है, और नीचे के तरफ जाता है, वह अपान वायु है, और जो प्राण अपान के मध्य बिषे स्थित है, वह व्यान वायु है, यही वाक् है, क्योंकि जब प्राण और अपान वायु के व्यापार बंद होजाते हैं, तब पुरुष व्यान वायु के द्वारा बोलता है, इस व्यान वायु की उद्गीथरूप से उपासना करै ॥ ३ ॥

मूलम् ।

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्सामगायति य त्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति॥४॥

पदच्छेदः ।

या, वाक्, सा, ऋक्, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, ऋचम्, अभिव्याहरति, या, ऋक्, तत्, साम, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, साम, गायति, यत्, साम, सः, उद्गीथः, तस्मात्, अप्राणन्, अनपानन्, उद्गायति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
या	जो	तत्	वही
वाक्	वाणी है	साम	सामवेद है
सा	वही	तस्मात्	इसी कारण
ऋक्	ऋचा है	अप्राणन्	प्राण के व्यापार को रोकता हुवा
तस्मात्	इसी कारण	अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुवा
अप्राणन्	प्राण के व्यापार को रोकता हुवा	+पुरुषः	पुरुष
अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुवा	साम	सामवेद को
ऋचम्	ऋचा को	गायति	गान करता है
+पुरुषः	पुरुष	यत्	जो
अभिव्याहरति	उच्चारण करता है	साम	साम है
या	जो	सः	वही
ऋक्	ऋचा है	उद्गीथः	उद्गीथ है
		तस्मात्	इसीलिये

अप्राणन्=	प्राण के व्यापार को रोकता हुवा	+पुरुषः=पुरुष	
अनपानन्=	अपान के व्यापार को रोकता हुवा	उद्गायति=	व्यान वायु के द्वारा उद्गीथका गान करता है

भावार्थ ।

वाणीही ऋचा है, इसी कारण ऋचा को पुरुष प्राण अपान की गति को रोक करके उच्चारण करता है, ऋचाही सामवेद है, इसी कारण पुरुष प्राण अपान के व्यापार को रोक करके सामवेद का गान करता है, और जो सामवेद है वही उद्गीथ है, इस लिये पुरुष प्राण अपान के व्यापार को रोकता हुवा सामवेद के मन्त्रों से व्यानवायु के द्वारा उद्गीथ की उपासना करता है॥ ४॥

मूलम् ।

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अतः, यानि, अन्यानि, वीर्यवन्ति, कर्माणि, यथा, अग्नेः, मन्थनम्, आजेः, सरणम्, दृढस्य, धनुषः, आयमनम्, अप्राणन्, अनपानन्, तानि, करोति, एतस्य, हेतोः, व्यानम्, एव, उद्गीथम्, उपासीत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अतः	इस कारण	तानि	तिन कर्मों को
+एव	ऐसे	अप्राणन्	प्राणके व्यापार को रोकता हुवा
यानि	जो	अनपानन्	अपान के व्यापार को रोकता हुवा
अन्यानि	और	+पुरुषः	पुरुष
वीर्यवन्ति	अधिक उपाय-साध्य	+व्यानेन	व्यानवायु के द्वारा
कर्माणि	कर्म हैं	करोति	करता है
यथा	जैसे	एतस्य	इस
अग्नेः	अग्नि का	हेतोः	कारण
मन्थनम्	मन्थन	व्यानम्	व्यान की
आजेः	किसी नियुक्त जगह से	एव	ही
सरणम्	दौड़ना	उद्गीथम्	ॐकाररूप से
+च	और	उपासीत	उपासना करै
दृढस्य	पुष्ट कठोर		
धनुषः	धनुष का		
आयमनम्	खींचना		

भावार्थ ।

बड़े बड़े जो दुःसाध्य कर्म हैं जैसे यज्ञ बिषे अग्निका मन्थन, और किसी नियुक्त जगह से दौड़ना, या लड़ाई की ओर वेग से जाना, या पुष्ट कठोर धनुष का खींचना, इन कर्मों को पुरुष प्राण और अपान की गतिको रोकता हुआ व्यानवायु करकेही करताहै, इसलिये व्यानवायुकीही पुरुष ॐकाररूपसे उपासना करै॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेन्नं थमन्ने हीदꣳ सर्वꣳ स्थितम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, उद्गीथाक्षराणि, उपासीत, उद्गीथे, इति, प्राणः, एव, उत्, प्राणेन, हि, उत्तिष्ठति, वाक्, गीः, वाचः, ह, गिरः, इति, आचक्षते, अन्नम्, थम्, अन्ने, हि, इदम्, सर्वम्, स्थितम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
उद्गीथाक्षराणि	उद्गीथके अक्षरों की
उपासीत	उपासना करै
उद्गीथे	उद्गीथपद में
उत्	उत्
इति	इस अक्षर का अर्थ
प्राणः	मुख्य प्राण है
हि	क्योंकि
प्राणेन	प्राणवायुकरके
पुरुषः	पुरुष
उत्तिष्ठति	उठता है

अन्वयः	पदार्थ
गीः	गी
इति	इस अक्षरका अर्थ
वाक्	वाणी है
गिरः	गीको
खलु	ही
वाचः	वाक्
आचक्षते	कहते हैं
थम्	थ अक्षर का अर्थ
अन्नम्	अन्न है
अन्ने	अन्न में
हि	ही

इदम्=यह	एव=निश्चय करके
सर्वम्=सब जगत्	स्थितम्=ठहरा है

भावार्थ ।

उद्गीथ की उपासना के पश्चात् उद्गीथपद के अक्षरों की उपासना इस प्रकार करै, उद्गीथपदमें जो उत्, अक्षर है उसका अर्थ मुख्यप्राण है, क्योंकि पुरुष मुख्यप्राण करकेही व्यवहार करता है, गी, का अर्थ वाणी है, गी-कोही वाक् कहते हैं, इसीसे गिरः निकला है थ, का अर्थ अन्न है, अन्नही में सारा जगत् ठहरा है, इस प्रकार जान करके उद्गीथके अक्षरों की उपासना करै ॥६॥

मूलम् ।

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थꣳ सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराणि उपास्त उद्गीथ इति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

द्यौः, एव, उत्, अन्तरिक्षम्, गीः, पृथिवी, थम्, आदित्यः, एव, उत्, वायुः, गीः, अग्निः, थम्, सामवेदः, एव, उत्, यजुर्वेदः, गीः, ऋग्वेदः, थम्, दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, यः, एतानि, एवम्, विद्वान्, उद्गीथाक्षराणि, उपास्ते, उद्गीथः इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
उत्=उत्, अक्षर	एव=ही

द्यौः=स्वर्ग है
गीः=गी, अक्षर
अन्तरिक्षम्=आकाश है
थम्=थ, अक्षर
पृथिवी=पृथ्वी है
उत्=उत्, अक्षर
एव=ही
आदित्यः=सूर्य है
गीः=गी, अक्षर
वायुः=वायु है
थम्=थ, अक्षर
अग्निः=अग्नि है
उत्=उत्, अक्षर
एव=ही
सामवेदः=सामवेद है
गीः=गी, अक्षर
यजुर्वेदः=यजुर्वेद है
थम्=थ, अक्षर
ऋग्वेदः=ऋग्वेद है
यः=जो
वाचः=वाणी का
दोहः=फल है याने मोक्ष है
+तम्=उस
वाग्दोहम्=वाणीके फलको
अस्मै=उपासक के लिये
+उपासना=ध्यानधारणादिरूपउपासना
दुग्धे=पूर्ण करती है याने देती है
यः=जो उपासक
एवम्=कहेहुये प्रकार
एतानि=इन
उद्गीथाक्षराणि=उद्गीथके अक्षरों को
विद्वान्=जानता हुवा
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
अन्नवान्=अन्न संपत्ति वाला
+च=और
अन्नादः=भोग शक्तिवाला
भवति=होता है
इति=इस प्रकार
उद्गीथः=उद्गीथ की उपसना है

भावार्थ ।

उद्गीथ के अक्षरों का इस प्रकार ध्यान करै, उत्-स्वर्ग है, गी-आकाश है, थ-पृथ्वी है, उत्-सूर्य है, गी-वायु है, थ-अग्नि है, उत्-सामवेद है, गी-यजुर्वेद है, थ-ऋग्वेद है, इस प्रकार उपासना करने से वाणी का फल याने वेद पाठ करने से जो फल मोक्षरूपी है वही उपासक को शरीर त्यागने के पश्चात् प्राप्त होता है, और देह रखते हुये जो उपासक उद्गीथ के इन अक्षरों को जानता हुवा उपासना करता है वह अन्नसंपत्तिवाला और भोगशक्तिवाला होता है, याने उसके घर में अन्न वस्त्रादिक की बाहुल्यता होती है, और उसका शरीर तन्दुरुस्त रहकर उन दिये पदार्थों को भली प्रकार भोगता है, यह उद्गीथ के अक्षरों की उपासना का महत्फल है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ खल्वाशीः समृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत । येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, आशीःसमृद्धिः, उपसरणानि, इति, उपासीत, येन, साम्ना, स्तोष्यन्, स्यात्, तत्, साम, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरांत	+उच्यते	कहाजाता है
आशीः समृद्धिः	फलसिद्धि	उपसरणानि	ध्यान करने योग्य जो ध्येय हैं
+यथा	जिस प्रकार	तानि	उनको
खलु	अच्छीतरह	इति	इस प्रकार
+भवेत्	होवै	उपासीत	उपसना करै याने

येन=जिस
साम्ना=सामवेदके मंत्रों करके
स्तोष्यन्=स्तुति करताहुवा
स्यात्=होवै याने स्तुति करना चाहै तो

सः=वह उपासक
साम=उस सामवेदके मंत्रको
उपधावेत्=पहिले चिंतन करै

भावार्थ ।

जिस प्रकार फल की सिद्धि होवै उसको कहते हैं, ध्यान करने योग्य जो ध्येयवस्तु बहुतरूप से हैं (एकं बहुधा वदन्ति) उनकी उपासना करनेसे पहिले जिस सामवेदके मन्त्र करके उपासक उपासना करना चाहता है वह उस सामवेद के मंत्र को भली प्रकार चिंतन करै, याने उस मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता आदि का चिंतन करलेवे अर्थात् स्मरण करलेवे ॥ ८ ॥

मूलम् ।

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवता मभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

यस्याम्, ऋचि, ताम्, ऋचम्, यदार्षेयं, तम्, ऋषिम्, यां, देवताम्, अभिष्टोष्यन्, स्यात्, ताम् देवताम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यस्याम्=जिस		+साम=सामवेद है	
ऋचि=ऋचामें		ताम्=उस	
+तत्=वह		ऋचम्=ऋचाको	

+उपधावेत्=चिंतन करै

यदार्षेयम्=जिस ऋषिने उसऋचाको स्मरण किया है

तम्=उस

ऋषिम्=ऋषिको

उपधावेत्=चिंतन करै

+च=और

याम्=जिस

देवताम्=देवता की

अभिष्टोष्यन् स्यात्=स्तुति करता हुवा होवे याने जिस देवता की स्तुति करना चाहे

ताम्=उस

देवताम्=देवता को भी

उपधावेत्=चिंतन करै

भावार्थ ।

सामवेद में बहुत ऋचा हैं, जिस खास ऋचा करके उद्गीथ की उपासना उपासक करना चाहता है, उस ऋचा का वह पहिले ध्यान कर लेवे, और जिस ऋषिने उस खास ऋचा का स्मरण किया है, उस ऋषिका भी ध्यान पहिले करलेवे, और जिस देवता की स्तुति उस खास ऋचा करके करना चाहता है उस खास देवता का भी चिंतन पहिले करले ॥ ९ ॥

मूलम् ।

येनच्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तꣳ स्तोममुपधावेत् १०

पदच्छेदः ।

येन, छन्दसा, स्तोष्यन्, स्यात्, तत्, छन्दः, उपधावेत्, येन, स्तोमेन, स्तोष्यमाणः, स्यात्, तम्, स्तोमम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
येन	जिस	येन	जिस
छन्दसा	गायत्रीआदि छन्द करके	स्तोमेन	स्वर करके
स्तोष्यन्	स्तुति करने वाला	स्तोष्यमाणःस्यात्	स्तुति करने वाला हो
स्यात्	होवै	तम्	उस
तत्	उस	स्तोमम्	स्वर को
छन्दः	छन्दको	उपधावेत्	चिंतन करै याने जानलेवे
उपधावेत्	चिंतन करै याने जानलेवे		

भावार्थ ।

जिस गायत्री आदि छन्द करके उपासक उद्गीथ की उपासना करना चाहता है, उस छन्द को पहिले जानलेवे, और जिस स्वर करके वह स्तुति करना चाहता है उस स्वर को भी भलीभांति पहिले जानलेवे, सामवेद सात स्वरों करके गाया जाता है, और वह यह है निषाद, ऋषभ, गांधार, खड्ज, मध्यम, धैवत, पंचम इनके भिन्न भिन्न भेद हैं,जो सामवेदकी ऋचाओं करके उद्गीथकी उपासना करना चाहै वह इन स्वरों के भेद को भली प्रकार जान लेवे, और इनके साथही साथ उदात्त अनुदात्त स्वरित आदिकोंको भी जानलेवे ताके उपासना का फल उसको यथोचित होवे ॥ १० ॥

मूलम् ।

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ११॥

पदच्छेदः ।

याम्, दिशम्, अभिष्टोष्यन्, स्यात्, ताम्, दिशम्, उपधावेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
याम्	जिस	ताम्	उस
दिशम्	दिशाकी	दिशम्	दिशाअभिमानी देवताको
अभिष्टोष्यन्	स्तुतिकरनेवाला	उपधावेत्	चिंतनकरै अर्थात् ध्यान करै
स्यात्	होवै		

भावार्थ ।

उद्गीथ का उपासक जिस दिशा की स्तुति करनेवाला होवै उस दिशाके अभिमानी देवता का ध्यान करै ॥ ११ ॥

मूलम् ।

आत्मानमन्ततउपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, अन्ततः, उपसृत्य, स्तुवीत, कामम्, ध्यायन्, अप्रमत्तः, अभ्याशः, ह, यत्, अस्मै, सः, कामः, समृध्येत, यत्कामः, स्तुवीत, इति, यत्कामः, स्तुवीत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अप्रमत्तः	सावधान होता हुवा
+ च	और
कामम्	अपने मनोरथ को
ह	निश्चय करके
ध्यायन् +सन्	ध्यान करता हुवा
+उद्गाता	उद्गीथका गान करनेवाला
आत्मानम्	अपने आत्मा को
अन्ततः	अन्त में
उपसृत्य	चिंतन करके
स्तुवीत	स्तुति करता है तो
यत्	जिस कर्ममें

अन्वयः	पदार्थ
स्तुवीत	उद्गीथका गान करता है
+तत्र	उसी कर्म में
अस्मै	उद्गाताके लिये
अभ्याशः	शीघ्र
सः	वह
कामः	मनोरथ
समृध्येत	फलदायक होता है
यत्कामः	जिस कामना करके
+सः	वह उपासक
स्तुवीत	स्तुति करताहै
इति	इस प्रकार देवतासंबंधि उद्गीथकी उपासना समाप्त हुई

भावार्थ ।

उपासक ऋषि छन्द देवता स्वर आदिकोंको भलीप्रकार जानता हुवा और अपने मनोरथों को स्मरण करता हुवा उद्गीथ और उद्गीथ के अक्षरों की उपासना के पश्चात् यदि उद्गीथ का गान करनेवाला अपने आत्मा की स्तुति करे तो जिस कर्म में वह जिस मनोरथ के लिये गान करता है उस कर्मयज्ञमें उसका मनोरथ

पूर्ण होता है ऐसी यह देवतासम्बन्धी उद्गीथ की उपासना समाप्त हुई ॥ १२ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, इति, एतत्, अक्षरम्, उद्गीथम्, उपासीत, ॐ, इति, हि, उद्गायति, तस्य, उपव्याख्यानम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एतत्=इस	उद्गायति=उद्गीथका गान करता है
ॐ=ॐ	+तस्मात्=इसलिये
अक्षरम्=अक्षरकी	तस्य=उस ॐकारका
उद्गीथम्=उद्गीथरूप से	उपव्याख्यानम्=व्याख्यानभली प्रकार
उपासीत=उपासना करै	इति=करके
हि=चूंकि	+उच्यते=कहाजाता है
ॐ=ॐ	
इति=कह करके	
+उद्गाता=उद्गाता	

भावार्थ ।

इस चतुर्थखण्ड में उद्गीथ का माहात्म्य और उसकी उपासना का फल कहा जाता है—

इस ॐ अक्षर की उपासना उद्गीथरूप से करना चाहिये

क्योंकि यह अक्षर ॐ ही अविनाशी ब्रह्मरूप है, और उसी ॐ को उद्गाता गान करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

देवाः, वै, मृत्योः, बिभ्यतः, त्रयीम्, विद्याम्, प्राविशन्, ते, छन्दोभिः, अच्छादयन्, यत्, एभिः, अच्छादयन्, तत्, छन्दसाम्, छन्दस्त्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
देवाः	इन्द्रियों की सात्त्विक वृत्तियां
मृत्योः	इन्द्रियों की तामसवृत्तियों के संसर्गरूप पाप से
बिभ्यतः	डरती
+सन्तः	हुई
त्रयीम्	तीनों
विद्याम्	वेदों को
प्राविशन्	प्राप्तभई यानी उनकी शरण लेती भई
+किंच	और
ते	इन्द्रियों की वे सात्त्विकवृत्तियां
छन्दोभिः	तीनों वेदों के मंत्रों करके
+आत्मानम्	अपने को
अच्छादयन्	ढकती भई यानी रक्षा करती भई
यत्	जिस कारण
एभिः	इन मंत्रों करके

अच्छादयन्	= अपने को ढकतीभई यानी अपनी रक्षा करती भई	छन्दसाम्	= ढाकने वाले यानी रक्षा करने वाले मंत्रों को
तत्	= तिसी कारण	छन्दस्त्वम्	= छन्द कहते हैं

भावार्थ ।

देवता अर्थात् इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां इन्द्रियों की तामस वृत्तियों से भय पाकर तीनों वेदोंकी शरण को लेती भईं, और उन वेदोंके मंत्रों करके अपनी रक्षा करती भईं, चूंकि उन मन्त्रों करके वे सात्त्विकवृत्तियां रक्षा करती भईं इसलिये रक्षा करनेवाले मंत्रों को छन्द कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि । ते नु वित्त्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, उ, तत्र, मृत्युः, यथा, मत्स्यम्, उदके, परिपश्येत्, एवम्, पर्यपश्यत्, ऋचि, साम्नि, यजुषि, ते, नु, वित्त्वा, ऊर्ध्वाः, ऋचः, साम्नः, यजुषः, स्वरम्, एव, प्राविशन् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	= जैसे	मत्स्यम्	= मछली को
+मत्स्यघातकः	= मछली मारने वाला धीवर	उदके	= उथले पानी में
		परिपश्येत्	= देखता है

एवम्=वैसेही
मृत्युः=मृत्यु (याने तमोगुणीवृत्तियां)
तत्र=उस वैदिक कर्म के आरंभ होने पर
ऋचि=ऋग्वेदसम्बन्धी
साम्नि=सामवेदसम्बन्धी
यजुषि=यजुर्वेदसम्बधी कर्मों में
उ=भली प्रकार
तान्=वैदिक कर्म करने वाली सात्विकवृत्तियों को
पर्यपश्यत्=देखता भया
ते=वे सात्त्विक वृत्तियां
नु=निश्चय करके
वित्त्वा=मृत्यु की कामना को जान करके
ऋचः=ऋग्वेद
साम्नः=सामवेद
यजुषः=यजुर्वेदके कर्मोंसे
ऊर्ध्वाः=उपरत होती भई यानी हटती भई
+किंच=और
स्वरम्=ॐकारकी शरण को
उ=दृढ़ता के साथ
प्राविशन्=प्रवेश करती भई यानी प्राप्त होती भई

भावार्थ ।

जैसे मछली मारनेवाला धीवर उथले पानीमें मछली पकड़ने के लिये देखता है, तैसेही मृत्यु यानी तमोगुणीवृत्तियां ऋक्, साम, यजुर्वेदों के मंत्रों करके रक्षा की हुई सात्विकवृत्तियों को देखती भई, परंतु उन वेदमन्त्रों से रक्षा न पाकरके और मृत्यु के मनोगत कामनाको जानकर ऋक्, साम, यजुर्वेदों के कर्मों

से उपरत होती भई, याने हटती भई और ॐकार की शरणको प्राप्त होती भई ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳसामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वा, ऋचम्, आप्नोति, ॐ, इति, एव, अतिस्वरति, एवम्, साम, एवम्, यजुः, एषः, उ, स्वरः, यत्, एतत्, अक्षरम्, एतत्, अमृतम्, अभयम्, तत्, प्रविश्य, देवाः, अमृताः, अभयाः, अभवन् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	इति	कहकरके
+उपासकः	उपासक	साम	सामवेदके मंत्रों को
ऋचम्	ऋग्वेदकेमंत्रोंको	+च	और
ॐ इति	ॐ करके	यजुः	यजुर्वेदकेमंत्रोंको
आप्नोति	प्राप्त होता है यानी उच्चारण करता है	अतिस्वरति	उच्चारण करता है
एव	और जब	+तदा	तब
एवम्	इसी प्रकार	एषः	यह ॐ
ॐ	ॐ		

स्वरः = स्वर है याने स्वतंत्र है, किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करता है	अभयम् = भयरहित है
यत् = जिस कारण	+ तस्मात् = तिसी कारण
एतत् = यह ॐ	तत् = ॐरूप उस ब्रह्म को
अक्षरम् = अक्षररूप है	प्रविश्य = प्राप्त होकरके
+ च = और	देवाः = देवता याने इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां
+ यत् = जिसकारण	अमृताः = अमर
एतत् = यह ॐ	+ च = और
अमृतम् = मरणधर्मरहित है	अभयाः = अभय
+ च = और	अभवन् = होती भई

भावार्थ ।

जब उपासक ऋक्, साम, यजुर्वेदोंके मंत्रों को ॐ कह करके उच्चारण करताहै, तब यह ॐ स्वर है, स्वर क्या है, इसके जवाब में कहा जाता है कि स्वर वह है जो अविनाशी है, जो किसी की सहायताकी अपेक्षा नहीं करता है, जो अजर है, अमर है, अभय है, स्वतंत्र है, और जिस कारण यह ऐसा है, तिसी कारण इन्द्रियोंकी सात्त्विकवृत्तियां इसकी उसपाना करके अजर, अमर, अभय होती भई ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳस्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अक्षरम्, प्रणौति, एतत्, एव, अक्षरम्, स्वरम्, अमृतम्, अभयम्, प्रविशति, तत्, प्रविश्य, यत्, अमृताः, देवाः, तत्, अमृतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो पुरुष	प्रविशति	=प्रवेश करता है यानेप्राप्त होताहै
एवम्	=कहेहुये प्रकार	यत्	=जिस कारण
एतत्	=इस	देवाः	=इन्द्रियों की सात्त्विकवृत्तियां
अक्षरम्	=ॐ अक्षरको	तत्	=ॐकाररूप ब्रह्म को
विद्वान्	=जानता	प्रविश्य	=ध्यान करके
+सन्	=हुवा	अमृताः	=मरणधर्म रहित
प्रणौति	=उपासना करताहै	+अभवन्	=होती भई
सः	=वह	तत्	=तिसी कारण
एतत्	=इसी	+उपासकः	=ॐकार का उपासक
एव	=ही	अमृतः	=अमर
अमृतम्	=अमर	भवति	=होजाता है
+ च	=और		
अभयम्	=अभयरूप		
स्वरम्	=स्वर (स्वतंत्र)		
अक्षरम्	=ॐकारको		

भावार्थ ।

जो पुरुष कहेहुये प्रकार इस अक्षर ॐ की उपासना करता है, वह पुरुष अमर और अभयरूप स्वर अथवा ॐकार को प्राप्त होताहै; और चूंकि सात्त्विकवृत्तियां ॐकाररूप ब्रह्मको ध्यान करके

अभय और अमर होती भई, इसलिये जो पुरुष ॐकार की उपासना करता है, वह भी अमर और अभय होजाता है ॥ ५ ॥
इति प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ॐ मितिह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, यः, उद्गीथः, सः, प्रणवः, यः, प्रणवः, सः, उद्गीथः, इति, असौ, वा, आदित्यः, उद्गीथः, एषः, प्रणवः, ॐ, इति, हि, एषः, स्वरन्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	ऊपर कहे हुये के पीछे	यः	जो
खलु	अब	प्रणवः	प्रणव है
यः	जो	सः	वही
उद्गीथः	सामवेदियों का उद्गीथ है	+छांदोग्यः	सामवेदियों का
सः	वही	उद्गीथः	उद्गीथ है
+बह्वृचानाम्	ऋग्वेदियों का	इति	इसी प्रकार
प्रणवः	प्रणव है	असौ	यह प्रत्यक्ष
		आदित्यः	सूर्य
		वा	भी
		उद्गीथः	उद्गीथ है

एषः=यही
प्रणवः=प्रणव है
हि=क्योंकि
एषः=यह सूर्य
ॐ=ॐ
इति=ऐसा
स्वरन्=उच्चारण करता हुवा
एति=प्राणियों के उपकारार्थ उदयाचल पर्वत से निकलता है

भावार्थ ।

उद्गीथ और प्रणव में कोई भेद नहीं है, जो सामवेदियों का उद्गीथ है, वही ऋग्वेदियों का प्रणव है, जो साम्हने सूर्य दिखाई देता है, वह भी उद्गीथ है, और वह भी प्रणव है, क्योंकि वह ॐ ॐ ऐसा शब्द उच्चारण करता हुवा उदयाचल पर्वत से प्राणियों के उपकारार्थ और रक्षार्थ निकलता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीꣳस्त्वं पर्यावर्त्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, उ, एव, अहम्, अभ्यगासिषम्, तस्मात्, मम, त्वम्, एकः, असि, इति, ह, कौषीतकिः, पुत्रम्, उवाच, रश्मीन्, त्वम्, पर्यावर्त्तयात्, बहवः, वै, ते, भविष्यन्ति, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
उ	और
अहम्	मैं कुषीतक ऋषिका पुत्र
एतम्	इसी सूर्य के
एव	ही
अभ्यगासिषम्	सामने उद्गीथ का गान करता भया याने उपासना उद्गीथरूपसे करता भया
तस्मात्	इसीलिये
मम	मुझको
त्वम्	तू
एकः	एक पुत्र
आसि	प्राप्त भया है
इति	ऐसा
कौषीतकिः	कौषीतकि ऋषि

अन्वयः	पदार्थ
पुत्रम्	अपने पुत्र को
उवाच	कहताभया कि
रश्मीन्	सूर्य के किरणों की
ह	और
+आदित्यम्	सूर्य की
त्वम्	तू
+भेदेन	भेद बुद्धि करके
पर्यावर्त्तयात्	उपासना कर
वै	निश्चय करके
ते	तुझको
बहवः	बहुत
+पुत्राः	पुत्र
भविष्यन्ति	प्राप्त होंगे
इति	इसप्रकार
अधिदैवतम्	यहदेवताविषयक उद्गीथ की उपासना है

भावार्थ ।

कौषीतकि ऋषि अपने पुत्रसे इस प्रकार कहते हैं, कि हे पुत्र ! मैंने इस प्रत्यक्ष सूर्य की उद्गीथरूप से उपासना की है, उसका

यह फल हुवा कि तू मुझको १ पुत्र प्राप्त हुवा है, तू सूर्य और सूर्य के किरणों की उपासना उद्गीथरूपसे कर, तेरेको बहुत पुत्र प्राप्त होंगे, यह देवतासम्बन्धी उद्गीथ की उपासना है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, यः, एव, अयम्, मुख्यः, प्राणः, तम्, उद्गीथम्, उपासीत, ॐ, इति, हि, एषः, स्वरन्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	देवता विषयक उपासना के उपरांत कहते हैं कि	हि=	क्योंकि
यः=	जो	एषः=	यह प्राण
अयम्=	यह	+सूर्यवत्=	सूर्य की तरह
मुख्यः=	मुखसम्बन्धी	ॐ=	ॐ
प्राणः=	चैतन्य प्राण है	इति=	ऐसा
तम्=	उसको	स्वरन्=	उच्चारण करता हुवा
उद्गीथम्=	उद्गीथ से अभेद मानकर	एति=	वागिन्द्रियादिकी प्रवृत्ति केलिये चलता है
उपासीत=	उपासना करै		

भावार्थ ।

अब आध्यात्मिक उपासना कहते हैं जो यह मुखसम्बन्धी

चैतन्य प्राण है उसकी उपासना उद्गीथरूप से करै क्योंकि यह चैतन्य मुख प्राण सूर्य की तरह ॐ उच्चारण करता हुवा वागिन्द्रियादिक की प्रवृत्ति उनके उनके कार्य में करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणांस्त्वं भूमानंमभिगायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ॥ ४॥

पदच्छेदः ।

एतम्, उ, एव, अहम्, अभ्यगासिषम्, तस्मात्, मम, त्वम्, एकः, असि, इति, ह, कौषीतकिः, पुत्रम्, उवाच, प्राणान्, त्वम्, भूमानम्, अभिगायतात्, बहवः, वै, मे, भविष्यन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उ	और	मम	मुझको
अहम्	मैं कुषीतकऋषि का पुत्र	त्वम्	तू
एतम्	इसी	एकः	एक पुत्र
एव	ही प्राण के	असि	प्राप्त हुवा है
अभ्यगासिषम्	सामने उद्गीथ का गान करता भया याने उपासना करता भया	इति	ऐसा
		कौषीतकिः	कौषीतकि ऋषि
		पुत्रम्	अपने पुत्र से
		उवाच	कहता भया
		मे	मेरे को
तस्मात्	इसलिये	बहवः	बहुत

+पुत्राः=पुत्र	भूमानम्=वागादि इन्द्रिय संबंधी प्राणों को
भविष्यन्ति=हों	अभिगायतात्=उपासना कर
इति=ऐसा	
वै=निश्चय करके	
त्वम्=तू	

भावार्थ ।

कौषीतकि ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे पुत्र! मैंने इसी चैतन्य प्राण की उद्गीथरूप से उपासना की इसलिये तू एक पुत्र मुझको प्राप्त हुवा है, बहुत प्रकार करके वागादि इन्द्रिय संबंधी प्राणों की तू उपासना कर, तुझको निश्चय करके बहुत पुत्र प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥ इति पञ्चमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, यः, उद्गीथः, सः, प्रणवः, यः, प्रणवः, सः, उद्गीथः, इति, होतृषदनात्, ह, एव, अपि, दुरुद्गीतम्, अनुसमाहरति, इति, अनुसमाहरति, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=निश्चयकरके	प्रणवः=प्रणवहै
यः=जो	यः=जो
उद्गीथः=उद्गीथहै	प्रणवः=प्रणव है
सः=वही	सः=वही

उद्गीथः=उद्गीथ है
इति=इसलिये
+ उद्गाता={उद्गीथका गान करने वाला ऋत्विक
होतृषदनात्=होत्रकर्म करके
ह एव=निस्संदेह
दुरुद्गीतम्={अपने उद्गीथके स्वरवर्णादिदोषयुक्त गानको
अपि=भी
अनुसमाहरति={सम्हाललेताहै याने अशुद्धउच्चारणके दोष को दूरकरताहै
इति={इस प्रकार उद्गीथ की उपासनासमाप्तहुई

भावार्थ ।

इस खंड बिषे उद्गीथकी उपासना का फल कहते हैं, जो प्रणव है वही उद्गीथहै, और जो उद्गीथ है वही प्रणव है, ऐसा जानता हुवा उद्गाता याने उद्गीथ का गान करनेवाला ऋत्विक अपने उद्गीथ के गान में जो स्वर वर्णादि करके वेद के अशुद्ध उच्चारण में पाप होता है उस पाप से वह होत्रकर्म के द्वारा निवृत्त हो जाता है ॥ ५ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ छं साम तस्मादृच्यध्यूढ छं साम गीयत इयमेव साग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

इयम्, एव, ऋक्, अग्निः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, इयम्, एव, सा, अग्निः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
इयम्एव	यही पृथ्वी
ऋक्	ऋग्वेद है
+तथा	और
अग्निः	अग्नि
साम	सामवेद है
तत्	वह
एतत्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस पृथ्वीरूपी
ऋचि	ऋग्वेद में
अध्यूढम्	आधेयभावकरके स्थित है
तस्मात्	इसलिये
ऋचि	ऋग्वेद में
अध्यूढम्	आधेयभाव से स्थितहै ऐसा समुझकर
साम	सामवेद
+सामगैः	सामवेदियों करके
गीयते	गाया जाता है
इयम् एव	यही यह पृथ्वी
सा	सा है
च	और
अग्निः	अग्नि
अमः	अम है
तस्मात्	तिस कारण
तत्	वह अग्नि
च	और
+एतत्	यह पृथ्वी दोनों मिलकर
साम	साम शब्द का अर्थ है

भावार्थ ।

यह पृथ्वी ऋग्वेद है, और अग्नि सामवेद है, पृथ्वीरूपी ऋग्वेद आधार में सामवेद आधेयभाव करके स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं, साम शब्द दो पदों करके बना है सा जिसका अर्थ पृथ्वी है, और अम जिसके मानी अग्नि के हैं, इसलिये साम कहने से पृथ्वी और अग्नि का बोध होता है, जैसे पृथ्वी और अग्नि में भेद नहीं है, तैसे सामवेद और ऋग्वेद में भेद नहीं है, क्योंकि ऋग्वेद आधार है और सामवेद आधेय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अन्तरिक्षम्, एव, ऋक्, वायुः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, अन्तरिक्षम्, एव, सा, वायुः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अन्तरिक्षम्	आकाश	तत्	वही
एव	ही	एतत्	यह वायुरूपी
ऋक्	ऋग्वेद है	साम	सामवेद
वायुः	वायु	एतस्याम्	इस आकाश रूपी
साम	सामवेद है		

ऋचि=ऋग्वेद विषे
अध्यूढम्=आधेयरूप से
स्थित है
तस्मात्=इसलिये
ऋचि= {ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित}
साम=सामवेद
+सामगैः=सामवेदियों
करके
गीयते=गान किया
जाता है

अन्तरिक्षम्=आकाश
एव=ही
सा=सा है
च=और
वायुः=वायु
अमः=अम है
तत्=वह आकाश
च=और
+एतत्=यह वायु दोनों
मिलकर
साम=साम शब्द का
अर्थ है

भावार्थ ।

आकाशही ऋग्वेद है, और वायु सामवेद है, वह वायुरूपी सामवेद इस आकाशरूपी ऋग्वेद विषे आधेयरूप से स्थित है, इस कारण ऋग्वेद विषे आधेयरूप से स्थित हुये सामवेद को ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं, साम दो पदों करके पूर्वप्रकार युक्त है, सा जिसके मानी आकाश के हैं, और अम जिसके मानी वायुके हैं, सामशब्द कहने से आकाश और वायु का बोध होता है, तात्पर्य इस मंत्र का यह है कि जो ऋग्वेद है वही सामवेद है, एक आधाररूप से है और दूसरा आधेय रूप से है ॥ २ ॥

मूलम् ।

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ

साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते द्यौरेव सादित्योमस्तत्साम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

द्यौः, एव, ऋक्, आदित्यः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, द्यौः, एव, सा, आदित्यः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
द्यौः	स्वर्ग	+सामगैः	सामवेदियों करके
एव	ही	गीयते	गाया जाता है
ऋक्	ऋग्वेद है	द्यौः	स्वर्ग
आदित्यः	सूर्य ही	एव	ही
साम	सामवेद है	सा	सा है
तत्	वही सूर्यरूपी	च	और
एतत्	सामवेद	आदित्यः	सूर्य ही
एतस्याम्	इस स्वर्गरूपी	अमः	अम है
ऋचि	ऋग्वेद में	तस्मात्	इसलिये
अध्यूढम्	आधेय रूप से स्थित है	तत्	वह स्वर्ग
तस्मात्	इसलिये	एतत्	यह सूर्य दोनों मिलकर
ऋचि	ऋग्वेद में	साम	साम शब्द का अर्थ है
अध्यूढम्	आधेय रूप से स्थित		
साम	सामवेद		

भावार्थ ।

स्वर्गही ऋग्वेद है, और सूर्यही सामवेद है, यह सूर्यरूपी सामवेद इस स्वर्गरूपी ऋग्वेद में आधेय रूप से स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी सामवेद का गान करते हैं, साम शब्द दो पदों से युक्त है (सा) जिसके मानी स्वर्ग है, और (अम) के मानी सूर्य है, इसलिये सामशब्द का अर्थ स्वर्ग और सूर्य है, इस मन्त्र का तात्पर्य पिछले मन्त्र की तरह सामवेद और ऋग्वेद की एकता में है, क्योंकि दोनों आधार और आधेयभाव से स्थित हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमामस्तत्साम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

नक्षत्राणि, एव, ऋक्, चन्द्रमाः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, नक्षत्राणि, एव, सा, चन्द्रमाः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नक्षत्राणि	=नक्षत्र	तत्	=वह
एव	=ही	एतत्	=यह चन्द्रनामक सामवेद
ऋक्	=ऋग्वेद है	एतस्याम्	=इस नक्षत्ररूपी
चन्द्रमाः	=चन्द्रमा	ऋचि	=ऋग्वेद में
साम	=सामवेद है		

अध्यूढम्=आधेयभावसे स्थित है	नक्षत्राणि=नक्षत्र
तस्मात्= { इस लिये (गुरुसे ऐसा जानकर)	एव=ही
ऋचि=ऋग्वेद विषे	सा=सा अक्षर है
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित	च=और
साम=सामवेद	चन्द्रमाः=चन्द्रमा
+सामगैः=सामवेदियों करके	अमः=अम अक्षर है
गीयते=गाया जाता है	तत्=वह नक्षत्र
	च=और
	एतत्=यह चन्द्रमा दोनों मिलकर
	साम=साम शब्द का अर्थ है

भावार्थ ।

नक्षत्रही ऋग्वेद है, चन्द्रमाही सामवेद है, वह चन्द्रनामक सामवेद इस नक्षत्ररूपी ऋग्वेद में आधेयभाव से स्थित है, ऐसा गुरुद्वारा जान करके सामवेदी गायन करता है, साम दो पदों करके युक्त है, एक सा है, दूसरा अम है, सा का अर्थ नक्षत्र है और अम का अर्थ चन्द्रमा है, साम का अर्थ नक्षत्र और चन्द्रमा है, और जैसे चन्द्रमा और नक्षत्र एकही हैं, वैसेही ऋग्वेद और सामवेद एकही हैं और जैसे नक्षत्र आधार है और चन्द्रमा उसका आधेय है, वैसेही ऋग्वेद सामवेद का आधार है, और सामवेद ऋग्वेद का आधेय है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं

परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, भाः, सा, एव, ऋक्, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढं, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चयकरके	साम	सामवेद है
यत्	जो	तत्	वह नीला
एतत्	यह	च	और
आदित्यस्य	सूर्यका	एतत्	यह कालावर्ण सामवेद
शुक्लम्	श्वेत	एतस्याम्	इस शुक्लवर्णरूपी
भाः	रंग है	ऋचि	ऋग्वेद में
साएव	वही	अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
ऋक्	ऋग्वेद है	तस्मात्	इसलिये
अथ	और	ऋचि	ऋग्वेद में
यत्	जो	अध्यूढम्	आधेय रूप से स्थित
नीलम्	नीलवर्ण	साम	सामवेद
+च	और		
परः	अधिक		
कृष्णम्	काला वर्ण है		
तत्	वही		

+सामगैः=सामवेदियोंकरके	गीयते=गाया जाता है

भावार्थ ।

जो सूर्य का श्वेत प्रकाश है वही ऋग्वेद है, और जो नीला और काला वर्ण है वही सामवेद है, नीला और काला वर्ण सम्बन्धी सामवेद शुक्लवर्णरूपी ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित है, ऐसा समझकर सामवेदी गान करते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लम्भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णन्तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रु हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एव, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, भाः, सा, एव, सा, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, अमः, तत्, साम, अथ, यः, एषः, अन्तः, आदित्ये, हिरण्मयः, पुरुषः, दृश्यते, हिरण्यश्मश्रुः, हिरण्यकेशः, आप्रणखात्, सर्वः, एव, सुवर्णः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	=निश्चय करके	शुक्लम्	=श्वेत
यत्	=जो	भाः	=प्रकाश है
एव	=प्रसिद्ध	तत्	=वही
एतत्	=यह	सा	=सा है
आदित्यस्य	=सूर्यका	अथ	=और

यत्=जो
नीलम्=नीलवर्ण
च=और
परः=विशेष
कृष्णम्=कृष्णवर्ण है
तत्=वह
एव=ही
अमः=अम है
तत्=सोई
साम=सामवेद
अथ=और
यः=जो
आदित्ये=आदित्य के
अन्तः=बीचमें
हिरण्मयः=सुवर्णकी तुल्य प्रकाशमान
दृश्यते=देखाजाता है

हिरण्यश्मश्रुः=जिसके मुख के बाल सुवर्णकेऐसेहैं
च=और
हिरण्यकेशः=जिसके केश सुवर्ण की तरह हैं
किंच=और
सर्वः=जिस का सब देह
आप्रणखात्=नखाग्र तक
सुवर्णः=सुवर्णकी तरह है
सः=वही
एषः=यह
पुरुषः=पुरुष है

भावार्थ ।

सूर्य का श्वेत वर्णसा है, और उसका जो नीला और काला वर्ण है, वह अम है, इसलिये सूर्य का श्वेत, नीला, और काला वर्ण तीनों मिलाकर सामवेद है, जो सूर्य बिषे सुवर्ण ऐसा प्रकाशमान दीखता है, और जिसके मुख के बाल सुवर्ण कैसे दिखाई देते हैं, और जिसके केश सुवर्ण की तरह चमकते हैं, और जिसका सब देह शिखसे नखतक सुवर्ण की तरह है, वही यह पुरुष है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, यथा, कप्यासम्, पुण्डरीकम्, एव, अक्षिणी, तस्य, उत्, इति, नाम, सः, एषः, सर्वेभ्यः, पाप्मभ्यः, उत्, इतः, उत्, एति, ह, वै, सर्वेभ्यः, पाप्मभ्यः, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्य	सूर्यमंडलस्थ सुवर्णमय पुरुष के	पाप्मभ्यः	पापों से
अक्षिणी	नेत्र	उत्	ऊपर
कप्यासम्	प्रफुल्लित	इतः	गया है
पुण्डरीकम्	कमलकी	एवम्	इस प्रकार
यथा	तरह हैं	यः	जो उपासक
तस्मात्	इसलिये	+तम्	उस पुरुष को
तस्य	उस पुरुषका	वेद	जानता है
नाम	नाम	+ सः	वह
उत्	उत् है	सर्वेभ्यः	संपूर्ण
सः	वही	पाप्मभ्यः	पापों से
एषः	यह पुरुष	ह वै	अवश्य ही
सर्वेभ्यः	संपूर्ण	उत्	ऊपर
		एति	जाताहै याने निवृत्त होजाता है

भावार्थ ।

सूर्य के विषे स्थित सुवर्णमय पुरुष के नेत्र खिलेहुये कमलकी तरह हैं, वही यह पुरुष पापों को उल्लंघन करके वर्त्तता है, जो उपासक इसप्रकार उस सूर्यमंडलस्थ पुरुष को जानता है, वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषाञ्चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥ ८ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ऋक्, च, साम, च, गेष्णौ, तस्मात्, उद्गीथः, तस्मात्, तु, एव, उद्गाता, एतस्य, हि, गाता, सः, एषः, ये, च, अमुष्मात्, पराञ्चः, लोकाः, तेषाम्, च, ईष्टे, देवकामानाम्, च, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्य	उस आदित्य के बीचमेंरहनेवाले उत् पुरुष के
ऋक्	ऋग्वेद
च	और
साम	सामवेद
गेष्णौ	गानेवाले हैं
तस्मात्	इसलिये
तत्	सोई उत्
उद्गीथः	उद्गीथ है
च	और
तस्मात्	इसलिये
तु	अवश्य
एव	ही
एतस्य	उस उत् नामक पुरुष का

गाता=गानकर्ता
हि=भी
उद्गाता=उद्गाता है
च=और
सः=वही
एषः=उत् नामक पुरुष
अमुष्मात्=सूर्य से
पराञ्चः=ऊपर के
ये=जो
लोकाः=लोक हैं
तेषाम्=उनका
ईष्टे=अधिपति है
च=और
देवकामानाम्=देवताओंकी कामनाओं को
ईष्टे=पूर्ण करता है
इति=ऐसा यह
अधिदैवतम्=आधिदैविक उपासना का फल है

भावार्थ ।

जो आदित्य बिषे पुरुष उत् नाम करके स्थित है, उसके बायें दहिने ऋग्वेद और सामवेद गानेवाले हैं, और वही सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष उद्गीथ है, और इसलिये उद्गीथ नामक पुरुष का गानकर्ता भी उद्गाता कहलाता है, और वह सूर्य बिषे स्थित पुरुष सूर्यसे ऊपरके जो लोक हैं, उनका अधिपति है, और वही देवताओं की कामनाओं को पूरण करता है, ऐसा यह आधिदैविक उपासना का फल है ॥ ८ ॥ इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।

मूलम् ।

अथाध्यात्मं वागेवर्क्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, वाक्, एव, ऋक्, प्राणः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, वाक्, एव, सा, प्राणः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
अध्यात्मम्	आध्यात्मिक उपासना	तस्मात्	तिसी कारण
+उच्यते	कही जाती है	ऋचि	ऋग्वेद बिषे
वाक्	वाणी	अध्यूढम्	ऐसा स्थित
एव	ही	साम	सामवेद
ऋक्	ऋग्वेद है	गीयते	गाया जाता है
प्राणः	नासिकाभ्यंतर स्थित प्राण	वाक्	वाणी
साम	सामवेद है	एव	ही
तत्	वही	सा	सा है
एतत्	यह	प्राणः	प्राणही
साम	साम	अमः	अम है
एतस्याम्	इस वाणीरूपी	तत्	वही दोनों मिलकर
ऋचि	ऋग्वेद में	साम	सामवेद है

भावार्थ ।

अब अभेद आध्यात्मिक उपासना का वर्णन कियाजाता है, जो वाणी है वही ऋग्वेद है, जो नासिकाभ्यन्तर प्राणवायु है,

वही सामवेद है, यह सामवेद वाणीरूपी ऋग्वेद में आधेयरूप से स्थित है, तिसी कारण ऋग्वेद बिषे इसप्रकार स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है, वाक्ही सा है, प्राण ही अम है, इसलिये साम वाणी और प्राणरूप है ॥ १ ॥

मूलम् ।

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते चक्षुरे वसा-त्मामस्तत्साम ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, एव, ऋक्, आत्मा, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, चक्षुः, एव, सा, आत्मा, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
चक्षुः	नेत्र
एव	ही
ऋक्	ऋग्वेद है
आत्मा	उसका प्रतिबिम्ब
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतम्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस
ऋचि	ऋग्वेद बिषे
अध्यूढम्	आधेयरूप से स्थित है
तस्मात्	तिसी कारण
ऋचि	ऋग्वेद बिषे ऐसा स्थित
साम	सामवेद
गीयते	गाया जाता है
चक्षुः	नेत्र

एव=ही	अमः=अम है
सा=सा है	तत्=वही दोनोंमिलकर
आत्मा=प्रतिबिम्बही	साम=सामवदे है

भावार्थ ।

नेत्र ऋग्वेद है, और उसका प्रतिबिम्ब सामवेद है, यह सामवेद ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे इस तरह से स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है, चक्षु सा है, आत्मा अम है, इसलिये दोनों मिलकर सामवेद है ॥ २ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, एव, ऋक्, मनः, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते, श्रोत्रम्, एव, सा, मनः, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
श्रोत्रम्=कर्ण	एतत्=यह
एव=ही	साम=सामवेद
ऋक्=ऋग्वेद है	एतस्याम्=इस कर्णरूपी
मनः=मन	ऋचि=ऋग्वेद बिषे
साम=सामवेद है	अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित है
तत्=वही	

तस्मात्=तिसी कारण	एव=ही
ऋचि=ऋग्वेद बिषे	सा=सा है
अध्यूढम्=आधेयरूप से स्थित	मनः=मनही
	अमः=अम है
साम=सामवेद	तत्=वही दोनों
गीयते=गाया जाता है	मिलकर
श्रोत्रम्=कर्ण	साम=सामवेद है

भावार्थ ।

कर्ण ऋग्वेद है, मन सामवेद है, यह सामवेद कर्णरूपी ऋग्वेदबिषे आधेयरूपसे स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे आधेयरूपसे स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है, कर्ण सा है, मन अम है, ये दोनों मिलकर सामवेद है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते । अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, एतत्, अक्ष्णः, शुक्लम्, भाः, सा, एव, ऋक्, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, साम, तत्, साम, तत्, एतत्, एतस्याम्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, तस्मात्, ऋचि, अध्यूढम्, साम, गीयते । अथ, यत्, एव, एतत्, अक्ष्णः, शुक्लम्, भाः, सा, एव,

सा, अथ, यत्, नीलम्, परः, कृष्णम्, तत्, अमः, तत्, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	निश्चय करके
यत्	जो
एतत्	यह
अक्ष्णः	नेत्र के बिषे स्थित
शुक्लम्	श्वेत
भाः	वर्ण है
सा एव	वही
ऋक्	ऋग्वेद है
अथ	और
यत्	जो
नीलम्	नीलवर्ण है
+च	और
परः	विशेष
कृष्णम्	काला वर्ण है
तत्	वही
साम	सामवेद है
तत्	वही
एतत्	यह
साम	सामवेद
एतस्याम्	इस

अन्वयः	पदार्थ
ऋचि	ऋग्वेदबिषे
अध्यूढम्	आधेयरूपसे स्थित है
तस्मात्	तिसी कारण
ऋचि	ऋग्वेदबिषे
अध्यूढम्	आधेयभावसे स्थित ऐसा
साम	सामवेद
गीयते	गाया जाता है
अथ	और
यत्	जो
एतत् एव	यह ऊपर कहा हुवा
अक्ष्णः	नेत्रबिषे स्थित
शुक्लम्	श्वेत
भाः	वर्ण है
सा एव	वही
सा	सा है
अथ	और
यत्	जो
नीलम्	नीलवर्ण

+ च=और	अमः=अम है
परः=विशेष	तत्=वही दोनों
कृष्णम्=काला वर्ण है	मिलकर
तत्=वही	साम=सामवेद है

भावार्थ ।

जो नेत्र बिषे श्वेतवर्ण है, वह ऋग्वेद है, और जो नीलवर्ण है और काला वर्ण है, वह सामवेद है, यह सामवेद ऋग्वेद बिषे आधेयरूप से स्थित है, इसलिये ऋग्वेद बिषे ऐसा स्थित सामवेद सामवेदियों करके गाया जाता है, जो नेत्रबिषे श्वेतवर्ण है वह सा है, जो नीला और काला वर्ण है, वह अम है, इसलिये ये तीनों वर्ण सूर्य के रंगकी तरह सामवेद है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ य एषोन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एषः, अन्तः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, सा, एव, ऋक्, तत्, साम, तत्, उक्थम्, तत्, यजुः, तत्, ब्रह्म, तस्य, एतस्य, तत्, एव, रूपम्, यत्, अमुष्य, रूपम्, यौ, अमुष्य, गेष्णौ, तौ, गेष्णौ, यत्, नाम, तत्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=निश्चयकरके		यः=जो	

एषः=यह
पुरुषः=पुरुष
अक्षिणि=नेत्र के
अन्तः=भीतर
दृश्यते=देखा जाता है
सा एव=वही
ऋक्=ऋग्वेद है
तत्=वही
साम=सामवेद है
तत्=वही
उक्थम्=सामवेद की ऋचा है
तत्=वही
यजुः=यजुर्वेद है
तत्=वही
ब्रह्म=ब्रह्म है
यत्=जो
रूपम्=रूप
अमुष्य=सूर्यमण्डलस्थ पुरुष का
+अस्ति=है
तत् एव=वही
+रूपम्=रूप
तस्य=कहे हुये
एतस्य=इस चक्षु बिषे स्थित पुरुषका
+अस्ति=है
अमुष्य=सूर्यमण्डलस्थ पुरुष के
यौ=जो
गेष्णौ=अंग हैं
तौ=वही
गेष्णौ=अंग
+तस्य=उस चक्षु बिषे स्थित पुरुष के
+स्तः=हैं
अमुष्य=इस सूर्य बिषे स्थितपुरुषका
यत्=जो
नाम=नाम है
तत्=वही
नाम=नाम, चक्षु बिषे स्थित पुरुष का है

भावार्थ ।

जो यह पुरुष नेत्रबिषे स्थित है, वही ऋग्वेद है, वही सामवेद

है, वही सामवेद की ऋचा है, वही यजुर्वेद है, वही ब्रह्म है, जो सूर्य बिषे स्थित पुरुषका रूप है, वही चक्षु बिषे स्थित पुरुष का रूप है, जो सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष का अंग है, वही चक्षु बिषे स्थित पुरुष का अंग है, और जो सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुष का नाम है, वही चक्षु बिषे स्थित पुरुषका भी नाम है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, ये, च, एतस्मात्, अर्वाञ्चः, लोकाः, तेषाम्, च, ईष्टे, मनुष्यकामानाम्, च, इति, तत्, ये, इमे, वीणायां, गायन्ति, एतम्, ते, गायन्ति, तस्मात्, ते, धनसनयः ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
एतस्मात्	इस प्रत्यक्ष लोक के
अर्वाञ्चः	नीचे ऊपर दहिने बायें
ये	जो
लोकाः	लोक हैं
तेषां	उनका
सः	वही (सूर्य बिषे स्थित पुरुष) और
एषः	यही चक्षु बिषे स्थित पुरुष
ईष्टे	स्वामी होता है

च=और
मनुष्यकामानाम्=मनुष्यों की सब कामनाओं को
च=भी
ईष्टे=पूर्ण करता है
तस्मात्=इसलिये
इति=कहे हुये प्रकार
ये इमे=जो ये गानेवाले
वीणायाम्=वीणा में
गायन्ति=सूर्यविषेस्थित पुरुष का गान करते हैं
ते=वे
एतम्=उसी चक्षु बिषे स्थित पुरुष का
+एव=ही
गायन्ति=गान करते हैं
तस्मात्=तिसी कारण
ते=वे गानेवाले
धनसनयः=धनवान् होते हैं

भावार्थ ।

जो इस प्रत्यक्ष सूर्यके नीचे ऊपर दहिने बायें लोक हैं, उन का वही यह चक्षुबिषे स्थित पुरुष स्वामी होता है, और मनुष्यों की सब कामनाओं को पूर्ण करता है, इसलिये कहेहुये प्रकार ये जो गायन करनेवाले वीणामें सूर्यबिषे स्थित पुरुष का गान करते हैं, वे चक्षुस्थित पुरुष काही गान करते हैं, तिसी कारण गान करनेवाले पुरुष धनवान् होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ य एतदेवं विद्वान् सामगायत्युभौ सगायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ता ᳫँश्चाप्नोति देवकामाᳫँश्च ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, साम, गायति,

उभौ, सः, गायति, सः, अमुना, एव, सः, एषः ये, च, अमुष्मात्, पराञ्चः, लोकाः, तान्, च, आप्नोति, देवकामान्, च ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरान्त
यः	जो
एवम्	कहे हुये प्रकार
एतत्	इस
साम	सामवेद को
विद्वान् +सन्	जानता हुवा
गायति	गान करता है
सः	वह
उभौ	दोनोंको यानी चक्षु बिषे स्थित पुरुष और सूर्य बिषे स्थित पुरुष को
गायति	गान करता है
सः	वही पुरुष
अमुना एव	दोनोंके इसी अभेदउपासना द्वारा

अन्वयः	पदार्थ
ये	जो
लोकाः	लोक
अमुष्मात्	इस उपास्य सूर्य से
पराञ्चः	ऊपर नीचे दहिने बायें हैं
तान्	उन सबको
आप्नोति	प्राप्त होता है
च	और
सः	वही
एषः	यह उपासक
देवकामान्	देवताओं की इच्छा
च	भी
आप्नोति	अपने यजमान की कामनाके लिये प्राप्तकरताहै

भावार्थ ।

जो पुरुष कहेहुये प्रकार सामवेद को जानता हुवा गान करता है वह चक्षु बिषे स्थित पुरुष और सूर्य बिषे स्थित पुरुष दोनों का गान करता है, वही पुरुष दोनों की अभेद उपासना द्वारा जो लोक सूर्य से ऊपर नीचे दहिने बायें हैं उन सबको प्राप्त होता है, और वही उपासक देवताओं की प्रसन्नता को भी अपने यजमान के लिये प्राप्त करता है याने उसके द्वारा यजमान अपनी कामना को देवतों से पाता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति मनुष्यकामाꣳश्च तस्मादुहैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अनेन, एव, ये, च, एतस्मात्, अर्वाञ्चः, लोकाः, तान्, च, आप्नोति, मनुष्यकामान्, च, तस्मात्, उ, ह, एवंवित्, उद्गाता, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
च	और
अथ	इसके उपरांत
ये	जो
एतस्मात्	इस लोक के
अर्वाञ्चः	नीचे ऊपर दहिने बायें
लोकाः	लोक हैं
च	और
ये	जो
मनुष्यकामान्	मनुष्य संबंधी कामना हैं
तान्	उन सबको

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अनेन एव	इसीचक्षुविषे स्थित पुरुष करकेही	एवंवित्	ऐसाजानने वाला
		उद्गाता	उद्गाता
+स्वयजमानार्थम्	अपने यजमान केलिये	+ स्वम्	अपने
		यजमानम्	यजमान को
आप्नोति	प्राप्त करता है	ब्रूयात्	अगले मंत्र के अनुसार कहताहै याने पूंछता है
उ	और		
ह	निश्चय करके		
तस्मात्	इसलिये		

भावार्थ ।

जो इस लोक के अलावा और लोक हैं, और जितनी मनुष्य सम्बन्धी कामना हैं उन सबको चक्षु विषे और सूर्य विषे स्थित पुरुष करकेही उद्गाता अपने यजमान के लिये प्राप्त करसक्ता है इसलिये उद्गाता अपने यजमान से अगले मंत्रके अनुसार पूंछता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान् साम गायति साम गायति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्यायेसप्तमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

कम्, ते, कामम्, आगायानि, इति, एषः, हि, एव, कामागानस्य, ईष्टे, यः, एवम्, विद्वान्, साम, गायति, साम, गायति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
हि	चूंकि	एषः	यह उद्गाता

एव=ही

कामागानस्य = गान करके अपने यजमानके मनोरथोंके

ईष्टे=देने को समर्थ होता है

+ तस्मात्=इसलिये

यः=जो उद्गाता

एवम्=ऐसा

विद्वान्=जानता हुवा

+ स्वयजमानम् = अपने यजमान से

इति=इसप्रकार

+ पृच्छति=पूछता है कि

ते=तेरे

कम्=कौनसे

कामम्=मनोरथ के लिये

आगायानि=गाऊं मैं

+ तर्हि=तब

+ सः=वह

+यजमानात् =यजमान से

+ श्रुत्वा=सुन करके

साम=सामवेद को

गायति=गाता है

भावार्थ ।

उद्गाता अपने को यजमान के मनोरथों के देने में समर्थ पाकर अपने यजमान से इसप्रकार पूछता है कि कह मैं तेरे किस मनोरथ के लिये सामवेद का गायन करूं, जब यजमान की कामना सुन लेता है, तब वह सामवेद का गान करता है ॥ ९ ॥ इति प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति

ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हंतोद्गीथे कथां वदाम इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, ह, उद्गीथे, कुशलाः, बभूवुः, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनः, दाल्भ्यः, प्रवाहणः, जैवलिः, इति, ते, ह, ऊचुः, उद्गीथे, वै, कुशलाः, स्मः, हन्त, उद्गीथे, कथाम्, वदामः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
शालावत्यः	शालावान् का पुत्र
शिलकः	शिलक ऋषि
जैवलिः	जीवल का पुत्र
प्रवाहणः	प्रवाहण ऋषि
+च	और
चैकितायनः	चिकितायन का पुत्र
दाल्भ्यः	दाल्भ्य ऋषि
त्रयः	ये तीनों
उद्गीथे	उद्गीथज्ञान में
ह	भली प्रकार
कुशलाः	निपुण
बभूवुः	थे
इति	इस प्रकार
ते	वे

अन्वयः	पदार्थ
त्रयः	तीनों ऋषि
+परस्परम्	एक दूसरे से
ऊचुः	बोलते भये कि
ह	जिस कारण
+वयम्	हम सब
उद्गीथे	उद्गीथ ज्ञान में
कुशलाः	निपुण
स्मः	हैं
+अतः	इसलिये
हन्त	यदि इच्छा हो तो
इति	ज्ञानप्राप्ति के निमित्त
कथाम्	पक्ष. प्रतिपक्ष बात को
वदामः	कहें

भावार्थ ।

शालावान् का पुत्र शिलक ऋषि, जीवल का पुत्र प्रवाहण ऋषि, और चिकितायन का पुत्र दाल्भ्य ऋषि, ये तीनों उद्गीथ के ज्ञान में निपुण होतेहुये एक दूसरे से इस प्रकार बोलते भये कि यदि सबकी इच्छा हो तो विशेष ज्ञानप्राप्ति के निमित्त पक्ष प्रतिपक्ष वाद को स्वीकार करके आपस में प्रश्न उत्तर करें ॥ १ ॥

मूलम् ।

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तथा, इति, ह, समुपविविशुः, सः, ह, प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, भगवन्तौ, अग्रे, वदताम्, ब्राह्मणयोः, वदतोः, वाचम्, श्रोष्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तथा	बहुत अच्छा	प्रवाहणः	प्रवाहण
इति	ऐसा	उवाच	बोलता भया कि
+ उक्त्वा	कहकर	भगवन्तौ	आप दोनों मानयोग्य
+ ते	वे सब	अग्रे	पहिले
ह	स्वस्थ होकर	वदताम्	कहें
समुपविविशुः	बैठगये	वदतोः	आप दोनों कहनेवाले
+ तर्हि	तब	ब्राह्मणयोः	ब्राह्मणों की
जैवलिः	जीवल का पुत्र		

वाचम्=बातको	श्रोष्यामि=सुनूंगा
+अहम्=मैं	इति=ऐसा कहा

भावार्थ ।

तीनों ऋषि एक दूसरे से सुनकर कहते भये कि ज्ञानप्राप्ति के निमित्त हम सब बातचीत करें, और ऐसा कहकर जब बैठ गये, तब जीवल का पुत्र प्रवाहण कहता भया कि आप दोनों ऋषि मानने योग्य हैं, और ब्राह्मण हैं, मैं चाहताहूं कि आप लोगों की बातों को सुनूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हंत त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनम्, दाल्भ्यम्, उवाच, हंत, त्वा, पृच्छानि, इति, पृच्छ, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह	तब	हंत	जोआपकहेंतो
शालावत्यः	शालावान् का पुत्र	त्वा	आपसे
शिलकः	शिलकऋषि	अहम्	मैं
चैकितायनम्	चिकितायन का पुत्र	पृच्छानि	प्रश्न करूं
दाल्भ्यम्	दाल्भ्यऋषिसे	इति	ऐसा
उवाच	कहताभया कि	+ श्रुत्वा	सुनकर
		सः	उसने
		आह	कहा

पृच्छ=प्रश्नकर	+शिलकः=शिलक नामक ऋषि
+ तदा=तब	उवाच=पूंछताभया
इति=इसतरहयाने अगले मंत्र के अनुसार	

भावार्थ ।

ऐसा सुनकर शालावान् का पुत्र शिलक ऋषि चिकितायन के पुत्र दाल्भ्यऋषि से कहता भया कि यदि आप आज्ञा देवें तो मैं आप से कुछ प्रश्न करूं, ऐसा सुनकर दाल्भ्य ऋषि ने कहा कि तुम बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रश्न करो, तब शिलक ऋषि पूंछता भया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य कागतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

का, साम्नः, गतिः, इति, स्वरः, इति, ह, उवाच, स्वरस्य, का, गतिः, इति, प्राणः, इति, ह, उवाच, प्राणस्य, का, गतिः, इति, अन्नम्, इति, ह, उवाच, अन्नस्य, का, गतिः, इति, आपः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
शिलक उवाच=शिलकऋषि प्रश्न करता भया कि	साम्नः=सामवेद का
	का=कौन
	गतिः=आश्रय है

स्वरः=स्वर है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि कहता भया
स्वरस्य=स्वरका
का=कौन
गतिः=आश्रय है
प्राणः=प्राण है
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्यऋषि बोलता भया
प्राणस्य=प्राणका
का=कौन
गतिः=आश्रय है
अन्नम्=अन्नहै
इति=ऐसा
उवाच=दाल्भ्य ऋषि बोलता भया
अन्नस्य=अन्नका
का=कौन
गतिः=आश्रय है
इति=ऐसे
+ पृष्टः=पूंछेहुयेदाल्भ्य ऋषि ने
उवाच=कहा
आपः=जल हैं

भावार्थ ।

हे दाल्भ्यऋषे ! सामवेद का कौन आश्रय है, उसने कहा स्वर है, स्वर का कौन आश्रय है, उसने कहा प्राण है, प्राण का कौन आश्रय है, उसने कहा अन्न है, अन्न का कौन आश्रय है उसने कहा जल है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अपां कागतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳ सामाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अपाम्, का, गतिः, इति, असौ, लोकः, इति, ह, उवाच, अमुष्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, न, स्वर्गम्, लोकम्, अतिनयेत्, इति, ह, उवाच, स्वर्गम्, वयम्, लोकम्, साम, अभिसंस्थापयामः, स्वर्गसंस्तावम्, हि, साम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अपाम्	जल का
का	कौन
गतिः	आश्रय है
असौ	यह
लोकः	स्वर्गलोक है
इति	ऐसा
ह	निश्चय करके
उवाच	दाल्भ्य ऋषि कहता भया
अमुष्य	इस
लोकस्य	स्वर्गलोकका
का	कौन
गतिः	आश्रय है
स्वर्गम्	स्वर्ग
लोकम्	लोक को
न	नहीं

अन्वयः	पदार्थ
अतिनयेत्	कोई उल्लंघन करसकता है याने सामवेद का आश्रय स्वर्गसे दूसरा और कोई नहीं है
इति	ऐसा
उवाच	दाल्भ्य ऋषि बोलता भया
वयम्	हमभी
स्वर्गम्	स्वर्ग
लोकम्	लोक को
साम	सामरूप से
ह	अच्छी तरह

अभिसंस्थापयामः = प्रतिष्ठा करते हैं याने जो स्वर्ग है वही साम है

स्वर्गसंस्तावम् = स्तुति स्वर्गरूप से की है

हि = क्योंकि

साम = सामवेद की

इति = प्रश्न और उत्तरकी समाप्ति ऊपर कहे हुये प्रकार होती भई

भावार्थ।

शिलक ऋषिने फिर पूंछा, जल का कौन आश्रय है, दाल्भ्य ऋषि ने कहा स्वर्गलोक है, इस स्वर्गलोक का कौन आश्रय है, उसने कहा कि सामवेद का आश्रय स्वर्गलोक से दूसरा लोक नहीं है, मैं स्वर्गलोक की प्रतिष्ठा सामरूप करके करताहूं ॥ ५ ॥

मूलम्।

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

तम्, ह, शिलकः, शालावत्यः, चैकितायनम्, दाल्भ्यम्, उवाच, अप्रतिष्ठितम्, वै, किल, ते, दाल्भ्य, साम, यः, तु, एतर्हि, ब्रूयात्, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मूर्धा, ते, विपतेत्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
शालावत्यः	शालावान् का पुत्र
शिलकः	शिलक ऋषि
तम्	उस
चैकितायनम्	चेकितायन के पुत्र
दाल्भ्यम्	दाल्भ्य ऋषि से
उवाच	कहता भया कि
हे	हे
दाल्भ्य	दाल्भ्य
ह वै	निश्चय करके
ते	तेरा
+कथनम्	कहना कि
साम	साम
+स्वर्गाश्रयम्	स्वर्गाश्रय है
अप्रतिष्ठितम्	अप्रतिष्ठित है
यः	जो कोई
+त्वाम्	तुझसे
ब्रूयात्	कहे कि
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतेत्	गिरजाय
तु	तो
एतत्	उसी समय
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
किल	अवश्य
विपतिष्यति	गिर जायगा
इतिइति	ऐसा कहकर समाप्त किया

भावार्थ ।

शालावान् का पुत्र शिलकऋषि चेकितायन के पुत्र दाल्भ्य ऋषि से कहता भया, हे दाल्भ्य ! तेरा ऐसा कहना कि साम स्वर्ग का आश्रित है, ठीक नहीं है, जब कभी तू किसी विद्वान् सामवेदी से ऐसा कहेगा तो उसके कहने से तेरा मस्तक तेरी गर्दन से अलग होकर गिरपड़ेगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्यलोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

हन्त, अहम्, एतत्, भगवतः, वेदानि, इति, विद्धि, इति, ह, उवाच, अमुष्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, अयम्, लोकः, इति, ह, उवाच, लोकस्य, का, गतिः, इति, न, प्रतिष्ठाम्, लोकम्, अति, नयेत्, इति, ह, उवाच, प्रतिष्ठाम्, वयम्, लोकम्, साम, अभिसंस्थापयामः, प्रतिष्ठासँस्तावम्, हि, साम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ दाल्भ्यः	दाल्भ्यऋषि	वेदानि	जानूं
+ उवाच	बोलता भयाकि	इति	तब
हन्त	यदि आप कहें तो	+ पृष्टः	पूंछा हुआ शिलक ऋषि
भगवतः	आप पूजने योग्य से	उवाच	कहताभया कि
अहम्	मैं	अमुष्य	इस
एतत्	इस साम के आश्रय को	लोकस्य	स्वर्गलोक का
		का	कौन
		गतिः	आश्रय है

+एतत्=इसको
त्वम्=तू
ह=भली प्रकार
विद्धि=जान
+शृणु=सुन
इति=ऐसा
अयम्=यह
लोकः=मृत्युलोक है
इति=तब
दाल्भ्यः=दाल्भ्य ऋषि
उवाच=बोलता भया कि
लोकस्य=मृत्युलोक का
ह=निश्चय करके
का=कौन
गतिः=आश्रय है
इति=तब
+शिलकः=शिलक ऋषि
इति=ऐसा
हं=स्पष्ट
उवाच=कहता भया कि
+इमम्=इस
लोकम्=मृत्युलोकको

अति(अतीत्य)=उल्लंघन करके
साम=साम का
प्रतिष्ठाम्=दूसरा आश्रय
न=कोई नहीं
नयेत्=पाता है
अतः=इसलिये
वयम्=हमलोग
साम=साम को
लोकम्=इस मृत्युलोक का
प्रतिष्ठाम्=आश्रय
अभिसंस्थापयामः=मानते हैं
हि=क्योंकि
साम=सामकी
प्रतिष्ठासंस्तावम्=स्तुति वेदमें पृथ्वीरूप से कीगई है
इति=इस प्रकार प्रश्नोत्तर की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

दाल्भ्य ऋषि बोलता भया कि आप पूजने योग्य से मैं सामवेद का आश्रय जानना चाहता हूं, तब शिलक ऋषि ने कहा कि इसका आश्रय मृत्युलोक है, इस पर दाल्भ्य ऋषि ने पूछा कि मृत्युलोक का आश्रय कौन है, तब शिलक ऋषि ने कहा कि मृत्युलोक को उल्लंघन करके साम का दूसरा आश्रय कोई नहीं है, इसी कारण हम सब साम को मृत्युलोक का आश्रय मानते हैं, क्योंकि साम की स्तुति वेद में पृथ्वीरूपसे कीगई है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह , प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, अन्तवत्, वै, किल, ते, शालावत्य, साम, यः, तु, एतर्हि, ब्रूयात्, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मूर्धा, ते, विपतेत्, इति, हन्त, अहम्, एतत्, भगवतः, वेदानि, इति, विद्धि, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
जैवलिः	=जीवलका पुत्र	ह	=स्पष्ट
प्रवाहणः	=प्रवाहणऋषि	उवाच	=कहता भया कि
तम्	=उस शिलक ऋषि से	शालावत्य	=हे शिलक ऋषि
		ते	=तेरा

साम=सामवेद
अन्तवत्=नाशवान् है
यः=जो कोई
त्वाम्=तुझ
+सामा- ज्ञातारम् } = साम विषे अज्ञानी से
ब्रूयात्=कहै कि
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
निपतेत्=गिरजाय
तु=तो
एतर्हि=उसीकाल
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
किल=निश्चय करके
निपतिष्यति=गिरजायगा
इति=ऐसा सुननेपर
+शिलकः=शिलक ऋषि
+उवाच=बोलताभया कि

हन्त=यदि आप कहें तो
अहम्=मैं
एतत्=इस अविनाशी सामको
भगवतः=आप पूजने योग्य से
वेदानि=जानूं
इति= { इस प्रार्थना वाक्य को सुनकर
+प्रवाहणः=प्रवाहण
+उवाच=बोलता भया कि
विद्धि=जानतू
इति=तब अगले मंत्र के अनुसार
शिलकः=शिलक ऋषि
उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

जीवल का पुत्र प्रवाहण ऋषि शिलक ऋषि से कहता भया कि हे शिलक ! ऐसा तेरा कहा हुवा साम नाशवान् है, जब कभी

कोई सामवेदी तुझसे सुनेगा कि साम आश्रित है स्वर्ग के तो उसके शाप देने से तेरा मस्तक गिर पड़ेगा, ऐसा सुनकर शिलक ऋषि बोलता भया कि यदि आप कहें तो मैं आपसे प्रश्न करके जानूं, तब इस प्रार्थना वाक्य को सुनकर प्रवाहण ऋषि बोलता भया कि तू प्रश्न कर, मैं बताऊंगा ऐसा सुनकर शिलक ऋषि अगले मंत्र के अनुसार पूंछता भया ॥ ८ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्याया नाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अस्य, लोकस्य, का, गतिः, इति, आकाशः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वा, इमानि, भूतानि, आकाशात्, एव, समुत्पद्यन्ते, आकाशम्, प्रति, अस्तम्, यन्ति, आकाशः, हि, एव, एभ्यः, ज्यायान्, आकाशः, परायणम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+शिलक उवाच	= शिलक ऋषि पूंछता भया कि	का	= कौन
अस्य	= इस	गतिः	= आश्रय है
लोकस्य	= लोक का	इति	= ऐसा प्रश्न होने पर
		+प्रवाहणः	= प्रवाहण ऋषि

+उवाच=कहताभया कि
आकाशः=आकाश है
च=और
अस्मात्=इसी
एव=ही
आकाशात्=आकाशसे
इमानि=ये सब
भूतानि=स्थावर जङ्गम प्रजा
ह=निश्चय करके
समुत्पद्यन्ते=उत्पन्न होती हैं
+च=और
आकाशं प्रति=आकाश में ही
अस्तम्=लयभाव को
यन्ति=प्राप्त होती हैं
हि=इसी कारण
आकाशः=आकाश
एव=ही
एभ्यः=इन स्थावर जङ्गम पदार्थों से
वै=अवश्य
ज्यायान्=श्रेष्ठ है
च=और
आकाशः=आकाश
एव=ही
परायणम्=सर्वभूतोंका मुख्य आश्रय है
इति=ऐसा उत्तर देता भया

भावार्थ ।

शिलक ऋषि पूंछता है कि मृत्युलोक का आश्रय कौन है, उसके जवाब में प्रवाहण ऋषि कहता है कि आकाश है, क्योंकि आकाश से स्थावर जंगम सब उत्पन्न हुये हैं, और आकाशही में लीन होते हैं, आकाश परमात्मा का देह है, देह देही एकही समझे जाते हैं, देह देही से पृथक् नहीं रह सकता है, इसलिये आकाश परमात्मा का रूप है, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न होते भये, और प्रलयकाल में पृथ्वी जल में जल अग्नि में अग्नि वायु में वायु आकाश में लीन होते हैं, सृष्टि के आदि में सब प्राणी आकाश से ऊपर

कहे हुये प्रकार पञ्चमहाभूतों करके उत्पन्न होते हैं और अन्त में आकाशही में लीन होते हैं, इसलिये सबका आधार आकाशही है, यह आकाश सब में व्याप्त है, और सब इसके अन्तर्भूत हैं, कोई वस्तु या कोई प्राणी इससे पृथक् नहीं रह सकता है, यह सबका पूजनीय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयोहास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, परोवरीयान्, उद्गीथः, सः, एषः, अनन्तः, परोवरीयः, ह, अस्य, भवति, परोवरीयसः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, परोवरीयांसम्, उद्गीथम्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वही	+जीवनम्	=जीवन
एषः	=यह आकाश	परोवरीयः	=श्रेष्ठसे श्रेष्ठ
उद्गीथः	=उद्गीथरूप	भवति	=होता है
परोवरीयान्	=परमात्मा है	यः	=जो
सः	=वही	एतत्	=इस आकाशरूप ब्रह्म को
एषः	=यह आकाश	एवम्	=कहे हुये प्रकार
अनन्तः	=अंतरहित ब्रह्म है	विद्वान्	=जाननेवाला है
अस्य	=उस ज्ञाता का	+सः	=वही

परोवरीयांसम् =श्रेष्ठ से श्रेष्ठ	च=और
उद्गीथम्=उद्गीथ की	परोवरीयसः =श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
उपास्ते=उपासना करता है	लोकान्=लोकों को
	जयति=पाता है

भावार्थ ।

वही यह आकाश उद्गीथहै, वही यह परमात्मा रूपहै, वही यह ब्रह्मरूप है, इस आकाशका जाननेवाला श्रेष्ठ और पूजनीय होता है, और जो इस आकाशरूपी उद्गीथ ब्रह्मको जानता है वह श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तꣳ हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, एतम्, अतिधन्वा, शौनकः, उदरशाण्डिल्याय, उक्त्वा, उवाच, यावत्, ते, एनम्, प्रजायाम्, उद्गीथम्, वेदिष्यन्ते, परोवरीयः, ह, एभ्यः, तावत्, अस्मिन्, लोके, जीवनम्, भविष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तम्=उसी		एतम्=उद्गीथ का	

वेत्ता=जानने वाला
शौनकः=शुनक ऋषि का पुत्र
अति-धन्वा=अतिधन्वा
उदर-शांडि-ल्याय=अपने शिष्य उदरशांडिल्य से
+उद्गीथ-दर्शनम्=उद्गीथ को
उक्त्वा=भली प्रकार अनुभव करा करके
उवाच=कहता भया कि
+उदर-शांडिल्य=हे उदरशांडिल्य
यावत्=जबतक
ते=तेरे
प्रजायाम्=वंशके लोग
एनम्=इस
उद्गीथम्=उद्गीथ को
वेदिष्यन्ते=जानते रहेंगे
तावत्=तबतक
अस्मिन्=इस
लोके=लोक में
एभ्यः=साधारण लोकों से
तेषाम्=उनका
+जीवनं=जीवन
परोवरीयः=अतिउत्कृष्ट
ह=अवश्य
भविष्यति=रहेगा

भावार्थ ।

शुनक ऋषिका पुत्र अतिधन्वा अपने शिष्य उदरशाण्डिल्य ऋषि को भलीप्रकार उद्गीथ का अनुभव कराकरके उससे कहता भया, कि हे उदरशाण्डिल्य ! तूने मेरे कहे प्रकार उद्गीथ को जान लियाहै, इसलिये तेरे वंशके लोग उद्गीथकी उपासना करते रहेंगे और इसलिये संसार में प्रतिष्ठित पदको प्राप्त होते रहेंगे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तथामुष्मिल्ँलोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानु-

पास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिल्लँोके जीवनं भवति तथामुष्मिल्लँोके लोक इति लोके लोक इति ॥ ४ ॥

इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तथा, अमुष्मिन्, लोके, लोकः, इति, सः, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, परोवरीयः, एव, ह, अस्य, अस्मिन्, लोके, जीवनम्, भवति, तथा, अमुष्मिन्, लोके, लोकः, इति, लोके, लोकः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तथा	और
यः	जो कोई
एतत्	इस उद्गीथ को
एवम्	ऊपर कहे हुये प्रकार
+विद्वान्	जानता हुवा
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अमुष्मिन्	दूसरे
लोके	लोकमें
लोकः	उत्तम पुरुष
+भवति	होता है
तथा	और
हैव	निश्चय करके
अस्मिन्	इस
लोके	लोकमें
अस्य	उस उपासक का
जीवनम्	जीवन
परोवरीयः	श्रेष्ठतर
भवति	होता है
इति इति	इस प्रकार इस खंड की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

जो कोई ऊपर कहेहुये प्रकार उद्गीथ की उपासना करता है वह इस लोक में श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त होता है, और शरीर के त्यागने के पश्चात् उत्तम लोकोंको प्राप्त होताहै, इस उद्गीथ की ऐसी महिमा सब प्राणियों के हितार्थ कहीगई है, यह उपासना तीनों वर्णों के अधिकारी पुरुषों के लिये है ॥ ४ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मटचीहतेषु, कुरुषु, आटिक्या, सह, जायया, उषस्तिः, ह, चाक्रायणः, इभ्यग्रामे, प्रद्राणकः, उवास ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चाक्रायणः	=चक्र का पुत्र	मटचीहतेषु	=जो अन्नादिक थे उनके ओला करके नाश होने पर
उषस्तिः	=उषस्ति नामक ऋषि	×स्व	=अपनी
कुरुषु	=कुरुदेशके खेतों में		

आटिक्या=अक्षता	प्रद्राणकः=निंदित वृत्ति होकर (याने भीखमांगता हुआ)
जायया=स्त्री के	उवास=वास करताभया
सह=साथ	
इभ्यग्रामे=किसी श्रीमान् के ग्राम विषे	
ह=अति	

भावार्थ ।

जिस कालमें कुरुदेश विषे खेतोंमें ओला पड़ने के कारण सब अन्नादिक नष्ट होगये थे, और दुर्भिक्षता आगई थी, उस समय तश्चक्र का पुत्र उषस्तिनामक ऋषि अपनी अक्षता स्त्रीके साथ दुःख करके ग्रसित हुवा, और भिक्षा मांग करके अपना जीवन निर्वाह करता हुवा एक श्रीमान् के ग्राम विषे रहता भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं विभिक्षे तꣳ होवाच नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, इभ्यम्, कुल्माषान्, खादन्तम्, विभिक्षे, तम्, ह, उवाच, न, इतः, अन्ये, विद्यन्ते, यत्, च, ये, मे, इमे, उपनिहिताः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	=और	ह	=निश्चय करके
सः	=वह उषस्ति	कुल्माषान्	=निन्दितउरदोंको

+तस्मिन् ग्रामे = उसी ग्राम में
खादन्तम् = खानेवाले
इभ्यम् = धनिक से
विभिक्षे = मांगता भया
+तदा = तब
तम् = उस उषस्तिसे
+सः = वह धनिक
उवाच = बोलता भया कि
ये = जो
इमे = ये यानी मेरे सामने
कुल्माषाः = उड़द हैं
च = और
ये = जो
मे = मेरे
+भाजने = बर्त्तनमें
उपनिहिताः = रक्खे हैं
इतः = उनसे
अन्ये = भिन्न और उड़द
न = नहीं
विद्यन्ते = हैं

भावार्थ ।

उषस्तिऋषि निन्दित उड़दों को जिसको उस ग्राम में धनिक खा रहा था मांगता भया, तब उस धनिक ने उषस्ति से कहा कि जो उड़द मेरे सामने बर्त्तन में रक्खे हैं, और जिसमें से मैं खा रहा हूं उनके अलावा मेरे पास और उड़द नहीं हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हंतानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतछंस्यादिति होवाच ॥३॥

पदच्छेदः ।

एतेषाम्, मे, देहि, इति, ह, उवाच, तान्, अस्मै,

प्रददौ, हन्त, अनुपानम्, इति, उच्छिष्टम्, वै, मे, पीतम्, स्यात्, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतेषाम्	इन उड़दों को	उवाच	कहता भया कि
मे	मेरेलिये	अनुपानम्	भोजन के पश्चात्
देहि	दे तू	गृहाण	ग्रहण कर
इति	ऐसा	+तदा	तब
उवाच	उषस्ति ऋषि कहता भया	उषस्तिः	उषस्तिऋषि ने
हन्त	बहुत अच्छा ऐसा कहकर	इति	इस प्रकार
तान्	उन उड़दोंको	उवाच	कहा कि
अस्मै	उस उषस्ति ऋषिके लिये	उच्छिष्टम्	जूठा
ह	निश्चय करके	जलम्	जल
इभ्यः	वह धनिक	मे	मुझ करके
प्रददौ	देता भया	पीतम्	पिया हुआ
+ततः	तिसकेपश्चात्	ह	अवश्य
+धनिकः	धनिक	स्यात्	समझाजायगा

भावार्थ ।

ऐसा धनिक से सुनकर उषस्ति ऋषि कहता भया, कि तू इन्हीं उड़दों को मुझको दे, तब धनिक ने कहा यदि तेरी ऐसी इच्छा है तो इन उड़दोंको ले, ऐसा कहकर उन उड़दों को देता

भया, और जब उषस्तिऋषि उड़दों को खा चुका, तब धनिक ने उससे कहा कि मेरा जूठा जल जो मेरे सामने रक्खा है पी, इसपर उषस्तिऋषि ने कहा कि तेरा जूठा जल मैं नहीं पीऊँगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदकपानमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, स्वित्, एते, अपि, उच्छिष्टाः, इति, न, वा, अजीविष्यम्, इमान्, अखादन्, इति, ह, उवाच, कामः, मे, उदकपानम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+धनिकः	धनिक ने	×यदि	अगर
उवाच	कहा	इमान्	इन जूठे उड़दों को
स्वित्	क्या	अखादन्	न खाता तो
एते	ये	वा	अवश्य
×कुल्माषाः	उड़द	न	नहीं
उच्छिष्टाः	जूठे	अजीविष्यम्	जीता मैं
न	नहीं हैं	+परम्	परंतु
+तदा	तब	उदकपानम्	जल का पीना
+उषस्तिः	उषस्तिऋषि	मे	मेरी
ह	स्पष्ट		
+अवोचत्	कहता भया कि		

कामः=	इच्छापरहै याने न पीऊँ तो मर नहीं सकताहूं	इति=	इस प्रकार धनिक और उषस्तिऋषिका संवाद समाप्त हुवा

भावार्थ ।

तब धनिकने कहा कि क्या उड़द जूठे नहीं थे, इस पर उषस्ति ऋषिने जवाब दिया कि यदि इन जूठे उड़दों को मैं न खाता तो जिन्दा न रहता, जलका पीना मेरी इच्छा पर है, चाहे पीऊँ चाहे न पीऊँ, अगर न पीऊँ तो मैं मर नहीं सकता हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार। साऽग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, खादित्वा, अतिशेषान्, जायायाः, आजहार, सा, अग्रे, एव, सुभिक्षा, बभूव, तान्, प्रतिगृह्य, निदधौ ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=	वह उषस्तिऋषि	जायायाः=	अपनी स्त्री के लिये
ह=	अच्छी तरह	आजहार=	देताभया
खादित्वा=	खाय करके	परन्तु=	परन्तु
अतिशेषान्=	बचे हुये उड़दों को	सा=	वहऋषिपत्नी

अग्रे=पहिले	बभूव=थी
एव=हीसे	तान्=उन उड़दों को
सुभिक्षा=अच्छी प्रकार खाये हुये	प्रतिगृह्य=पतिसे लेकर
	निदधौ=रखदेती भई

भावार्थ ।

उषस्तिऋषि उड़दों को अच्छी प्रकार खाय करके बचे खुचे उड़दों को अपनी स्त्रीको देता भया, वह ऋषिपत्नी उन उड़दोंको अपने पतिसे लेकर एक जगह रखदेती भई, क्योंकि वह पहिले ही से खाचुकी थी ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राꣳ राजासौ यक्षते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, प्रातः, संजिहानः, उवाच, यत्, बत, अन्नस्य, लभेमहि, लभेमहि, धनमात्राम्, राजा, असौ, यक्षते, सः, मा, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, वृणीत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=	वह उषस्ति ऋषि	उवाच=	अपनी स्त्री से कहता भया कि
प्रातः=	प्रातःकाल	यत्=	जो
संजिहानः=	बिस्तर से उठते ही	अन्नस्य=	अन्न का
बत=	खेद के साथ	+स्तोकम्=	थोड़ाभी हिस्सा

लभेमहि=पाऊँ तो
+चलन-शक्तिं लब्ध्वा कुतश्चित् = चलने की शक्ति को पाकर कहीं से भी
धनमात्राम्=कुछ धन
लभेमहि=प्राप्त करूँ
इति=ऐसा
+श्रुतम्=सुना है कि
असौ=कहीं समीपस्थ
राजा=राजा
यक्षते=यज्ञ कर रहा है
सः=वह राजा
मा=मुझ को
सर्वैः=संपूर्ण
आर्त्विज्यैः=ऋत्विक्कर्म जानने के कारण
वृणीत=वरण करैगा
इति= इस प्रकार उषस्ति ऋषि बोलता भया

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषि प्रातःकाल बिस्तर से उठतेही अपनी स्त्री से खेदके साथ कहताभया कि यदि मैं थोड़ासा भी अन्न पाता तो मेरे में चलने की शक्ति आजाती, और मैं चल फिरके कहीं से कुछ धन प्राप्त करता, मैंने ऐसा सुना है कि कहीं थोड़ी दूर पर एक राजा यज्ञ कररहा है, वह ऋत्विक्कर्म के जानने के कारण अवश्य मुझको यज्ञ में वरणी करेगा, याने ऋत्विज मुक़र्रर करेगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, जाया, उवाच, हन्त, पते, इमे, एव, कुल्माषाः, इति, तान्, खादित्वा, अमुम्, यज्ञम्, विततम्, एयाय ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पते	हे पालनकर्ता पति	+तदा	तब
इमे एव	यही याने आपके दिये हुये	+सः	वह उषस्ति ऋषि
कुल्माषाः	निन्दित उड़द मौजूद हैं	तान्	उन्हीं उड़दों को
इति	ऐसा	खादित्वा	खाय करके
हन्त	खेद के साथ	अमुम्	उस
जाया	ऋषिपत्नी	विततम्	ऋत्विजों करके किये जाते हुये
+तम्	उषस्ति ऋषि से	यज्ञम्	यज्ञ को
उवाच	कहती भई	एयाय	जाता भया

भावार्थ ।

ऋषिपत्नी ने खेदके साथ कहा कि हे पते ! आपके दिये हुये उड़द मौजूद हैं, यह सुनकर उषस्ति ऋषि ने कहा लावो, मैं उन्हीं उड़दों करके अपना उदर भरूंगा, तब ऋषिपत्नीने उड़द लाकर दिया, जिसको खाकर उस यज्ञके तरफ़ जाता भया, जिसको कि ऋत्विज कर रहेथे ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

तत्र, उद्गातॄन्, आस्तावे, स्तोष्यमाणान्, उप, उपविवेश, सः, ह, प्रस्तोतारम्, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्र	उसयज्ञविषे	सः	वह उषस्ति ऋषि
आस्तावे	आस्ताव कर्म में	उपविवेश	बैठता भया
स्तोष्यमाणान्	उद्गीथ का गान कर रहे हैं जो ऐसे	+च	और
		ह	स्पष्ट
		प्रस्तोतारम्	प्रस्तोता ऋत्विज से
उद्गातॄन् उप	उद्गातापुरुषों के समीप	उवाच	कहता भया

भावार्थ ।

जब उषस्ति ऋषि यज्ञके समीप पहुँचा, तब देखा आस्ताव कर्म में उद्गीथका गान होरहा है, वह उद्गाता पुरुषों के समीप बैठ गया, और प्रस्तोता ऋत्विज से नीचे लिखे हुये प्रकार पूंछताभया ॥ ८ ॥

मूलम् ।

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

प्रस्तोतः, या, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रस्तोष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रस्तोतः	=हे प्रस्तोता ऋत्विज	ताम्	=उसदेवताको
या	=जो	अविद्वान्	=न जानता हुवा
देवता	=देवता	प्रस्तोष्यसि	=यज्ञ बिषे गान करेगा तू
प्रस्तावम्	=प्रस्ताव कर्म से	तु	=तौ
अन्वायत्ता	=संबंधरखने वाला है याने उस कर्म का अधिष्ठाता है	ते	=तेरा
चेत्	=यदि	मूर्धा	=मस्तक
		विपतिष्यति	=गिरजायगा
		इति	=इस प्रकार उषस्ति ऋषि कहता भया

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषिने कहा कि हे प्रस्तोता ऋत्विज उस देवता को जिसका कि संबंध प्रस्ताव कर्मसे है यानी जो देवता उसका अधिष्ठाता है अगर तू उसको न जानता हुवा यज्ञ बिषे उद्गीथ का गान करेगा तो तेरा मस्तक तेरे गर्दनसे अवश्य गिरजायगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, उद्गातारम्, उवाच, उद्गातः, या, देवता, उद्गीथम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, उद्गास्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसीही प्रकार
उद्गातारम्	उद्गाता नामक ऋत्विज से
एव	भी
उवाच	उषस्ति ऋषि कहता भया कि
उद्गातः	हे उद्गाता
या	जो
देवता	देवता
उद्गीथम्	उद्गीथकर्म से
अन्वायत्ता	संबंध रखने वाला है याने उस कर्म का वह अधिष्ठाता है
चेत्	यदि
इति	ऐसे
ताम्	उस देवता को
अविद्वान्	न जानता हुवा
त्वम्	तू
उद्गास्यसि	उद्गीथ का गान करेगा
तु	तो
ते	तेरा
मूर्धा	मस्तक
विपतिष्यति	गिरजायगा

भावार्थ ।

इसी प्रकार उषस्ति ऋषि उद्गातानामक ऋत्विज से भी कहता भया, कि हे उद्गाता ! अगर तू उस देवताको जोकि उद्गीथ कर्म का अधिष्ठाता है, उसको न जानता हुवा उद्गीथ का गायन करेगा तो तेरा मस्तक अवश्य तेरी गर्दनसे गिरजायगा ॥ १० ॥

मूलम् ।

एवमेव प्रतिहर्त्तारमुवाच प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे ॥ ११ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, प्रतिहर्त्तारम्, उवाच, प्रतिहर्त्तः, या, देवता, प्रतिहारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रतिहरिष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, ते, ह, समारताः, तूष्णीम्, आसांचक्रिरे ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसी तरह	प्रतिहर्त्तः	हे प्रतिहर्त्ता
प्रतिहर्त्तारम्	प्रतिहर्त्ता से	या	जो
एव	भी	देवता	देवता
उवाच	उषस्ति ऋषि कहता भया कि	प्रतिहारम्	प्रतिहार कर्म से

अन्वायत्ता = { संबंध रखने वाला है याने जो उसका अधिष्ठाता है	मूर्धा = मस्तक
चेत् = यदि	विपतिष्यति = नीचे गिर जायगा
ताम् = उस	इति = ऐसा
देवताम् = देवता को	+ श्रुत्वा = सुनकर
अविद्वान् = न जानता हुवा	ते = वे सब ऋत्विज
प्रतिहरिष्यसि = { प्रतिहार कर्म करेगा तू तो	ह = स्पष्ट
ते = तेरा	समारता: = { अपने २ कर्म करने से ठहर गये
	च = और
	तूष्णीम् = चुप चाप
	आसांचक्रिरे = बैठगये

भावार्थ ।

इसीप्रकार उषस्ति ऋषिने प्रतिहर्त्ता से कहा कि हे प्रतिहर्त्ता ! जो देवता प्रतिहार कर्म का अधिष्ठाता है उसको अगर तू न जानता हुवा प्रतिहार कर्म करेगा तो तेरा मस्तक तेरी गर्द्दनसे गिर जायगा, ऐसा सुनकर उन सब ऋत्विजों ने अपना अपना कर्म उस देवताके जानने के लिये बंदकरदिया, और उषस्ति ऋषि के संमुख हुये ॥ ११ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रयण इति होवाच ॥ १

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, यजमानः, उवाच, भगवन्तम्, वै, अहम्, बिविदिषाणि, इति, उषस्तिः, अस्मि, चाक्रयणः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	सब ऋत्विजों के चुप चाप बैठ जानेपर	विविदिषाणि=	मैं जानने की इच्छा करता हूं
यजमानः=	यजमान	इति=	इस प्रकार
एनम्=	उसउषस्ति ऋषि से	पृष्टः=	पूंछा हुवा उषस्ति ऋषि ने
इति=	इस प्रकार	उवाच=	कहा कि
उवाच=	विनयपूर्वक बोलता भया कि	अहम्=	मैं
		चाक्रयणः=	तश्चक्रका बेटा
		उषस्तिः=	उषस्ति ऋषि
		ह=	निश्चय करके
भगवन्तम्=	आप पूजने योग्य को	अस्मि=	हूँ

भावार्थ ।

जब ऋत्विज चुप चाप बैठगये, तब यजमान याने राजा यज्ञ करनेवाला विनयपूर्वक उषस्ति ऋषि से बोलता भया कि हे भगवन्! आप कौन हैं, ऐसा प्रश्न होने पर ऋषि ने कहा कि मैं तश्चक्र का पुत्र उषस्ति नामक ऋषि हूँ ॥ १ ॥

मूलम् ।

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्याऽन्यानवृषि ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, भगवन्तम्, वै, अहम्, एभिः, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, पर्यैषिषम्, भगवतः, वै, अहं, अवित्या, अन्यान्, अवृषि ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह यजमान
भगवन्तम्	पूजने योग्य उषस्ति ऋषि से
उवाच	कहता भया कि
अहम्	मैं
+भगवन्तम्	आपको
एभिः	इन
सर्वैः	सब
आर्त्विज्यैः	ऋत्विक्कर्मों के लिये
वै	अच्छी तरह
पर्यैषिषम्	ढूंढ़ता भया था
+परंतु	परंतु
भगवतः	आपके
अवित्या	न मिलने से
अहम्	मैं
अन्यान्	औरों को
अवृषि	वरणी याने नियत करता भया

भावार्थ ।

तब यजमान राजा ने उषस्ति ऋषिसे कहा कि मैं आपको गुणवान् सुनकर इन सब ऋत्विज कर्मों के लिये बहुत ढूँढ़ा, पर

आपके न मिलने के कारण मुझे औरों को इन कर्मों के लिये नियत करना पड़ा ॥ २ ॥

मूलम् ।

भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

भगवान्, तु, एव, मे, सर्वैः, आर्त्विज्यैः, इति, तथा, इति, अथ, तर्हि, एते, एव, समतिसृष्टाः, स्तुवताम्, यावत्, तु, एभ्यः, धनम्, दद्याः, तावत्, मम, दद्याः, इति, तथा, इति, ह, यजमानः, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तु	परंतु
+अद्यापि	आज भी
भगवान् एव	आप ही
मे	मेरे
सर्वैः	सब
आर्त्विज्यैः	ऋत्विक्कर्मों के लिये
अस्तु	हैं
इति	तब
+उक्तः	उषस्तिऋषि कहता भया कि
तथा	अच्छा
इति	ऐसा
एव	ही
+स्यात्	होगा
अथ	अब
एते एव	येही सब ऋत्विज

+मया=मुझसे
समतिसृष्टाः=आज्ञापाये
+संतः=हुये
स्तुवताम्=स्तुति यज्ञ बिषे करैं
यावत्=जितना
धनम्=धन
एभ्यः=इन ऋत्विजों के लिये
दद्याः=दे तू
तावत्=उतनाही धन
मम=मुझको
दद्याः=दे
इति इति=ऐसा
+श्रुत्वा=सुन करके
यजमानः=यजमान ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा
तथा=बहुत अच्छा

भावार्थ ।

अब भी आपही मेरे इन सब कर्मोंके लिये ऋत्विज होवें तब उषस्ति ऋषिने कहा कि अच्छा मैं हूंगा, यह कहकर यज्ञकर्म कराने को स्वीकार किया, यह कहते हुये कि यह सब ऋत्विज जो मौजूद हैं मेरी आज्ञानुसार यज्ञबिषे स्तुति करें, और जितना धन आप इनको देना उतनाही मुझको भी देना, उससे अधिक नहीं, इसको राजा ने स्वीकार किया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, प्रस्तोता, उपससाद, प्रस्तोतः,

या, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रस्तोष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	यजमान की बात सुनने पर	अविद्वान्	न जानताहुवा
प्रस्तोता	प्रस्तोता ऋत्विज	प्रस्तोष्यसि	स्तुति करेगा तू तो
ह	भी	ते	तेरा
एनम्	इस उषस्तिके	मूर्धा	मस्तक
उपससाद	पास आता भया	विपतिष्यति	गर्दन से अलग होकर गिर जायगा
+उषस्तिः	उषस्ति ऋषिने	इति	तब
+उवाच	कहा कि	+प्रस्तोता	प्रस्तोता
प्रस्तोतः	हे प्रस्तोता	+उवाच	कहताभया कि
या	जो	भगवान्	आपने
देवता	देवता	मा	नहीं
प्रस्तावम्	प्रस्तावभक्तिसे	अवोचत्	कहा कि
अन्वायत्ता	संबंध रखने वालाहै याने उसका अधिष्ठाता है	सा	वह
चेत्	अगर	कतमा	कौन
ताम्	उस देवता को	देवता	देवता है जो प्रस्तावभक्ति कर्मका अधिष्ठाता है

भावार्थ ।

राजा और उषस्ति ऋषिसे जो बात हुई है उसको सुनकर प्रस्तोता ऋत्विज चाक्रायण उषस्तिके पास गया और नम्रतापूर्वक बैठगया, तब उससे चाक्रायण उषस्ति ऋषिने कहा हे प्रस्तोता ! जो प्रस्तावभक्ति का अधिष्ठाता देवता है उसको न जानकर यदि तू यज्ञ विषे स्तुति करेगा तो तेरा मस्तक तेरे गर्दन से अवश्य गिर जायगा इसपर प्रस्तोता ने कहा कि हे भगवन् ! आपने यह नहीं कहा कि वह कौन देवता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, प्राणम्, एव, अभिसंविशन्ति, प्राणम्, अभ्युज्जिहते, सा, एषा, देवता, प्रस्तावम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रास्तोष्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	इस प्रकार	ह	निश्चय करके
+पृष्टः	पूंछा हुवा उषस्ति ऋषि ने	+सः	वह देवता
उवाच	कहा कि	प्राणः	प्राण है
		वै	क्योंकि

इमानि=ये
सर्वाणि=सब
भूतानि=स्थावर जंगम भूत
अभ्युज्जिहते=सृष्टिके आदि में उसी प्राण सेही निकलते हैं
च=और
प्राणम् एव=प्रलय होने पर उसी प्राणमेंही
संविशन्ति=लीन होजाते हैं
अतः=इसलिये
सा=वही
एषा=यह
देवता=देवता याने प्राण
प्रस्तावम्=प्रस्ताव कर्म से
अन्वायत्ता=संबन्ध रखने वाला है याने उसका अधिष्ठाता है
चेत्=यदि
ताम्=उसको
अविद्वान्=न जानता हुवा
प्रास्तोष्यः=स्तुति करेगा तू
तथा=तो
इति=इसप्रकार
उक्तस्य=कहा गया तिस
ते=तेरेका
मूर्धा=मस्तक
व्यपतिष्यत्=गिरजायगा

भावार्थ ।

इस प्रकार पूंछा हुवा उषस्ति ऋषि ने कहा कि जिस देवता के बारे में मैंने प्रश्न किया था वह देवता प्राण है, क्योंकि उसी प्राण से सृष्टि के आदि में ये सब स्थावर जंगम भूत निकलते हैं और प्रलय होनेपर उसी प्राण में ही लय होते हैं, इसीलिये वह प्राण देवता प्रस्तावभक्ति कर्म से संबन्ध रखनेवाला है, याने उस कर्म का अधिष्ठाता है, अगर तू उसको न जानता हुवा इस

यज्ञ विषे स्तुति करेगा तू तो तेरा मस्तक जैसे कि मैंने तुझ से पहिले कहा था गिरजायगा ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, उद्गाता, उपससाद, उद्गातः, या, देवता, उद्गीथम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, उद्गास्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
उद्गाता	उद्गाता ऋत्विज
ह	स्वस्थ होकर
एनम्	इस उषस्ति ऋषि के
उपससाद	समीप बैठता भया
+ तदा	तब
+ उषस्तिः	उषस्ति ऋषि
उवाच	बोलता भया कि

अन्वयः	पदार्थ
उद्गातः	हे उद्गाता
या	जो
देवता	देवता
उद्गीथम्	उद्गीथ से
अन्वायत्ता	संबन्धरखने वालाहै याने उसका अधिष्ठाता है
चेत्	अगर
ताम्	उस देवताको
अविद्वान्	न जानताहुवा
उद्गास्यसि	गानकरेगा तू तो

ते=तेरा	सा=वह
मूर्धा=मस्तक	कतमा=कौन
विपतिष्यति=गिर जायगा	देवता=देवता है
	इति=ऐसा
+ उद्गाता=उद्गाता	भगवान्=आपने
+ उवाच=बोलता भया कि	मा=नहीं पहिले
	अवोचत्=कहा था

भावार्थ ।

इसके पीछे उद्गाता ऋत्विज स्वस्थचित्त होकर उस उषस्ति ऋषि के पास बैठता भया, तब उषस्ति ऋषि ने उससे पूंछा कि हे उद्गातः ! जो देवता उद्गीथ भक्ति कर्म का अधिष्ठाता है, क्या तू उसको जानता है, अगर तू उस देवता को न जानता हुवा इस यज्ञ बिषे स्तुति करेगा याने गान करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायगा, तब उद्गाता ने कहा कि हे भगवन्! वह कौन देवता है, आपने उस देवता का नाम नहीं बताया ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, भूतानि, आदित्यम्, उच्चैः, सन्तम्, गायन्ति, सा, एषा, देवता, उद्गीथम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्,

उदगास्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा	वह देवता	उद्गीथम्	उद्गीथ से
आदित्यः	सूर्य है	अन्वायत्ता	संबन्धरखने वालाहै याने उसका अधिष्ठाता है
इति	इस प्रकार		
उषस्तिः	उषस्ति ऋषि		
ह	स्पष्ट		
उवाच	कहताभया	ताम्	उस देवता को
यम्	जिस	चेत्	अगर
उच्चैः	ऊपर	अविद्वान्	न जानताहुवा
सन्तम्	स्थित	उदगास्यः	स्तुति करेगा तू याने गान करेगा तो
आदित्यम्	सूर्यकी		
सर्वाणि	सब		
भूतानि	स्थावर जंगम प्राणी	तथा	इस प्रकार
		मया	मुझ करके
ह वै	निश्चय करके	उक्तस्य	कहे हुये
गायन्ति	स्तुति करते हैं	ते	तेरेका
सा	वही	मूर्धा	मस्तक
एषा	यह	व्यपतिष्यत्	अलग होकर गिरजायगा
देवता	सूर्य देवता		

भावार्थ ।

उषस्ति ऋषि ने कहा कि वह देवता सूर्य है, जिसकी सब स्थावर जंगम प्राणी स्तुति करते हैं, वही सूर्य देवता उद्गीथ का

अधिष्ठाता है, अगर तू उसको न जानता हुवा स्तुति करेगा याने गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जायगा ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं प्रतिहर्त्तोपससाद प्रतिहर्त्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत् कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, प्रतिहर्त्ता, उपससाद, प्रतिहर्त्तः, या, देवता, प्रतिहारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्, प्रतिहरिष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, मा, भगवान्, अवोचत्, कतमा, सा, देवता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
प्रतिहर्त्ता	प्रतिहर्त्ता
ह	भी
एनम्	इस उषस्ति ऋषि के
उपससाद	पास जाता भया
+उषस्तिः	उषस्ति ऋषि ने
उवाच	उससे कहा कि
प्रतिहर्त्तः	हे प्रतिहर्त्ता
या	जो
देवता	देवता
प्रतिहारम्	प्रतिहारकर्मसे
अन्वायत्ता	संबन्ध रखने वाला है याने उसका अधिष्ठाता है
चेत्	अगर
ताम्	उस देवता को
अविद्वान्	न जानता हुवा

प्रतिहरिष्यसि = प्रतिहार कर्म करेगा तू तो	देवता=देवता है
ते=तेरा	भगवान्=आपने
मूर्धा=मस्तक	मा=नहीं
विपतिष्यति=गिरजायगा	अवोचत्=कहा
सा=वह	इति=इसप्रकार
कतमा=कौन	+प्रतिहर्त्ता=प्रतिहर्त्ता
	+उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

इसके पीछे प्रतिहर्त्ता भी उस उषस्तिऋषि के पासगया, और उससे उषस्तिऋषिने कहा कि हे प्रतिहर्त्तः! जो देवता प्रतिहारकर्म का अधिष्ठाता है क्या तू उसको जानता है, अगर तू उसको न जानताहुवा प्रतिहारकर्म करेगा तो तेरामस्तक गिरजायगा यह सुनकर प्रतिहर्त्ता ने कहा हे भगवन्! वह कौन देवता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ ६ ॥ इति एकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, इति, ह, उवाच, सर्वाणि, ह, वै, इमानि, अन्नम्, एव, प्रतिहरमाणानि, जीवन्ति, सा, एषा, देवता, प्रतिहारम्, अन्वायत्ता, ताम्, चेत्, अविद्वान्,

प्रत्यहरिष्यः, मूर्धा, ते, व्यपतिष्यत्, तथा, उक्तस्य, मया, इति, तथा, उक्तस्य, मया, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा	वह देवता	प्रतिहारम्	प्रतिहारकर्मसे
अन्नम् ह	अन्न ही है	अन्वायत्ता	संबन्ध रखने वाला है याने उसका अधिष्ठाता है
इति	ऐसा	ताम्	उस अन्न देवता को
+ उषस्तिः	उषस्तिऋषि	चेत्	यदि
उवाच	कहता भया	अविद्वान्	न जानताहुवा
+ हि	क्योंकि	प्रत्यहरिष्यः	तू प्रतिहारकर्म करेगा तो
वै	निश्चय करके	तथा	इसी प्रकार
इमानि	ये सब	मया	मुझ करके
भूतानि	भूत	उक्तस्य	कहे हुये
अन्नम् एव	अन्नही को	ते	तेरेका
प्रतिहरमाणानि	खाते हुये	मूर्धा	मस्तक
जीवन्ति	जीते हैं	व्यपतिष्यत्	गिर जायगा
सा	सोई		
एषा	यह		
ह	निश्चय करके		
देवता	देवता अन्न		

भावार्थ ।

इसपर उषस्तिऋषि ने कहा कि वह देवता अन्न है क्योंकि ये सब प्राणी अन्नही को खाकर जीते हैं, इसीलिये अन्नही देवता प्रतिहारकर्म का अधिष्ठाता है, यदि उस अन्नको न जानता हुवा

प्रतिहारकर्म करेगा तो तेरा मस्तक जैसे मैंने कहा है गिर जायगा ॥ ६ ॥ इति एकादशः खण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, शौवः, उद्गीथः, तत्, ह, बकः, दाल्भ्यः, ग्लावः, वा, मैत्रेयः, स्वाध्यायम्, उद्ववाज ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्	बकः	बक ऋषि
अतः[1]	अन्न लाभ की इच्छा से	वा	याने
शौवः	कुत्तों से संबन्ध रखने वाला	मैत्रेयः	मित्राका पुत्र
उद्गीथः	उद्गीथ	ग्लावः	ग्लाव ऋषि
+ प्रस्तूयते	आरंभ किया जाता है	तत्	एक समय
ह	निश्चय करके	स्वाध्यायम्	उद्गीथाध्ययन
दाल्भ्यः	दल्भ्य ऋषि का पुत्र	+ कर्त्तुम्	करनेके लिये
		उद्ववाज	पवित्र और निर्जन स्थल में जलसमीप जाता भया

१ अतः हेतुपञ्चमी है इसलिये इसका अर्थ "अन्नलाभ के लिये" लिखा गया है ॥

भावार्थ ।

इसके पश्चात् अन्नकी प्राप्ति के लिये कुत्तों से संबन्ध रखने वाला उद्गीथ आरंभ किया जाता है, दल्भ्य ऋषिका पुत्र बक ऋषि अथवा मित्राका पुत्र ग्लाव ऋषि एक समय उद्गीथ का अध्ययन करने के लिये एक पवित्र निर्जन स्थल बिषे जलके समीप जाताभया, इस मन्त्र बिषे जो कुत्तों से संबन्ध रखनेवाला उद्गीथ लिखा है, उसका तात्पर्य यह है कि अन्नके न पानेसे पीड़ित कुत्ते जब भूंकते थे तब उनके शब्दको सुनकर अन्नके न पानेसे जो दुःख होता है उसका अनुभव करके उसकी निवृत्ति के लिये और अन्नकी प्राप्ति के लिये बक ऋषि उद्गीथ का गान करने लगताथा, इस कारण इस उद्गीथ का नाम " शौव उद्गीथ " है, बक ऋषि दल्भ्य का पुत्रथा, और मित्रा नाम ऋषिस्त्री ने उसको गोद लिया था, इसलिये वह मैत्रेय और दाल्भ्य नाम करके प्रसिद्ध भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, श्वा, श्वेतः, प्रादुर्बभूव, तम्, अन्ये, श्वानः, उपसमेत्य, ऊचुः, अन्नम्, नः, भगवान्, आगायतु, अशनायाम, वै, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
श्वेतः	सफ़ेद	तस्मै	उसबकऋषि पर दया करने के लिये
श्वा	कुत्तेके रूप में एक ऋषि		

प्रादुर्बभूव=प्रकट होता भया
अन्ये=और छोटे छोटे और
श्वानः=कुत्ते
तम्=उस श्वेत कुत्ते के
उपसमेत्य=पास जाकर
इति=ऐसे
ऊचुः=कहते भये कि
भगवान्=आप
नः=हमारे निमित्त
अन्नम्=अन्न
आगायतु=उत्पन्न करनेके लिये गान करें
वै=ताकि
अशनायाम=खायँहमयाने क्षुधाकी निवृत्ति करें

भावार्थ ।

उस बकऋषि पर दया करने के लिये एक ऋषि सफ़ेद कुत्ते के रूप में उसके समीप प्रकट होता भया, और उसके आस पास बहुत से छोटे छोटे कुत्ते जाकर उस श्वेत कुत्ते से कहते भये कि आप हमारे निमित्त अन्न उत्पन्न करने के लिये गान करें, ताकि हम सब अन्नको खाकर क्षुधाकी निवृत्ति करें ॥ २ ॥

मूलम् ।

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार ॥३॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, इह, एव, मा, प्रातः, उपसमीयात, इति, तत्, ह, बकः, दाल्भ्यः, ग्लावः, वा, मैत्रेयः, प्रतिपालयाञ्चकार ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ सः	=वह ऋषि श्वान की सूरत में	दाल्भ्यः	=दल्भ्य ऋषि का पुत्र
तान्	=उन छोटे कुत्तों से	बकः	=बक ऋषि
उवाच	=कहता भया कि	वा	=अर्थात्
इह एव	=इसी ही जगह	मैत्रेयः	=मित्रा का दत्तक पुत्र
प्रातः	=प्रातःकाल	ग्लावः	=ग्लाव ऋषि
ह	=अवश्य	तत् ह	=उसी ही स्थान पर
माम्	=मेरे	प्रतिपालयाञ्चकार	=उस श्वेत कुत्ते के आने की राह देखता रहा
उपसमीयात	=पास तुम सब आवो		
+ इत्युक्तः	=इस प्रकार कहे हुये		

भावार्थ ।

यह सुनकर वह ऋषि जो श्वेत श्वानकी सूरत में था उन छोटे कुत्तों से कहता भया कि कल प्रातःकाल तुम सब कोई मेरे पास आवो ऐसा सुनकर बक ऋषि भी उसी स्थानपर प्रातःकाल उस श्वेत कुत्ते के आनेकी राह देखता रहा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ते ह यथैवेदं वहिष्यवमानेन स्तोष्यमाणाः संरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रुः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, यथा, एव, इदम्, वहिष्यवमानेन, स्तोष्य-

माणाः, संरब्धाः सर्पन्ति, इति, एवम्, आससृपुः, ते, ह, समुपविश्य, हिम्, चक्रुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे	ह	भली प्रकार
इह	यहां याने यज्ञ कर्म में	सर्पन्ति	चलते हैं
एव	निश्चयपूर्वक	+तथा एव	उसी प्रकार मिले हुये
वहिष्यवमानेन	वहिष्यवमान स्तोत्र करके गान करने के लिये	* ते	वे छोटे कुत्ते
स्तोष्यमाणाः	स्तुति करने वाले ऐसे	आससृपुः	चलते भये
+अध्वर्य्वादयृत्विजः	अध्वर्युआदि ऋत्विज	च	और
संरब्धाः	मिले हुये एक दूसरे के पीछे	ते	वे छोटे कुत्ते
		ह	भली भांति
		समुपविश्य	बैठ करके
		हिं	"हिं हिं"
		इति	ऐसा शब्द
		चक्रुः	करते भये

भावार्थ ।

प्रातःकाल सब छोटे कुत्ते एक की पूंछ को दूसरा अपने मुंह में रक्खे हुये इस तरह पंक्तिबद्ध जाते भये जैसे यज्ञकर्म में वहिष्यवमानस्तोत्र करके अध्वर्यु आदि ऋत्विज गान करने के लिये जाते हैं, और वे सब छोटे कुत्ते श्वेत कुत्ते के पास बैठकर

* बड़े छोटे कुत्ते के रूप में ऋषिलोक थे ।

"हिं हिं" शब्द करते भये, इस मंत्र में अन्योक्ति अलंकार है, यह अलंकार वहां पर लाया जाता है जहां पर एक के बहाने से दूसरे को कहा जाता है, श्वेत श्वान से यहां मतलब मुख्य प्राण से है, और छोटे छोटे कुत्तों से मतलब वागिन्द्रियों से है, वह बक ऋषि अपने वागिन्द्रिय से कहता है कि हे वाणियो ! तुम लोग उद्गीथ की उपासना करके अन्न को उत्पन्न करो, और मेरे मुख्य प्राण को देवो, ताकि मैं अन्न की दुर्भिक्षता करके पीड़ित न होऊं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

ॐ ३ मदा ३ मों ३ पिबामों ३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता २ न्नमिहा २ हरदन्नपते ३ न्नमिहा २ हरा २ हरो ३ मिति ॥ ५ ॥ इति द्वादशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, अदाम, ॐ, पिबाम, ॐ, देवः, वरुणः, प्रजापतिः, सविता, अन्नम्, इह, आहरत्, अन्नपते, अन्नम्, इह, आहर, आहर, ॐ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ततः	इसके पीछे	देवः	प्रकाशमान
+ऊचुः	कहते भये कि	वरुणः	वृष्टिकर्त्ता
ॐ	ॐ	प्रजापतिः	पालनकर्त्ता
अदाम	हम खावें	सविता	सृष्टिकर्त्ता सूर्य
ॐ	ॐ	+नः	हमारे लिये
पिबाम	हम पीवें	इह	इस संसार विषे
ॐ	ॐ		

अन्नम्=अन्न को
आहरत्=दे तू
+पुनरपि=फिर भी
+ऊचुः=बोलतेभये कि
+हे=हे
अन्नपते=अन्न उत्पन्न करने वाले सूर्य
इह=इसी जगह
अन्नम्=अन्न को
आहर=हमारे लिये दे तू
ॐ=ॐ कह कर
इति=भक्ति बिषे उपासना की समाप्ति हुई

भावार्थ ।

इसके पीछे सब कुत्ते कहते भये कि हे प्रकाशवान्, वृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, सृष्टिकर्त्ता, सूर्य ! हमारे लिये इस संसार विषे अन्न को उत्पन्न कर, पानी को दे ताकि हम ॐ कहकर अन्न को खावें और ॐ कहकर पानी को पीवें ॥ ५ ॥ इति द्वादशःखण्डः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशःखण्डः ॥

मूलम् ।

अयं वा व लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः । आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वा, व, लोकः, हाउकारः, वायुः, हाइकारः, चन्द्रमाः, अथकारः, आत्मा, इहकारः, अग्निः, ईकारः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अयम्	यह	हाउकारः	हाउ अक्षर में आरोपित है
लोकः	लोक	वायुः	पवन
वाव	निश्चय करके		

इहकारः=इहअक्षर में आरोपित है	हाइकारः=हाइअक्षरमें आरोपित है
अग्निः=अग्नि	चन्द्रमाः=चन्द्रमा
ईकारः=ई अक्षर में आरोपित है	अथकारः=अथअक्षरमें आरोपित है
	आत्मा=आत्मा

भावार्थ ।

अब अन्य प्रकार की उपासना का वर्णन किया जाता है, यह उपासना स्तोभनाम करके प्रसिद्ध है, यह स्तोभ साम वेद का १ भाग है, साम वेद गान के यह स्तोभाक्षर साधक हैं, हाउ, हाइ, अथ, इह, ई, आदि स्तोभाक्षर जब आते हैं तो उनके अभिमानी देवता का ध्यान पढ़ते समय किया जाता है, हाउ शब्द में यह संसार आरोपित है, हाइ में वायु आरोपित है, अथ में चन्द्रमा आरोपित है,इह में आत्मा और ई में अग्नि आरोपित हैं, उपासक मंत्र पढ़ते समय जहां पर ऊपर लिखे हुये शब्द आते हैं, तहां पर उनके अभिमानी देवता पृथ्वी, वायु, चन्द्रमा, सूर्य, और आत्मा का मन में ध्यान करता है, प्रार्थना करते हुये कि हे देवताओ ! मेरा कल्याण करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवा औहोयिकारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ऊकारः, निहवः, एकारः, विश्वेदेवाः,

औहोयिकारः, प्रजापतिः, हिंकारः, प्राणः, स्वरः, अन्नम्, या, वाक्, विराट् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आदित्यः	=सूर्य	हिंकारः	=हिंकार है
ऊकारः	=ऊकार अक्षर है	प्राणः	=प्राण
निहवः	=आह्वान	स्वरः	=स्वर है
एकारः	=एकार अक्षर है	अन्नम्	=अन्न
विश्वेदेवाः	=विश्वेदेव	या	=या है
औहोयि-कारः	=औहोयिकार है	वाक्	=वाणी
प्रजापतिः	=प्रजापति	विराट्	=विराट् है

भावार्थ ।

इस मंत्र बिषे सूर्य "ऊकार" अक्षर है, आह्वान "एकार" अक्षर है, विश्वेदेवाः "औहोयि" अक्षर हैं, प्रजापति "हिं" अक्षर है, प्राण "स्वर" है, अन्न "या" है, वाक् "विराट्" है, सूर्य "ऊ" अक्षर है क्योंकि यह उष्णता को देता है, और आह्वान "ए" अक्षर है, क्योंकि यह शब्द इन्द्र का निर्देशक है, जब वह आवाहन किया जाता है तब वह पहुँचता है, विश्वेदेवा "औहोयि" स्तोभाक्षर है, क्योंकि जब "औहोयि" अक्षर का उच्चारण किया जाता है, तब विश्वेदेव के आराधन का अनुभव होता है, प्रजापति "हिं" स्तोभाक्षर है, क्योंकि वह प्रजापति अवर्णनीय है, इसीतरह वह "हिं" भी अवर्णनीय है, प्राण "स्वर" है, क्योंकि प्राण स्वर का उद्गमस्थान है याने निकलने की जगह है, अन्न जो है वह "या" अक्षर है, क्योंकि प्राण करके यह अन्न सर्व शरीर में प्रवेश करता है, वाक् जो है वह " विराट् " है क्योंकि

"वैराजसाम" में विराट् का स्तोभवाक् है, इस लिये वाक्रूपी स्तोभाक्षर में विराट्दृष्टि से उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

मूलम् ।

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अनिरुक्तः, त्रयोदशः, स्तोभः, संचरः, हुंकारः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अनिरुक्तः	=कारणात्मा	त्रयोदशः	=तेरहवाँ
संचरः	=कार्यरूपी	स्तोभः	=स्तोभ अक्षर है
हुंकार	=हुंकार		

भावार्थ ।

कार्य, कारणरूपी आत्मा हुंकार तेरहवां स्तोभ अक्षर है, इस स्तोभ अक्षर का अर्थ भी अनिर्वचनीय है, इसकी उपासना करने से जो अर्थ सिद्ध होता है, वह वर्णन नहीं होसकता है, उस की उपासना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोन्नवानन्नादो भवति य एतामेवछं साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्न-

वान्, अन्नादः, भवति, यः, एताम्, एवम्, साम्नाम्, उपनिषदम्, वेद, उपनिषदम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो जो	एताम्	इस
वाचः	वाणी का	उपनिषदम्	विषय को
दोहः	फल है	एवम्	ऊपर कहे हुये प्रकार
+तम्	उस उस	वेद	जानता है
वाग्दोहम्	फल को	सः	वह उपासक
अस्मै	उस उपासक के लिये	अन्नवान्	अन्न संपत्ति वाला
+उपासना	उसकी उपासना	+च	और
दुग्धे	देती है	अन्नादः	भोजन शक्ति वाला
यः	जो उपासक	भवति	होता है
साम्नाम्	सामवेद के स्तोभाक्षरोंके		

भावार्थ ।

जो जो वाणी का फल है उस उस फल को उपासक को स्तोभाक्षरों की उपासना देती है, जो उपासक सामवेद के स्तोभ अक्षर के विषय को ऊपर कहे हुये प्रकार जानता है, वह उपासक अन्न संपत्तिवाला और भोजन शक्तिवाला होता है ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

ॐ[1] समस्तस्य खलु[2] साम्न उपासनछं साधु यत्ख लु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति॥१॥

पदच्छेदः ।

ॐ, समस्तस्य, खलु, साम्नः, उपासनम्, साधु, यत्, खलु, साधु, तत्, साम, इति, आचक्षते, यत्, असाधु, तत्, असाम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
समस्तस्य	अंगों के साथ
साम्नः	सामवेदकी
उपासनम्	उपासना
साधु	करनेयोग्य है
यत्	जो साम
साधु	अंगोंकेसाथ है
तत्	वह
खलु	निश्चय करके
साम	साम है
यत्	जो साम
असाधु	अंगोंकेसहित नहीं है
तत्	वह साम
असाम	साम नहीं है
इति	ऐसा
कुशलाः	सामवेद के जाननेवाले निपुण लोक
आचक्षते	कहते हैं

भावार्थ ।

अंगों के साथ सामवेदकी उपासना करना योग्य है,जो साम

१—ॐ, इस अध्यायके आरंभ में लिखने से मालूम होता है कि इसका संबंध पिछले खंडसे है।२-खलुपद यहां कुछ अर्थ नहीं देता है केवल वाक्य की शोभा को दिखाता है ॥

अंगोंके सहित है वही साम है,और जो साम अंगों के सहित नहीं है, वह साम नहीं है, ऐसा सामवेद के जाननेवाले निपुणलोक कहते हैं, इस उपनिषद् में पहिले ॐ अक्षर की उपासना कही गई है, तिसके पीछे स्तोभ अक्षरों की उपासना कही गई है और उनका महान् फल भी कहा गया है, अब अखंडसाम की उपासना कही जाती है, यह उपासना अतिश्रेष्ठ है, इसके करने से उपासक का बहुत प्रकार से कल्याण होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उत, अपि, आहुः, साम्ना, एनम्, उपागात्, इति, साधुना, एनम्, उपागात्, इति, एव, तत्, आहुः, असाम्ना, एनम्, उपागात्, इति, असाधुना, एनम्, उपागात्, इति, एव, तत्, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उतअपि=	पहिले कहेहुये के अनन्तर और भी	+ कश्चित्=	कोई पुरुष
तत्=	फल	एनम्=	राजाके पास
एव=	स्पष्ट	साम्ना=	शान्तिवचनों के साथ
आहुः=	कहते हैं	उपागात्=	गया
		तत्=	वहां

+बन्धनादिरहितम् = बधनादिक की सज़ासे रहित
+ तम्=उसको
+ दृष्ट्वा=देख करके
इति=ऐसा
आहुः=लोक कहते हैं कि
+सः=वह
साधुना=अच्छी नीयत के साथ
एनम्=राजाके पास
उपागात्=गया था
+ च=और
+ कश्चित्=कोई पुरुष
असाम्ना=कठोरवचनों के साथ
एनम्=राजाके पास
उपागात्=गया
+ च=और
तत्=वहां
+बन्धनादिसहितम् = क़ैदवग़ैरह की सज़ासे युक्त
+ तम्=उसको
+ दृष्ट्वा=देख करके
इति=ऐसा
आहुः=लोक कहते हैं कि
सः=वह
असाधुना=बुरीनीयतसे
एनम्=राजा के पास
उपागात्=गया था
इति = ऐसा महान् भेद असाम और सामके विषे है

भावार्थ ।

पहिले जो फल कहआये हैं उसके सिवाय सामकी उपासना के और भी फल को कहते हैं, अगर कोई पुरुष सामके सहित याने शान्तिवचनों के साथ किसी राजा के पास गया और वहां आदर पाया और वापिस आया तो लोक कहते हैं कि वह पुरुष अच्छी

नीयत के साथ राजा के पास गया था, और अगर कोई पुरुष असाम के साथ यानी कठोर वचनों के साथ किसी राजा के पास गया और वहां कारागार में पड़ गया तो उसको ऐसा देखकर लोक कहते हैं कि वह बुरीनीयतसे सामको तिरस्कार करके राजा के पास गया था, राजनैतिक साम शब्द में जो यह गुण है वह इस कारण है कि यह "साम" उस वैदिक "साम" से एकता अक्षर में रखता है, यहांपर श्लेषालंकार से वैदिक साम की स्तुति कीगई है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथोताप्याहुः साम नोबतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नोबतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, उत, अपि, आहुः, साम, नः, बत, इति, यत्, साधु, भवति, साधु, बत, इति, एव, तत्, आहुः, असाम, नः, बत, इति, यत्, असाधु, भवति, असाधु, बत, इति, एव, तत्, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	इसके पश्चात्	नः=	हमारा
उतअपि=	औरभी इसविषय में	साम=	साम
इति=	ऐसा	भवति=	है
आहुः=	लोक कहते हैं	तत्=	वही
यत्=	जो	नः=	हमारा
		साधु साधु=	साधु है

+ किंच=और	इति=ऐसा
यत्=जो	+ कुशलाः=विद्वान्
+ नः=हमारा	बत बत=निश्चय करके
असाम=असामहै	आहुः=कहते हैं
तत्=वही	इति इति=ऐसा
+ नः=हमारा	बत बत=निश्चयकरके
एव एव=अवश्यही	आहुः=कहते हैं
असाधु असाधु=असाधु है	

भावार्थ ।

इसके पश्चात् और भी इस विषय में लोग ऐसा कहते हैं कि जो हमारा साम है वही हमारा साधु है, और जो हमारा असाम है वही हमारा असाधु है, साम के अर्थ अच्छे के हैं, असामके अर्थ बुरेके हैं, इसी तरह असाधु के अर्थ बुरेके हैं, साम के अर्थ अच्छे के हैं, साधु में जो अच्छेपन का अर्थ है, वह इसकारण से है कि साम शब्दका "सा" और साधुशब्द का "सा" एक दूसरे से एकता रखता है, यह साम की महिमाहै ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेभ्याशो ह यदेनछंसाधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः[1] ४॥ इति प्रथमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, साधु, साम, इति, उपास्ते, अभ्याशः, ह, यत्, एनम्, साधवः, धर्माः, आ, च, गच्छेयुः, उप, च, नमेयुः ॥

१—आगच्छेयुः और उपनमेयुः भविष्यत्काल का लिंग रखते हैं पर अर्थ वर्तमानकाल का देते हैं ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जिस कारण	उपास्ते	उपासना करता है
यः	जो उपासक	+अतः	इसी कारण
सः	वह साम असामके भेदका जानने वाला	अभ्याशःह	अतिशीघ्र
एतत्	इस	एनम्	उस उपासकके पास
साधु	शोभन अंग सहित	साधवः	श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित
साम	सामको	धर्माः	धर्म
एवम्	कहे हुये प्रकार	आगच्छेयुः	प्राप्त होते हैं
विद्वान्	जानता हुवा	च	और
इति	ऐसा	उपनमेयुः	उपस्थित रहते हैं

भावार्थ ।

जिस कारण साम और असाम के भेद को जान करके उपासक अंगोंसहित सामकी उपासना कहेहुये प्रकार करता है, तिसी कारण उस उपासक को श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित धर्म प्राप्त होते हैं, और उपस्थित रहते हैं ॥ ४ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यास्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

लोकेषु पञ्चविधꣳसामोपासीत पृथिवी हिंकारः । अग्निःप्रस्तावोन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लोकेषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, पृथिवी, हिंकारः, अग्निः, प्रस्तावः, अन्तरिक्षम्, उद्गीथः, आदित्यः, प्रतिहारः, द्यौः, निधनम्, इति, ऊर्ध्वेषु ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऊर्ध्वेषु	= ऊपर की गति है जिसमें ऐसे	पृथिवी	= पृथ्वी है
लोकेषु	= पृथिव्यादि लोकों में	अग्निः	= अग्नि
+ साधु	= अंगसहित	प्रस्तावः	= प्रस्ताव है
पञ्चविधम्	= पांचप्रकार के	अन्तरिक्षम्	= आकाश
साम	= सामकी	उद्गीथः	= उद्गीथ है
इति	= इसप्रकार	आदित्यः	= सूर्य
उपासीत	= उपासना करे	प्रतिहारः	= प्रतिहार है
हिंकारः	= हिंकार	द्यौः	= स्वर्ग
		निधनम्	= गये हुये उपासकों का स्थान है

भावार्थ ।

उपासक पांचप्रकारवाले सामकी उपासना इस प्रकार करै कि हिंकार पृथिवी है, प्रस्ताव अग्नि है, उद्गीथ आकाश है, प्रतिहार सूर्य है, गये हुये उपासकों का स्थान स्वर्ग है, यहां वादी कहता है कि साम का अर्थ साधु याने धर्म है, और पृथिव्यादिक असाम हैं, साम और असाम की सदृशता कैसे हो सकती है, इसके जवाब में भाष्यकार कहते हैं कि वादी का कथन असंगत है, क्योंकि धर्मरूपी ब्रह्मासे पृथिव्यादिक की उत्पत्ति है, इसलिये ये सब असाम नहीं हैं सामरूपही हैं, कारण और कार्य में

कोई भिन्नता नहीं होती है, जो कारण है वही कार्य है, ऐसा समझकर मंत्र ने साम की पांच प्रकार की उपासना पृथिव्यादिक में आरोप करके कहा है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथावृत्तेषु द्यौर्हिङ्कार आदित्यः प्रस्तावोन्तरिक्ष-मुद्गीथोग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, आवृत्तेषु, द्यौः, हिंकारः, आदित्यः, प्रस्तावः, अन्तरिक्षम्, उद्गीथः, अग्निः, प्रतिहारः, पृथिवी, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	फिर	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
आवृत्तेषु	नीचे के लोकों में	अन्तरिक्षम्	आकाश
साम	साम की	उद्गीथः	उद्गीथ है
इति	इसप्रकार	अग्निः	अग्नि
उपासीत	उपासना करे	प्रतिहारः	प्रतिहार है
द्यौः	स्वर्ग	पृथिवी	पृथ्वी
हिंकारः	हिंकार है	निधनम्	ऊपर लोकों से आयेहुवों का स्थान है
आदित्यः	सूर्य		

भावार्थ ।

वही उपासक साम के पांच अंगों की नीचे कहे हुये प्रकार की उपासना करे स्वर्ग हिंकार है, सूर्य प्रस्ताव है, आकाश उद्गीथ

है, अग्नि प्रतिहार है, पृथिवी स्वर्ग लोकसे आये हुये उपासकों का स्थान है ॥ २ ॥

मूलम् ।

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाल्ँलोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ ३ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

कल्पन्ते, ह, अस्मै, लोकाः, ऊर्ध्वाः, च, आवृत्ताः, च, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, लोकेषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक	अस्मै	उस उपासकके लिये
एतत्	इस	ऊर्ध्वाः	ऊपर के लोक
पञ्चविधम्	स्तोभाक्षर-युक्त पांच प्रकार वाले	च	और
साम	साधु साम को	आवृत्ताः	नीचेके लोक
एवम्	पूर्वोक्तप्रकारसे	च	भी
विद्वान्	जानता हुवा	ह	निश्चय करके
उपास्ते	उपासना करता है	कल्पन्ते	भोग्यरूप से उपस्थित होते हैं

भावार्थ ।

जो उपासक साम की उपासना स्तोभाक्षर सहित पूर्वोक्त

प्रकार से जानता हुवा करता है, तो उसके लिये ऊपरके लोक और नीचेके लोक भोग सहित प्राप्त होते हैं ॥२॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वृष्टौ, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, पुरोवातः, हिंकारः, मेघः, जायते, सः, प्रस्तावः, वर्षति, सः, उद्गीथः, विद्योतते, स्तनयति, सः, प्रतिहारः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वृष्टौ	वृष्टि विषे	सः	वह
पञ्चविधम्	पांच प्रकार के भेद हैं जिसमें ऐसे	हिंकारः	हिंकार है
		+ यः	जो
		मेघः	मेघ है
साम	सामकी	सः	वह
इति	इस प्रकार	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
+ उपासकः	उपासक	यः	जो
उपासीत	उपासना करे	वर्षति	बरसता है
पुरोवातः	वह वायु जो पानी बरसने के पहिले चलता है	सः	वह
		उद्गीथः	उद्गीथ है
		+ यः	जो

विद्योतते=प्रकाशके साथ चमकता है	स्तनयति=शब्द करता है
+ च=और	सः=वह
	प्रतिहारः=प्रतिहार है

भावार्थ ।

वृष्टि बिषे उपासक पांच प्रकारवाले सामकी उपासना इस प्रकार करे, जो वायु पानी आनेके पहिले चलता है वह हिंकार है, जो मेघ है वह प्रस्ताव है, जो बरसता है वह उद्गीथ है, जो प्रकाश के साथ चमकता है और शब्द करता है याने बिजुली-रूप है वह प्रतिहार है, सृष्टिका कल्याण वर्षा द्वारा होता है, जब वृष्टि बिषे उपासना कहे हुये प्रकार की जाती है तो उसका फल प्राणिमात्र के वास्ते सुखदायक होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधꣳसामोपास्ते ॥ २ ॥ इति तृतीयःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

उद्गृह्णाति, तत्, निधनम्, वर्षति, ह, अस्मै, वर्षयति, ह, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, वृष्टौ, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो साम		निधनम्=निधन है	
उद्गृह्णाति=वर्षाको रोकता है		+ तत्=वही साम	
तत्=वही साम		अस्मै=उपासक के लिये	

वर्षति=बरसता है	उपास्ते=उपासना करता है
ह=और	अस्मै=उसके लिये
वर्षयति=वृष्टि कराता है	+ ऊर्ध्वाः=ऊपर के
यः=जो उपासक	+ च=और
एवम्=इस प्रकार	+ आवृत्ताः=नीचे के
विद्वान्=जानता हुवा	+ लोकाः=लोक
वृष्टौ=वृष्टि विषे	+ कल्पन्ते=उपस्थित रहते हैं याने वह उन सब लोकों को प्राप्त होता है
पञ्चविधम्=पांचप्रकार के अंग सहित	
एतत्=इस	
साम=सामकी	

भावार्थ ।

जो साम वर्षा को रोकता है वही साम निधन है, याने उस साम विषे जल जमा रहता है, और फिर वही साम उपासकके कल्याण के लिये बरसा करता है, जो उपासक इस प्रकार जानता हुवा वृष्टि विषे सामकी उपसना पांच अंगों सहित करता है, उसको ऊपर और नीचे के सबलोक प्राप्त होते हैं, याने सबलोकों का वह स्वामी होता है ॥ २ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः

स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वासु, अप्सु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, मेघः, यत्, संप्लवते, सः, हिंकारः, यत्, वर्षति, सः, प्रस्तावः, याः, प्राच्यः, स्यन्दन्ते, सः, उद्गीथः, याः, प्रतीच्यः, सः, प्रतिहारः, समुद्रः, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ उपासकः	उपासक
सर्वासु	सब
अप्सु	जलोंमें
पञ्चविधम्	पांच प्रकार वाले
साम	सामकी
इति	इस प्रकार
उपासना	उपासना करे
यत्	जो
मेघः	मेघ
संप्लवते	इकट्ठा होता है
सः	वह
हिंकारः	हिंकार है
यत्	जो
वर्षति	बरसता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
याः	जो जल
प्राच्यः	पूर्वओर से गंगादिकनदीमें
स्यन्दन्ते	बहता है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
याः	जो
प्रतीच्यः	पूर्वसेपश्चिम को नर्मदादि नदीयां बहती हैं

सः=वह	निधनम्=निधनहैयाने जलके रहने का घर है
प्रतिहारः=प्रतिहार है	
समुद्रः=समुद्र	

भावार्थ ।

उपासक जल विषे सामकी उपासना पांच अंगों सहित इस प्रकार करे, जो मेघ इकट्ठा होता है वह हिंकार है, जो बरसता है वह प्रस्ताव है, जो जल पूर्व की तरफ़ गंगादिक नदियों में जाता है वह उद्गीथ है, जो जल पूर्व से पश्चिम की तरफ़ नर्मदा आदि नदियों में बहता है वह प्रतिहार है, जो समुद्र है वह निधन है, याने जल के रहने का घर है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपास्ते ॥ २ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

न, ह, अप्सु, प्रैति, अप्सुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, सर्वासु, अप्सु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक	एवम्	इस कहे हुये प्रकार
एतत्	इस	सर्वासु	सब
पञ्चविधम्	पांच प्रकार वाले	अप्सु	जलों में
साम	सामको	विद्वान्	जानताहुवा

उपास्ते=उपासना करता है	प्रैति=मरता है
+ सः=वह	च=और
अप्सु=जलों में डूब करके	ह=निश्चयकरके
न=नहीं	अप्सुमान्=जल का स्वामी
	भवति=होता है

भावार्थ ।

जो उपासक कहे हुये प्रकार पांच अंगों सहित सामकी उपासना जलविषे जानता हुवा करता है, वह जल में डूबकर नहीं मरता है, और जलका स्वामी होता है, याने जो समुद्रादिक में मोती,मूंगा आदि उत्पन्न होतेहैं वह सब उसको प्राप्त होते हैं २ ॥
इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

ऋतुषु पञ्चविधꣳसामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ऋतुषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, वसन्तः, हिंकारः, ग्रीष्मः, प्रस्तावः, वर्षाः, उद्गीथः, शरत्, प्रतिहारः, हेमन्तः, निधनम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ऋतुषु=ऋतुओं में	साम=साम की
पञ्चविधम्=पांच प्रकार वाले	इति=इसप्रकार
	उपासीत=उपासना करे

वसन्तः=वसन्तऋतु	उद्गीथः=उद्गीथ है
हिंकारः=हिंकार है	शरत्=शरदृतु
ग्रीष्मः=ग्रीष्मऋतु	प्रतिहारः=प्रतिहार है
प्रस्तावः=प्रस्ताव है	हेमन्तः=हेमन्तऋतु
वर्षाः=वर्षाऋतु	निधनम्=निधन है

भावार्थ ।

पांच प्रकार के जो ऋतु हैं, उनमें पांच अंगों सहित सामकी उपासना इस प्रकार करे, वसंतऋतु हिंकार है, ग्रीष्मऋतु प्रस्ताव है, वर्षाऋतु उद्गीथ है, शरदृतु प्रतिहार है, और हेमंतऋतु निधन है, क्योंकि इस ऋतु में जीव बहुत मरते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳसामोपास्ते ॥ २ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

कल्पन्ते, ह, अस्मै, ऋतवः, ऋतुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, ऋतुषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो उपासक	एवम्	=कहेहुये प्रकार
ऋतुषु	=ऋतुओं में	विद्वान्	=जानता हुवा याने भावना करता हुवा
एतत्	=इस	उपास्ते	=उपासना करता है
पञ्चविधम्	=पांचप्रकार के		
साम	=साम को		

अस्मै=उस उपासक के लिये
ऋतवः=सब ऋतु
कल्पन्ते=अपने अपने समयमें फल देनेको तैयार होते हैं
ह=और
+ सः=वह उपासक
ऋतुमान्=सब ऋतुवों का सुखभोगने वाला
भवति=होता है

भावार्थ ।

जो उपासक पांचऋतुओं में पांच अंगों सहित साम की उपासना कहे हुये प्रकार करता है, उस उपासक के लिये सब ऋतु अपने अपने समय के फल देने को तैयार रहते हैं, और वह उपासक सब ऋतुओं का सुख भोगने वाला होता है ॥ २ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

पशुषु पञ्चविधꣳसामोपासीताजा हिंकारो वयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पशुषु, पञ्चविधम्, साम, उपासीत, अजाः, हिंकारः, अवयः, प्रस्तावः, गावः, गद्गीथः, अश्वाः, प्रतिहारः, पुरुष, निधनम् ॥ १ ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
पशुषु=पशुओं में	अवयः=भेड़ें
पञ्चविधम्=पांच प्रकार वाले	प्रस्तावः=प्रस्ताव हैं
साम=सामकी	गावः=गौवें
इति=इस प्रकार	उद्गीथः=उद्गीथ हैं
उपासीत=उपासना करे	अश्वाः=अश्व
अजाः=बकरे	प्रतिहारः=प्रतिहार हैं
हिंकारः=हिंकार हैं	पुरुषः=पुरुष
	निधनम्=निधन है

भावार्थ ।

पशुओं में उपासक पांचप्रकार अंगों सहित साम की उपासना इस प्रकार करे, बकरे हिंकार हैं, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौवें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं, पुरुष निधन है, जिस क्रमसे पशु उत्पन्न हुये हैं उसी क्रमसे इस मंत्र विषे सामकी उपासना उनमें करने के लिये लिखी गई है ॥ १ ॥

मूलम् ।

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳसाम उपास्ते ॥ २ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

भवन्ति, ह, अस्य, पशवः, पशुमान्, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, पशुषु, पञ्चविधम्, साम, उपास्ते॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एवम्=ऊपर कहे हुये प्रकार	विद्वान्=जानता हुवा
	यः=जो

पशुषु=पशुओं में
पञ्चविधम्=पांच प्रकार वाले
साम=सामकी
इति=इस प्रकार
उपास्ते=उपासना करता है
अस्य=उस उपासक के घर
पशवः=बहुतसे पशु
भवन्ति=होते हैं
च=और
सः=वह
ह=निश्चय करके
पशुमान्=बहुतसेपशुओं का स्वामी
भवति=होता है

भावार्थ ।

जो उपासक ऊपर कहे हुये प्रकार जानता हुवा साम की उपासना पांच अंगों सहित पशुओं में करता है, उसके घरमें बहुत से पशु होजाते हैं, और वह बहुत से पशुओं का मालिक होजाता है, पूर्वकाल में पशुही धन समझे जाते थे इसलिये पशुओं की वृद्धि धन की वृद्धि समझी जाती थी, अबभी देहातों में ऐसे ही समझते हैं ॥ २ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

प्राणेषु पञ्चविधꣳपरोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारोमनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणेषु, पञ्चविधम्, परोवरीयः, साम, उपासीत, प्राणः,

हिंकारः, वाक्, प्रस्तावः, चक्षुः, उद्गीथः, श्रोत्रम्, प्रतिहारः, मनः, निधनम्, परोवरीयांसि, वै, एतानि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+उपासकः	उपासक	चक्षुः	नेत्र
पञ्चविधम्	पांच प्रकार वाला	उद्गीथः	उद्गीथ है
परोवरीयः	अतिश्रेष्ठ	श्रोत्रम्	कर्ण
साम	सामकी	प्रतिहारः	प्रतिहार है
इति	इस प्रकार	मनः	मन
उपासीत	उपासना करे	विधनम्	निधन है
प्राणः	नासिका	एतानि	ये नासिकादिकइन्द्रियां
हिंकारः	हिंकार है	वै	निश्चयकरके
वाक्	वाणी	परोवरीयांसि	उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं
प्रस्तावः	प्रस्ताव है		

भावार्थ ।

उपासक पांचों अंगोंसहित सामकी उपासना इन्द्रियों विषे इसप्रकार करे, नासिका हिंकार है, वाणी प्रस्ताव है,नेत्र उद्गीथ है, कर्ण प्रतिहारहै, मन निधनहै, जैसे इन्द्रियां क्रमवार श्रेष्ठ हैं यानी नासिका से वाणी श्रेष्ठ है, वाणी से नेत्र श्रेष्ठ हैं, नेत्र से कर्ण श्रेष्ठ हैं, और कर्ण से मन श्रेष्ठ है, उसी तरह हिंकार से वाणी श्रेष्ठ है, वाणी से प्रस्ताव श्रेष्ठ है, प्रस्ताव से उद्गीथ श्रेष्ठ है, उद्गीथ से प्रतिहार श्रेष्ठ है, प्रतिहार से निधन श्रेष्ठ है, घ्राणेन्द्रिय से वाक् इन्द्रिय क्यों श्रेष्ठ है क्योंकि घ्राणेन्द्रिय से केवल प्राप्त गन्धका प्रकाश होता है,परन्तु वाक् इन्द्रिय से गन्ध और दूसरे विषयों का भी प्रकाश होता है,वाक् इन्द्रिय की अ-

पेक्षा चक्षु इन्द्रिय क्यों श्रेष्ठ है क्योंकि वाणी तो केवल विषयों को बताती है और नेत्र विषयों को प्रत्यक्ष दिखलाता है, नेत्र की अपेक्षा कर्ण क्यों श्रेष्ठ है, क्योंकि चक्षु केवल सामने की वस्तुको प्रत्यक्ष करता है, परन्तु श्रोत्र इन्द्रिय अप्रत्यक्ष याने दूरके शब्दको भी प्रत्यक्ष करता है, श्रोत्रकी अपेक्षा मन क्यों श्रेष्ठ है, क्योंकि विना मनकी सहायता के कोई इन्द्रिय भी अपने भोग्यविषय के ग्रहण करने में समर्थ नहीं होती है ॥ १ ॥

मूलम् ।

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

परोवरीयः, ह, अस्य, भवति, परोवरीयसः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतद्, एवम्, विद्वान्, प्राणेषु, पञ्चविधम्, परोवरीयः, साम, उपास्ते, इति, तु, पञ्चविधस्य ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो उपासक		परोवरीयः=अतिश्रेष्ठ	
एवम्=इस प्रकार		साम=सामकी	
विद्वान्=जानता हुवा		उपास्ते=उपासना करता है	
प्राणेषु=इन्द्रियों बिषे		अस्य=उसका	
पञ्चविधम्=पांच अंगों सहित		+जीवनम्=जीवन	

परोवरीयः=अतिश्रेष्ठ	इति=ऐसा
भवति=होताहै	तु=निश्चय पूर्वक
ह=और	
+ सः=वह	
परोवरीयसः=उत्कृष्टतर	पञ्चविधस्य=इस पांच प्रकारवाले साम की
लोकान्=लोकोंको	
जयति=जीतताहै याने प्राप्त होताहै	+उपासना=उपासना है

भावार्थ ।

जो उपासक इसप्रकार जानता हुवा इन्द्रियों विषे पांच अंगों सहित सामकी उपासना करता है उसका जीवन अतिश्रेष्ठ होता है, और वह उत्कृष्ट लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधꣳसामोपासीत यत्किंच वाचो हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, सप्तविधस्य, वाचि, सप्तविधम्, साम, उपासीत, यत्किंच, वाचः, हुम्, इति, सः, हिंकारः, यत्, प्र, इति, सः, प्रस्तावः, यत्, आ, इति, सः, आदिः ॥

अन्वयः पदार्थ

अथ=अब
सप्तविधस्य=सात प्रकार के
+ साम्नः=साम की
+ उपासना=उपासना
इति=इस प्रकार
+ उच्यते=कहीजाती है
वाचि=वाणी में
सप्तविधम्=सात अंगों सहित
साम=सामकी
इति=इस प्रकार
उपासीत=उपासना करे
यत्किंच=जो कुछ
वाचः=वाणी है

अन्वयः पदार्थ

सः=वह
हुम्=हुंकार है
इति=ऐसा
+ सः=वह हुंकार
हिंकारः=हिंकार है
यत्=जो
प्र=प्र, उपसर्ग है
सः=वह
प्रस्तावः=प्रस्ताव है
यत्=जो
आ=आ, उपसर्ग है
सः=वह
आदिः=आदि है

भावार्थ ।

इस मंत्र में तीन अंग सहित और अगले मंत्र में चार अंग सहित इस तरह सात अंगों सहित सामकी उपासना अब कही जाती है, जो वाणी है वह हुंकार है, जो हुंकार है वह हिंकार है, जो प्र, उपसर्ग है, वह प्रस्ताव है, जो आ, उपसर्ग है, वह आदि है ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उत्, इति, सः, उद्गीथः, यत्, प्रति, इति, सः, प्रतिहारः, यत्, उप, इति, सः, उपद्रवः, यत्, नि, इति, तत्, निधनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो	यत्	जो
उत्	उत्	उप	उप
इति	ऐसा उपसर्ग है	इति	ऐसा उपसर्ग है
सः	वह	सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है	उपद्रवः	उपद्रव है
यत्	जो	यत्	जो
प्रति	प्रति	नि	नि
इति	ऐसा उपसर्ग है	इति	ऐसा उपसर्ग है
सः	वह	तत्	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है	निधनम्	निधन है

भावार्थ ।

जो उत् उपसर्ग है वही उद्गीथ है, जो प्रति उपसर्ग है वही प्रतिहार है, जो उप उपसर्ग है वही उपद्रव है, जो नि उपसर्ग है वही निधन है ॥ २ ॥

मूलम् ।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳसामोपास्ते ॥ ३ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

दुग्धे, अस्मै, वाग्दोहम्, यः, वाचः, दोहः, अन्नवान्, अन्नादः, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, वाचि, सप्तविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
वाचः	वाणी का
दोहः	फल है
+ तत्	उस
वाग्दोहम्	वाणीकेफलको
+ उपासना	उपासना
दुग्धे	पूर्ण करती है
एवम्	कहे हुये प्रकार
विद्वान्	जानते हुये
यः	जो उपासक
वाचि	वाणी में
एतत्	इस
सप्तविधम्	सातप्रकारके
साम	सामकी
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह उपासक
अन्नवान्	अन्नसंपत्ति वाला
+ च	और
अन्नादः	भोजनशक्ति वाला
भवति	होता है

भावार्थ ।

वाणी के जो जो फल हैं उन सब फलों को उपासना प्राप्त करती है, जो उपासक इस प्रकार जानता हुवा वाणीबिषे साम की उपासना सात अंगों सहित करता है वह अन्नसंपत्तिवाला और भोजनशक्तिवाला होता है ॥ ३ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳसामोपासीत

सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, अमुम्, आदित्यम्, सप्तविधम्, साम, उपासीत, सर्वदा, समः, तेन, साम, माम्, प्रति, माम्, प्रति, इति, सर्वेण, समः, तेन, साम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	वाणीमें साम की उपासना कहने के पश्चात्	समः	एकरूप है
अमुम्	उस	+ च	और
आदित्यम्	सूर्यबिषे	सर्वेण	सब करके
सप्तविधम्	सात प्रकार के	समः	समान है
साम	साम की	तेन	तिसी कारण
इति	इस खण्ड में कहेहुये प्रकार	साम	साम
उपासीत	उपासना करे	+आदित्यः	सूर्यरूप है
+ यतः	जिस कारण	+ हि	क्योंकि
इति	ऐसा	+ सः	वह सूर्य
+आदित्यः	सूर्य	मां प्रति मां प्रति	मेरे सामने है मेरे सामने है याने हरएक के सामने है वह समान बुद्धिका उत्पन्न करनेवाला है
सर्वदा	सर्वदा		
समः	एकरूप है		

भावार्थ ।

पिछले खण्डमें पांच स्तोभ अक्षरों सहित आदित्य बिषे साम की उपासना कही गई है, अब इस खण्ड बिषे सामकी उपासना सात स्तोभ अक्षरों सहित कहीजाती है, जैसे आदित्य सदा एकरस वृद्धिक्षयसे रहित है, ऐसेही साम भी वृद्धिक्षय से रहित है, इसलिये आदित्यही साम है, और सामही आदित्य है, क्योंकि जैसे आदित्य समान बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला है, वैसेही साम भी समान बुद्धि का उत्पन्न करनेवाला है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, अन्वायत्तानि, इति, विद्यात्, तस्य, यत्, पुरा, उदयात्, सः, हिंकारः, तत्, अस्य, पशवः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, हिं, कुर्वन्ति, हिंकारभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मिन्	तिस आदित्य बिषे	भूतानि	भूत जिनका बयान इस खण्डमें आगे किया जायगा
इमानि	यह		
सर्वाणि	सब		

अन्वायत्तानि=अनुगत हैं
इति=इस प्रकार
विद्यात्=सूर्य को जाने
तस्य=उस सूर्य के
उदयात्=उदय होने से
पुरा=पहिले
+ तस्य=उस सूर्य का
यत्=जो स्वरूप है
सः=वह
हिंकारः=हिंकार है
अस्य=उस सूर्य का
तत्=वह हिंकार स्वरूप
अन्वायत्ताः=सूर्य से संबंध रखनेवाले
पशवः=गवादिकपशुहैं
तस्मात्=इसी कारण
एतस्य=इस आदित्य-रूप
साम्नः=साम के
हिंकारभाजिनः=हिंकार की उपासना करनेवाले
ते=वे गवादिक पशु
हि=निश्चय करके
हिम्=हिंहिं
कुर्वन्ति=किया करते हैं

भावार्थ ।

तिस आदित्य बिषे सब भूत जिनका व्याख्यान आगे किया जायगा अनुगत हैं, ऐसा जानकर सूर्य बिषे सूर्यके उदय होनेसे पहिले जो समय है वह धर्मरूप है, और उस समय का जो सूर्य का स्वरूप है वह हिंकार है, उस सूर्य के हिंकारस्वरूप बिषे गवादिक पशु अनुगत हैं, इस कारण आदित्यरूप साम के हिंकार की उपासना करनेवाले गवादि पशु सदा हिंहिं शब्द करते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या

अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, प्रथमोदिते, सः, प्रस्तावः, तत्, अस्य, मनुष्याः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, प्रस्तुतिकामाः, प्रशंसाकामाः, प्रस्तावभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ=	अब और प्रकारसे उपासना कहते हैं
प्रथमोदिते=	प्रथम उदय होने पर
यत्=	जो
+ सवितृरूपम्=	सूर्यका रूप है
अस्य=	उसका
तत्=	वह रूप
प्रस्तावः=	प्रस्ताव है
+ तस्मिन्=	इस प्रस्तावमें
मनुष्याः=	मनुष्य
अन्वायत्ताः=	शरणको प्राप्त हैं
तस्मात्=	इस कारण
एतस्य=	इस सूर्यरूप
साम्नः=	सामके
प्रस्तावभाजिनः=	प्रस्तावके उपासना करनेवाले
ते=	वे मनुष्य
प्रस्तुतिकामाः=	अपरोक्ष प्रशंसा चाहनेवाले
+ च=	और
प्रशंसाकामाः=	परोक्षप्रशंसा चाहनेवाले
+ भवन्ति=	होते हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकार से सामकी उपासना को कहते हैं, जो सूर्य

का रूप उदय होने से पहिले है वह प्रस्ताव है, मनुष्यों का जीवन उस प्रस्ताव के आश्रय है, इस कारण सूर्यरूप साम के प्रस्ताव की उपासना करनेवाले जो मनुष्य हैं वे परोक्ष प्रशंसा और अपरोक्ष प्रशंसा के चाहनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्सङ्गववेलायाꣳस आदिस्तदस्य वयाꣳस्यन्वायत्तानि तान्यन्तरिक्षेनारम्बणान्यादायात्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, सङ्गववेलायाम्, सः, आदिः, तत्, अस्य, वयांसि, अन्वायत्तानि, तानि, अन्तरिक्षे, अनारम्बणानि, आदाय, आत्मानम्, परिपतन्ति, आदिभाजीनि, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	अब दूसरे प्रकार से उपासना का वर्णन करते हैं	सः=	वह
सङ्गववेलायाम्=	पांच भागों में बँटे हुये दिन के दूसरे हिस्से में	आदिः=	सामवेद का एक भाग "भक्तिविशेष ॐकार है"
यत्=	जो	अस्य=	सामवेद के भक्तिविशेष ॐकार का
+सावित्रम्=	सूर्य का रूप है	तत्=	वह रूप

अन्वायत्तानि = सूर्यके भक्तिविशेष ॐकाररूप में संबन्ध रखनेवाले
वयांसि = पक्षी हैं
+ तस्मात् = तिसी कारण
तानि = पक्षी
अन्तरिक्षे = आकाश में
अनारम्बणानि = विना किसीकी सहायता के
आत्मानम् = अपनीही शक्ति को
आदाय = ग्रहण करके
परिपतन्ति = उड़ते हैं
हि = क्योंकि
+ वयांसि = पक्षी
एतस्य = इस भक्ति विशेषॐकाररूप
साम्नः = साम के
आदिभाजीनि = संगवकाल के सूर्यरूप आदिकेउपासना करनेवाले हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकार से सामकी उपासनाका वर्णन करतेहैं, दिन के पांचभाग धर्मशास्त्र के अनुसार होते हैं, ऐसे दिनके दूसरे भाग में जो सूर्यका रूप है वह सामवेद का भक्तिविशेष ॐकारभाग है, उस आदित्यरूप साम के भक्तिविशेष ॐकाररूप में पक्षी प्रविष्ट हैं, इसलिये पक्षी आकाश बिषे विना किसीकी सहायताके अपने बलका भरोसा रखतेहुये उड़ते हैं, क्योंकि पक्षी उस भक्तिविशेष ॐकाररूप साम के संगवकाल के होनेवाले सूर्य की उपासना करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यत्संप्रति मध्यंदिने स उद्गीथस्तदस्यदेवा

अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथ-भाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, संप्रति, मध्यंदिने, सः, उद्गीथः, तत्, अस्य, देवाः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, सत्तमाः, प्राजापत्यानाम्, उद्गीथभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब और प्रकारसे कहते हैं
यत्	जो
संप्रति	ठीक
मध्यंदिने	मध्याह्नकालमें
+ सवित्रम्	सूर्यका रूप है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
अस्य	उस सूर्य का
तत्	वह उद्गीथरूप
अन्वायत्ताः	सूर्यके उद्गीथमें प्रविष्ट
देवताः	देवता हैं
तस्मात्	तिसी कारण
ते	वे देवता
प्राजापत्यानाम्	प्रजापति के सन्तानों में
सत्तमाः	अतिश्रेष्ठ हैं
हि	क्योंकि
+ ते	वे देवता
एतस्य	इस
साम्नः	साम के
उद्गीथभाजिनः	उद्गीथकी उपासनाकरने वाले हैं

भावार्थ ।

अब और प्रकारसे उपासना कहते हैं, जो ठीक मध्याह्न काल में सूर्य का रूप है वह उद्गीथ है, तिस उद्गीथ में देवता प्रविष्ट

हैं, क्योंकि मध्याह्न काल का सूर्य श्रेष्ठ होता है, तिसी कारण वे देवता प्रजापति के सन्तानों में अतिश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे देवता इस सामके उद्गीथ की उपासना करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥ *

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, ऊर्ध्वम्, मध्यंदिनात्, प्राक्, अपराह्णात्, सः, प्रतिहारः, तत्, अस्य, गर्भाः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते प्रतिहताः, न, अवपद्यन्ते, प्रतिहारभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	+ रूपम्	रूप है
मध्यंदिनात्	मध्याह्नकालसे	सः	वह रूप
ऊर्ध्वम्	पीछे	प्रतिहारः	प्रतिहार है
च	और	अस्य	उस सूर्य का
अपराह्णात्	अपराह्ण काल से	तत्	वह प्रतिहार रूप
प्राक्	पहिले	अन्वायत्ताः	सूर्यके प्रतिहार रूपमें प्रविष्ट
यत्	जो	गर्भाः	गर्भ हैं
+सवितुः	सूर्य का		

* दिन के पांच भाग धर्मशास्त्र के अनुसार होते हैं, दिनका पहिला भाग प्रातःकाल, दूसरा संगवकाल, तीसरा मध्याह्न, चौथा अपराह्न, पांचवां सायाह्न ।

तस्मात्=तिसी कारण	हि=क्योंकि
ते=वे गर्भ	+ते=वे गर्भ
प्रतिहृताः=गर्भाशय में स्थापित किये हुये	एतस्य=इस
	साम्नः=साम के
न=नहीं	प्रतिहार-भाजिनः=प्रतिहार के उपासक हैं
अवपद्यन्ते=गिरते हैं	

भावार्थ ।

अब दूसरे प्रकार से उपासना कहते हैं, मध्याह्न काल से पीछे और अपराह्णकाल से पहिले जो सूर्य का रूप है वह प्रतिहार है, उस प्रतिहार में गर्भ प्रविष्ट है, तिसी कारण वे गर्भ; गर्भाशय में प्राप्त हुये नहीं गिरते हैं, क्योंकि वे गर्भ इस सामके प्रतिहार की उपासना करने वाले हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳश्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, ऊर्ध्वम्, अपराह्णात्, प्राक्, अस्तमयात्, सः, उपद्रवः, तत्, अस्य, आरण्याः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, ते, पुरुषम्, दृष्ट्वा, कक्षम्, श्वभ्रम्, इति, उपद्रवन्ति, उपद्रवभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	आरण्याः	वनके पशु हैं
अपराह्णात्	अपराह्ण से	तस्मात्	तिसी कारण
ऊर्ध्वम्	ऊपर	ते	वे वनके पशु
+ च	और	पुरुषम्	पुरुष को
अस्तमयात्	अस्तकालसे	दृष्ट्वा	देखकर
प्राक्	पहिले	भीताः	भययुक्त
+आदित्यस्य	सूर्यका	इति	होकर
यत्	जो	श्वभ्रम्	भयसे रहित
रूपम्	रूप है	कक्षम्	वनको
सः	वह रूप	उपद्रवन्ति	भागते हैं
उपद्रवः	उपद्रव है	हि	क्योंकि
अस्य	इस सूर्यका	+ ते	वे वनके पशु
तत्	वह रूप	एतस्य	इस
अन्वायत्ताः	सूर्यकेउपद्रव रूपमें प्रविष्ट हुये	साम्नः	सामके
		उपद्रवभाजिनः	उपद्रव के उपासक हैं

भावार्थ ।

अपराह्णकाल से ऊपर और अस्तकाल से पहिले जो सूर्य का रूप है वह रूप उपद्रव स्तोभ है, इसके आश्रय वन के पशु अपना जीवन रखते हैं, इसी कारण वे पशु पुरुष को देखकर भयभीत होकर भय से रहित जो वन है उसमें भाग जाते हैं, क्योंकि वे पशु इस उपद्रव स्तोभ के उपासक हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ यत्प्रथमास्तमितेतन्निधनं तदस्य पितरो-न्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्यसाम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ ८ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, प्रथमास्तमिते, तत्, निधनम्, तत्, अस्य, पितरः, अन्वायत्ताः, तस्मात्, तान्, निदधति, निधनभाजिनः, हि, एतस्य, साम्नः, एवम्, खलु, अमुम्, आदित्यम्, सप्तविधम्, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और प्रकार से उपासना कहते हैं
प्रथमास्तमिते	प्रथम अस्त कालके समय
यत्	जो
+ सवितुः	सूर्यका
+ रूपम्	रूप है
अस्य	उस सूर्य का
तत्	वह रूप
अन्वायत्ताः	जिसमें वे प्रविष्ट हैं
पितरः	पितर हैं

अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	तिसी कारण
+ दर्भेषु	कुशोंपर
तान्	उनपितरोंको पिता पितामह प्रपितामह रूप से
निदधति	रखते हैं
हि	क्योंकि
+ते	पिता आदिक
एतस्य	इस
साम्नः	साम के
निधनभाजिनः	निधन के उपासक थे

एवम्=इस प्रकार	उपास्ते=उपासना करता है
यः=जो उपासक	+तस्य=उसको
अमुम्=इस	+सूर्यप्राप्तिः=सूर्यकी प्राप्ति रूप
आदित्यम्=सूर्यरूप	फलम्=फल
सप्तविधम्=सात प्रकार के	भवति=होता है
साम=साम की	

भावार्थ ।

जो अस्तकाल के समय का सूर्य है उसमें पितर प्रविष्ट हैं, तिसी कारण कुशोंपर पितरों को, पिता, पितामह, प्रपितामहरूप से रखते हैं, क्योंकि पिता आदिक उस साम के निधन स्तोभ के उपासक थे, इस कारण जो उपासक सूर्यरूप सात प्रकार के साम की उपासना करता है वह सूर्य के तुल्य होजाता है ॥ ८ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपासीत हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, आत्मसंमितम्, अतिमृत्यु, सप्तविधम्, साम, उपासीत, हिंकारः, इति, त्र्यक्षरम्, प्रस्तावः, इति, त्र्यक्षरम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	इति	ऐसा
खलु	निश्चय करके	त्र्यक्षरम्	तीन अक्षर वाला
आत्मसंमितम्	परमात्मा के तुल्य	हिंकारः	हिंकार
+च	और	+च	और
अतिमृत्यु	मृत्यु को जय करनेवाले	इति	ऐसा
सप्तविधम्	सात प्रकार के	त्र्यक्षरम्	तीन अक्षर वाला जो
साम	साम की	प्रस्तावः	प्रस्ताव है
उपासीत	उपासना करे	तत्	सो
		समम्	आपुस में बराबर हैं

भावार्थ ।

परमात्मा के तुल्य और मृत्यु का जय करनेवाला जो साम आगे कहे हुये प्रकार सात अंगोंसहित है उसकी उपासना हिंकार और प्रस्तावरूप से करना चाहिये, जैसे हिंकार तीन अक्षरवाला है वैसेही तीन अक्षरवाला प्रस्ताव भी सामरूप है, इसलिये हिंकार और प्रस्ताव आपुस में बराबर हैं, इन दोनों की उपासना सामबुद्धि से करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आदिः, इति, द्व्यक्षरम्, प्रतिहारः, इति, चतुरक्षरम्, ततः, इह, एकम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	ऐसा	एकम्	एक अक्षर
द्व्यक्षरम्	दो अक्षर वाला	इह	आदिमें
आदिः	आदि है	प्रक्षिप्यते	जोड़दियाजाय
चतुरक्षरम्	चार अक्षर वाला	+ तदा	तब
प्रतिहारः	प्रतिहार है	तत्	वह आदि
ततः	इस प्रतिहारसे	समम्	प्रतिहारके समान होगा

भावार्थ ।

दो अक्षरवाला आदि स्तोभ है, चार अक्षरवाला प्रतिहार स्तोभ है, यदि प्रतिहार में से एक अक्षर निकाल कर आदि में जोड़दिया जाय तो दोनों तीन तीन अक्षर करके बराबर होजाते हैं, ऐसा अनुभव करके उपासक सामबिषे "आदि" और "प्रतिहार" की उपासना करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

उद्गीथः, इति, त्र्यक्षरम्, उपद्रवः, इति, चतुरक्षरम्,

त्रिभिः, त्रिभिः, समम्, भवति, अक्षरम्, अतिशिष्यते, त्र्यक्षरम्, तत्, समम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
इति=ऐसा	समम्=दोनों बराबर
त्र्यक्षरम्=तीन अक्षर वाला	भवति=हैं
उद्गीथः=उद्गीथ है	तत्=इसलिये
+च=और	त्र्यक्षरम्=तीनतीनअक्षर
इति=ऐसा	समम्=बराबर हैं
चतुरक्षरम्=चार अक्षर वाला	+यत्=जो
उपद्रवः=उपद्रव है	अक्षरम्=एक अक्षर
त्रिभिः=तीन	अतिशिष्यते=बचता है
त्रिभिः=तीन अक्षरों करके	+तत् एव=वह भी
	त्र्यक्षरम्=तीन अक्षर वाला है

भावार्थ ।

तीन अक्षरवाला उद्गीथ स्तोभ है, और चार अक्षरवाला उपद्रव भी स्तोभ है, ये दोनों तीन अक्षर करके बराबर हैं, साम विषे उद्गीथ की और उपद्रव की उपासना करे, उपद्रव स्तोभ अक्षरमें से जो एक अक्षर बचता है, वह भी तीन अक्षरवाला उपास्य है, इस अक्षर की उपासना करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति कही है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षराणि ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

निधनम्, इति, त्र्यक्षरम्, तत्, समम्, एव, भवति, तानि, ह, वै, एतानि, द्वाविंशतिः, अक्षराणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
निधनम्	निधन	भवति	है
इति	ऐसा	एवम्	इसप्रकार
+ यत्	जो	तानि	वेयानेपहिले कहे हुये उन्नीस अक्षर
त्र्यक्षरम्	तीन अक्षर वाला स्तोभ है	+ च	और
तत्	वह प्रथममंत्रोक्त आदित्यके तीन अक्षरों के	एतानि	ये तीन अक्षर दोनों मिलकर
समम्	बराबर	द्वाविंशतिः	बाईस
		अक्षराणि	अक्षर भये

भावार्थ ।

निधन तीन अक्षरवाला स्तोभ है, यह भी हिंकार, और प्रस्ताव के बराबर है जिसका बयान इस खंडके पहिले मंत्र में कह आये हैं, और जिसकी उपासना का लक्ष्य सूर्यलोक की प्राप्ति है, इसलिये उन्नीस अक्षर याने हिंकार, प्रस्ताव, आदि, प्रतिहार, उद्गीथ, उपद्रव, निधन, जो पहिले कह आये हैं और तीन अक्षर निधनके, दोनों मिलकर २२ अक्षर होते हैं, इनमें से इक्कीस अक्षरों करके हिंकार आदि के उपासना करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, और उपद्रव में से बचेहुये एक अक्षर करके त्रय अक्षर की भावना से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है, जैसे कि आगे मंत्रों में कहा है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

एक विंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविंᳫंशो वाइतो सावादित्यो द्वाविᳫंशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

एकविंशत्या, आदित्यम, आप्नोति, एकविंशः, वै, इतः, असौ, आदित्यः, द्वाविंशेन, परम्, आदित्यात्, जयति, तत्, नाकम्, तत्, विशोकम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ उपासकः	उपासक	आदित्यात्	सूर्य से
एकविंशत्या	इक्कीस अक्षरों करके	परम्	ऊपर के
आदित्यम्	सूर्यलोक को	+ ब्रह्मलोकम्	ब्रह्मलोक को
आप्नोति	प्राप्त होता है	जयति	जीतताहै याने प्राप्तहोता है
असौ	वह	तत्	वह लोक
आदित्यः	सूर्यलोक	नाकम्	सुखरूप है
इतः	इसलोक से	+ च	और
एकविंशः	इक्कीसवां है	तत्	वही लोक
द्वाविंशेन	बाईसवें अक्षर करके	विशोकम्	शोक रहित है

भावार्थ ।

उपासक साम के इक्कीस स्तोभ अक्षरों करके जैसे कि ऊपर कह आये हैं सूर्यलोक को प्राप्त होता है जो इस लोक से इक्कीसवां लोक है, बाईसवें अक्षर करके याने उस अक्षरके जो उपद्रव

स्तोभ में बचता है उसके द्वारा उपासक ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, वह ब्रह्मलोक सुखरूप है, और शोकरहित है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

आप्नोति हादित्यस्य जयम्परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳ सामोपास्ते सामोपास्ते[1] ॥ ६ ॥

इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

आप्नोति, ह, आदित्यस्य, जयम्, परः, ह, अस्य, आदित्यजयात्, जयः, भवति, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, आत्मसंमितम्, अतिमृत्यु, सप्तविधम्, साम, उपास्ते, साम, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार से
विद्वान्	जानता हुआ
आत्मसंमितम्	परमात्मा के तुल्य
अतिमृत्यु	मृत्यु को जीतने वाले
सप्तविधम्	सात प्रकार के
साम	साम की
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
आदित्यस्य	सूर्य के
जयम्	जय को
आप्नोति	प्राप्त होता है
+च	और
आदित्यजयात्	सूर्य लोक के प्राप्त होने से
परः	पीछे

१-यहांपर जो सामोपास्ते सामोपास्ते दोबार लिखा है वह साम की समाप्ति का बोधक है।

अस्य=इस उपासक को	ह=निश्चय करके
जयः=ब्रह्मलोक की प्राप्ति	भवति=होती है

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुये प्रकार परमात्मा के तुल्य और मृत्यु का जीतनेवाला जो साम सात अंगों सहित है उसकी उपासना जो पुरुष करता है, वह सूर्यलोक को जीतता हुवा ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, वहां ब्रह्मासे उपदेश पायकर मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ६ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, हिंकारः, वाक्, प्रस्तावः, चक्षुः, उद्गीथः, श्रोत्रम्, प्रतिहारः, प्राणः, निधनम्, एतत्, गायत्रम्, प्राणेषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
मनः=मन	प्राणः=प्राण
हिंकारः=हिंकार है	निधनम्=निधन है
वाक्=वाणी	एतत्=यह
प्रस्तावः=प्रस्ताव है	गायत्रम्=गायत्र
चक्षुः=नेत्र	साम=साम
उद्गीथः=उद्गीथ है	प्राणेषु=प्राणों में
श्रोत्रम्=कर्ण	प्रोतम्=अनुगत है याने रहता है
प्रतिहारः=प्रतिहार है	

भावार्थ ।

पिछले खण्डों में पांच प्रकार व सात प्रकार के सामकी उपासना कही गई है, अब इस खण्ड में और प्रकार से साम की उपासना कहते हैं, यह उपासना गायत्र सामकी है, इस गायत्र साम की उपासना इन्द्रियविशिष्ट प्राण विषे है, मन हिंकाररूप है, याने मन विषे हिंकार की उपासना करे, वाणी प्रस्ताव है, याने वाणी में प्रस्ताव की उपासना करे, नेत्र उद्गीथ है, याने नेत्र बिषे उद्गीथ की उपासना करे, कर्ण प्रतिहार है याने कर्ण में प्रतिहार की उपासना करे, और प्राण निधन है याने प्राण विषे निधन की उपासना करे, इस तरह इन्द्रियविशिष्ट प्राण में गायत्र साम की उपासना अनुगत है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद् व्रतम् ॥ २॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, गायत्रम्, प्राणेषु, प्रोतम्, वेद, प्राणी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, महामनाः, स्यात्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	गायत्रम्	गायत्र नाम के सामको
महामनाः	उदार चित्त वाला उपासक	एवम्	कहे हुये प्रकार
एतत्	इस	प्राणेषु	प्राणों में

प्रोतम्=प्रविष्ट हुवा	प्रजया=संतान करके
वेद=जानता है	पशुभिः=पशुओं करके
सः=वह उपासक	महान्=श्रेष्ठ
प्राणी=इन्द्रियों की शक्तिसे संपन्न	भवति=होता है
भवति=होता है	+ च=और
सर्वम्=संपूर्ण याने पूरे	कीर्त्या=यश करके
आयुः=आयुष्य को	महान्=श्रेष्ठ
एति=प्राप्त होता है	भवति=होता है
ज्योक्=निर्मल	+गायत्रोपासकस्य=गायत्रसामके उपासक का
जीवति=जीवनवाला होता है	तत्=यह
	व्रतम्=व्रत है

भावार्थ ।

जो पुरुष उदार चित्तवाला गायत्र साम की उपासना इन्द्रियविशिष्ट प्राण में करता है वह उपासक इन्द्रियों की शक्ति से संपन्न होता है, पूर्ण आयुष्य को प्राप्त होता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, और वह संतान करके, पशुओं करके, यश करके युक्त होता हुवा श्रेष्ठ होता है ॥ २ ॥ इति एकादशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अभिमन्थति, सः, हिंकारः, धूमः, जायते, सः, प्रस्तावः, ज्वलति, सः, उद्गीथः, अङ्गाराः, भवन्ति, सः, प्रतिहारः, उपशाम्यति, तत्, निधनम्, संशाम्यति, तत्, निधनम्, एतत्, रथन्तरम्, अग्नौ, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अभिमन्थति	मंथन करने से जो अग्नि उत्पन्न होती है	उपशाम्यति	जोशांतहोता है याने कुछ कुछ बुझने लगता है
सः	वह	तत्	वह
हिंकारः	हिंकार है	निधनम्	निधन है
+यत्	जो	संशाम्यति	जो भलीप्रकार बुझ जाता है
धूमः	धूम	तत्	वह भी
जायते	होता है	निधनम्	निधन है
सः	वह	एतत्	यह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	रथन्तरम्	रथन्तर नामक साम
ज्वलति	जो लौ निकलता है	अग्नौ	अग्नि में
सः	वह	प्रोतम्	अनुगत है, याने अग्नि मंथन के समय पढ़ा जाता है
उद्गीथ	उद्गीथ है		
अङ्गाराः	जो अङ्गार		
भवन्ति	होते हैं		
सः	वह		
प्रतिहारः	प्रतिहार है		

भावार्थ ।

यज्ञ करने के प्रथम जो अग्नि दो लकड़ियों के याने अरणियों के रगड़ने से उत्पन्न होती है वह अग्नि हिंकाररूप है, और जो धूम होता है वह प्रस्तावरूप है, और जो अग्नि में लौ (ज्वाला) निकलता है वह उद्गीथ है, जो अङ्गार प्रतीत होते हैं वह प्रतिहार है, और जो अग्नि कुछ कुछ बुझने लगता है वह निधन है, और जो बिलकुल बुझ जाता है वह भी निधन है, इस प्रकार साम रथन्तर की उपासना कही जाती है, यह रथन्तर नामक साम अग्नि विषे अनुगत है, याने अग्निमन्थन के समय ऐसा पढ़कर ध्यान करना चाहिये ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, रथन्तरम्, अग्नौ, प्रोतम्, वेद, ब्रह्मवर्चस्वी, अन्नादः, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, न, प्रत्यङ्, अग्निम्, आचामेत्, न, निष्ठीवेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	प्रोतम्	अनुगत
अग्नौ	अग्नि में	एतत्	इस

रथन्तरम्=रथन्तरसामको
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
सः=वह
ब्रह्मवर्चस्वी=विद्याऔरब्रह्म प्रकाश वाला
च=और
अन्नादः=भोजन शक्ति वाला
भवति=होता है
सर्वम्=पूरे
आयुः=आयुष्यको
एति=प्राप्त होता है
ज्योक्=अपने और दूसरेपरउपकार करता हुवा
जीवति=जीता है
प्रजया=संतानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
+भवति=होता है
अग्निम्=अग्नि के
प्रत्यङ्=सामने
न=न
आचामेत्=भोजन करे
+ च=और
न=न
निष्ठीवेत्=थूके
तत्=यह
व्रतम्=नियम उपासक को करना चाहिये

भावार्थ ।

जो पुरुष अग्निमें अनुगत रथन्तर साम की उपासना करता है वह विद्या और ज्ञानवाला होता है, और शरीर से हृष्ट पुष्ट होता है, पूरे आयुको प्राप्त होता है, और अपना व दूसरों का भला करनेवाला होता है, वह संतानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होता है, ऐसे उपासकों का यह नेम होता है कि अग्नि के सामने वह न भोजन करते हैं और न थूकते हैं ॥ २ ॥

इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उपमन्त्रयते, सः, हिंकारः, ज्ञपयते, सः, प्रस्तावः, स्त्रिया, सह, शेते, सः, उद्गीथः, प्रति, स्त्रीम्, सह, शेते, सः, प्रतिहारः, कालम्, गच्छति, तत्, निधनम्, पारम्, गच्छति, तत्, निधनम्, एतत्, वामदेव्यम्, मिथुने, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
उपमन्त्रयते	जो स्त्री का ध्यान किया जाता है
सः	वह
हिंकारः	हिंकार है
ज्ञपयते	जो स्त्री से बातचीत करता है
सः	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है
स्त्रिया	जो स्त्री के
सह	साथ
शेते	सोया जाता है
सः	वह
उद्गीथः	उद्गीथ है
स्त्रीम्प्रति	जो स्त्री के
सह	साथ
शेते	एक शय्या पर अभिमुख सोता है
सः	वह
प्रतिहारः	प्रतिहार है

कालम्=जो कालको
गच्छति=व्यतीत करता है याने स्त्री के साथ मैथुन करता है
तत्=वह
निधनम्=निधन है
पारम्=जो मैथुन की समाप्ति को
गच्छति=प्राप्त होता है
तत्=वह भी
निधनम्=निधन है
एतत्=यह
वामदेव्यम्=वामदेव्यनामक साम
मिथुने=ऊपर कहे हुये वायुरूपी पुरुष और जलरूपी स्त्री के मिथुन में
प्रोतम्=प्रविष्ट है याने संबन्ध रखने वाला है

भावार्थ ।

स्त्रीका ध्यान करना हिंकार है, स्त्री से बातचीत करना प्रस्ताव है, स्त्रीके साथ सोना उद्गीथ है, स्त्रीके साथ एक शय्या पर स्त्रीके मुख के तरफ़ सोना प्रतिहार है, स्त्री से भोग करना निधन है, और मैथुन को समाप्त करना भी निधन है, यह उपासना वामदेव्य नाम के सामकी उपासना है, यह वायुरूपी पुरुष और जलरूपी स्त्री के मिथुन में प्रविष्ट है, याने संबन्ध रखनेवाला है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद[1] मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्व्वमायुरेति ज्यो-

१-वेद भूतकाल है, पर यहां अर्थ वर्त्तमानकालका देता है ।

ग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥२॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, वामदेव्यम्, मिथुने, प्रोतम्, वेद, मिथुनी, भवति, मिथुनात्, मिथुनात्, प्रजायते, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, न, काञ्चन, परिहरेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो उपासक
मिथुने	वायुरूपी पुरुष और स्त्री रूपी जल के मिथुन में
प्रोतम्	अनुगत
एतत्	इस
वामदेव्यम्	वामदेव्य नामक सामको
एवम्	कयेहुये प्रकार
वेद	जानता है याने उपासना करता है
सः	वह उपासक
मिथुनी	सदा स्त्रीयुक्त याने स्त्री के वियोग के दुःखसे रहित
भवति	होता है
मिथुनात् मिथुनात्	मिथुन की उपासना से
प्रजायते	अमोघ वीर्य वाला होता है
सर्वम्	पूरे
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है

ज्योक्=अपने व दूसरे के उपकारमें समर्थ होता हुवा	काश्चन=किसी अपनी विवाहिता स्त्रीको
जीवति=जीता है	न=न
प्रजया=संतानों करके	परिहरेत्=त्यागे
पशुभिः=पशुओं करके	तत्=यह
महान्=श्रेष्ठ	व्रतम्=नियम वामदेव्य मिथुन सामके उपासक का
कीर्त्या=यश करके	+भवति=होता है
महान्=श्रेष्ठ	
भवति=होता है	

भावार्थ ।

जो उपासक वायुरूपी पुरुष और जलरूपी स्त्री के मिथुन विषे अनुगत इस वामदेव्य नामक साम को ऊपर कहे हुये प्रकार जानता है वह सदा स्त्रीयुक्त होता है, याने उसको स्त्री का वियोग नहीं होता है, इस मिथुन की उपासना करने से वह पुरुष अमोघ वीर्यवाला होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, अपने व पराये उपकार के करने में समर्थ होता है, संतानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होता है, उसका नियम यह है कि कोई पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री को न त्यागे ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

उद्यन् हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यंदिन

उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उद्यन्, हिंकारः, उदितः, प्रस्तावः, मध्यंदिनः, उद्गीथः, अपराह्णः, प्रतिहारः, अस्तम्, यत्, निधनम्, एतत्, बृहत्, आदित्ये, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उद्यन्	उदयको प्राप्त होता हुवा	प्रतिहारः	प्रतिहार है
+ सविता	सूर्य	यत्	जो
हिंकारः	हिंकार है	अस्तम्	अस्तको प्राप्त
उदितः	उदयको पूरी तरहसे प्राप्त हुवा सूर्य	यन्	हुवा सूर्य है
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	तत्	वह
मध्यंदिनः	ठीक मध्याह्न कालका	निधनम्	निधन है
+ सविता	सूर्य	एतत्	यह
उद्गीथः	उद्गीथ है	बृहत्	बृहत्साम
अपराह्णः	अपराह्ण कालका सूर्य	आदित्ये	सूर्य विषे
		प्रोतम्	अनुगत है यानी इस साम का सूर्य अधिपति देवता है

भावार्थ ।

उदय होता हुवा सूर्य हिंकार है, उदय को प्राप्त हुवा सूर्य प्रस्ताव है, ठीक मध्याह्न कालका सूर्य उद्गीथ है, अपराह्ण काल

का सूर्य प्रतिहार है, अस्तकाल को प्राप्त हुवा सूर्य निधन है, यह ऊपर कही हुई बृहत्साम की उपासना है, यह बृहत्साम सूर्य बिषे अनुगत है, याने इसका अधिष्ठाता देवता सूर्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निंदेत् तत् व्रतम् ॥ २ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, बृहत्, आदित्ये, प्रोतम्, वेद, तेजस्वी, अन्नादः, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, तपन्तम्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	अन्नादः	भोजन शक्तिवाला
एतत्	इस	भवति	होता है
बृहत्	बृहत् सामको	सर्वम्	पूर्ण
आदित्ये	सूर्य बिषे	आयुः	आयुको
एवम्	कहे हुये प्रकार	एति	प्राप्त होताहै
प्रोतम्	अनुगत	ज्योक्	उपकार करने योग्य होकर
वेद	जानता है	जीवति	जीताहै
सः	वह	प्रजया	संतानों करके
तेजस्वी	तेजवाला		

पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
+ च=और
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होताहै
तपन्तम्=किसी तपस्वीकी
न=न
निंदेत्=निंदाकरे
तत्=उस उपासक का यह
व्रतम्=नियम
+ भवति=होताहै

भावार्थ ।

जो इस बृहत्साम की उपासना आदित्य विषे ऊपर कहेहुये प्रकार करता है, वह तेजवाला, भोजन शक्तिवाला, पूर्ण आयुवाला होता है, वह उपकार करने योग्य होकर जीता है, वह संतानों करके, अनेक पशुओं करके और यश करके श्रेष्ठ होता है, उसका नियम यह होता है कि कोई किसी तपस्वीकी निंदा न करे ॥ २ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अभ्राणि, संप्लवन्ते, सः, हिंकारः, मेघः, जायते, सः, प्रस्तावः, वर्षति, सः, उद्गीथः, विद्योतते, स्तनयति,

सः, प्रतिहारः, उद्गृह्णाति, तत्, निधनम्, एतत्, वैरूपम्, पर्जन्ये, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अभ्राणि	जो हलके	विद्योतते	जो चमकता है याने जो बिजुली है
संप्लवन्ते	बादल इकट्ठे होते हैं	+च	और
सः	वह	स्तनयति	कड़कता है
हिंकारः	हिंकार है	सः	वह
मेघः	जो मेघ याने बादल	प्रतिहारः	प्रतिहार है
जायते	उत्पन्न होता है	उद्गृह्णाति	जो वृष्टि बंद करता है
सः	वह	तत्	वह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	निधनम्	निधन है
वर्षति	जो बरसता है	एतत्	यह
सः	वह	वैरूपम्	वैरूप साम
उद्गीथः	उद्गीथ है	पर्जन्ये	मेघ बिषे
		प्रोतम्	अनुगत है

भावार्थ ।

जो हलके बादल इकट्ठे होते हैं, वह हिंकार है, जो घने बादल उत्पन्न होते हैं वह प्रस्ताव है, जो बरसता है, वह उद्गीथ है, जो विद्युत् होकर चमकता है, व कड़कता है, वह प्रतिहार है, जिस करके वृष्टि बंद होजाती है, वह निधन है, यह वैरूप साम की उपासना है, यह वैरूप साम मेघ बिषे अनुगत है, याने मेघ का अधिष्ठाता देवता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपाꣳश्च सुरूपाꣳश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निंदेत् तत् व्रतम् ॥ २ ॥ इति पञ्चदशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, वैरूपम्, पर्जन्ये, प्रोतम्, वेद, विरूपान्, च, सुरूपान्, च, पशून्, अवरुन्धे, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, वर्षन्तम्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस
वैरूपम्	वैरूप साम को
एवम्	कहे हुये प्रकार
पर्जन्ये	मेघ में
प्रोतम्	अनुगत
वेद	जानता है
सः	वह
विरूपान्	कुरूप
च	और
सुरूपान्	सुरूपवाले
पशून्	पशुओं को
अवरुन्धे	प्राप्त होता है
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	उपकार करने योग्य होकर
जीवति	जीता है
प्रजया	संतानोंकरके
पशुभिः	पशुओंकरके
महान्	श्रेष्ठ

भवति=होता है
+च=और
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
वर्षन्तम्=वृष्टि करने वाले मेघकी
न=न
निंदेत्=निंदाकरे
तत्=यह
व्रतम्=उस उपासक का नियम है

भावार्थ ।

जो पुरुष इस वैरूप साम को ऊपर कहे हुये प्रकार मेघ विषे अनुगत जानता है, वह सुरूप कुरूपवाले पशुओं करके युक्त होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उपकार करने योग्य होकर जीता है, संतानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होता है, उसका यह नियम होता है कि कोई मेघ की निंदा न करे ॥ २ ॥
इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

वसंतो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथःशरत्प्रतिहारो हेमंतो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वसंतः, हिंकारः, ग्रीष्मः, प्रस्तावः, वर्षाः, उद्गीथः, शरत्, प्रतिहारः, हेमंतः, निधनम्, एतत्, वैराजम्, ऋतुषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वसंतः	=वसंतऋतु	प्रतिहारः	=प्रतिहार है
हिंकारः	=हिंकार है	हेमंतः	=हेमंतऋतु
ग्रीष्मः	=ग्रीष्मऋतु	निधनम्	=निधन है
प्रस्तावः	=प्रस्ताव है	एतत्	=यह
वर्षाः	=वर्षाऋतु	वैराजम्	=वैराजसाम
उद्गीथः	=उद्गीथ है	ऋतुषु	=ऋतुओं में
शरत्	=शरदृतु	प्रोतम्	=अनुगत है

भावार्थ ।

अब ऋतुओं बिषे सामकी उपासना कही जाती है, यह उपासना वैराज साम करके प्रसिद्ध है, इसको इस प्रकार करै, वसंत ऋतु हिंकार है, ग्रीष्मऋतु प्रस्ताव है, वर्षाऋतु उद्गीथ है, शरदृतु प्रतिहार है, हेमंतऋतु निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्त्तून्न निंदेत्तत् व्रतम् ॥ २ ॥ इति षोडशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, वैराजम्, ऋतुषु, प्रोतम्, वेद, विराजति, प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, ऋतून्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	ज्योक्	उपकार करने में समर्थ होकर
एतत्	इस	जीवति	जीताहै
वैराजम्	वैराज सामको	प्रजया	संतानों करके
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार से	पशुभिः	पशुओं करके
ऋतुषु	ऋतुओं में	महान्	श्रेष्ठ
प्रोतम्	अनुगत	+ भवति	होताहै
वेद	जानता है	+ च	और
सः	वह	कीर्त्या	यश करके
प्रजया	संतानों करके	महान्	श्रेष्ठ
पशुभिः	पशुओं करके	भवति	होता है
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके	ऋतून्	ऋतुओं की
विराजति	सुशोभित होता है	न	न
सर्वम्	पूरे	निंदेत्	निंदा करे
आयुः	आयु को	एतत्	यह
एति	प्राप्त होता है	व्रतम्	नियम उस उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक वैराजसाम को पूर्वोक्त कहेहुये प्रकार अनुगत जानताहै, वह संतानों करके, पशुओं करके, यश करके, ब्रह्मतेज करके सुशोभित होताहै, पूरे आयु को प्राप्त होता है, उपकार करने में समर्थ होता है, उस उपासक का यह नियम है कि ऋतुओं की निंदा न करे ॥ २ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

पृथिवी हिंकारोन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, हिंकारः, अन्तरिक्षम्, प्रस्तावः, द्यौः, उद्गीथः, दिशः, प्रतिहारः, समुद्रः, निधनम्, एताः, शक्वर्यः, लोकेषु, प्रोताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पृथिवी	पृथिवी	प्रतिहारः	प्रतिहार है
हिंकारः	हिंकार है	समुद्रः	समुद्र
अन्तरिक्षम्	आकाश	निधनम्	निधन है
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	एताः	यह
द्यौः	स्वर्ग	शक्वर्यः	शक्करी साम
उद्गीथः	उद्गीथ है	लोकेषु	लोकों में
दिशः	दिशा	प्रोतम्	अनुगत है

भावार्थ ।

पृथिवी हिंकारहै, आकाश प्रस्ताव है, स्वर्ग उद्गीथ है, चारो दिशायें प्रतिहार हैं, समुद्र निधन है, यह उपासना शक्करी सामकी है, यह लोकों विषे अनुगत है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी

भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निंदेत्तद् व्रतम् ॥ २ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एताः, शक्कर्यः, लोकेषु, प्रोताः, वेद, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, लोकान्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एताः	इस
शक्कर्यः	शक्करी सामको
एवम्	ऊपर कहे हुये प्रकार
लोकेषु	लोकों में
प्रोताः	अनुगत
वेद	जानता है
सः	वह
लोकी	लोकोंका स्वामी
भवति	होताहै
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयुको
एति	प्राप्त होताहै
ज्योक्	उपकार के करने में समर्थ होकर
जीवति	जीता है
प्रजया	संतानों करके
पशुभिः	पशुओं करके
महान्	श्रेष्ठ
कीर्त्या	यश करके
महान्	श्रेष्ठ
भवति	होताहै
लोकान्	लोकोंकी
न	न

निंदेत्=निंदाकरे	व्रतम्=नियम शक्करीसाम
तत्=यह	के उपासकका है

भावार्थ ।

जो उपासक इस शक्करी सामको लोकों बिषे अनुगत जानता है, वह लोकोंका स्वामी होताहै, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, लोगोंपर उपकार करने में समर्थ होताहै, संतानों करके, पशुओं करके, यश करके ऐश्वर्यवान् होताहै, उसका यह नियमहै कि लोकों की निंदा न कीजावे ॥ २ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अजा हिंकारोवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अजाः, हिंकारः, अवयः, प्रस्तावः, गावः, उद्गीथः, अश्वाः, प्रतिहारः, पुरुषः, निधनम्, एताः, रेवत्यः, पशुषु, प्रोताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अजाः=बकरे		प्रतिहारः=प्रतिहार हैं	
हिंकारः=हिंकार हैं		पुरुषः=पुरुष	
अवयः=भेंड़ें		निधनम्=निधन है	
प्रस्तावः=प्रस्ताव हैं		एताः=यह	
गावः=गौवें		रेवत्यः=रेवती नामकसाम	
उद्गीथः=उद्गीथ हैं		पशुषु=पशुओं में	
अश्वाः=घोड़े		प्रोताः=अनुगतहैं	

भावार्थ ।

जीवों विषे जो सामकी उपासना कीजाती है वह रेवती नामक सामकी उपासना है, वह इस प्रकार कीजाती है कि बकरे हिंकार हैं, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौवें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं, पुरुष निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या पशून्न निंदेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एताः, रेवत्यः, पशुषु, प्रोताः, वेद, पशुमान्, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, पशून्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एताः	यह	सः	वह
रेवत्यः	रेवती नामक साम	पशुमान्	पशु करके संपन्न
पशुषु	पशुओं में	भवति	होता है
प्रोताः	अनुगत हैं	सर्वम्	पूर्ण
एवम्	इसप्रकार	आयुः	आयुको
यः	जो	एति	प्राप्त होता है
वेद	जानता है		

ज्योक्=उपकार करने में समर्थ होता हुवा
जीवति=जीता है
प्रजया=संतानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
पशून्=पशुओं की
न=न
निंदेत्=निंदा करे
तत्=यह
व्रतम्=नियम रेवती नामक साम के उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक इस रेवतीनामक सामको पशुओं में ऊपर कहे हुये प्रकार अनुगत जानताहै वह पशुओंकरके संपन्न होताहै, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, लोकोंपर उपकार करने में समर्थ होता है, संतानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ कहलाता है, पशुओं की कोई निंदा न करे यह उसका नियम होता है ॥ २ ॥
इत्यष्टादशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थिप्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लोम, हिंकारः, त्वक्, प्रस्तावः, मांसम्, उद्गीथः,

अस्थि, प्रतिहारः, मज्जा, निधनम्, एतत्, यज्ञायज्ञीयम्, अङ्गेषु, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
लोम	रोवां	मज्जा	मज्जा
हिंकारः	हिंकार है	निधनम्	निधन है
त्वक्	त्वचा	एतत्	यह
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	यज्ञायज्ञीयम्	यज्ञायज्ञीय नामका साम
मांसम्	मांस	अङ्गेषु	अंगों में
उद्गीथः	उद्गीथ है	प्रोतम्	अनुगत है
अस्थि	हाड़		
प्रतिहारः	प्रतिहार है		

भावार्थ ।

अंगोंविषे यज्ञायज्ञीय नामक सामकी उपासना अनुगत है, यह शरीरबिषे उपासना इसप्रकार की जातीहै कि रोएं हिंकारहैं, त्वचा प्रस्तावहै, मांस उद्गीथहै, हाड़ प्रतिहारहैं, मज्जा निधनहै ॥१॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्च्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २ ॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, यज्ञायज्ञीयम्, अंगेषु, प्रोतम्, वेद, अङ्गी, भवति, न, अङ्गेन, विहूर्च्छति,

सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, संवत्सरम्, मज्जः, न, अश्नीयात्, तत्, व्रतम्, मज्जः, न, अश्नीयात्, इति, वा ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	ज्योक्	औरोंपर उपकार करताहुवा
एतत्	इस	जीवति	जीता है
यज्ञायज्ञीयम्	यज्ञायज्ञीय नामक साम को	प्रजया	संतानों करके
		पशुभिः	पशुओं करके
अङ्गेषु	अङ्गों में	महान्	श्रेष्ठ
एवम्	कहेहुये प्रकार	भवति	होताहै
प्रोतम्	अनुगत	कीर्त्या	यश करके
वेद	जानता है	महान्	श्रेष्ठ
सः	वह	+ भवति	होता है
अङ्गी	अंगवाला	संवत्सरम्	एक सालतक
भवति	होताहै	मज्जः	मांस
+ च	और	न	न
अङ्गेन	अङ्ग करके	अश्नीयात्	खाय
न	हीन नहीं	इति	ऐसा
विहूर्च्छति	होताहै	तत्	यह
सर्वम्	पूर्ण	व्रतम्	नियम उस उपासक का है
आयुः	आयुको	वा	निश्चय करके
एति	प्राप्त होताहै		

भावार्थ ।

जो उपासक इस यज्ञायज्ञीयनामक सामको अंगोंविषे कहे हुये प्रकार अनुगत जानता है वह अच्छा अंगवाला होता है, याने कोई अंग उसका हीन नहीं होता है, वह पूर्ण आयु को प्राप्त होताहै, औरोंपर उपकार करनेवाला होता है, संतानों करके, पशुओं करके, यश करके श्रेष्ठ होताहै, उसका नियम यह है कि एक सालतक मांस न भक्षण किया जाय ॥ २ ॥

इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः, हिंकारः, वायुः, प्रस्तावः, आदित्यः, उद्गीथः, नक्षत्राणि, प्रतिहारः, चन्द्रमाः, निधनम्, एतत्, राजनम्, देवतासु, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अग्निः	=अग्नि	नक्षत्राणि	=नक्षत्र
हिंकारः	=हिंकार है	प्रतिहारः	=प्रतिहार हैं
वायुः	=वायु	चन्द्रमाः	=चन्द्रमा
प्रस्तावः	=प्रस्ताव है	निधनम्	=निधन है
आदित्यः	=आदित्य	एतत्	=यह
उद्गीथः	=उद्गीथ है		

राजनम्=राजन साम की उपासना	देवतासु=देवताओं में
	प्रोतम्=अनुगत है

भावार्थ ।

राजन सामकी उपासना देवताओं बिषे इस प्रकार करना चाहिये, अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहार हैं, चन्द्रमा निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाᳬं सलोकताᳬं सार्ष्टिताᳬं सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निंदेत् तद्व्रतम् ॥ २ ॥ इति विंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, राजनम्, देवतासु, प्रोतम्, वेद, एतासाम्, एव, देवतानाम्, सलोकताम्, सार्ष्टिताम्, सायुज्यम्, गच्छति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, महान्, प्रजया, पशुभिः, भवति, महान्, कीर्त्या, ब्राह्मणान्, न, निंदेत्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	देवतासु=देवताओं में
एवम्=इस प्रकार	प्रोतम्=अनुगत
एतत्=इस	वेद=जानता है
राजनम्=राजन नामक सामको	सः=वह

एतासाम्=पहिले मन्त्रमें कहेहुये
देवतानाम्=अग्न्यादि देवताओं के
सलोकताम्=लोक को
सार्ष्टिताम्=ऐश्वर्य को
सायुज्यम्=रूप को
गच्छति=प्राप्त होता है
सर्वम्=पूर्ण
आयुः=आयु को
एति=प्राप्त होता है
ज्योक्=उपकार करता हुवा
जीवति=जीता है
प्रजया=संतानों करके
पशुभिः=पशुओं करके
महान्=श्रेष्ठ
कीर्त्या=यश करके
महान्=श्रेष्ठ
भवति=होता है
ब्राह्मणान्=ब्राह्मणों की
न=न
निंदेत्=निंदाकरे
तत्=यह
व्रतम्=नियम उस उपासक का है

भावार्थ ।

जो उपासक इस राजन सामको देवताओं विषे अनुगत जानता है वह पहिले मन्त्रमें कहेहुये अग्नि आदि देवताओं के लोकको, ऐश्वर्यको, रूपको प्राप्त होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होताहै, दूसरे जीवोंपर उपकार करने के योग्य होता है, संतान करके, नौकर चाकर करके, पशुओं करके, यश करके ऐश्वर्यवान् होता है, ऐसे उपासक का यह नियम है कि ब्राह्मणकी निंदा कोई न करे॥ २ ॥ इति विंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाꣳसि

मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निध-नमेतत्साम सर्वस्मिन् प्रोतम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयी, विद्या, हिंकारः, त्रयः, इमे, लोकाः, सः, प्रस्तावः, अग्निः, वायुः, आदित्यः, सः, उद्गीथः, नक्षत्राणि, वयांसि, मरीचयः, सः, प्रतिहारः, सर्पाः, गन्धर्वाः, पितरः, तत्, निधनम्, एतत्, साम, सर्वस्मिन्, प्रोतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्रयी	तीनों	वयांसि	पक्षी
विद्या	वेद	+ च	और
हिंकारः	हिंकार हैं	मरीचयः	किरणहैं
इमे	ये जो	सः	वह
त्रयः	तीनों	प्रतिहारः	प्रतिहार हैं
लोकाः	लोकहैं	सर्पाः	जो सर्प
सः	वह	गन्धर्वाः	गन्धर्व
प्रस्तावः	प्रस्ताव है	+ च	और
अग्निः	जो अग्नि	पितरः	पितर हैं
वायुः	वायु	तत्	वह
+ च	और	निधनम्	निधनहैं
आदित्यः	सूर्य हैं	एतत्	यह
सः	वह	साम	साम
उद्गीथः	उद्गीथ हैं	सर्वस्मिन्	सब में
नक्षत्राणि	जो नक्षत्र	प्रोतम्	अनुगत है

भावार्थ ।

यह साम सबमें अनुगत है, ऐसा अनुभव करके उपासक सामकी उपासना इस प्रकार करे कि जो तीनों वेद हैं वह हिंकार है, जो तीनों लोक हैं वह प्रस्ताव है, जो अग्नि, वायु, सूर्य देवता हैं वह उद्गीथ है, जो नक्षत्र, पक्षी, किरण हैं वह प्रतिहार है, जो सर्प, गन्धर्व, पितर हैं, वह निधन है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳ ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एवम्, एतत्, साम, सर्वस्मिन्, प्रोतम्, वेद, सर्वम्, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	वेद	जानता है
एवम्	इस प्रकार	सः	वह
एतत्	इस	ह	निश्चय करके
साम	सामको	सर्वम्	सर्वेश्वर
सर्वस्मिन्	सर्वत्र	भवति	होताहै
प्रोतम्	अनुगत		

भावार्थ ।

जो उपासक इस सामको कहेहुये प्रकार सर्वत्र अनुगत जानता है वह निश्चय करके सर्वका ईश्वर होता है, याने प्रकृति और प्रकृति के कार्य सब उसके अधीन रहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, यानि, पञ्चधा, त्रीणि, त्रीणि, तेभ्यः, न, ज्यायः, परम्, अन्यत्, अस्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यानि	जो	परम् ज्यायः	श्रेष्ठतर
पञ्चधा	इस खण्ड में पांच पांच हिंकार आदि अंगों सहित	अन्यत्	और पदार्थ
		न	नहीं
		अस्ति	है
त्रीणि त्रीणि	तीन तीन रूप वाले	तत्	इस विषय में
+ सामानि	साम	एषः	यह
प्रोक्तानि	कहे गये हैं	श्लोकः	मन्त्र
तेभ्यः	तिनसे	+ प्रमाणम्	प्रमाण
		+ अस्ति	है

भावार्थ ।

इस खण्ड में साम के जो पांच पांच अंग कहे गये हैं, उन अंगों के नाम ये हैं, हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, निधन, हर एक इनमें से तीन तीन रूपवाले हैं, याने हिंकार तीनों वेदरूप है, प्रस्ताव तीनों लोकरूप है, उद्गीथ तीन देवतारूप है, प्रतिहार तारेगण आदि रूप है, और निधन सर्प गन्धर्वादि

रूप है, ऐसे साम से श्रेष्ठतर और कोई उपासना नहीं है, इस विषे यह मन्त्र प्रमाण है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यस्तद्वेद स वेद सर्वं ँ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतम् तद्व्रतम् ॥ ४ ॥

इत्येकविंशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यः, तत्, वेद, सः, वेद, सर्वम्, सर्वाः, दिशः, बलिम्, अस्मै, हरन्ति, सर्वम्, अस्मि, इति, उपासीत, तत्, व्रतम्, तत्, व्रतम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	बलिम्	=भोग्य वस्तुको
तत्	=इस सर्वात्मक सामको	हरन्ति	=देते हैं
वेद	=जानता है	+ अहम्	=मैंही
सः	=वह	सर्वम्	=सब
सर्वम्	=सबकोयानेहर एक वस्तुको	अस्मि	= हूं
वेद	=जानता है	इति	=इस प्रकार
सर्वाः	=संपूर्ण	उपासीत	=उपासना करे
दिशः	=दिशा	तत्	=यह
अस्मै	=उस उपासक के लिये	व्रतम्	=नियम उस उपासक का है

१-यहां तत् व्रतम्, तत् व्रतम्, दोबार साम उपासना समाप्ति के लिये कहा गया है ॥

भावार्थ ।

जो इस सर्वात्मक सामको जानता है वह सबको जानता है, याने सबका ज्ञाता होताहै, और सब दिशाएं उसको भोग्य वस्तु देते हैं, मैंही सबहूं और मुझसे इतर और कुछ वस्तु नहीं है, ऐसी उपासना करे और यही नियम सदा रक्खे ॥ ४ ॥
इत्येकविंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथो निरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

विनर्दि, साम्नः, वृणे, पशव्यम्, इति, अग्नेः, उद्गीथः, अनिरुक्तः, प्रजापतेः, निरुक्तः, सोमस्य, मृदु, श्लक्ष्णम्, वायोः, श्लक्ष्णम्, बलवत्, इन्द्रस्य, क्रौञ्चम्, बृहस्पतेः, अपध्वान्तम्, वरुणस्य, तान्, सर्वान्, एव, उपसेवेत, वारुणं, तु, एव, वर्जयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो गान		पशव्यम्=पशुका बढ़ाने वाला है	
अग्नेः=अग्निरूपी		तत्=वह	
साम्नः=सामका			

विनर्दि=गौके बछड़े के शब्दके तुल्यहै
+ यत्=जो गान
उद्गीथः=उद्गीथ रूप
प्रजापतेः=ब्रह्माका है
सः=वह
अनिरुक्तः=अनिरुक्तशब्द वाला है
+ यत्= जो गान
निरुक्तः=निरुक्त शब्द वाला है
+ तत्=वह
सोमस्य=चन्द्रमाका है
+ यत्= जो गान
मृदु=कोमल
श्लक्ष्णम्=कर्णमनोहरहै
+ तत्=वह
वायोः=वायुका है
+ यत्=जो गान
श्लक्ष्णम्=प्रिय और
बलवत्=बलवान् याने उच्च स्वरवालाहै
तत्=वह
इन्द्रस्य=इन्द्रका है
यत्=जो गान
क्रौञ्चम्=सारस पक्षी के शब्दकेतुल्यहै
तत्=वह
बृहस्पतेः=बृहस्पतिका है
यत्=जो गान
अपध्वान्तम्=फूटेकांसे के घंटेके शब्द के समान है
तत्=वह
वरुणस्य=वरुणका है
तान्एव=इनही
सर्वान्=सब गानों को
उपसेवेत=उपासना करे
तु=परंतु
वारुणम्=अप्रियशब्द वरुण देवता संबन्धीसाम को
एव=अवश्य
वर्जयेत्=त्यागे
+ एवम् प्रकारम्=ऊपरकहे हुये प्रकार को
वृणे=मैं चाहता हूं

+ इति=ऐसा | + उद्गाता=उद्गाता
+ एकः=एक | + कथयति=कहता है

भावार्थ ।

यदि कोई उद्गाता पशुकी वृद्धिको चाहे तो सामका गान जिसका अधिष्ठाता अग्नि देवता है गौके बछड़े के शब्द के समान स्वर से गावे, जिस सामका अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा है, उसका गान अनिरुक्त स्वरसे उद्गाता करे, याने ऐसे स्वर से करे जिसके तुल्य न किसी जीवका न किसी वस्तुका शब्द हो, जिस सामका अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा है उसका गान उद्गाता निरुक्त स्वर से करे, याने ऐसे स्वर से करे जिसके तुल्य किसी जीव या किसी वस्तुका शब्द न हो, जिस सामका अधिष्ठाता देवता वायु है उसका गान कोमल और कर्णमनोहर स्वरों से करे, जिस सामका अधिष्ठाता देवता इन्द्र है उसका गान प्रिय और उच्चस्वरसे करे, जिस सामका अधिष्ठाता देवता बृहस्पति है, उसका गान सारस पक्षी के शब्द के स्वर से करे, जिस सामका अधिष्ठाता देवता वरुण है और जिसके गानका स्वर कांसे के घंटे के शब्द के समान है, ऐसे वरुणसंबन्धी साम गान का त्याग करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अमृतत्वम्, देवेभ्यः, आगायानि, इति, आगायेत्, स्वधाम्, पितृभ्यः, आशाम्, मनुष्येभ्यः तृणोदकम्,

पशुभ्यः, स्वर्गम्, लोकम्, यजमानाय, अन्नम्, आत्मनः, आगायानि, इति, एतानि, मनसा, ध्यायन्, अप्रमत्तः, स्तुवीत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+इति	नीचे कहे हुये प्रकार	स्वर्गम्	स्वर्ग
आगायेत्	गान करना चाहिये कि	लोकम्	लोकको
देवेभ्यः	देवतों के लिये	आत्मने	अपने लिये
अमृतत्वम्	अमृतको	अन्नम्	अन्नको
आगायानि	गान करूं मैं	आगायानि	गान करूं मैं
पितृभ्यः	पितरों के लिये	इति	इस प्रकार
स्वधाम्	स्वधाको	एतानि	इन बातों को
मनुष्येभ्यः	मनुष्योंकेलिये	मनसा	मनसे
आशाम्	आशाको	ध्यायन्	ध्यान करता हुवा
पशुभ्यः	पशुओंकेलिये	+च	और
तृणोदकम्	तृण और जल को	अप्रमत्तः	स्वर व्यञ्जनादिसेसावधान होता हुवा
यजमानाय	यजमान के लिये	स्तुवीत	स्तुति करे

भावार्थ ।

एक उद्गाता कहता है कि देवताओं के लिये अमृतसंबन्धी साम का गान करूं मैं, पितरों के लिये स्वधासंबन्धी सामका कान करूं मैं, मनुष्यों के लिये आशासंबन्धी सामका गान करूं मैं, पशुओं के लिये तृण और जलसंबन्धी सामका गान करूं मैं,

यजमान के लिये स्वर्गसंबन्धी सामका गान करूं मैं, अपने लिये अन्नसंबन्धी सामका गान करूं मैं, इस प्रकार मनसे ध्यान करता हुवा और स्वर व्यञ्जनादि से सावधान होता हुवा साम का गान करे ॥ २ ॥

मूलम् ।

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳशरणं प्रपन्नोभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वे, स्वराः, इन्द्रस्य, आत्मानः, सर्वे, ऊष्माणः, प्रजापतेः, आत्मानः, सर्वे, स्पर्शाः, मृत्योः, आत्मानः, तम्, यदि, स्वरेषु, उपालभेत, इन्द्रम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, वक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सर्वे	संपूर्ण	ऊष्माणः	ऊष्म अक्षर श, ष, स, ह
स्वराः	अकारादिक स्वर	प्रजापतेः	कश्यप के
इन्द्रस्य	इन्द्रके	आत्मानः	अंग हैं याने कश्यपसे संबन्ध रखने वाले हैं
आत्मानः	अंग हैं अर्थात् उससे संबन्धरखने वाले हैं	सर्वे	सब
सर्वे	सब	स्पर्शाः	व्यञ्जन

मृत्योः=मृत्यु के	एनम्=उससे
आत्मानः=अंग हैं याने मृत्युसेसंबन्ध रखनेवाले हैं	इति=ऐसा
	ब्रूयात्=कहे कि
	+अहम्=मैं
यदि=अगर	इन्द्रम्=इन्द्रके
तम्=उस	शरणम्=शरण को
उद्गातारम्=उद्गाता को	प्रपन्नः=प्राप्त
उपालभेत=अशुद्धउच्चारण करता हुवा कोई पावे तो	अभूवम्=हुवा हूं
	सः=वह
	इन्द्रः=इन्द्र
	त्वा=तेरे
+उपालब्धः=वह दोष लगाया हुवा पुरुष	प्रति=प्रति
	वक्ष्यति=इसका उत्तर देगा

भावार्थ ।

अकारादि स्वर इन्द्र के अंग हैं, याने इन्द्र देवता से संबन्ध रखनेवाले हैं, और ऊष्मवर्ण याने श, ष, स, ह कश्यपऋषि के अंग हैं, याने उससे संबन्ध रखनेवाले हैं, और ककारादि व्यञ्जन मृत्यु के अंग हैं, याने मृत्यु से संबन्ध रखनेवाले हैं, अगर कोई पुरुष किसी उद्गाता को सामके स्वर अक्षर अकारादि विषे अशुद्ध उच्चारण करता हुवा पावे और उससे पूछे क्यों तू अशुद्ध उच्चारण करता है तो दूषित पुरुष उससे कहे कि मैं इन्द्र के शरणको प्राप्त हूं,वह इन्द्र तेरे इस प्रश्नका उत्तर देगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳ शरणं

प्रपन्नोभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्ये-
नᳬंस्पर्शेषूपालभेत मृत्युᳬंशरणं प्रपन्नोभूवं स
त्वा प्रतिधक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, एनम्, ऊष्मसु, उपालभेत, प्रजापतिम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, पेक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात्, अथ, यदि, एनम्, स्पर्शेषु, उपालभेत, मृत्युम्, शरणम्, प्रपन्नः, अभूवम्, सः, त्वा, प्रति, धक्ष्यति, इति, एनम्, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
यदि	अगर कोई
एनम्	उस उद्गाताको
ऊष्मसु	श, ष, स, ह, ऊष्म वर्ण बिषे
उपालभेत	अशुद्धउच्चारण का दोष लगावे तो
एनम्	उससे
+ सः	वह दूषित पुरुष
इति	ऐसा
ब्रूयात्	कहै कि
प्रजापतिम्	कश्यप के
शरणम्	आश्रयको
प्रपन्नः	प्राप्त
अभूवम्	होताभयाहूं मैं
सः	वह कश्यप
त्वा	तेरे
प्रति	को
पेक्ष्यति	चूर्ण करेगा
अथ	फिर
यदि	अगर कोई
एनम्	उस गायक को
स्पर्शेषु	व्यञ्जन अक्षर बिषे

उपालभेत=अशुद्ध उच्चारणकरने का दोष लगावे तो
एनम्=उससे
+सः=वह दूषित पुरुष
इति=ऐसा
ब्रूयात्=कहे कि
मृत्युम्=मृत्यु के
शरणम्=शरणको
प्रपन्नः=प्राप्त
अभूवम्=होताभया हूं मैं
सः=वह मृत्यु
त्वा=तेरे
प्रति=को
धक्ष्यति=भस्म करैगा

भावार्थ ।

अगर कोई पुरुष उस उद्गाता को ऊष्मवर्ण श, ष, स, ह बिषे अशुद्ध उच्चारण करता हुवा पावे और दोष लगावे तो वह दूषित पुरुष उत्तर देवे कि मैं कश्यप ऋषि के शरण को प्राप्त भया हूं, वह तेरे को चूर्ण करेगा, यदि उद्गाता को व्यञ्जन अक्षरों के उच्चारण करने में दोष लगावे, तो दूषित पुरुष उससे कहे कि मैं मृत्यु के शरण को प्राप्त भया हूं, वह तुझको भस्म कर डालेगा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥ इति द्वाविंशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सर्वे, स्वराः, घोषवन्तः, बलवन्तः, वक्तव्याः, इन्द्रे,

बलम्, ददानि, इति, सर्वे, ऊष्माणः, अग्रस्ताः, अनिरस्ताः, विवृताः, वक्तव्याः, प्रजापतेः, आत्मानम्, परिददानि, इति, सर्वे, स्पर्शाः, लेशेन, अनभिनिहिताः, वक्तव्याः, मृत्योः, आत्मानम्, परिहराणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सर्वे	सब
स्वराः	अकारादिक स्वर
बलवन्तः	बलसे
+ च	और
घोषवन्तः	उच्चस्वरसे
वक्तव्याः	कहने योग्य हैं
इन्द्रे	इन्द्र विषे
बलम्	बलको
ददानि	देता हूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	सोच करके
+ प्रयोक्तव्याः	स्वरोंका उच्चारण करना योग्य है
प्रजापतेः	प्रजापतिके निमित्त
आत्मानम्	अपने को
परिददानि	अर्पण करता हूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	ख्याल करके
अग्रस्ताः	नहीं मुखमें भक्षण किये हुये
+ च	और
अनिरस्ताः	नहीं मुखसे बाहर फेंके हुये
सर्वे	सब
ऊष्माणः	ऊष्मअक्षर श, ष, स, ह
विवृताः	भलीप्रकारनिकले हुये
वक्तव्याः	कहने योग्यहैं
मृत्योः	मृत्यु से
आत्मानम्	अपने को
परिहराणि	बचाताहूं मैं
इति	ऐसा
+ ध्यात्वा	ध्यान करके
लेशेन	धीरे धीरे और

अनभिनिहिताः = स्पष्ट उच्चारण करते हुये	स्पर्शाः = ककारादि वर्ण
	वक्तव्याः = कहने योग्य हैं

भावार्थ ।

इन्द्रको बल देता हूं मैं ऐसा सोचकर अकारादि स्वर अक्षरको बलसे और उच्चस्वर से उच्चारण करना चाहिये, प्रजापति के निमित्त मैं अपने को अर्पण करता हूं ऐसा सोचकर नहीं मुखमें भक्षण किये हुये और नहीं मुखसे बाहर फेंके हुये ऊष्म अक्षर श, ष, स, ह का उच्चारण करना योग्य है, मृत्युसे अपने को बचाता हूं मैं ऐसा सोचकर धीरे धीरे और स्पष्ट उच्चारण करते हुये ककारादि अक्षर कहने योग्य हैं ॥ ५ ॥ इति द्वाविंशःखण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनन्दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोमृतत्वमेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, धर्मस्कन्धाः, यज्ञः, अध्ययनम्, दानम्, इति, प्रथमः, तपः, एव, द्वितीयः, ब्रह्मचारी, आचार्यकुलवासी, तृतीयः, अत्यन्तम्, आत्मानम्, आचार्यकुले, अवसादयन्, सर्वे, एते, पुण्यलोकाः, भवन्ति, ब्रह्मसंस्थः, अमृतत्वम्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्रयः	तीन	आत्मानम्	अपने देह को
धर्मस्कन्धाः	धर्म के भाग हैं	अत्यन्तम्	अधिक
प्रथमः	पहिला	अवसादयन्	कष्ट देनेवाला
यज्ञः	यज्ञ	ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी
अध्ययनम्	वेदाध्ययन	एते	ये
दानम्	दान	सर्वे	सब
द्वितीयः	दूसरा	पुण्यलोकाः	पुण्य लोक वाले
तपः	कृच्छ्र चान्द्रायणादि तप	भवन्ति	होते हैं
तृतीयः	तीसरा	परंतु	परंतु
आचार्यकुलवासी	आचार्य के गृह बिषे रहनेवाला	ब्रह्मसंस्थः	ब्रह्मज्ञानी प्रणव का उपासक
आचार्यकुले	आचार्य के गृह बिषे	अमृतत्वम्	मोक्ष को
		एति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

धर्म के तीन भाग हैं, पहिला भाग यज्ञ, वेदाध्ययन, दान है, दूसरा भाग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत है, तीसरा भाग आचार्य के गृह बिषे कष्ट देनेवाले तप करने के लिये ब्रह्मचारी का रहना है, ऊपर कहे हुये तप करनेवाले पुण्यलोक को प्राप्त होते हैं, परंतु ब्रह्म की उपासना करनेवाला मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योभितप्तेभ्यस्त्रयी

विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

प्रजापतिः, लोकान्, अभ्यतपत्, तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, त्रयी, विद्या, संप्रास्रवत्, ताम्, अभ्यतपत्, तस्याः, अभितप्तायाः, एतानि, अक्षराणि, संप्रास्रवन्त, भूः, भुवः, स्वः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	कश्यप ऋषि
लोकान्	लोकों के निमित्त
अभ्यतपत्	विचारकरता भया तब
अभितप्तेभ्यः	संतप्त हुये
तेभ्यः	उन लोकों से
त्रयी	तीन
विद्या	वेद
संप्रास्रवत्	निकलते भये
ताम्	उन तीन वेदों के निमित्त
अभ्यतपत्	विचार करता भया तब
अभितप्तायाः	तपे हुये
तस्याः	उन तीनों वेदों से
भूः	भूः
भुवः	भुवः
स्वः	स्वः
इति	ऐसे
एतानि	ये
अक्षराणि	अक्षर
संप्रास्रवन्त	उत्पन्न होते भये

भावार्थ ।

प्रजापति लोकोंके निमित्त चिन्तन करता भया, उस चिन्तन

करने से तीनलोक उत्पन्न होते भये, उन लोकों से इस प्रकार चिन्तन कियेहुये तीन वेद प्रकट होते भये, उनके चिन्तन करनेसे भूः, भुवः, स्वः ये अक्षर निकलते भये ॥ २ ॥

मूलम् ।

तान्यभ्यतपत्तेभ्योभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदꣳसर्वमोंकार एवेदꣳ सर्वम् ॥ ३ ॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तानि, अभ्यतपत्, तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, ॐकारः, संप्रास्रवत्, तत्, यथा, शङ्कुना, सर्वाणि, पर्णानि, संतृण्णानि, एवम्, ॐकारेण, सर्वा, वाक्, संतृण्णा, ॐकारः, एव, इदम्, सर्वम्, ॐकारः, एव, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि	उन अक्षरोंको	संप्रास्रवत्	उत्पन्न होता भया
अभ्यतपत्	अनुभवकरता भया तब	तत्	सोई
अभितप्तेभ्यः	तपे हुये	ब्रह्म	ब्रह्म है
तेभ्यः	उन अक्षरोंसे	यथा	जैसे
ॐकारः	प्रणव	शंकुना	डंठे से

१-यहांपर "इदम् सर्वम्" "इदम् सर्वम्" इसका दोबार पढ़ना प्रणव के समाप्त्यर्थ और आदरार्थ है ॥

सर्वाणि=सब
पर्णानि=पत्ते
संतृण्णानि=लगे रहते हैं
एवम्=इसी प्रकार
ॐकारेण=ॐकार से
सर्वा=सब
वाक्=वाक्
संतृण्णा=व्याप्त है याने उसके आश्रय है
तस्मात्=इसलिये
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत्
ॐकारःएव=ॐकार रूपही है

भावार्थ ।

फिर उन तीन अक्षरों विषे चिन्तन करता भया, तिन चिन्तन किये अक्षरों से प्रणव उत्पन्न होता भया, सोई ब्रह्म है, जैसे डंठेके आसरे सब पत्ते लगे रहते हैं, इसी प्रकार ॐकारके आसरे सब वाणी व्याप्त हैं, याने उसके आसरे सब वाणी हैं और वाणीके आश्रय विषय हैं, इसलिये यह सब जगत् ॐकाररूपही है ॥३॥
इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशःखण्डः ॥

मूलम् ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनꣳ रुद्राणां माध्यंदिनꣳ सवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मवादिनः, वदन्ति, यत्, वसूनाम्, प्रातः, सवनम्, रुद्राणाम्, माध्यंदिनम्, सवनम्, आदित्यानाम्, च, विश्वेषाम्, च, देवानाम्, तृतीयसवनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो	+यत्	जो
प्रातः-सवनम्	सुबहका हव्य है	आदित्या-नाम्	आदित्योंका
तत्	वह	च	और
वसूनाम्	वसुओं का है	विश्वेषां देवानाम्	विश्वेदेवोंकाहै
+यत्	जो	तत्	वह
माध्यं-दिनम्	दोपहर का	तृतीय-सवनम्	तीसराहव्य है
सवनम्	हव्य है	ब्रह्मवादिनः	ब्रह्मवादी
तत्	वह	इति	ऐसा
रुद्राणाम्	रुद्रोंका है	वदन्ति	कहते हैं
च	और		

भावार्थ ।

पहिले सामके संबन्ध में कर्मकी प्रतिष्ठाकी गई, फिर ॐकार की की गई, अब हवन और मन्त्रकी की जातीहै, ब्रह्मवादी कहते हैं, प्रातःकालका हव्य वसुओं के निमित्त है, दोपहर का हव्य रुद्रों के निमित है, और तीसरा हव्य सायंकाल का आदित्य और विश्वेदेवों का है, अर्थात् भूःलोक वसुओं के आधीन है, और वे वसु प्रातःकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं, भुवःलोक रुद्रों के आधीन है, और वे मध्याह्नकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं, और स्वःलोक आदित्य और विशेदेवों के आधीन है, और वे सायंकाल के हव्यभाग के अधिकारी हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

क तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

क्व, तर्हि, यजमानस्य, लोकः, इति, सः, यः, तम्, न, विद्यात्, कथम्, कुर्यात्, अथ, विद्वान्, कुर्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तर्हि	देहपात के पश्चात्	न	न
यजमानस्य	यजमान को	विद्यात्	जाने
लोकः	यज्ञफलरूप लोक	+तदा	तब यज्ञ
क्व	कहां है	कथम्	कैसे
यः	जो	कुर्यात्	करै
सः	वह यज्ञकर्ता	+तदा	तब
तम्	उसको	अथ	आगे कहे हुये उपाय को
इति	ऐसा	विद्वान्	जान करके
		कुर्यात्	यज्ञ करै

भावार्थ ।

जब तीनों लोक ऊपर कहे हुये प्रकार देवताओं के होचुके तब देहत्याग के पश्चात् यज्ञकर्ता का लोक कहां है, यदि यज्ञकर्त्ता अपने यज्ञ करके उत्पन्न हुये लोक को न जाने तब वह यज्ञको क्यों करै, इसके उत्तर में कहते हैं कि आगे कहे हुये उपाय को जान करके यज्ञ करै ॥ २ ॥

मूलम् ।

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳ सामाभिगायति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

पुरा, प्रातः, अनुवाकस्य, उपाकरणात्, जघनेन, गार्हपत्यस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, वासवम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः पदार्थ

प्रातः=प्रातःकाल
अनुवाकस्य=शस्त्रस्तोत्रके
उपाकरणात्=प्रारंभ से
पुरा=पहिले
+च=और
गार्हपत्यस्य=गार्हपत्य अग्नि के
जघनेन=पीछे

अन्वयः पदार्थ

उदङ्मुखः=उत्तरमुख होता हुआ
सः=वह यजमान
उपविश्य=बैठ करके
वासवम्=वसु देवता वाले
साम=साम का
अभिगायति=गान करै

भावार्थ ।

प्रातःकाल शस्त्रस्तोत्र के आरंभ से पहिले और गार्हपत्य अग्नि के पीछे उत्तरमुख होकर वसुदेवतावाले साम का गान करै ॥ ३ ॥

मूलम् ।

लोकद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ रा ३३३३३ हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, राज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ हे	हे	+ तेन	उस द्वार करके
+ अग्ने	अग्निदेव	त्वा	तुझ को
लोकद्वारम्	पृथ्वी लोक के द्वार को	राज्याय	राज्यप्राप्ति के लिये
अपावृणु	खोल दे	वयम्	हम
इति	ताकि	पश्येम	देखें

भावार्थ ।

हे अग्निदेव ! पृथिवी लोक के द्वार को मेरे लिये खोलदे ताकि मैं तुझ को देखूं और ऐश्वर्य को प्राप्त होऊँ ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, अग्नये, पृथिवीक्षिते, लोकक्षिते, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्द, एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरांत	पृथ्वीक्षिते	पृथ्वीलोकवासी
+ यजमानः	यजमान	अग्नये	अग्निके लिये
जुहोति	हव्य अग्नि को दे	नमः	मेरा नमस्कार है
+ एवमुक्त्वा	ऐसा कहता हुवा कि	लोकक्षिते	सर्वलोकवासी अग्निके लिये
		नमः	मेरा नमस्कार है

यजमानायमे=मुझयज्ञकर्ता के लिये	यत्=जो
लोकम्=लोक	एषः=यह
विन्द=दे तू	लोकः=लोक है
मे=मुझ	तम्=उसको
यजमानस्य=यजमानका	एता=प्राप्तहोनेवाला
वै=निश्चय करके	अस्मि=होऊं मैं

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुये प्रकार कहकर यजमान हव्य अग्नि में देता है, ऐसा कहता हुवा कि हे पृथ्वीलोकवासी अग्नि! तेरे लिये मेरा नमस्कार है, मुझ यज्ञकर्ता के लिये तू लोक दे, ताकि तुझ करके दिये हुये उस लोकको मैं प्राप्त होऊं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अत्र, यजमानः, परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अपजहि, परिघम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति, तस्मै, वसवः, प्रातःसवनम्, संप्रयच्छन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अत्र=इसपृथ्वीलोक को	मजमानः=यजमान
+अहम्=मैं	आयुषः=जीवनके
	परस्तात्=बाद

एष्यामि=जाऊंगा	उत्तिष्ठति=खड़ाहोजाताहै
अग्ने=हे अग्निदेव	ततः=तिसके पीछे
परिघम्=लोकके द्वारकी सिकड़ी को	वसवः=वसुदेवतालोग
अपजहि=खोल दे	तस्मै=उस
+ च=और	यजमानाय=यजमान के लिये
स्वाहा=यह हव्य ले	प्रातः-सवनम्=प्रातःकाल यज्ञसंबन्धी फल को
इति=ऐसा	
उक्त्वा=कहकर	
+ सः=वह यजमान	संप्रयच्छन्ति=देते हैं

भावार्थ ।

यजमान का ऐसा निश्चय होता है कि बाद शरीर त्यागने के मैं इस भूलोकको प्राप्त हूंगा, इसलिये वह अग्निदेवता से कहता है कि हे अग्निदेव ! मेरे लिये इस लोक के द्वारकी सिकड़ी को खोल दे, इस मेरे दियेहुये हव्यको ले, ऐसा कहकर वह हव्यको देता है, और फिर खड़ा होजाता है, जब वह मृत्युको प्राप्त होजाता है तब वसुदेवता लोग उसको उसके प्रातःकाल के यज्ञके फलको देते हैं, याने उसको भूलोक प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

पुरा माध्यंदिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳसामाभिगायति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

पुरा, माध्यंदिनस्य, सवनस्य, उपाकरणात्, जघ-

नेन, आग्नीध्रीयस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, रौद्रम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
माध्यंदिनस्य	दोपहर के
सवनस्य	यज्ञ के
उपाकरणात्	आरंभ से
पुरा	पहिले
+च	और
आग्नीध्रीयस्य	दक्षिणाग्निके
जघनेन	पीछे
उदङ्मुखः	उत्तरमुख होता हुवा
सः	वह यजमान
उपविश्य	बैठकर
रौद्रम्	रुद्र देवता संबन्धी
साम	साम को
अभिगायति	गान करता है

भावार्थ ।

दोपहर के यज्ञ के आरंभ से पहिले और दक्षिणाग्नि के पीछे बैठकर उत्तरमुख होता हुवा यजमान रुद्रदेवता संबन्धी साम का गान करता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वयं वैरा ३३३३३ हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, वैराज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+अग्ने	हे अग्ने	वयम्	हम
लोकद्वारम्	अन्तरिक्षलोक के द्वार को	वैराज्याय	अन्तरिक्षलोक के लिये
अपावृणु	खोल दे	त्वा	तुझ को
इति	ताकि	पश्येम	देखें

भावार्थ ।

गान करने के पश्चात् अग्निदेवता से प्रार्थना करता है, कि हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक के द्वार को मेरे लिये खोल दे, ताकि हम अन्तरिक्षलोक के पाने के लिये आपका दर्शन करें, याने आपके दर्शन से हमको अन्तरिक्षलोक मिले ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नमो वायवेन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, वायवे, अन्तरिक्षक्षिते, लोकक्षिते, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्द, एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि, ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इस के पीछे	अन्तरिक्षक्षिते	अन्तरिक्ष लोकवासी
जुहोति	हव्य अग्नि देवको देताहै	+च	और

लोकक्षिते=पृथ्वीलोक वासी
वायवे=वायुदेव के लिये
+मे=मेरा
नमः=नमस्कारहै
मे=मुझ
यजमानाय=यजमान के लिये
लोकम्=अन्तरिक्ष लोक
विन्द=दे तू
वै=निश्चय करके
मे=मुझ
यजमानस्य=यजमान का
एषः=जो यह
लोकः=अन्तरिक्ष लोक है
+तम्=उसको
एता=प्राप्त
अस्मि=होऊं मैं

भावार्थ ।

ऊपर कहे हुये प्रकार कह कर वह यजमान हव्य अग्नि-देवता को देता है यह कहता हुवा कि हेअन्तरिक्षलोकवासी, और हे पृथिवीलोकवासी वायुदेव ! तेरे लिये मेरा नमस्कार है, तू मुझ यजमान के लिये अन्तरिक्षलोक दे, तुझ करके दिये हुये अतरिक्षलोक को मैं प्राप्त हूंगा और अग्नि में हव्य डालते हुये "नमो वायवे स्वाहा" इस मंत्र को पढ़ता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यंदिनꣳ सवनꣳसंप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अत्र, यजमानः, परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अप-

जहि, परिघम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति, तस्मै, रुद्राः, माध्यंदिनम्, सवनम्, संप्रयच्छन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अत्र	इस अन्तरिक्ष लोक को	इति	ऐसा
यजमानः	यजमान	उक्त्वा	कह कर
आयुषः	जीवन के	सः	वह यजमान
परस्तात्	पश्चात्	उत्तिष्ठति	उठखड़ा होता है
+एति	प्राप्त होता है	ततः	तिसके पीछे
तस्मात्	इसलिये	तस्मै	उस यजमान के लिये
रुद्राः	हे रुद्रदेवतो	रुद्राः	रुद्रदेवता
परिघम्	अन्तरिक्ष लोक के द्वार कीसिकड़ीको	माध्यंदिनम्	मध्याह्नकालके
अपजहि	खोल दे	सवनम्	यज्ञके फलको
स्वाहा	इस हव्यको ले	संप्रयच्छति	देते हैं

भावार्थ ।

यज्ञकर्ता अन्तरिक्षलोक को मरने के पश्चात् प्राप्त होता है इसलिये हे रुद्रदेवताओ ! मुझ यज्ञकर्ता के लिये अन्तरिक्षलोक के द्वार की सिकड़ी को खोल दे, और इस मुझ करके दिये हुये हव्य को ले, ऐसा कह करके वह यजमान उठकर खड़ा होजाता है, और जब उसका शरीरपात होजाता है, तब वे रुद्र-देवता उस यज्ञकर्त्ता को मध्याह्नकाल के यज्ञ के फल को देते हैं ॥ १० ॥

मूलम् ।

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳ स वैश्वदेवꣳसामाभिगायति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

पुरा, तृतीयसवनस्य, उपाकरणात्, जघनेन, आहवनीयस्य, उदङ्मुखः, उपविश्य, सः, आदित्यम्, सः, वैश्वदेवम्, साम, अभिगायति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तृतीयसवनस्य	सायंकाल के यज्ञ के
उपाकरणात्	आरंभ से
पुरा	पहिले
+च	और
आहवनीयस्य	आहवनीय अग्नि के
जघनेन	पीछे
उदङ्मुख	उत्तराभिमुख होता हुवा
सः	वह यजमान

अन्वयः	पदार्थ
आदित्यम् साम	आदित्यदेव संबन्धी साम को
अभिगायति	गान करता है
च	और
सः	वही यजमान
वैश्वदेवं +साम	विश्वेदेव संबन्धी सामको भी
अभिगायति	गान करता है

भावार्थ ।

सायंकाल के यज्ञ के आरंभ से पहिले और आहवनीय अग्नि

के पीछे यज्ञशाला में बैठकर यजमान आदित्यदेवता संबन्धी और विश्वेदेवदेवता सबन्धी साम का गान करता है ॥ ११ ॥

मूलम् ।

लोकद्वारमपावार्णू पश्येम त्वा वयꣳ स्वाराहुम् आज्यायो आ इति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, स्वाराज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+अग्ने	हे अग्निदेव
लोकद्वारम्	स्वर्ग के द्वार को
अपावृणु	खोल दे
इति	ताकि

अन्वयः	पदार्थ
वयम्	हम
स्वाराज्याय	स्वर्गराज्य की प्राप्तिके लिये
त्वा	तुझ को
पश्येम	देखें

भावार्थ ।

यह कहता हुवा कि हे अग्निदेव ! स्वर्ग के द्वार को मेरे लिये खोल दे ताकि हम स्वर्गराज्य की प्राप्ति के लिये तेरा दर्शन करें, याने तेरे दर्शन से हमको स्वर्गराज्य की प्राप्ति होवै ॥ १२ ॥

मूलम् ।

आदित्यमथ वैश्वदेवं लोकद्वारपावार्णू पश्येम त्वा वयꣳ साम्राहुम् आज्यायो आ इति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यम्, अथ, वैश्वदेवम्, लोकद्वारम्, अपावृणु, पश्येम, त्वा, वयम्, साम्राज्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
आदित्यम्	आदित्य संबन्धी
+साम	साम को
+अभिगायति	गान करता है
अथ	और
वैश्वदेवम्	विश्वेदेवसंबन्धी सामको
+अभिगायति	गानकरताहै
च	और
+प्रार्थयते	प्रार्थना भी करता है कि
+अग्ने	हे अग्नि तू

अन्वयः	पदार्थ
लोकद्वारम्	सूर्य और विश्वेदेव के लोक के द्वार को
अपावृणु	खोल दे
इति	ताकि
वयम्	हम
साम्राज्याय	चक्रवर्त्ती राज्य मिलने के लिये
त्वा	तुझ को
पश्येम	देखें

भावार्थ ।

फिर आदित्यदेवसंबन्धी और विश्वेदेवसंबन्धी साम का गान करता है, और प्रार्थना करता है कि हे अग्ने ! तू सूर्य और विश्वेदेवलोक के द्वार को खोल दे ताकि हम तेरा दर्शन चक्रवर्त्ती राज्य पाने के लिये करें ॥ १३ ॥

मूलम् ।

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, जुहोति, नमः, आदित्येभ्यः, च, विश्वेभ्यः, च, देवेभ्यः, दिविक्षिद्भ्यः, लोकक्षिद्भ्यः, लोकम्, मे, यजमानाय, विन्दत ॥

अन्वयः — पदार्थ

अथ=अब
आदित्येभ्यः=आदित्यों के लिये
विश्वेभ्यः देवेभ्यः=विश्वेदेवों के लिये
च=और
लोकक्षिद्भ्यः=और लोकवासियों के लिये
मे=मेरा
नमः=नमस्कार है
इतिउक्त्वा=ऐसा कहकर
सः=वह यजमान
जुहोति=होम करता है
+च=और
+प्रार्थयते=प्रार्थना करता है कि
मे=मुझ
यजमानाय=यजमान के लिये
लोकम्=लोकोंको
विन्दत=देवो तुम सब

भावार्थ ।

यजमान हव्य अग्नि में देकर कहता है कि आदित्यों के लिये, विश्वेदेवोंके लिये, अन्तरिक्षवासी देवताओं के लिये, और और लोकवासी देवताओं के लिये मेरा नमस्कार है, ऐसा कह कर वह यजमान होम करके प्रार्थना करता है कि हे तुम सब देवताओ ! मुझ यजमान के इच्छित लोक को देव ॥ १४ ॥

मूलम् ।

एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यज-

मानः परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वो-त्तिष्ठति ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, वै, यजमानस्य, लोकः, एता, अस्मि, अत्र, यजमानः, परस्तात्, आयुषः, स्वाहा, अपहत, परि-घम्, इति, उक्त्वा, उत्तिष्ठति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वै	निश्चय करके	+ देवाः	हे अग्नि आदि देवतो
एषः	यह	परिघम्	लोक द्वारकी सिकड़ी को
लोकः	लोक	अपहत	खोल दे
यजमानस्य	यजमान का है	स्वाहा	ऐसा कहकर यजमानहवि देता है
+तम्	उसको	च	और
एता	प्राप्त	उत्तिष्ठति	उठ खड़ा होता है
अस्मि	होऊं मैं		
अत्र	इस लोक को		
आयुषः	जीवन के		
परस्तात्	पीछे		
यजमानः	यज्ञकर्त्ता		
+एति	प्राप्त होता है		

भावार्थ ।

यह भूलोक यज्ञकर्त्ता का है, यज्ञकर्त्ता बाद शरीर त्यागने के इस लोक को प्राप्त होता है, इसलिये मैं भी इस लोक को प्राप्त होऊं, हे अग्नि आदि देवताओ ! इस लोक के द्वार की सिकड़ी को खोलदेव, यह कहकर वह यजमान अग्नि में हव्य देता है, और फिर खड़ा होजाता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

तस्मा आदित्याश्च विश्वेदेवास्तृतीयसवनꣳसंप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, आदित्याः, च, विश्वेदेवाः, तृतीयसवनम्, संप्रयच्छन्ति, एषः, ह, वै, यज्ञस्य, मात्राम्, वेद, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषः	यह जो यजमान	आदित्याः	आदित्यदेवता
यज्ञस्य	यज्ञके	च	और
मात्राम्	यथार्थस्वरूप को	विश्वेदेवाः	विश्वदेवदेवता लोग
ह वै	निश्चयपूर्वक	तृतीयसवनम्	सायंकाल के यज्ञफलको
वेद	जानता है	संप्रयच्छन्ति	देते हैं
तस्मै	उस यजमान के लिये		

भावार्थ ।

जो यजमान इस यज्ञ के यथार्थस्वरूपको भलीप्रकार जानता है, उस यजमान के लिये आदित्यदेवता और विश्वेदेव देवता सायंकाल के यज्ञके फलको देते हैं, याने जो लोक सायंकाल के यज्ञ के करने से मिलता है, उस लोकको वे देवता उसको प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः ॥

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ॥
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हुताशनः ॥ १ ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

ॐ । असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

असौ, वै, आदित्यः, देवमधु, तस्य, द्यौः, एव, तीरश्चीनवंशः, अन्तरिक्षम्, अपूपः, मरीचयः, पुत्राः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
असौ	यह प्रत्यक्ष	तिरश्चीनवंशः	तिर्छी धन्नी है
आदित्यः	सूर्य	+च	और
वै	निश्चयकरके	अन्तरिक्षम्	आकाश
देवमधु	देवताओं का मधु है	तस्य	उस का
तस्य	उसकी	अपूपः	छत्ता है
द्यौः	स्वर्ग	मरीचयः	किरण
एव	निश्चयकरके	पुत्राः	उस मधु के पुत्र हैं

भावार्थ ।

सूर्य निश्चय करके देवताओं का मधु है, जैसे मधु से आनन्द मिलता है, वैसे ही सूर्य की उपासना से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि यज्ञ में कर्म करके जो फल होता है वह सब जाकरके सूर्य बिषे स्थित रहता है, यही कारण है कि वह बड़े प्रकाश से चमकता है, और सबको प्रकाश देता है, इस सूर्य के ध्यान करने से ध्यान करता को सब प्रकार का फल मिलता है, ऐसे मधु का छत्ता आकाश है, और स्वर्ग उसकी

धन्नी है, और छत्ता के छोटे छोटे छिद्र पुत्र की तरह सूर्य के किरण हैं, याने जैसे छोटे छोटे छिद्रों में मधु रहता है, वैसे ही सूर्य के किरणों में आनन्द के देनेवाले यश, तेज आदि रस भरे रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाडयः । ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ये, प्राञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, प्राच्यः, मधुनाडयः, ऋचः, एव, मधुकृतः, ऋग्वेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः, ताः, वै, एताः, ऋचः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्य	तिस सूर्य के	मधुकृतः	मधु का पैदा करने वाली मधुमक्खी है
प्राञ्चः	पूर्व तरफवाले	+च	और
रश्मयः	मधु के छत्ते के छिद्र हैं याने मधु के उत्पत्ति के स्थान हैं	ऋग्वेदः	ऋग्वेद के कर्म
च	और	एव	ही
ऋचः	ऋग्वेद के मन्त्र	पुष्पम्	पुष्प हैं
एव	ही	+च	और

ताः= { वे ऋचाएं जिन करके अग्नि में हव्य दियाजाता है

अमृताः=अमृतरूप

आपः=जल हैं

ताः=वे

ऋचः=ऋग्वेद के मन्त्र

एताः=ऊपर कहेहुये मधुमक्खी हैं

भावार्थ ।

सूर्य के पूर्ववाले किरण मधुछत्ते के छिद्र के समान हैं, याने मधु के उत्पत्ति के स्थान हैं, और ऋग्वेद के मन्त्र ही मधुमक्खी हैं, ऋग्वेद के कर्म ही पुष्प हैं, इन ऋग्वेद के कर्मों करके अग्नि में हव्य डालने से जो रस उत्पन्न होता है वह अमृतरूप जल है, जैसे मधुमक्खी पुष्पों से रस लाकर मधु बनाती है, तैसे ही ऋग्वेदके मन्त्र कर्म करके अग्निमें हव्य देनेसे मधु बनाते हैं ॥२॥

मूलम् ।

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोजायत ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, ऋग्वेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत॥

अन्वयः पदार्थ अन्वयः पदार्थ

एतम्=इस

ऋग्वेदम्= { ऋग्वेद में कहे हुये यज्ञ कर्मरूपी पुष्प को

ऋचः=वेद के मन्त्र

अभ्यतपन्= { तपाते भये याने ध्यान करते भये

तस्य=तिस

अभितप्तस्य=ध्यान किये हुये ऋग्वेद यज्ञकर्मरूपी पुष्प के	इन्द्रियम्=इन्द्रियशक्ति
	वीर्यम्=बल
	+च=और
रसः=रस याने सार वस्तु	अन्नाद्यम्=अन्नादिक शरीरके पुष्ट करने वाले पदार्थ
यशः=नेकनामी	
तेजः=कान्ति	अजायत=उत्पन्न भये

भावार्थ ।

ऋग्वेद में कहे हुये यज्ञकर्मरूपी पुष्प को वेद के मन्त्र तपाते भये याने उन कर्मरूपी पुष्पों का ध्यान करते भये, तिस ध्यान किये हुये यज्ञकर्मरूपी पुष्प से यश, कान्ति, इन्द्रियशक्ति, बल और अन्नादिक शरीर के पुष्ट करनेवाले पदार्थ उत्पन्न होते भये ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितं रूपम् ॥ ४ ॥ इति प्रथमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, रोहितम्, रूपम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	यश आदि	तत्	वही निकला हुआ सारवस्तु
व्यक्षरत्	निकलता भया		

आदित्यम्=सूर्य के	एतत्=यह
अभितः=पूर्व भाग को	आदित्यस्य=सूर्य का
अश्रयत्=आश्रय करता भया याने उसमें प्रवेश करता भया	रोहितम्=लाल
	रूपम्=रूप है
	तत्=वही
+च=और	एतत्=यह सार वस्तु
यत्=जो	यश आदि हैं

भावार्थ ।

यज्ञ में कर्म करने से जो यश आदि निकलते भये, वह सूर्य के पूर्व भागको आश्रय करते भये, याने उसमें प्रवेश करके स्थित होगये, और इसी कारण जो सूर्यका लाल रूप दिखलाई देता है, वह यज्ञविषे कर्मों के फल, यश, कान्ति आदि हैं ॥ ४ ॥
इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, दक्षिणाः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, मधुनाडयः, यजूंषि, एव, मधुकृतः, यजुर्वेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	यजूंषि एव	यजुर्वेदके मन्त्र ही
अस्य	इस	मधुकृतः	मधुमक्षिका हैं
+देवमधुनः	देवमधु याने सूर्य के	यजुर्वेदःएव	यजुर्वेदही
दक्षिणाः	दक्षिणवाले	पुष्पम्	रस का देनेवाला पुष्प है
ये	जो	ताः	जो हव्य ऋचा करकेयज्ञकर्ममें दियाजाताहै वे
रश्मयः	किरण हैं	अमृताः	अति स्वादिष्ठ
ताः एव	वे	आपः	जल हैं
अस्य	इसके		
दक्षिणाः	दक्षिण तरफ़के		
मधुनाडयः	मधुछिद्र हैं		

भावार्थ ।

सूर्य के दक्षिणवाले जो किरण हैं वे सूर्य के दक्षिण तरफ़ वाले मधु निकलनेवाले छिद्र हैं, और यजुर्वेद के जो मन्त्र हैं वे मधुमक्षिका हैं, और संपूर्ण यजुर्वेद रसका देनेवाला पुष्प है, और जो हव्य यजुर्वेद के मन्त्रों करके यज्ञकर्म में दिये जाते हैं वे स्वादिष्ठ अमृतरूप जल हैं, अभिप्राय इस मन्त्र का यह है कि जो हव्य यज्ञकर्म में यजुर्वेद के मन्त्रों करके दिया जाता है उसका रस धूम होकर सूर्य के बिषे पहुँच कर मधुरूप से जमा होता है, जो सूर्य की उपासना करता है, वह सूर्य उसको वह मधु देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि वा एतानि यजूंꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳ-

स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, वै, एतानि, यजूंषि, एतम्, यजुर्वेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि	वे	अभितप्तस्य	तपाये हुये यजुर्वेदरूपी पुष्प का
एव	ही	यशः	शुभ कीर्ति
एतानि	ये	तेजः	प्रताप
यजूंषि	यजुर्वेद की ऋचाएँ	इन्द्रियम्	बल
एतम्	इस रस देने वाले पुष्परूपी	वीर्यम्	तेज
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद को	अन्नाद्यम्	महत्त्वरूप
अभ्यतपन्	ध्यान करके तपाते भये	रसः	रस
तस्य	तिस	अजायत	प्रत्यक्ष होता भया

भावार्थ ।

यजुर्वेद की ऋचाएँ यजुर्वेदरूपी पुष्प को तपाती भई, तिस तपे हुये पुष्प से शुभकीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज, महत्त्वरूप रस निकलता भया, यही रस सूर्य द्वारा उपासक को उपासना के प्रभाव से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लं रूपम् ॥ ३ ॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, शुक्लम्, रूपम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्=	वह यश आदिक रस
व्यक्षरत्=	बहता भया
तत्=	सो वह बहा हुवा रस
आदित्यम्=	आदित्य के
अभितः=	चारों तरफ़
अश्रयत्=	आश्रय करता भया
+तस्मात्=	इस लिये
यत्=	जो
एतत्=	यह
आदित्यस्य=	सूर्य का
शुक्लम्=	श्वेत
रूपम्=	प्रभा है
तत् वै=	सोई
एतत्=	यह यश आदिक
रसः=	रस हैं

भावार्थ ।

यह यश आदिकरूपी रस जो सूर्य में जमा था, सूर्य से निकल कर सूर्य के चारों तरफ़ आश्रय करता भया, इसलिये जो सूर्य में श्वेतप्रभा है सोई यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाडयः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पम् ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, प्रत्यञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, प्रतीच्यः,मधुनाडयः, सामानि, एव, मधुकृतः, सामवेदः, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अस्य	इस सूर्य के
ये	जो
प्रत्यञ्चः	पश्चिम तरफ़के
रश्मयः	किरण हैं
ताः	वे
एव	ही
अस्य	इस देवमधुयाने सूर्य के
प्रतीच्यः	पश्चिम तरफ़के
मधुनाडयः	मधु निकलने के छिद्र हैं
सामानि	सामकीऋचाएँ
एव	ही
मधुकृतः	मधुमक्षिका हैं
+च	और
सामवेदः	सामवेदमें कहा हुवा कर्म
एव	ही
पुष्पम्	रस के देनेवाले पुष्प हैं
ताः	जो हव्य मन्त्रोंकरके अग्निमें दिये जाने से रस होता है वही
अमृताः	अतिउम स्वादिष्ठ
आपः	जल हैं

भावार्थ ।

सूर्यके पश्चिम तरफ़वाले जो किरण हैं, वे सूर्य के पश्चिम तरफ़ के मधु निकलने के छिद्र हैं, और सामवेद की जो ऋचाएँ हैं, वे मधुमक्षिका हैं, और जो सामवेद में कहे हुये कर्म हैं, वे रसके देनेवाले पुष्प हैं, जो हव्य मन्त्र करके अग्नि में दिये जाते हैं, वही अतिउत्तम स्वादिष्ठ अमृतरूपी जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि वा एतानि सामान्येतꣳसामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, वै, एतानि, सामानि, एतम्, सामवेदम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि वै	वे ही	अभितप्तस्य	ध्यानकिये हुये सामवेदका
एतानि	ये	रसः	रसरूप
सामानि	सामवेद की ऋचाएँ	यशः	शुभकीर्त्ति
एतम्	इस	तेजः	प्रताप
सामवेदम्	सामवेदको	इन्द्रियम्	बल
अभ्यतपन्	ध्यानकरके तपाती भई	वीर्यम्	तेज
तस्य	तिस	अन्नाद्यम्	महत्त्व
		अजायत	होता भया

भावार्थ ।

वे सामवेद की ऋचाएँ सामवेद में कहे हुये कर्मरूपी पुष्प को ध्यानकरके तपाती भईं, तिस तपे हुये पुष्प से रसरूप शुभ कीर्त्ति, प्रताप, बल, तेज, महत्त्व उत्पन्न होता भया, सोई सूर्यद्वारा उपासक को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳरूपम् ॥ ३ ॥ इति तृतीयःखण्डः॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, कृष्णम्, रूपम् ॥

अन्वयः पदार्थ

तत्=वह यश आदिक रूप रस
व्यक्षरत्=बहता भया
तत्=सोई बहा हुआ रस
आदित्यम्=सूर्य के
अभितः=चारों तरफ़
अश्रयत्=आश्रय करता भया
+तस्मात्=इसलिये
यत्=जो
एतत्=यह
आदित्यस्य=सूर्यका
कृष्णम्=कृष्णवर्ण
रूपम्=प्रभा है
तत् वै=सोई यश आदिक
एतत्=यह
रसः=रस है

भावार्थ ।

वह यश आदिक रस जो सूर्यमें जमा थे, वह सूर्य से बह निकले, सोई सूर्यके चारों तरफ़ स्थित होते भये, इसलिये जो यह सूर्यकी कृष्णवर्ण प्रभा है, सोई ऊपर कहे हुये प्रकार यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, उदञ्चः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, उदीच्यः, मधुनाडयः, अथर्वाङ्गिरसः, एव, मधुकृतः, इतिहासपुराणम्, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=	तृतीय मधु कथनके पीछे चतुर्थ मधु का बयान करते हैं	उदञ्चः=	उत्तर तरफ़ के
		रश्मयः=	किरण हैं
		ताः=	वे
		एव=	ही
अस्य=	इस सूर्य के	अस्य=	इस सूर्य के
ये=	जो	उदीच्यः=	उत्तर तरफ़ के

मधुनाडयः=मधु निकलने के छिद्र हैं, याने उन किरणों में यज्ञ कर्म के फल रूपीपुष्परस भरे रहते हैं
पुष्पम्=रस के देनेवाले पुष्प हैं
अथर्वाङ्गिरसः एव=अथर्वण वेद के मन्त्र ही
ताः=अथर्वण वेद के मन्त्रों करके यज्ञ कर्म में जो हव्य दिया जाता है वे
मधुकृतः=मधुमक्षिका हैं
अमृताः=अतिउत्तम स्वादिष्ठ अमृत
इतिहासपुराणम्=इतिहास और पुराण
आपः=जल हैं

भावार्थ ।

अब चतुर्थ मधुका वर्णन किया जाता है, सूर्य के उत्तर तरफ़ जो किरण हैं वेही सूर्य के उत्तर तरफ़ के मधु निकलने के स्थान हैं, याने यज्ञकर्म में जो हव्य दिये जाते हैं उनके रस धूम होकर सूर्य विषे स्थित होजाते हैं, इसके संबन्ध में अथर्वणवेद के मन्त्र ही मधुमक्षिका हैं, और इतिहासपुराण पुष्प हैं, और जो हव्य अथर्वणवेद के मन्त्रों करके यज्ञ में दिये जाते हैं वेही अति उत्तम स्वादिष्ठ जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते वा एतेथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, अथर्वाङ्गिरसः, एतत्, इतिहासपुराणम्, अभ्यतपन्, तस्य, अभितप्तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे
वै	ही
एते	ये
अथर्वाङ्गिरसः	अथर्वण वेद के मन्त्र
एतत्	इस
इतिहासपुराणम्	इतिहास और पुराण को
अभ्यतपन्	ध्यान करते भये
तस्य	तिस
अभितप्तस्य	ध्यान किये हुये पुराण का
यशः	शुभ कीर्ति
तेजः	प्रताप
इन्द्रियम्	बल
वीर्यम्	तेज
अन्नाद्यम्	महत्त्वरूप
रसः	रस
अजायत	उत्पन्न होता भया

भावार्थ ।

वे अथर्वणवेद के मन्त्र, इतिहास और पुराण को ध्यान करते भये, तिस ध्यान किये हुये इतिहास, पुराण से शुभकीर्ति, प्रताप, बल, तेज, महत्त्व अथवा तन्दुरुस्तीरूप रस, उत्पन्न होतेभये ॥२॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णꣳरूपम् ॥ ३ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, परम्, कृष्णम्, रूपम् ॥

अन्वयः पदार्थ

तत्=वह यश आदिक रस
व्यक्षरत्=बहता भया
+च=और
तत्=बहा हुवा यश आदिक रस
आदित्यम्=सूर्य के
अभितः=चारों तरफ़
अश्रयत्=आश्रय करता भया

यत्=जो
एतत्=यह
आदित्यस्य=सूर्य का
परम्=अति
कृष्णम्=कृष्ण
रूपम्=प्रभा है
तत्=सोई
वै=निश्चय करके
एतत्=यह ऊपर कहा हुवा रस है

भावार्थ ।

ये यश आदिक रस सूर्य से निकल कर सूर्य के चारों तरफ़ स्थित होते भये, जो सूर्य का अतिकृष्णरूप है सोई सूर्य के ऊपर के कहे हुये यश आदिक रस हैं ॥३॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवादेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, अस्य, ऊर्ध्वाः, रश्मयः, ताः, एव, अस्य, ऊर्ध्वाः, मधुनाडयः, गुह्याः, एव, आदेशाः, मधुकृतः, ब्रह्म, एव, पुष्पम्, ताः, अमृताः, आपः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	मधुकृतः	मधुमक्खी हैं
अस्य	इस सूर्यके	ब्रह्म	ब्रह्म
ये	जो	एव	ही
ऊर्ध्वाः	ऊपरके	पुष्पम्	रसका देने वाला पुष्प है
रश्मयः	किरण हैं	ताः	जो घृत दुग्धादिक हव्य आचाओं करके यज्ञ के अग्नि में दिये जाते हैं वेही
ताः	वे	अमृताः	अतिमधुर अमृतरूपी
एव	ही	आपः	जल हैं
ऊर्ध्वाः	ऊर्ध्व किरण हैं		
मधुनाडयः	मधुस्राव के स्थान हैं		
+ ये	जो		
गुह्याः	गोप्य		
आदेशाः	उपदेश हैं		
+ ताः	वे		
एव	ही		

भावार्थ ।

जो सूर्यके ऊपर के किरण हैं वेही मधु निकलने के स्थान हैं, और जो गुप्त उपदेश हैं वही मधुमक्षिका हैं, और ब्रह्मही रसका देनेवाला पुष्प है, जो घृत दुग्धादिक हव्य यज्ञके अग्नि विषे दिये जाते हैं वेही अतिमधुर अमृतरूपी जल हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपꣳस्त-स्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोजायत ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, गुह्याः, आदेशाः, एतत्, ब्रह्म, अभ्यतपन्, तस्य, यशः, तेजः, इन्द्रियम्, वीर्यम्, अन्नाद्यम्, रसः, अजायत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे	अभितप्तस्य	ध्यान किये ब्रह्म का
एव	ही	यशः	शुभ कीर्त्ति
एते	ये	तेजः	प्रताप
आदेशाः	गोप्य उपदेश	इन्द्रियम्	बल
एतत्	उस	वीर्यम्	तेज
ब्रह्म	ब्रह्मका	अन्नाद्यम्	महत्त्वरूप
अभ्यतपन्	ध्यान करते भये	रसः	रस
तस्य	तिस	अजायत	उत्पन्न होता भया

भावार्थ ।

वे गुप्त उपदेश उस ब्रह्म को ध्यान करते भये, तिस ध्यान किये ब्रह्म से शुभ कीर्ति, प्रताप, बल, तेज और अन्न करके पुष्ट तन्दुरुस्तीरूप रस उत्पन्न होता भया ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, व्यक्षरत्, तत्, आदित्यम्, अभितः, अश्रयत्, तत्, वै, एतत्, यत्, एतत्, आदित्यस्य, मध्ये, क्षोभते, इव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	वह यश आदिक रस	एतत्	यह
व्यक्षरत्	बहता भया	यत्	जो
+ च	और	आदित्यस्य	सूर्य के
तत्	बहा हुवा वह यश आदिक रस	मध्ये	बीच में
आदित्यम्	सूर्य के	क्षोभतेइव	झलझलसा
अभितः	चारों तरफ़	+ दृश्यते	उपासकों को दीखता है
अश्रयत्	आश्रय करता भया	तत्	सोई
		वै	निश्चय करके
		एतत्	ऊपर कहाहुवा यह रस है

भावार्थ ।

वे यश आदिक रस सूर्य के किरणरूपी छिद्र से निकल सूर्य के चारों तरफ़ स्थित होते भये, और जो सूर्य के मध्य में मधु झलझल होता हुवा उपासकों को दिखाई देता है सो वही ऊपर कहे हुये प्रकार यश आदिक रस हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ते वा एते रसानाꣳ रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदाह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

ते, वै, एते, रसानाम्, रसाः, वेदाः, हि, रसाः, तेषाम्, एते, रसाः, तानि, वै, एतानि, अमृतानाम्, अमृतानि, वेदाः, हि, अमृताः, तेषाम्, एतानि, अमृतानि ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे
एते	ये याने लाल श्वेतादिक सूर्यकी प्रभा
वै	निश्चय करके
रसानाम्	सार वस्तुओंके
रसाः	सार हैं
हि	क्योंकि
वेदाः	वेद
रसाः	सब वस्तुओं का सार हैं
+च	और
तेषाम्	तिन वेदोंके
एते	लालश्वेतादिक सूर्यके रूप
रसाः	सार हैं
तानि	वे
एतानि	लालश्वेतादिक सूर्य की प्रभा
वै	निश्चयकरके
अमृतानाम्	अमृतों के
अमृतानि	अमृत हैं
हि	क्योंकि

वेदाः=वेद
अमृताः=अमृतरूप हैं
तेषाम्=तिन के
एतानि=ये लाल श्वेतादिक सूर्य के रूप
अमृतानि=अमृत हैं

भावार्थ ।

वेद सब वस्तुओं के सार हैं, तिन वेदों का सार लालश्वेतादिक सूर्य की प्रभा सब सार वस्तुओं का सार है, और वेही अमृतों के अमृत हैं, क्योंकि वेद अमृतरूप हैं, तिनका अमृत वे लाल, श्वेतादिक सूर्य की प्रभा हैं ॥४॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

तद्यत्प्रथमममृतम् तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, प्रथमम्, अमृतम्, तत्, वसवः, उपजीवन्ति, अग्निना, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ अन्वयः पदार्थ

वै=वास्तव से
देवाः=देवता
न=न
अश्नन्ति=खाते हैं
न=न
पिबन्ति=पीते हैं
परन्तु=पर
एतत्=इस
अमृतम्=अमृतको
दृष्ट्वा=देखकरके

एव=अवश्य
तृप्यन्ति=तृप्त होजाते हैं
इति=इस तरह
यत्=जो
प्रथमम्=पहिली
तत्=वह लालरूप सूर्यकी प्रभा है
अमृतम्=तिसी अमृत-रूप प्रभापर
वसवः=आठोंवसुदेव
मुखेन=सहित अपने मुख
अग्निना=अग्निदेवताके
उपजीवन्ति=जीवन निर्वाह करते हैं

भावार्थ ।

जो पहिली लाल प्रभा सूर्य की है, उसपर वसुलोग सहित अपने मुख अग्नि देवता के जीवन करते हैं, वास्तव से वे देवता न खाते हैं, न पीते हैं, पर उस अमृतरूपी रसको देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ | अन्वयः पदार्थ

ते=वे वसुदेवता
एतत्=इसी
एव=ही
रूपम्=सूर्य की लाल प्रभाको

अभिसंविशन्ति = देख करके याने भोग करके उदासीन होजाते हैं याने उसी में लीन होजाते हैं	+ च = और फिर एतस्मात् = इसी रूपात् = लाल प्रभासे उद्यन्ति = निकल आते हैं जब भोग का समय आता है

भावार्थ ।

वे वसुदेवता सूर्य की लाल प्रभाको देख करके जब तृप्त होजाते हैं तब उदासीन होते हुये उसी में पड़े रहते हैं, और फिर जब भोगका समय आता है तब उसमें से निकल आते हैं, याने जब भोगकर चुकते हैं तब आनंद से उसी रसमें मग्न पड़े रहते हैं, और जब फिर भोगका समय आता है तब फिर उद्योग करने को तय्यार होजाते हैं, जैसे लोक बिषे जब पुरुष भोग कर चुकता है तब आनंद से उद्योगरहित होकर पड़ा रहता है, और जब फिर भोगका समय आता है तब उद्योग करता है॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, वसूनाम्, एव, एकः, भूत्वा, अग्निना, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इसी
अमृतम्	अमृतको
एवम्	कहेहुये प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
वसुनाम् एव	वसुओं में से
एकः	एक वसु
भूत्वा	होकर
अग्निना	अग्निदेवताको
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	अमृत को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+ च	और
सः	वह
एव	ही
एतत्	इस
रूपम्	सूर्य के लाल रूप को
अभिसंविशति	प्राप्त होता है याने उसमें प्रवेश कर-जाता है
+ च	और फिर
एतस्मात्	इसी लाल
रूपात्	रूप से
उदेति	बाहर निकल आता है

भावार्थ ।

जो इस अतमृकी कहे हुये प्रकार उपासना करता है, वह भी वसुदेवताओं में से एक वसु होजाता है, और वही अग्नि देवताको अग्रेसर करके अमृत को देखकर तृप्त होजाता है, और वही इस सूर्यके लालरूप रसको भोग करके उसी में मगन पड़ा रहता है, और जब फिर भोगका समय आता है, तब फिर भोगने की अभिलाषा करके उत्थान करता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पुरस्तात्, उदेता, पश्चात्, अस्तम्, एता, वसूनाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जबतक	तावत्	तबतक
आदित्यः	सूर्य	एव	अवश्य
पुरस्तात्	पूर्वदिशा में	वसूनाम्	वसुओं के
उदेता	उदय हुवा करेगा	आधिपत्यम्	स्वामित्व को
+ च	और	+ च	और
यावत्	जबतक	स्वाराज्यम्	स्वर्गकेराज्यको
पश्चात्	पश्चिमदिशा में	सः	वह उपासक
अस्तम्	अस्त	पर्येता	प्राप्तहोतारहेगा
एता	हुवा करेगा		

भावार्थ ।

ऐसा उपासक वसुओं के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्य को तबतक प्राप्त होता रहेगा जबतक सूर्य पूर्वदिशा में उदय हुवा करेगा, और पश्चिम दिशा में अस्त हुवा करेगा ॥ ४ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, द्वितीयम्, अमृतम्, तत्, रुद्रा, उपजीवन्ति, इन्द्रेण, मुखेन, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
यत्	जो
द्वितीयम्	दूसरा
अमृतम्	सूर्य का शुक्ल-रूप है
तत्	उसशुक्लरूपका
रुद्राः	देवता रुद्र
इन्द्रेण	इन्द्र देवताको
मुखेन	अग्रेसरकरके
उपजीवन्ति	उस अमृत-रूपी श्वेत प्रभाको पान करते हैं
+ वै	वास्तव से
देवाः	देवता
न	न
अश्नन्ति	खाते हैं
न	न
पिबन्ति	पीते हैं
+ परंतु	पर
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	अमृतको
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यन्ति	तृप्तहोजाते हैं

भावार्थ ।

सूर्य का दूसरा रूप जो शुक्ल है, उस शुक्लरूप के देवता ग्यारहों रूद्र हैं, वे इन्द्रदेवता को अग्रेसर करके उस अमृत-रूपी श्वेत प्रभाको पान करते हैं, वास्तव से वे देवता खाते पीते नहीं हैं, परंतु उस अमृतरूपी प्रभाको देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेवरूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति २

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे रुद्रदेवता	+ पुनः	फिर
एतत्	इस	एतस्मात्	इसी
एव	ही	रूपात्	सूर्य के शुक्ल-रूप से
रूपम्	सूर्य के शुक्लरूप को	उद्यन्ति	समय आने पर भोग प्राप्तिकेलिये उत्साहित होते हैं याने उठ खड़े होते हैं
अभिसंविशन्ति	देखकर उदासीन रहते हैं याने भोगने के पश्चात् आनन्द में मग्न रहते हैं		

भावार्थ ।

जब वे रुद्रदेवता इस सूर्य के शुक्लरूप को देखकर तृप्त हो-

जाते हैं तब उसीमें आनंद के साथ मग्न रहते हैं, और जब फिर सूर्य के शुक्ल प्रभारूपी रसके पान करने की इच्छा होती है, तब उसी प्रभासे बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, रुद्राणाम्, एव, एकः, भूत्वा, इन्द्रेण, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस श्वेतरूप
अमृतम्	अमृतको
एवम्	कहे हुये प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
रुद्राणाम्	रुद्रों में से
एकः	एक रुद्र
एव	अवश्य
भूत्वा	होकर
इन्द्रेण	इन्द्रदेवता को
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	श्वेत प्रभारूपी अमृत को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+ पुनः	फिर
सः	वह

एव=ही	+च=और
एतत्=इस	एतस्मात्=सूर्यके इस
एव=ही	रूपात्=शुक्लरूप से
रूपम्=सूर्य के शुक्ल-रूप को	उदेति=भोगने के समय आनेपर उठ खड़ा हो-जाता है
अभिसंविशति=देखकर उसी में मग्न हो-जाता है	

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्य की श्वेत अमृतरूप प्रभाको जानता है, वह रुद्रों में से एक रुद्र अवश्य होजाता है, और वही इन्द्र देवता को अग्रेसर करके श्वेत प्रभारूपी अमृतको देखकर तृप्त होता है, और फिर वही सूर्यकी शुक्लरूप प्रभामें मग्न होकर उदासीन पड़ा रहता है, और फिर जब भोगने का समय आता है, तो उसी प्रभा से बाहर निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पुरस्तात्, उदेता, पश्चात्, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, दक्षिणतः, उदेता, उत्तरतः, अस्तम्, एता, रुद्राणाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जितने काल तक
सः	वह
आदित्यः	आदित्य
पुरस्तात्	पूर्वदिशा में
उदेता	उदय को प्राप्त होता रहेगा
+ च	और
पश्चात्	पश्चिम दिशामें
अस्तम्	अस्तको
एता	प्राप्त होता रहेगा उसके
द्विः	दुगने
तावत्	कालतक
दक्षिणतः	दक्षिण दिशामें

अन्वयः	पदार्थ
उदेता	उदयकोप्राप्त होता रहेगा
+ च	और
उत्तरतः	उत्तर दिशामें
अस्तम्	अस्त को
एता	प्राप्त होता रहेगा
तावत्	तबतक
रुद्राणाम्	रुद्रोंके
आधिपत्यम्	स्वामित्व को
+ च	और
स्वाराज्यम्	स्वर्गराज्यको
सः	वह उपासक
एव	अवश्य
पर्येता	प्राप्त होता रहेगा

भावार्थ ।

जितने काल तक सूर्य पूर्व दिशा में उदय होकर पश्चिम दिशा में अस्त को प्राप्त होता रहेगा, और उसके दुगने काल तक सूर्य दक्षिण दिशा में उदय होकर उत्तर दिशा में अस्त को प्राप्त होता रहेगा, उतने काल तक रुद्रों के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्य को उपासक प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तृतीयम्, अमृतम्, तत्, आदित्याः, उपजीवन्ति, वरुणेन, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यत्	जो
तृतीयम्	तीसरा
अमृतम्	आदित्य का कृष्णरूप है
तत्	उस कृष्णरूप को
आदित्याः	आदित्यदेवता
वरुणेन	वरुणदेवताको
मुखेन	अग्रेसर करके
उपजीवन्ति	पान करते हैं
वै	वास्तव से
देवाः	देवता लोग
न वै	नहीं निश्चय करके
अश्नन्ति	खाते हैं
न	न
पिबन्ति	पीते हैं
परन्तु	पर
ते	वे
वै	निश्चयकरके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	अमृतरूप कृष्ण प्रभाको
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यन्ति	तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

जो तीसरी आदित्य की कृष्णरूप प्रभा है, उसको आदित्य देवता, वरुणदेवता को अग्रेसर करके पान करते हैं । वास्तव से देवता न खाते हैं, न पीते हैं, परन्तु वे उस अमृतरूपी प्रभा को देखकर तृप्त होते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति२

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे देवता	+ च	और
एतत्	सूर्य के इस	एतस्मात्	इस ही
एव	ही	रूपात्	कृष्णरूपप्रभासे
रूपम्	कृष्णरूप को	उद्यन्ति	भोग काल आनेपर उठ खड़े होजाते हैं
अभिसंविशन्ति	देखकरउसीमें मग्न रहते हैं		

भावार्थ ।

वे देवता सूर्य के कृष्णप्रभारूपी अमृत को पान करके उसी में तृप्त पड़े रहते हैं और फिर जब उस प्रभारूपी अमृत के पान करने की इच्छा करते हैं तब उसीसे बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, आदित्यानाम्, एव, एकः, भूत्वा, वरुणेन, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो पुरुष
एतत्	सूर्य के इस
अमृतम्	कृष्णरूपको
एव	कहेहुये प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
आदित्यानाम्	आदित्यदेवताओं मेंसे
एकः	एक आदित्य
भूत्वा	होकर
एव	अवश्य
वरुणेन	वरुण देवता को
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	कृष्णरूप प्रभाको
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है
+च	और
सः	वही पुरुष
एतत् एव	इस ही
रूपम्	सूर्यकी कृष्णप्रभाको
अभिसंविशति	देखकर मग्न होजाता है
+च	और
+पुनः	फिर
एतस्मात्	इस
रूपात्	कृष्णरूप प्रभा से
उदेति	फलभोगनेका काल आने पर उठ खड़ा होता है

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्यकी इस कृष्णरूप प्रभाको कहे हुये प्रकार जानता है, वह आदित्यदेवताओं में से एक आदित्य होकर और वरुण देवताको अग्रेसर करके उस कृष्णरूप प्रभाको देखकर तृप्त होता है, और फिर वही पुरुष तृप्त होकर उसी सूर्य के कृष्णप्रभारूपी अमृतमें मग्न होकर पड़ा रहता है, और फिर जब उस प्रभारूपी अमृतके पानकी इच्छा होती है, तब उसी प्रभा में से निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेतादित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, दक्षिणतः, उदेता, उत्तरतः, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, पश्चात्, उदेता, पुरस्तात्, अस्तम्, एता, आदित्यानाम्, एव, तावत्, आदित्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्	=जबतक	उत्तरतः	=उत्तर दिशा में
आदित्यः	=सूर्य	अस्तम्	=अस्त को
दक्षिणतः	=दक्षिणकी तरफ़	एता	=प्राप्त होता है
उदेता	=उदय होता है	तावत्	=तिसके
+च	=और	द्विः	=दूने कालतक

पश्चात्=पश्चिमकी तरफ़
उदेता=उदय को प्राप्त होता रहे
+च=और
पुरस्तात्=पूर्वकी तरफ़
अस्तम्=अस्त
एता=होता रहै

तावत्=तबतक
सः=वह उपासक
आदित्यानाम्=आदित्यों के
+च=और
स्वाराज्यम्=स्वर्गराज्यको
पर्येता=प्राप्त होता रहेगा

भावार्थ ।

जबतक सूर्य दक्षिण दिशामें उदय होकर उत्तर दिशा में अस्त होता रहेगा, और उसके दूने कालतक पश्चिम की तरफ़ से उदय होकर पूर्व की तरफ़ अस्त होता रहेगा तबतक वह उपासक आदित्यों के स्वामित्वको, और स्वर्गराज्यको प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, चतुर्थम्, अमृतम्, तत्, मरुतः, उपजीवन्ति, सोमेन, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	देवाः	देवता लोग
यत्	जो	न	न
चतुर्थम्	चौथा	अश्नन्ति	खाते हैं
अमृतम्	अमृत याने सूर्यकी अति कृष्णप्रभा है	न	न
तत्	उसको	पिबन्ति	पीते हैं
मरुतः	मरुद्गण देवता	+ परन्तु	मगर
सोमेन	चन्द्रमा को	एतत्	इस
मुखेन	अग्रेसर करके	एव	ही
उपजीवन्ति	पान करते हैं	अमृतम्	सूर्यकी अति कृष्ण प्रभाको
वै	वास्तव से	दृष्ट्वा	देखकर
		तृप्यन्ति	तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

सूर्यकी अमृतरूप चौथी प्रभा जो अतिकृष्णरूप से है, उस को मरुद्गण देवता चन्द्रमा को अग्रेसर करके पान करते हैं, वास्तव से देवता न खाते हैं, न पीते हैं, मगर सूर्य की अति कृष्णरूप प्रभा को केवल देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्ये तस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते	वे देवता
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	अतिकृष्णरूप प्रभा को
अभिसंविशन्ति	देखकर तृप्त होकर आनन्दसे उसीमें मग्नहुये पड़े रहते हैं
+ च	और
एतस्मात्	इस
रूपात्	अतिकृष्णरूप प्रभा को जब
उद्यन्ति	भोगने की इच्छा होती है तब फिर उससे बाहर निकल आते हैं

भावार्थ ।

वे देवता इस अतिकृष्णरूप प्रभाको जो अमृत के तुल्य है, देखकर उसमें तृप्त होकर, आनन्द से मगन पड़े रहते हैं, और फिर जब अमृतरूप अतिकृष्णप्रभा के भोगने का समय आता है, तब उसीमें से बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, मरुताम्, एव, एकः, भूत्वा, सोमेन, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतत्	इस
अमृतम्	सूर्यके अतिकृष्ण रूप प्रभा को
एवम्	कहेहुये प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
मरुताम्	मरुद्गणों में
एकः	एक मरुत
एव	अवश्य
भूत्वा	होकर
सोमेन	चन्द्रमाको
मुखेन	अग्रेसर करके
एतत्	इस
एव	ही
अमृतम्	सूर्यकेअतिकृष्ण रूप प्रभा को
दृष्ट्वा	देखकर
तृप्यति	तृप्त होता है

अन्वयः	पदार्थ
+च	और
सः	वह पुरुष
एतत्	इस
एव	ही
रूपम्	अतिकृष्णरूप प्रभाको
अभिसंविशति	देख करके याने पानकर के उसीमें आनन्द के साथ मग्न पड़ा रहता है
+च	और
एतस्मात्	इस
रूपात्	अतिकृष्णरूप प्रभासे
उदेति	भोगने के समय बाहर निकल आता है

भावार्थ ।

जो उपासक सूर्य के अतिकृष्ण प्रभाको कहे हुये प्रकार भली भांति जानता है वह मरुद्गणों में से एक मरुद्देवता होकर चन्द्रमा को आगे करके उस सूर्य के अति कृष्णरूप प्रभाको देखकर तृप्त होजाता है, और फिर वही पुरुष उसही अति कृष्णरूप प्रभाके

अमृतरूपी समुद्रमें आनन्दके साथ उस प्रभाको भोगता हुवा मग्न पड़ा रहता है, और फिर जब अतिकृष्ण अमृतरूप प्रभाके भोगने का समय आता है तब उसीमें से बाहर निकल आता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, पश्चात्, उदेता, पुरस्तात्, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, उत्तरतः, उदेता, दक्षिणतः, अस्तम्, एता, मरुताम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावत्	जबतक
आदित्यः	सूर्य
पश्चात्	पश्चिम के तरफ़
उदेता	उदय होता है
+च	और
पुरस्तात्	पूर्व के तरफ़
अस्तम्	अस्त
एता	होता है

अन्वयः	पदार्थ
द्विः तावत्	उसके दूने काल तक
उत्तरतः	उत्तरके तरफ़
उदेता	उदय होताहै
+च	और
दक्षिणतः	दक्षिणके तरफ़
अस्तम्	अस्त
एता	होता है
तावत्	तबतक
सः	वह पुरुष

मरुताम्=मरुद्देवताओं के	स्वाराज्यम्=स्वर्गके राज्य को
आधिपत्यम्=स्वामित्वको	पर्येता=प्राप्त होता रहेगा
+च=और	

भावार्थ ।

जितने काल तक सूर्य पश्चिम के तरफ़ उदय होता है, और पूर्व के तरफ़ अस्त होता है, उसके दूने कालतक उत्तरके तरफ़ उदय होता है, और दक्षिण के तरफ़ अस्त होता है उतने कालतक वह उपासक मरुद्देवतों के स्वामित्व को और स्वर्ग के राज्यको प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, पञ्चमम्, अमृतम्, तत्, साध्याः, उपजीवन्ति, ब्रह्मणा, मुखेन, न, वै, देवाः, अश्नन्ति, न, पिबन्ति, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	अमृतम्	आदित्यमंडल मध्यवर्त्ती मधुहै
यत्	जो		
पञ्चमम्	पाँचवाँ		

तत्=उसको	अश्नन्ति=खाते हैं
साध्याः=साध्य जातिके देवता	न=न
ब्रह्मणा=ब्रह्माको	पिबन्ति=पीते हैं
मुखेन=अग्रेसरकरके	+परंतु=पर
उपजीवन्ति=पान करते हैं	एतत्=इस
+वै=वास्तव से	एव=ही
देवाः=देवता	अमृतम्=अमृत को
न वै=न निश्चय करके	दृष्ट्वा=देखकर
	तृप्यन्ति=तृप्त होते हैं

भावार्थ ।

आदित्यमण्डल मध्यवर्त्ती जो पाँचवाँ मधु है उसको साध्य जातिके देवता ब्रह्मा को अग्रेसर करके पान करते हैं, वास्तव से देवता न खाते हैं, न पीते हैं, पर उस अमृत को देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशन्ति, एतस्मात्, रूपात्, उद्यन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे देवता	अभिसंविशन्ति	देखकर उसी में तृप्त होजाते हैं
एतत्	आदित्य मंडल मध्यवर्त्ती	+च	और
रूपम्	अमृतरूप मधुको		

पुनः=फिर	उद्यन्ति=भोगकाल के आने पर उठ खड़े होजाते हैं
एतस्मात्=इस	
रूपात्=अमृतरूपी मधुसे	

भावार्थ ।

वे देवता आदित्यमण्डलमध्यवर्त्ती अमृतरूपी मधुको पान करके उसीमें आनन्द के साथ तृप्त पड़े रहते हैं, और फिर जब अमृतरूपी मधु के भोगने का समय आता है तब उसीमें से बाहर निकल आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतत्, एवम्, अमृतम्, वेद, साध्यानाम्, एव, एकः, भूत्वा, ब्रह्मणा, एव, मुखेन, एतत्, एव, अमृतम्, दृष्ट्वा, तृप्यति, सः, एतत्, एव, रूपम्, अभिसंविशति, एतस्मात्, रूपात्, उदेति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=	जो पुरुष	वेद=	जानता है
एतत्=	इस	सः=	वह
अमृतम्=	आदित्यमंडल मध्यवर्त्ती अमृतको	साध्यानाम्=	साध्योंमें
		एकः=	एक साध्य देवता
एव=	भली प्रकार	भूत्वा=	होकर

ब्रह्मणा=ब्रह्मा को	रूपम्=अमृतरूप मधु को
मुखेन=अग्रेसर करके	अभिसंविशति=देखकर उसी में आनन्द से तृप्त होकर पड़ा रहता है
एतत्=इस	च=और
एव=ही	एतस्मात्=इसी
अमृतम्=अमृत को	रूपात्=मधुरूप अमृत से
दृष्ट्वा=देखकर	उदेति=काल आने पर बाहर निकल आता है
तृप्यति=तृप्त होजाता है	
+च=और	
पुनः=फिर	
सः=वह	
एव=ही	
एतत्=इस	
एव=ही	

भावार्थ ।

जो उपासक इस आदित्यमण्डलमध्यवर्त्ती अमृत को भली प्रकार जानता है वह साध्यों में एक साध्य देवता होकर ब्रह्मा को अग्रेसर करके इसही अमृत को देखकर तृप्त होजाता है, और फिर वही इस अमृतरूप मधु को पान करके उसीमें आनन्द से तृप्त पड़ा रहता है, और फिर जब उस अमृतरूप मधु के भोगने का समय आता है तब उठ खड़ा होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्वमुदेताऽर्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यावत्, आदित्यः, उत्तरतः, उदेता, दक्षिणतः, अस्तम्, एता, द्विः, तावत्, ऊर्ध्वम्, उदेता, अर्वाङ्, अस्तम्, एता, साध्यानाम्, एव, तावत्, आधिपत्यम्, स्वाराज्यम्, पर्येता ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यावत्	=जबतक	+च	=और
आदित्यः	=सूर्य	अर्वाङ्	=नीचे के तरफ़
उत्तरतः	=उत्तरके तरफ़	अस्तम्	=अस्त
उदेता	=उदय होता है	एता	=होता है
+च	=और	तावत्	=तब तक
दक्षिणतः	=दक्षिणकेतरफ़	सः	=वह उपासक
अस्तम्	=अस्त	साध्यानाम्	=साध्य जातिके देवतों के
एता	=होता है	स्वामित्वम्	=स्वामित्व को
च	=और	+ च	=और
तावत्	=उतने कालके	स्वाराज्यम्	=स्वर्ग राज्यको
द्विः	=दूनेकालतक	पर्येता	=प्राप्त होता रहेगा
ऊर्ध्वम्	=ऊपरके तरफ़		
उदेता	=उदय होता है		

भावार्थ ।

जब तक सूर्य उत्तर के तरफ़ से उदय होकर दक्षिणके तरफ़ अस्त होता है, और उसके दूनेकाल तक ऊपर से उदय होकर नीचे को अस्त होता है तब तक वह उपासक साध्यजाति के स्वामित्व को और स्वर्गराज्य को प्राप्त होता रहेगा ॥ ४ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ तत उर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ततः, ऊर्ध्वे, उदेत्य, न, एव, उदेता, न, अस्तम्, एता, एकलः, एव, मध्ये, स्थाता, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः — पदार्थ

- ततः = ऊपर कहे हुये प्रकार के पश्चात्
- अथ = अब
- +आदित्यः = सूर्य
- ऊर्ध्वे = ऊपर को
- उदेत्य = प्रकाश करके
- पुनः = फिर
- न = न
- उदेता = उदयको प्राप्त होता है
- च = और
- न = न
- अस्तम् = अस्त को
- एता = प्राप्त होता है
- एकलः = केवल
- मध्ये = अपने में
- एव = ही
- स्थाता = स्थित रहता है
- तत् = इस विषय में
- एषः = यह आगेवाला
- श्लोकः = मन्त्र
- +प्रमाणम् = प्रमाण है

भावार्थ ।

छवो दिशामें सूर्य के उदयास्तके बाद फिर सूर्यका उदयास्त नहीं होता है, केवल स्वयं प्रकाश में स्थित रहता है, और अपने

बिषे सब जीवों को लीन करलेता है, क्योंकि उदयास्त जीवोंके कर्मफल भोगार्थ होता है, और जब जीवोंके कर्मफलकी समाप्ति होजाती है तब सूर्य के उदयास्त की ज़रूरत नहीं रहती है, एक उपासक सूर्य का जो वसुपदवी को पहुँच चुका था, और सूर्य के लाल श्वेतादिक प्रभारूपी अमृत को पान करचुका था, उसने एक ज्ञानी के पूछने पर कहा कि ब्रह्मलोकमें जहां से मैं आया हूं, वहां सूर्य का उदयास्त नहीं होता है, इसकारण वहां दिन रात्रि नहीं है, केवल प्रकाशही प्रकाश है, इसलिये जो जीव वहां वास करते हैं, वे अमर रहते हैं, इस बारेमें आगेवाला मन्त्र प्रमाण है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन देवा-स्तेनाह छं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, वै, तत्र, न, निम्लोच, न, उदियाय, कदाचन, देवाः, तेन, अहम्, सत्येन, मा, विराधिषि, ब्रह्मणा, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्र	उसब्रह्मलोकमें	निम्लोच	अस्तको प्राप्त होता है
न वै	निश्चयकरके ऐसा नहीं है	+ च	और
न	न	न	न
+ तत्र	वहां	कदाचन	कभी
+ सविता	सूर्य		

उदियाय=उदयको प्राप्त होता भया
+ हे=हे
देवाः=देवताओ
+ शृणुत=मेरेसत्यवचन को सुनो
तेन=उस
सत्येन=सत्य
ब्रह्मणा=ब्रह्म करके
अहम्=मैं
मा=कभी नहीं
विराधिषि=मोक्षधर्म से पतित हूंगा

भावार्थ ।

ब्रह्मलोक में सूर्य का उदयास्त नहीं होता है, देवता को संमुख करके वह वसुपदवी को प्राप्त हुआ पुरुष शपथ करता है कि यदि मैं सत्य न कहता हूँ तो मैं मोक्षधर्म से पतित होजाऊं ॥२॥

मूलम् ।

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेव ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

न, ह, वै, अस्मै, उदेति, न, निम्लोचति, सकृत्, दिवा, ह, एव, अस्मै, भवति, यः, एताम्, एव, ब्रह्मोपनिषदम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थ

यः=जो
एताम्=इस
ब्रह्मोपनिषदम्=ब्रह्मविद्या को
एवम्=कहेहुये प्रकार
वेद=जानता है
अस्मै=तिसब्रह्मवेत्ता के लिये
ह वै=निश्चयकरके
न=न

उदेति=सूर्य उदय होता है	अस्मै=उस ब्रह्मज्ञानी के लिये
+ च=और	दिवा=दिन
न=न	भवति=रहता है याने सदा उसके लिये प्रकाश है अथवा वह प्रकाशस्वरूप हो-जाता है
निम्लोचति=अस्त होताहै	
किन्तु=किन्तु	
सकृत्=निरन्तर	
ह वै=ही	

भावार्थ ।

जो उपासक ब्रह्म को जानता है, तिसके लिये सूर्य का उदयास्त नहीं होता है, किन्तु उस ब्रह्मज्ञानी के लिये वह सूर्य सदा एकरस प्रकाशमान रहता है, यहां तक कि वह स्वयं प्रकाशमान होजाता है, याने उपास्य उपासक एक होजाते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, ब्रह्मा, प्रजापतये, उवाच, प्रजापतिः, मनवे, मनुः, प्रजाभ्यः, तत्, ह, एतत्, उद्दालकाय, आरुणये, ज्येष्ठाय, पुत्राय, पिता, ब्रह्म, प्रोवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=तिस		एतत्=इस ब्रह्मविद्या को	
ह=ही		ब्रह्मा=ब्रह्मा ने	

प्रजापतये=प्रजापति से
उवाच=कथन करता भया
प्रजापतिः=प्रजापतिने
मनवे=मनुसे
+उवाच=कहता भया
मनुः=मनुने
प्रजाभ्यः=इक्ष्वाकुआदि से
+उवाच=कहता भया
तत्=तिस
ह=ही
एतत्=इस
ब्रह्म=ब्रह्मविद्या को
पिता=अरुणिऋषिने
आरुणये=अपने
ज्येष्ठाय=बड़े
पुत्राय=उद्दालक आरुणि से
उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

इस ब्रह्मविद्या को ब्रह्माने प्रजापति से कहा, और प्रजापति ने मनुसे कहा, और मनुने इक्ष्वाकु आदि से कहा, तिसी ब्रह्मविद्या को अरुणिऋषिने अपने ज्येष्ठपुत्र उद्दालक आरुणि से कहा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

इदं वा व तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात्प्रणाय्यायवान्तेवासिने ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वा, व, तत्, ज्येष्ठाय, पुत्राय, पिता, ब्रह्म, प्रब्रूयात्, प्रणाय्याय, वा, अन्तेवासिने ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=	पूर्वोक्त	ब्रह्मवाव=	ब्रह्मविद्याको
इदम्=	इस	पिता=	बाप

ज्येष्ठाय=अपने ज्येष्ठ	प्रणाय्याय=प्रिय
पुत्राय=पुत्रसे	अन्ते-वासिने=शिष्य से
प्रब्रूयात्=कहे	+प्रब्रूयात्=कहे
वा=अथवा	

भावार्थ ।

इसलिये इस ब्रह्मविद्याको पिता अपने पुत्रसे कहे अथवा अपने प्रिय शिष्यसे कहे ॥ ५ ॥

मूलम् ।

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिःपरिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव तता भूय इति ॥ ६ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

न, अन्यस्मै, कस्मैचन, यद्यपि, अस्मै, इमाम्, अद्भिः, परिगृहीताम्, धनस्य, पूर्णाम्, दद्यात्, एतत्, एव, ततः, भूयः, इति, एतत्, एव, ततः, भूयः, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एतत्=यह ब्रह्मविद्या	+च=और
अन्यस्मै=और	अद्भिः=समुद्रसे
कस्मैचन=किसीके लिये	परिवेष्टिताम्=घिरीहुई
न=न	इमाम्=इस पृथ्वीको
+प्रब्रूयात्=कहे	+आचार्याय=आचार्य के लिये
यद्यपि=चाहे	दद्यात्=देवे
धनस्य=धनकरके	
पूर्णाम्=पूर्ण	

+हि=निश्चयकरके	एव=बहुतही
एतत्=यहब्रह्मविद्या	भूयः=श्रेष्ठ है
ततः=इस पृथ्वी से	इति=अवश्यश्रेष्ठ है

भावार्थ ।

इस ब्रह्मविद्याको किसी दूसरे से न कहे, चाहे वह धनकरके पूर्ण हो, और समुद्र तक फैले हुए राज्य को आचार्य को देवे, निश्चय करके यह ब्रह्मविद्या राज्य से अति श्रेष्ठ है, अवश्य श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

गायत्री, वा, इदम्, सर्वम्, भूतम्, यत्, इदम्, किंच, वाक्, वै, गायत्री, वाक्, वा, इदम्, सर्वम्, भूतम्, गायति, च, त्रायते, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
इदम्=यह	तत्=वह सब
सर्वम्=सब	गायत्री=गायत्रीरूप
यत्=जो	वा=ही है
किंच=कुछ	वाक् } =शब्दमात्र
भूतम्=स्थावरजंगमात्मकजगत् है	वाक् } =शब्दमात्र
	वै=निश्चयकरके

गायत्री=गायत्री है	वाक्=शब्द ही है
च=और	वाक्=शब्दही
इदम्=यह	गायति=सब जीवोंको
सर्वम्=सब	बताता है
भूतम्=स्थावरजंगमा-	+ च=और
त्मक जगत्	त्रायते=रक्षा करता है

भावार्थ ।

जो चराचर जगत् है, वह गायत्रीरूप है, शब्दमात्र गायत्री है, सब जगत् शब्दही है, गायत्री शब्द दो पदों से बना है, गान और त्राण, गान का अर्थ गाना है, और त्राण का अर्थ रक्षा है (गायन्तं त्रायते इति गायत्री) जो पुरुष गायत्री जपता है उस की रक्षा गायत्री करती है, और जैसे पृथ्वी प्राणीमात्र की रक्षा करती है, और पालन पोषण करती है, ऐसेही गायत्री भी सब जीवोंकी रक्षा और पालन पोषण करती है, क्योंकि गायत्री वाणी भी है, विना वाणी के किसी वस्तुकी सिद्धि नहीं होती है, और न किसी जीवकी रक्षा होसकती है, यह अमुक जीव है, इसको अन्न पान दिया जाय, तब अन्न उसको दिया जाता है, उस अन्न पानसे उसका जीवन होता है, यदि वाणी न होती तो अन्न पान कैसे दिया जाता, और कैसे उसका जीवन होसकता था, इसी तरह अगर वाणी न होती तो निषेध की आज्ञा कि कोई जीव न मारेजावें कैसे की जाती ॥ १ ॥

मूलम् ।

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याꣳ हीदꣳ सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते॥२॥

पदच्छेदः ।

या, वै, सा, गायत्री, इयम्, वा, व, सा, या, इयम्,

पृथिवी, अस्याम्, हि, इदम्, सर्वम्, भूतम्, प्रतिष्ठितम्, एताम्, एव, न, अतिशीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
या	जो	सर्वम्	सब
वै	निश्चयकरके	भूतम्	स्थावरजंगमात्मकजगत्
इदम्	यह	प्रतिष्ठितम्	स्थित है
पृथिवी	पृथिवी है	+ इदम्	यह जगत्
सा	वही	एताम्	इस गायत्रीरूप पृथ्वीको
गायत्री	गायत्री है	एव	कभी
या	जो	न	नहीं
इयम्	यह	अतिशीयते	अतिक्रमण करतीहै याने उसीमें रहती है उससे पृथक् सत्ता नहीं रखतीहै
इयम्	गायत्री है		
सा	वही		
वाव	निश्चयकरके		
पृथिवी	पृथ्वी है		
हि	क्योंकि		
अस्याम्	इस पृथ्वी में		
इदम्	यह		

भावार्थ ।

गायत्री पृथ्वीरूप है, और पृथ्वी गायत्रीरूप है, जैसे पृथ्वी बिषे सब स्थावर जंगम भूत रहते हैं, उसी प्रकार गायत्री बिषे भी सब जगत् स्थित है, यह पृथ्वी गायत्री से पृथक् सत्ता नहीं रखती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

या वै सा पृथिवीयं वा व सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

या, वै, सा, पृथिवी, इयम्, वा, व, सा, यत्, इदम्, अस्मिन्, पुरुषे, शरीरम्, अस्मिन्, हि, इमे, प्राणाः, प्रतिष्ठिताः, एतत्, एव, न, अतिशीयन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
या	जो	जीवति	रहता है
वै	निश्चयकरके	हि	क्योंकि
सा	वह	अस्मिन्	इसी शरीर में
पृथिवी	पृथ्वीरूप गायत्री है	इमे	ये पाँचो
सा	वह	प्राणाः	प्राण
वाव	ही	प्रतिष्ठिताः	स्थित हैं
इदम्	यह	एतत्	इस शरीर को
शरीरम्	शरीर है	+ प्राणाः	प्राण
यत्	जो	एव	निश्चय करके
अस्मिन्	इस	न	नहीं
पुरुषे	पुरुष विषे	अतिशीयन्ते	उल्लंघन करते हैं

भावार्थ ।

पुरुष का शरीर गायत्रीरूप है, और जो उसके अन्दर हृदयकमल है, वह भी गायत्रीरूप है, क्योंकि हृदयकमल में

प्राण स्थित हैं, और वे प्राण हृदयकमल को उल्लंघन नहीं कर सकते हैं, तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वीमें पञ्चतत्त्व स्थित हैं, उसी प्रकार पुरुष के शरीर बिषे भी पञ्चतत्त्व स्थित हैं, और जैसे पृथ्वी गायत्रीरूप है, उसी तरह यह शरीर भी गायत्रीरूप है, और जैसे गायत्री बिषे सब जीव रहते हैं, उसी प्रकार इस शरीर के हृदयकमल में पाँचो प्राणों से संयुक्त जीव रहता है ॥३॥

मूलम् ।

यद्वैतत्पुरुषे शरीरमिदं वा व तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वा, एतत्, पुरुषे, शरीरम्, इदम्, वा, व, तत्, यत्, इदम्, अस्मिन्, अन्तः, पुरुषे, हृदयम्, अस्मिन्, हि, इमे, प्राणाः, प्रतिष्ठिताः, एतत्, एव, न, अतिशीयन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
पुरुषे	पुरुषबिषे
यत्	जो
एतत्	यह
शरीरम्	शरीर है
इदम्	वही
वाव	निश्चय करके
तत्	यह गायत्री है
+च	और
यत्	जो
इदम्	यह
अन्तः	अन्दर वाला
हृदये	हृदयकमल
अस्मिन्	इस
पुरुषे	पुरुष बिषे है
+तत्एव	वह भी
+गायत्री	गायत्री है

हि=क्योंकि	प्राणाः=वे प्राण
अस्मिन्=इसी हृदयक-मल में	एतत्=इस हृदयक-मल को
इमे=वे	न=नहीं
प्राणाः=प्राण	अतिशीयन्ते=अतिक्रमण करसक्के हैं
प्रतिष्ठिताः=स्थित हैं	

भावार्थ ।

पुरुष का जो शरीर है वह गायत्री है, और जो अन्दरवाला पुरुष बिषे हृदयकमल है वह भी गायत्री है, क्योंकि इस हृदय-कमल में प्राण स्थित हैं, वे प्राण ही माता हैं, प्राण ही पिता हैं, प्राण ही के दयासे सब इन्द्रियाँ जीती हैं, शरीर बिषे प्राणही मुख्य देवता हैं, सोई गायत्रीरूप हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्य-नूक्तम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सा, एषा, चतुष्पदा, षड्विधा, गायत्री, तत्, एतत्, ऋचा, अभ्यनूक्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा=वह		+ च=और	
एषा=यह		षड्विधा=छःप्रकारवाली	
गायत्री=गायत्री		+ कथिता=कहीगई है	
चतुष्पदा=चार चरणवाली		तत्=सोई	

एतत्=वह गायत्री ऋचा=मंत्र करके	अभ्यनूक्तम्=प्रकाशित की गई है

भावार्थ ।

जो गायत्री कहीगई है वह चार पादवाली है, और छः प्रकार वाली है, यानी वह एक मन्त्र है जिसमें छः प्रकार हैं, चार पाद हैं, वे छः प्रकार ये हैं, वाणी, प्राणी, पृथिवी, शरीर, हृदय और प्राण यह गायत्री ब्रह्मरूप हैं, इसको ऐसा मन्त्र कहता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः । पादोस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तावान्, अस्य, महिमा, ततः, ज्यायान्, च, पूरुषः । पादः, अस्य, सर्वा, भूतानि, त्रिपात्, अस्य, अमृतम्, दिवि, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ यावान्=जितना	च=और
अस्य=इस ब्रह्म का	अस्य=इस ब्रह्म का
पादः=एकचरणरूप	त्रिपात्=तीन चरण वाला
सर्वा=सम्पूर्ण	अमृतम्=अविनाशी
भूतानि=स्थावर जंगम जगत् है	+ ब्रह्म=ब्रह्मरूप पुरुष
तावान्=उतना	दिवि=प्रकाशितबुद्धि में
+ अस्याः=इसगायत्रीका	+ अस्ति= स्थित है
महिमा=विस्तार है	

+एतस्मात्=इसलिये	पूरुषः=पुरुष
ततः=तिसगायत्रीसे	ज्यायान्=श्रेष्ठतरहै

भावार्थ ।

जो कुछ स्थावर जंगम जगत् इस ब्रह्मका एक चरण है वह सब गायत्रीरूप है, परन्तु तीन चरण जो इस ब्रह्मके बाक़ी रहे हैं वह अविनाशी ब्रह्मरूप पुरुष प्रकाशवान् बुद्धिबिषे स्थित है, इस लिये यह बुद्धिस्थ पुरुष गायत्री से अतिश्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

यद्वैतद्ब्रह्मेतीदं वा व तद्योयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वा, एतत्, ब्रह्म, इति, इदम्, वा, व, तत्, यः, अयम्, बहिर्धा, पुरुषात्, आकाशः, यः, वै, सः, बहिर्धा, पुरुषात्, आकाशः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो		यः=जो	
एतत्=यह तीनपाद वाला		अयम्=यह	
ब्रह्म=ब्रह्मरूप पुरुषहै		पुरुषात्=पुरुष से	
इति=वही		बहिर्धा=बाहर	
इदम्=यह		आकाशः=आकाश है	
वाव=निश्चयकरके		+ च=और	
आकाशः=आकाश है		यः=जो	
च=और		पुरुषात्=पुरुष से	
		बहिर्धा=बाहर	

आकाशः=आकाश है	सः=वह ब्रह्म
तत्=सोई	उक्तः=कहागया है

भावार्थ ।

जो आकाश पुरुष से बाहर है वह ब्रह्मरूपी तीन पादवाला पुरुषही है, याने जो पुरुष है वह आकाश है, जो आकाश है वह पुरुष है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अयं वाव स योयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वा, व, सः, यः, अयम्, अन्तः, पुरुषः, आकाशः, यः, वै, सः, अन्तः, पुरुषे, आकाशः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	अयम्=यह बाहर का आकाश है
अयम्=यह	यः=जो
वाव=निश्चयकरके	पुरुष=पुरुष विषे
पुरुषे=शरीर विषे	अन्तः=भीतर
अन्तः=अंदर	आकाशः=आकाश है
आकाशः=आकाश है	सः=वही
सः=वह	+ बाह्यः=बाहर वाला
वाव=है	आकाशः=आकाश है

भावार्थ ।

जो पुरुष के बाहर आकाश है वही पुरुष के भीतर आकाश है, और जो भीतर आकाश है वही बाहर आकाश है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अयं वा व स योयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णमप्रवर्त्ति पूर्णामप्रर्त्तिनीᳬश्रियं लभते य एवं वेद ॥ ६ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वा, व, सः, यः, अयम्, अन्तः, हृदये, आकाशः, तत्, एतत्, पूर्णम्, अप्रवर्त्ति, पूर्णाम्, अप्रवर्त्तिनीम्, श्रियम्, लभते, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अयम् वाव	यही	यः	जो पुरुष
सः	वह	एवम्	ऊपरकहे हुये प्रकार
यः	जो	वेद	आकाश को जानता है
अन्तः	भीतर	सः	वह
हृदये	हृदय में	अप्रवर्त्तिनीम्	नाशरहित
आकाशः	आकाश है	पूर्णाम्	पूर्ण
अयम्	यही आकाश	श्रियम्	श्रीको
तत्	वह	लभते	प्राप्तहोता है
एतत्	यह		
अप्रवर्त्ति	अविनाशि		
पूर्णम्	ब्रह्म है		

भावार्थ ।

जो आकाश पुरुष के भीतर है वही पुरुष के हृदय में है, इसलिये आकाश व्यापक है, सब छोटी और बड़ी वस्तु में आकाश एकरस स्थित है, कोई स्थान या वस्तु या प्राणी नहीं है जिसमें आकाश व्यापक न हो, जो कोई इस आकाश को व्यापक और अविनाशी समझता है वह अतिश्रेष्ठ है, आकाश त्रिविध है, पहिला बाह्याकाश, दूसरा शरीराकाश है, तीसरा हृदयाकाश है, जाग्रत् अवस्था में बाहर का आकाश जीवको मदद देता है, विना इस आकाश के इन्द्रियां काम नहीं देती हैं याने पदार्थ के ज्ञान में समर्थ नहीं होती हैं, यह अवस्था दुःखरूप है, स्वप्नावस्था में शरीराकाश जीवको मदद देता है याने इसी आकाश के द्वारा पुरुष अनेक सृष्टिको रच करके विलास करता है, यह अवस्था भी दुःखद है, सुषुप्ति अवस्था में हृदयाकाश करके पुरुष आनन्दको प्राप्त होता है यह अवस्था आनन्ददायिनी है, क्योंकि इसमें अन्तःकरण, मन, बुद्धि और अहंकार लय रहता है ॥ ६ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वै, एतस्य, हृदयस्य, पञ्च, देवसुषयः, सः, यः, अस्य, प्राङ्सुषिः, सः, प्राणः, तत्, चक्षुः, सः,

आदित्यः, तत्, एतत्, तेजः, अन्नाद्यम्, इति, उपासीत, तेजस्वी, अन्नादः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
तस्य=तिस	आदित्यः=सूर्य है
ह वा=ही	तत्=वही
एतस्य=इस	एतत्=यह
हृदयस्य=हृदयकमलके	तेजः=तेज
पञ्च=पांच	+च=और
देवसुषयः=देवद्वार हैं	अन्नाद्यम्=बल का देने वाला है
अस्य=इस हृदयकमल का	इति=इस प्रकार
यः=जो	उपासीत=उपासना करे
सः=वह	यः=जो
प्राङ्सुषिः=पूर्वतरफ़ के द्वाराधिष्ठाता देवता है	एवम्=इस प्रकार
सः=वह प्राणदेवहै	वेद=जानता है यानेउपासना करता है
तत्=वही	+सः=वह
चक्षुः=चक्षु है	तेजस्वी=तेजस्वी
+च=और	अन्नादः=शक्तिवाला
सः=वही	भवति=होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमलके पांच द्वार हैं, जो पूर्व की तरफ़ का अधिष्ठाता देवता है वह प्राण है, वही चक्षु और सूर्य है, वही तेज और बल का देनेवालाहै, ऐसा समझकर उपासना करे, और जो

इस प्रकार जानता हुवा उपासना करता है वह तेजस्वी और शक्तिवाला होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ योस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रꣳ स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान् यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, दक्षिणः, सुषिः, सः, व्यानः, तत्, श्रोत्रम्, सः, चन्द्रमाः, तत्, एतत्, श्रीः, च, यशः, च, इति, उपासीत, श्रीमान्, यशस्वी, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
अस्य	इस हृदयकमल का
यः	जो
दक्षिणः	दक्षिण तरफ़ का
सुषिः	देवद्वार है
सः	वह
व्यानः	व्यान वायु अधिष्ठाता देवता है
तत्	वही
श्रोत्रम्	कर्ण है
सः	वही
चन्द्रमाः	चन्द्रमा है
तत्	वही
एतत्	यह
श्रीः	श्री है
+ च	और
यशः	यश है
इतिच	इस प्रकार
उपासीत	उपासना करै
यः	जो

एवम्=इस प्रकार	+सः=वह
वेद=जानता है याने उपासना करता है	श्रीमान्=श्रीमंत
	यशस्वी=यशस्वी
	भवति=होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल के दक्षिण तरफ़ का जो द्वार है, उसका अधिष्ठाता देवता व्यान वायु है, वही कर्ण है, वही चंद्रमा है, वही श्री है, और यश भी है, ऐसा समझ कर उपासना करे, और जो इस प्रकार जानता हुवा उपासना करता है, वह तेजस्वी और शक्तिवाला होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ योस्य प्रत्यङ्सुषिः सोपानः सा वाक्सोऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, प्रत्यङ्सुषिः, सः, अपानः, सा, वाक्, सः, अग्निः, तत्, एतत्, ब्रह्मवर्चसम्, अन्नाद्यम्, इति, उपासीत, ब्रह्मवर्चसी, अन्नादः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=अब	यः=जो
अस्य=इस हृदयकमल का	प्रत्यङ्सुषिः=पश्चिम तरफ़ का द्वार है

सः=वह	इति=इस प्रकार
अपानः=अपानवायु अधिष्ठाता देवता है	उपासीत=उपासनाकरै
सा=वही	यः=जो
वाक्=वाणी है	एवम्=कहेहुये प्रकार
सः=वही	वेद=जानता है याने उपासनाकरताहै
अग्निः=अग्नि है	+सः=वही
तत्=वही	ब्रह्मवर्चसी=ब्रह्मतेजवाला
एतत्=यह	अन्नादः=भोजन शक्ति वाला
ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेज है	भवति=होता है
अन्नाद्यम्=बल है	

भावार्थ ।

हृदयकमल के पश्चिम तरफ़ का जो द्वार है, उसका अधिष्ठाता देवता अपान वायु है, वही वाणी है, वही अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है और बल है, इस प्रकार जानकर उपासना करै, और जो इस प्रकार जानता हुवा उपासना करता है, वह ब्रह्म तेजवाला और भोजनशक्तिवाला होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ योस्योदङ्सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्त्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्त्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, उदङ्सुषिः, सः, समानः, तत्,

मनः, सः, पर्जन्यः, तत्, एतत्, कीर्त्तिः, च, व्युष्टिः, च, इति, उपासीत, कीर्त्तिमान्, व्युष्टिमान्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	कीर्त्तिः	यश है
अस्य	इस हृदयकमल का	+च	और
यः	जो	व्युष्टिः	लावण्य
उदङ्सुषिः	उत्तर तरफ़ का द्वार है	च	भी
सः	वह	+ अस्ति	है
समानः	समानवायु अधिष्ठाता देवता है	इति	इस प्रकार
तत्	वही	उपासीत	उपासना करै
मनः	मन है	यः	जो
सः	वही	एवम्	कहे हुये प्रकार
पर्जन्यः	वृष्टि है	वेद	जानता है
तत्	वही	+सः	वही
एतत्	यह ब्रह्म	कीर्त्तिमान्	यशस्वी
		+ च	और
		व्युष्टिमान्	कान्तिमान्
		भवति	होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल के उत्तर तरफ़ का जो द्वार है, उसका अधिष्ठाता देवता समान वायु है, वही मन है, वही वृष्टि है, वही ब्रह्म है, वही यश और लावण्य है, इस प्रकार जानकर उपासना करै और जो इस प्रकार जानता हुवा उपासना करता है, वह यशस्वी और कान्तिवाला होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान् भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, अस्य, ऊर्ध्वः, सुषिः, सः, उदानः, सः, वायुः, सः, आकाशः, तत्, एतत्, ओजः, च, महः, च, इति, उपासीत, ओजस्वी, महस्वान्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद
अस्य	इस हृदय कमल का
यः	जो
ऊर्ध्वः	ऊपर का
सुषिः	द्वार है
सः	वह
उदानः	उदान वायु है
सः	वही
वायुः	मुख प्राण है
सः	वही
आकाशः	आकाश है
तत्	वही
एतत्	यह
ओजः	बल है
च	और
महः	तेज है
इति	इस प्रकार
उपासीत	उपासना करे
यः	जो
एवम्	कहेहुये प्रकार
वेद	जानता है
+सः	वह पुरुष
ओजस्वी	बलवान्
महस्वान्	तेजस्वी
भवति	होता है

भावार्थ ।

इस हृदयकमल के ऊपर का जो द्वार है, उसका अधिष्ठाता देवता उदानवायु है, वही मुख्य प्राण है, वही आकाश है, वही बल और तेज है, ऐसा समझकर उपासना करै, और जो कहे हुये प्रकार जानकर उपासना करता है, वह बलवान् और तेजस्वी होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

ते, वा, एते, पञ्च, ब्रह्मपुरुषाः, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपाः, सः, यः, एतान्, एवम्, पञ्च, ब्रह्मपुरुषान्, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, वेद, अस्य, कुले, वीरः, जायते, प्रतिपद्यते, स्वर्गम्, लोकम्, यः, एतान्, एवम्, पञ्च, ब्रह्मपुरुषान्, स्वर्गस्य, लोकस्य, द्वारपान्, वेद ॥

अन्वयः　पदार्थ	अन्वयः　पदार्थ
ते=वे	स्वर्गस्य=स्वर्ग
एते=ये	लोकस्य=लोक के
पञ्च=पांचों	द्वारपाः=द्वारपाल हैं
वा=निश्चय करके	यः=जो
ब्रह्मपुरुषाः=ब्रह्मरूपीपरुष	स्वर्गस्य=स्वर्ग

लोकस्य=लोक के	अस्य=उसके
एतान्=इन्हीं	कुले=कुलमें
पञ्च=पांचों	वीरः=वीर पुरुष
द्वारपान्=द्वारपालों को	जायते=उत्पन्न होताहै
ब्रह्मपुरुषान्=हृदयसम्बन्धी ब्रह्मपुरुष	+च=और
	सः=वह स्वयं
एवम्=ऊपर कहे हुये प्रकार	स्वर्गम्=स्वर्ग
	लोकम्=लोक को
वेद=जानता है	प्रतिपद्यते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

ये पांचों ब्रह्मरूपी प्राणादि पुरुष स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं, जो स्वर्गलोक के इन्हीं पांचों द्वारपालों को हृदयसम्बन्धी ब्रह्मपुरुष ऊपर कहेहुये प्रकार जानता है, उसके वंश में वीरपुरुष उत्पन्न होते हैं और वह स्वयं देहत्याग के पीछे स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तःपुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रै-तदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अतः, परः, दिवः, ज्योतिः, दीप्यते, विश्वतः, पृष्ठेषु, सर्वतः, पृष्ठेषु, अनुत्तमेषु, लोकेषु, इदम्, वाव, तत्, यत्, इदम्, अस्मिन्, अन्तः, पुरुषे, ज्योतिः, तस्य, एषा, दृष्टिः, यत्र, एतत्, अस्मिन्, शरीरे, संस्पर्शेन, उष्णिमानम्, विजानाति, तस्य, एषा, श्रुतिः, यत्र, एतत्, कर्णौ, अपिगृह्य, निनदम्, इव, नदथुः, इव, अग्नेः, इव, ज्वलतः, उपशृणोति, तत्, एतत्, दृष्टम्, च, श्रुतम्, च, इति, उपासीत, चक्षुष्यः, श्रुतः, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	उत्तमेषु	श्रेष्ठ से श्रेष्ठ
यत्	जो	लोकेषु	सत्य लोकादिकों में है
इदम्	यह	तत्	सोई
अन्तः	अन्तर	इदम्	यह
ज्योतिः	ज्योति है	पुरुषे	पुरुष विषे
+तत्	वह	अन्तः	हृदयकमल में
दिवः	स्वर्ग से	स्थितः	स्थित है
परः	आगे	+च	और
विश्वतः	संसार से	+यत्	जो
पृष्ठेषु	ऊपर	ज्योतिः	ज्योतिस्वरूप है
सर्वतः	सब के	तस्य	उसीका
पृष्ठेषु	ऊपर	लिङ्गम्	चिह्न
अनुत्तमेषु	अति उत्तम		

एषा=यह
दृष्टिः=नेत्र है
एतत्=यही नेत्र बिषे पुरुष
यत्र=जिस समय
अस्मिन्=इस
शरीरे=शरीर से
संस्पर्शेन=स्पर्श करके
उष्णिमानम्=उष्णता को
विजानाति=जानता है
तस्य=तिसीको
एषा=यह
श्रुतिः=ज्ञान होना है
च=और
यत्र=जब
+शुश्रूषति=पुरुष सुननेकी इच्छा करता है
+तदा=तब
एतत्=वह
कर्णौ=दोनों कानों को
अपिगृह्य=हाथसे दाबकर
निनदम्=रथ शब्द के
इव=ऐसा
+शृणोति=सुनता है और
नदथुः=बैल के शब्द के
इव=ऐसा
ज्वलतः=जलती हुई
अग्नेः=आग के शब्द की
इव=तरह
उपशृणोति=सुनता है
तत्=उसी
एतत्=इस
दृष्टम्=देखे
श्रुतम्=सुनेहुये पुरुष को
इति=इस प्रकार
उपासीत=उपासना करे
यः=जो
एवम्=इस तरह
वेद=जानता है
+सः=वह
चक्षुष्यः=दर्शनीय
+च=और
विश्रुतः=प्रसिद्ध
भवति=होता है

भावार्थ ।

जो ज्योति स्वर्ग से ऊपर चमकती है, और जो सबसे ऊपर है,

और जो अति उत्तम और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सत्यलोकादिकों में है, सोई इस पुरुष के हृदय कमल में स्थित है, सोई नेत्र बिषे है, जो पुरुष नेत्र बिषे है, सोई इस शरीर की उष्णताको स्पर्श करके जानता है, तिसी करके उष्णता का ज्ञान होता है, और जबतक उष्णता रहती है, तबतक जीवत्व रहता है, जब इस शरीर बिषे स्थित पुरुष सुनने की इच्छा करता है, तब दोनों कानों को हाथों से दबाकर रथशब्द, बैलशब्द और अग्निशब्द की तरह सुनता है, ऐसे सुननेवाले व देखनेवाले पुरुष की उपासना करे, जो इस प्रकार जानता हुवा उपासना करता है वह दर्शनीय और प्रसिद्ध होता है ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत १

पदच्छेदः ।

सर्वम्, खलु, इदम्, ब्रह्म, तज्जलान्, इति, शान्तः, उपासीत, अथ, खलु, क्रतुमयः, पुरुषः, यथाक्रतुः, अस्मिन्, लोके, पुरुषः, भवति, तथा, इतः, प्रेत्य, भवति, सः, क्रतुम्, कुर्वीत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तज्जलानिति	= जिससे जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें यह जगत् लीन होता है, जिससे इस जगत् का पालन पोषण होता है, सोई	यथाक्रतुः	= अपनी वासना के अनुसार
इदम्	= यह	अस्मिन्	= इस
सर्वम्	= सर्व नाम रूपात्मक जगत्	लोके	= लोकमें
ब्रह्म	= ब्रह्म है	भवति	= जीताहै और
+ इति	= इस प्रकार	तथा	= वैसेही अपनी इच्छाके अनुसार
शान्तः	= रागद्वेप रहित होताहुआपुरुष	पुरुषः	= पुरुष
उपासीत	= उपासना करै	इतः	= इससे
खलु	= क्योंकि	प्रेत्य	= मर करके
क्रतुमयः	= बुद्धिविशिष्ट	+ अपि	= भी
पुरुषः	= पुरुष	भवति	= उत्पन्न होता है
		अतः	= इसलिये
		अथ	= अब
		सः	= वह उपासक
		क्रतुम्	= आगे कहेहुये विश्वासको
		कुर्वीत	= करै

भावार्थ ।

जिससे जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें यह जगत् लीन होता है, जिस करके जगत् का पालन पोषण होता है, ऐसा यह सब नाम रूपात्मक जगत् ब्रह्म है, ऐसा समझ कर रागद्वेपरहित होता

हुवा पुरुष ब्रह्मकी उपासना करे, क्योंकि बुद्धिविशिष्ट पुरुष जैसी वासना करता है उसी वासना के अनुसार लोकमें पैदा होता है, ऐसा विश्वास उपासक रक्खे, प्राण से मतलब यहां लिंगशरीर से है, यह प्रकाशस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, यह सत्य संकल्प वाला है, जिस इच्छाको यह चाहता है उसको प्राप्त होता है, यह आकाशवत् व्यापक है, यह सब कामनाओं का कर्ता है, क्योंकि यह लिंगशरीर चैतन्य के आश्रय है ॥ १ ॥

मूलम् ।

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोवाक्यनादरः ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

मनोमयः, प्राणशरीरः, भारूपः, सत्यसंकल्पः, आकाशात्मा, सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वगन्धः, सर्वरसः, सर्वम्, इदम्, अभ्यात्तः, अवाकी, अनादरः ॥

अन्वयः	पदार्थ
मनोमयः=	बुद्धिसे भरा है जो याने सर्वज्ञ है जो
प्राणशरीरः=	जिसका शरीर शक्तिसे भराहुवा है याने सर्वशक्तिमान्‌है जो
भारूपः=	स्वरूप है प्रकाश जिसका
सत्यसंकल्पः=	सत्यहै संकल्प जिसका
आकाशात्मा=	आकाशकी तरह व्यापक है जो

* नोट—इसका अन्वय संबन्ध अगले मंत्रसे है ।

सर्वकर्मा=सब कर्मों का करता है जो
सर्वकामः=संपूर्ण कामनाओं से भरा है जो
सर्वगन्धः=संपूर्ण गन्ध भरे हैं जिसमें
सर्वरसः=संपूर्ण रस भरे हैं जिसमें
सर्वम्=संपूर्ण
इदम्=यह जगत्
अभ्यात्तः=जिस करके व्याप्त है
अवाकी=वागादि इन्द्रिय नहीं हैं जिसमें याने बेइन्द्रिय के देखता सुनता है जो
अनादरः=पक्षपात रहित है जो

भावार्थ ।

बुद्धि से भरा है जो, याने सर्वज्ञ है जो, सर्वशक्तिमान् है जो, प्रकाशितरूप है जो, सत्य है संकल्प जिसका, आकाश की तरह व्यापक है जो, सबकर्मों का कर्त्ता है जो, सब कामनाओं से भरा है जो, पक्षपातरहित है जो, अथवा नित्यतृप्त होने के कारण किसी विषय की इच्छा नहीं है जिसको ॥ २ ॥

मूलम् ।

एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा, एष म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, अणीयान्,

व्रीहेः, वा, यवात्, वा, सर्षपात्, वा, श्यामाकात्, वा, श्यामाकतण्डुलात्, वा, एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, ज्यायान्, पृथिव्याः, ज्यायान्, अन्तरिक्षात्, ज्यायान्, दिवः, ज्यायान्, एभ्यः, लोकेभ्यः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एषः=यह पूर्वोक्तगुण वाला	वा=भी
यः=जो	अणीयान्=छोटा है
आत्मा=ब्रह्म	च=और
मे=मेरे	+यः=जो
अन्तः=भीतर	एषः=यह
हृदये=हृदय बिषे	आत्मा=आत्मा
+अस्ति=स्थित है	मे=मेरे
+सः=वह	अन्तः=भीतर
व्रीहेः=धान से	हृदये=हृदय बिषे
वा=अथवा	+अस्ति=स्थित है
यवात्=जौ से	सः=वह
वा=अथवा	पृथिव्याः=पृथ्वी से
सर्षपात्=सरसों से	ज्यायान्=बड़ा है
वा=अथवा	अन्तरिक्षात्=आकाश से
श्यामाकात्=सांवां से	ज्यायान्=बड़ा है
वा=अथवा	दिवः=स्वर्ग से
श्यामाकतण्डुलात्=सांवां के चावल से	ज्यायान्=बड़ा है

एभ्यः=इन	एवम्=ऊपर कहे हुये
लोकेभ्यः=लोकों से	प्रकार
ज्यायान्=बड़ा है	उपासीत=उपासना करे

भावार्थ ।

जो पूर्वोक्त गुणवाला ब्रह्म मेरे हृदय विषे स्थित है, वह चैतन्य ब्रह्म धान से, जौ से, सरसों से, सांवा से, सांवा के चावल से भी छोटा है, और जो मेरे हृदयकमल में स्थित है, वह पृथ्वी, आकाश और स्वर्गादिक से बड़ा है, ऐसे ब्रह्मकी उपासना करे ॥ ३ ॥

मूलम् ।

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्याद्द्धा न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वगन्धः, सर्वरसः, सर्वम्, इदम्, अभ्यात्तः, अवाकी, अनादरः, एषः, मे, आत्मा, अन्तः, हृदये, एतत्, ब्रह्म, एतम्, इतः, प्रेत्य, अभिसंभवितास्मि, इति, यस्य, स्यात्, अद्धा, न, विचिकित्सा, अस्ति, ह, स्म, आह, शाण्डिल्यः, शाण्डिल्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सर्वकर्मा	सबकर्मों का करनेवाला है जो	हृदये	हृदय बिषे
सर्वकामः	सब कामनाओं से भरा है जो	+अस्ति	स्थित है
सर्वगन्धः	सब गन्धों से पूर्ण है जो	एतत्	सोई
सर्वरसः	संपूर्ण रसों से भरा हुआ है जो	ब्रह्म	ब्रह्म है
सर्वम्	संपूर्ण	इतः	इस शरीर से
इदम्	यह जगत्	प्रेत्य	परलोकमें जाकर
अभ्यात्तः	व्याप्त है जिस करके	एतम्	उसीआत्माको
अवाकी	वागादीन्द्रिय से रहित है जो	अभिसंभवितास्मि	साक्षात् करूंगा मैं
अनादरः	पक्षपात से रहित है जो	इति	इस प्रकार
एषः	यही	यस्य	जिसको
मे	मेरा	श्रद्धा	विश्वास
आत्मा	आत्मा	स्यात्	हो
अन्तः	मेरे भीतर	+तस्य	उसको
		विचिकित्सा	संशय
		न	नहीं
		अस्ति	है
		इति	इस प्रकार
		शाण्डिल्यः	शाण्डिल्य ऋषि
		आहस्म	कहता भया

भावार्थ ।

सबकर्मों का करनेवाला है जो, सब कामनाओं से भरा है जो,

सब गंधों से पूर्ण है जो, सब रसों से भरा हुवा है जो, जिस करके सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, इन्द्रियादिकों से रहित है जो, ऐसा ब्रह्म मेरे हृदयविषे स्थित है, तिसी ब्रह्मको मैं शरीर त्यागने के पश्चात् साक्षात् करूंगा, जिस उपासक का ऐसा विश्वास है, उसको किसी प्रकार का संशय देह रखते हुए भी नहीं है, शांडिल्यऋषि का ऐसा मत है ॥ ४ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳस एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳश्रितम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अन्तरिक्षोदरः, कोशः, भूमिबुध्नः, न, जीर्यति, दिशः, हि, अस्य, स्रक्तयः, द्यौः, अस्य, उत्तरम्, बिलम्, सः, एषः, कोशः, वसुधानः, तस्मिन्, विश्वम्, इदम्, श्रितम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अन्तरिक्षोदरः	= आकाश है उदर जिसका	दिशः	= दिशा हैं यानी हाथ हैं
+ च	= और	+ च	= और
भूमिबुध्नः	= पृथ्वी है पेंदा या पाद जिसका ऐसे	अस्य	= इसके
		उत्तरम्	= ऊपरका
		बिलम्	= छिद्र या ब्रह्मरंध्र
अस्य	= इसकोश के	द्यौः	= स्वर्ग है
स्रक्तयः	= चारोंकोने	सः	= वही

एषः=यह	श्रितम्=स्थित है
कोशः=कोशरूपी	इति=ऐसा
वसुधानः=भंडार है	+अयम्=यह
+च=और	कोशः=कोश
तस्मिन्=तिसी कोश में	हि=निश्चयकरके
इदम्=यह	न=नहीं
विश्वम्=जगत्	जीर्यति=नष्ट होता है

भावार्थ ।

इस विराट् पुरुष का उदर आकाश है, पृथ्वी पाद हैं, चारों कोने इसके दिशा हैं यानी हाथ हैं, इसके ऊपर का छिद्र यानी ब्रह्मरंध्र स्वर्ग है, ऐसा यह कोशभंडार है जिसमें संपूर्ण जगत् स्थित है, इस कोशका नाश कभी नहीं है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नामदक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूतानामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳ रोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, प्राची, दिक्, जुहूः, नाम, सहमाना, नाम, दक्षिणा, राज्ञी, नाम, प्रतीची, सुभूता, नाम, उदीची, तासाम्, वायुः, वत्सः, सः, यः, एतम्, एवम्, वायुम्, दिशाम्, वत्सम्, वेद, न, पुत्ररोदम्, रोदिति, सः, अहम्, एतम्, एवम्, वायुम्, दिशाम्, वत्सम्, वेद, मा, पुत्ररोदम्, रुदम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्य	तिस विराट् पुरुष का	तासाम्	उन दिशाओं का
प्राची	पूर्व	वायुः	पवन
दिक्	दिशा	वत्सः	लड़का है
नाम	प्रसिद्ध	यः	जो
जुहूः	जुहू है यानी जिस तरफ यजमानमुख करके यज्ञ करता है	एतम्	इस
दक्षिणा नाम	दक्षिणवाली दिशा	वायुम्	वायुको
सहमाना	यमपुरी है	एवम्	ऊपर कहेहुये प्रकार
प्रतीची नाम	पश्चिम नाम वाली दिशा	दिशाम्	दिशाओं का
राज्ञी	राजनी है	वत्सम्	लड़का
उदीचीनाम	उत्तर नाम वाली दिशा	वेद	जानता है
सुभूता	सुभूता है यानी कुबेरादिकों करके आश्रित है	सः	वह
		पुत्ररोदम्	पुत्र मरणनिमित्त
		न	नहीं
		रोदिति	रुदन करता है
		सः	वह पुत्र जीवितार्थी
		अहम्	मैं
		एतम्	इस
		एवम्	ऊपर कहेहुये प्रकार

वायुम्=वायुको	वेद=जानता हूं
दिशाम्=दिशाओं का	पुत्ररोदम्=पुत्रमरणनिमित्त
वत्सम्=लड़का	मा रुदम्=मैं न रुदनकरूं

भावार्थ ।

इस विराट् पुरुष का पूर्व दिशा जुहू है, इस दिशाके तरफ यजमान मुख करके यज्ञकरता है, दक्षिण दिशा यमपुरी है, जिसमें कर्म फलका भोग होता है, पश्चिम दिशा राजनी है, जिसमें वरुण देवता वास करता है, उत्तर दिशा सुभूता है, जिसमें धनेश कुबेर देवता रहता है, इन चारोंदिशाओं का पुत्र वायु है, क्योंकि इन चारोंदिशाओं से वायु उत्पन्न होता है. इसालिये जो उपासक इस वायु को दिशाओं का पुत्र जानता है, वह पुत्र मरण निमित्त रुदन नहीं करता है, यानी उसका पुत्र दीर्घायुवाला होता है, और उसको पुत्रशोक नहीं होता है, मैं ऊपर कहे हुये प्रकार वायुको दिशाओं का पुत्र जानता हूं, मुझको पुत्रशोक कभी नहीं होगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अरिष्टम्, कोशम्, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, प्राणम्, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, भूः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, भुवः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना, स्वः, प्रपद्ये, अमुना, अमुना, अमुना ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ अहं	मैं
अरिष्टम्	अविनाशी
कोशम्	त्रैलोक्यात्मक कोशके
अमुना	इसही
अमुना	इसही
अमुना	इसही
+ पुत्रेण	पुत्रके निमित्त
प्रपद्ये	शरणहूं
अमुना	इसही
अमुना	इसही
अमुना	इसही पुत्रके निमित्त
प्राणम्	मुख्यप्राण के
प्रपद्ये	शरण होताहूं
अमुना	इसही
अमुना	इसही
अमुना	इसही पुत्रके निमित्त
भूः	भूर्लोकके अधिष्ठात्री देवताके
प्रपद्ये	शरण होताहूं
अमुना	इसही
अमुना	इसही
अमुना	इसही पुत्रके निमित्त
भुवः	भुवर्लोक के अधिष्ठात्री देवता के
प्रपद्ये	शरण होता हूं
अमुना	इसही
अमुना	इसही
अमुना	इसही पुत्रके निमित्त
स्वः	स्वर्लोकाधिष्ठात्रीदेवता के
प्रपद्ये	शरण होताहूं

भावार्थ ।

इसी अपने पुत्रनिमित्त मैं अविनाशी त्रैलोक्यात्मक कोश के शरण हूं, इसही अपने पुत्रके निमित्त मुख्य प्राणके शरण हूं, इसही अपने पुत्रके निमित्त मैं भूर्लोकाधिष्ठात्री देवता के शरण हूं, इसही अपने पुत्रके निमित्त भुवर्लोकाधिष्ठात्री देवता के शरण हूं, इसी

अपने पुत्रके निमित्त स्वर्लोक की अधिष्ठात्री देवताके शरण हूं ॥३॥

मूलम् ।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वाइदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्, अवोचम्, प्राणम्, प्रपद्ये, इति, प्राणः, वै, इदम्, सर्वम्, भूतम्, यत्, इदम्, किंच, तम्, एव, तत्, प्रापत्सि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राणम्	मुख्य प्राणके	सर्वम्	सब
प्रपद्ये	मैं शरण हूं	भूतम्	स्थावर जंगमात्मकजगत् है
इति	ऐसा	सः	वही
यत्	जो	प्राणः	प्राण है
अहम्	मैं	तत्	तिसी
अवोचम्	कहताभया	तम् एव	तिसी सर्वात्मक प्राणके
वै	निश्चय करके	+अहम्	मैं
इदम् इदम्	यह	प्रापत्सि	शरण हूं
यत्	जो		
किंच	कुछ		

भावार्थ ।

मुख्य प्राणके मैं शरण हूं, ऐसा जो मैंने कहा उससे मतलब यह है कि जो कुछ स्थावर जंगम जगत् है, वही प्राण है, तिसी सर्वात्मक प्राणके मैं शरण हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, भूः, प्रपद्ये, इति, पृथिवीम्, प्रपद्ये, अन्तरिक्षम्, प्रपद्ये, दिवम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	+मम	मेरा
भूः	भूर्लोक के	+अर्थः	मतलब है कि
प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं	अहं	मैं
इति	इस प्रकार	पृथिवीम्	पृथ्वी के
यत्	जो	प्रपद्ये	शरण होता हूं
+अहम्	मैं	अन्तरिक्षम्	आकाश के
अवोचम्	कहता भया	प्रपद्ये	शरण होता हूं
तत्	उस	दिवम्	स्वर्ग के
अवोचम्	कहे हुये से	प्रपद्ये	शरण होता हूं

भावार्थ ।

"अब मैं भूर्लोक के शरण हूं" जो इसप्रकार मैंने कहाहै उससे मेरा मतलब यह है कि मैं पृथ्वी के शरण हूं, आकाश के शरण हूं, और स्वर्ग के शरण हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, भुवः, प्रपद्ये, इति, अग्निम्, प्रपद्ये, वायुम्, प्रपद्ये, आदित्यम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	+मम	मेरा
भुवः	भुवर्लोक के	+अर्थः	मतलब है कि
प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं	अग्निम्	अग्नि के
इति	इस प्रकार	प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं
यत्	जो	वायुम्	वायु के
अहम्	मैं	प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं
अवोचम्	कहता भया	आदित्यम्	सूर्य के
तत्	तिस	प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं
अवोचम्	कहे हुये से		

भावार्थ ।

जो मैंने कहा कि मैं भुवर्लोक के शरण हूं उससे मेरा मतलव यह है कि मैं अग्नि की, वायु देवता की, सूर्य देवता की शरण हूँ ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यदवोचꣳ स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ ७ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अवोचम्, स्वः, प्रपद्ये, इति, ऋग्वेदम्,

प्रपद्ये, यजुर्वेदम्, प्रपद्ये, सामवेदम्, प्रपद्ये, इति, एव, तत्, अवोचम्, तत्, अवोचम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	+ मम	मेरा
स्वः	स्वर्लोक के	+ अर्थः	मतलब है कि
प्रपद्ये	शरणको होता हूं मैं	ऋग्वेदम्	ऋग्वेद के
इति एव	इसी प्रकार	प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं
यत्	जो	यजुर्वेदम्	यजुर्वेद के
अवोचम्	कहताभया मैं	प्रपद्ये	शरणहोताहूंमैं
तत्	तिस	सामवेदम्	सामवेद के
अवोचम्	कहे हुये से	प्रपद्ये	शरणहोता हूं मैं

भावार्थ ।

जो मैंने कहा कि मैं स्वर्गलोक की शरण हूं, उससे मेरा मतलब यह है कि मैं ऋग्वेद की शरण हूं, यजुर्वेद की शरण हूं, सामवेद की शरण हूं ॥ ७ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंᳫँशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंᳫँशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदᳫँ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषः, वा, व, यज्ञः, तस्य, यानि, चतुर्विंशति-

वर्षाणि, तत्, प्रातःसवनम्, चतुर्विंशत्यक्षरा, गायत्री, गायत्रम्, प्रातःसवनम्, तत्, अस्य, वसवः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वा, व, वसवः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, वासयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
पुरुषः	पुरुष
वाव	निश्चय करके
यज्ञः	यज्ञ रूप है
तस्य	उस यज्ञ पुरुष के
यानि	जो
चतुर्विंशति वर्षाणि	आयु के पहिले चौबीस वर्ष हैं
तत्	वह
प्रातःसवनम्	प्रातःसवन है
चतुर्विंशत्यक्षरा	चौबीस अक्षर वाला
गायत्री	गायत्रीछन्द
प्रातःसवनम्	प्रातःसवन है
गायत्रम्	क्योंकि प्रातःसवन के मंत्र गायत्री छन्द वाले होते हैं
अस्य	इसी यज्ञपुरुष के
तत्	उस प्रातःसवन में
वसवः	वसुदेवता
अन्वायत्ताः	स्थित हैं
एते	वे
वसवः	वसु
वाव	निश्चय करके
प्राणाः	प्राण हैं
+ते	वे प्राण
इदम्	इस
सर्वम्	संपूर्ण जगत् को
वासयन्ति	अपने विषे स्थित रखते हैं

भावार्थ ।

अब मंत्र उपासक की आयु बढ़ानेका यत्न बताता है, क्योंकि अगर वह जिन्दा न रहा तो पुत्र से कुछ लाभ नहीं है, पुरुषही यज्ञ है, और उसकी आयु चौबीस वर्षतक की यज्ञपुरुष का प्रातःसवन है, जिसका सम्बन्ध चौबीस अक्षरवाले गायत्रीछन्द से है, क्योंकि प्रातःसवन कर्म में गायत्रीछन्दवाले मंत्र पढ़े जाते हैं, (यह गायत्रीछन्दवाले मंत्र ब्रह्मगायत्रीमंत्र से भिन्न हैं) प्रातःसवन कर्म में वसुदेवता रहते हैं, और वे वसु प्राणरूप हैं, तिस प्राण में संपूर्ण जगत् स्थित है, चौबीस अक्षरवाला गायत्रीछन्द और पुरुषकी चौबीस वर्ष की आयु में एकता है, और यही कारण है कि पुरुष चौबीस वर्ष की आयु तक प्रातःसवन कर्म करता है, और यज्ञरूप होजाता है, प्रातःसवनकी अधिष्ठात्री देवता वसु हैं और वसुही प्राण हैं, जिसके आश्रय सब जीव जीते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत्, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, वसवः, इदम्, मे, प्रातःसवनम्, माध्यंदिनम्, सवनम्, अनुसंतनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, वसूनाम्, मध्ये, यज्ञः, विलोप्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्	इस
वयसि	चौबीस वर्षकी अवस्था में
चेत्	अगर
तम्	उस यज्ञकर्त्ता को
किञ्चित्	रोगादिक
उपतपेत्	दुःख देवे तो
सः	वह यज्ञकर्त्ता
ब्रूयात्	कहे कि
+ हे	हे
प्राणाः	प्राण
वसवः	हे वसु
मे	मेरे
इदम्	इस
प्रातःसवनम्	प्रातर्यज्ञ की आयुको
माध्यंदिनम् सवनम्	मध्याह्न यज्ञ की आयु तक
अनुसंतनुत	विस्तृत करो
इति	ताकि
प्राणानाम्	प्राणरूपी
वसूनाम्	वसुदेवताओं के
मध्ये	सामने
अहम्	मैं
यज्ञः	यज्ञरूप
विलोप्सीय मा	नष्ट न होऊं
इति	इसप्रकार प्रार्थना करने से
सः	वह
ततः	उस रोगादिक से
उत्	रहित
एति	होजाता है
+च	और
अगदः	नीरोग
हैव	अवश्य
भवति	होजाता है

भावार्थ ।

इस चौबीस वर्ष की अवस्था में यदि यज्ञकर्त्ता को कोई

रोगादिक उत्पन्न होवे तो वह कहे कि हे प्राण ! हे वसु ! मेरे इस प्रातःकालकी यज्ञसम्बन्धी आयुको मध्याह्नकाल के यज्ञकी आयु तक जो चवालीस वर्ष तक रहती है, बढ़ा दो ताकि यज्ञरूप मैं प्राणरूपी वसुदेवताओं के सम्मुख नष्ट न होऊं, इसप्रकार प्रार्थना करने से वह यज्ञकर्त्ता रोगरहित होजाता है, याने उसकी तन्दुरुस्ती बनी रहती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यानि, चतुश्चत्वारिंशत्वर्षाणि, तत्, माध्यंदिनम्, सवनम्, चतुश्चत्वारिंशदक्षरा, त्रिष्टुप्, त्रैष्टुभम्, माध्यंदिनम्, सवनम्, तत्, अस्य, रुद्राः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वा, व, रुद्राः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, रोदयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
यानि	जो
चतुश्चत्वारिंशत् वर्षाणि	उस पुरुषकी आयुके चवालीस वर्ष याने पच्चीस से अड़सठ तक हैं
तत्	वह
माध्यंदिनम्	मध्याह्नकाल का
सवनम्	यज्ञ है
चतुश्चत्वारिंशदक्षरा	चवालीस हैं अक्षर जिस में ऐसा
त्रिष्टुप्	त्रिष्टुप्छन्द

माध्यंदिनम्=मध्याह्न सम्बन्धी	अन्वायत्ताः=प्रविष्ट हैं याने उस में वास करते हैं
त्रैष्टुभम्=त्रिष्टुप्छन्द के मंत्रवाला	प्राणाः=प्राण
सवनम्=यज्ञ है	वाव=ही
रुद्राः=रुद्रदेवता	रुद्राः=रुद्र हैं
अस्य=इसी यज्ञपुरुष के	हि=क्योंकि
	एते=ये रुद्र
	इदम्=इस
तत्=उस माध्यंदिन सवन में	सर्वम्=सब जगत्को
	रोदयन्ति=रुलाते हैं

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता के मध्याह्नकालिक यज्ञ की आयु पच्चीसवर्ष से चवालीस वर्ष तक है, इस आयु की ऐक्यता चवालीस अक्षरवाले त्रिष्टुप्छन्दके मंत्रों से है जिस करके मध्याह्नकालका यज्ञ किया जाता है, इस मध्याह्निक यज्ञ बिषे रुद्रदेवता रहते हैं, और वे प्राणरूप हैं, क्योंकि वे रुद्रदेवता इस संपूर्ण आधेयरूप जगत् का आधार हैं, और वही सब जीवों के दुःख के कारण हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत्, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, रुद्राः, इदम्, मे, माध्यंदिनम्, सवनम्, तृतीयसवनम्, अनुसंतनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, रुद्राणाम्, मध्ये, यज्ञः, विलोप्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्	इस
वयसि	चवालीसवर्ष में
चेत्	जो
तम्	उस यज्ञकर्त्ता को
किञ्चित्	रोगादिक
उपतपेत्	सतावें तो
+सः	वह यज्ञकर्त्ता
ब्रूयात्	कहे कि
+हे	हे
प्राणाः	प्राण
+हे	हे
रुद्राः	रुद्रदेवताओ
मे	मेरे
इदम्	इस
माध्यंदिनम्	मध्याह्न के
सवनम्	यज्ञको
तृतीय-सवनम्	सायंकाल के यज्ञ तक
अनुसंतनुत	विस्तृत करो
इति	ताकि
प्राणानाम्	प्राणरूप
रुद्राणाम्	रुद्रदेवताओंके
मध्ये	समक्ष
यज्ञः	यज्ञरूप
अहम्	मैं
न	न
विलोप्सीय	नष्ट होऊं
इति	इसप्रकार प्रार्थना करने से
+सः	वह
ततः	उस रोगादिक से

उदेति=निवृत्त हो-जाता है	अगदः=नीरोग
ह=और	हैव=अवश्य
	भवति=होता है

भावार्थ ।

यदि यज्ञकर्त्ता इस चवालीस वर्ष की आयुमें रोगग्रस्त होजावे तो कहे कि हे प्राणदेवताओ ! हे रुद्रदेवताओ ! मेरे इस मध्याह्नकाल के यज्ञको सायंकालके यज्ञतक बढ़ाओ, याने मध्याह्नकालके यज्ञकी जो आयु चवालीस वर्ष की है, वह सायंकालके यज्ञकी आयुतक जो ११६ वर्ष तक की है विस्तृत करो, ताकि यज्ञरूप मैं प्राणरूप रुद्रदेवताओं के समक्ष नष्ट न होऊं, जब वह यज्ञकर्त्ता इस प्रकार प्रार्थना करता है, तब वह रोगादिकों से निवृत्त होजाता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यानि, अष्टाचत्वारिंशत्, वर्षाणि, तत्, तृतीयसवनम्, अष्टाचत्वारिंशदक्षरा, जगती, जागतम्, तृतीयसवनम्, तत्, अस्य, आदित्याः, अन्वायत्ताः, प्राणाः, वा, व, आदित्याः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, आददते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=अब		यानि=जो	

अष्टाचत्वारिंशत् = यज्ञ पुरुषके आयुके अड़तालीस	अस्य=इस यज्ञ पुरुष के
वर्षाणि=वर्ष हैं	तत्=उस तृतीयसवन में
तत्=वह	आदित्याः=आदित्यदेवता
तृतीयसवनम् = सायंकालिक यज्ञ हैं	अन्वायत्ताः=वास करते हैं
अष्टाचत्वारिंशदक्षरा = अड़तालीस हैं अक्षर जिसमें ऐसा	+च=और
जगती=जगतीछन्द	+ते=वे
जागतम् तृतीयसवनम् = जिसमें जगतीछन्दवाले मंत्र हैं वह तृतीयसवन हैं याने उस तृतीयसवन में जगतीछन्दवाले मंत्र पढ़ेजाते हैं	प्राणाः=प्राण
	वाव=अवश्य
	आदित्याः=आदित्य हैं
	हि=क्योंकि
	एते=प्राणरूपी यह आदित्य
	इदम्=इस
	सर्वम्=सब विषयोंको
	आददते=ग्रहण करते हैं

भावार्थ ।

जो यज्ञकर्त्ता पुरुष की आयु के अड़तालीस वर्ष हैं, वह सायंकाल का यज्ञ है, याने अड़तालीस वर्ष तक वह सायंकाल का यज्ञ है, उसको बराबर करता रहता है, इसकी ऐक्यता जगती

छन्दसे है, क्योंकि जगतीछन्द में भी अड़तालीस अक्षर हैं, और सायंकालिक तृतीयसवन में जगतीछन्द के मंत्र पढ़े जाते हैं, यज्ञकर्त्ता पुरुषके तृतीयसवन में आदित्यदेवता वास करते हैं, और वे आदित्य प्राण हैं, क्योंकि प्राणरूपी आदित्य विषे सब जगत् स्थित रहता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, एतस्मिन्, वयसि, किञ्चित्, उपतपेत्, सः, ब्रूयात्, प्राणाः, आदित्याः, इदम्, मे, तृतीयसवनम्, आयुः, अनुसंतनुत, इति, मा, अहम्, प्राणानाम्, आदित्यानाम्, मध्ये, यज्ञः, विलोप्सीय, इति, उत्, ह, एव, ततः, एति, अगदः, ह, एव, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतस्मिन्	=इस	किञ्चित्	=कुछ रोगादिक
वयसि	=अड़तालीस वर्ष में	उपतपेत्	=दुःख देवें तो
चेत्	=अगर	सः	=वह यज्ञकर्त्ता
तम्	=उस यज्ञकर्त्ता को	ब्रूयात्	=कहे कि
		+हे	=हे
		प्राणाः	=प्राण

+हे=हे	यज्ञः=यज्ञरूप
आदित्याः=आदित्य देवताओ	अहम्=मैं
मे=मेरे	मा=न
इदम्=इस	विलोप्सीय=नष्ट होऊं
तृतीयसवनम् आयुः=तृतीयसवन सम्बन्धी आयुको	इति=इस प्रार्थनासे
अनुसंतनुत=विस्तृत करो याने पूर्ण आयु देवो	सः=वह
इति=ताकि	ततः=उस रोगादिक से
प्राणानाम्=प्राणरूप	उदेति=ऊपर होजाताहै याने रहित हो जाता है
आदित्यानाम्=आदित्यों के	+च=और
मध्ये=समक्ष	अगदः=नीरोग
	हैव=अवश्य
	भवति=होजाता है

भावार्थ ।

इस अड़तालीस वर्षमें अगर यज्ञकर्त्ता को रोगादिक दुःख देवै, तो कहे कि हे प्राणो ! हे आदित्यदेवताओ ! मेरे इस तृतीयसवनसम्बन्धी आयुको तुम बढ़ा दो, याने पूर्ण कर दो, ताकि मैं यज्ञकर्त्ता तुम्हारे सामने न नष्ट होऊं जब वह इस प्रकार प्रार्थना करता है, तब वह रोगादिक से अवश्य नीरोग होजाता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति सह

षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एतत्, ह, स्म, वै, तत्, विद्वान्, आह, महिदासः, ऐतरेयः, सः, किम्, मे, एतत्, उपतपसि, यः, अहम्, अनेन, न, प्रेष्यामि, इति, सः, षोडशम्, वर्षशतम्, अजीवत्, प्र, ह, षोडशम्, वर्षशतम्, जीवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऐतरेयः	इतरा ऋषि-पत्नीका पुत्र	अहम्	मैं
विद्वान्	विद्वान्	अनेन	इस रोगादिक करके
महिदासः	महिदास	न	नहीं
हवै	निश्चय करके	प्रेष्यामि	मरूंगा
तत्	उस	इति	इस प्रकार
एतत्	इस यज्ञशास्त्र को	सः	वह यज्ञकर्त्ता
आहस्म	कहता भया	षोडशम्	सोलहहैं अधिक जिसमें ऐसे
+हे रोग	हे रोग	वर्षशतम्	सौवर्षतक
किम्	क्यों	ह	निश्चय करके
मे	मेरे	अजीवत्	जीताभया
एतत्	इस	+अन्योपि	और अन्य उपासक भी
उपतपनम्	शरीर को		
उपतपसि	दुःखदेता है तू		

षोडशम्=सोलह हैं अधिक जिसमें ऐसे	प्रजीवति=जीता है
वर्षशतम्=सौवर्ष तक	यः=जो
	एवम्=उक्त प्रकार से
	वेद=जानता है

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता कहता है कि हे रोग! तू मेरे इस शरीर को क्यों दुःख देता है, मैं तुझ करके नहीं मरूंगा, मैं एकसौ सोलह वर्ष तक अवश्य जीऊंगा, और वह एकसौ सोलह वर्षतक जीताभया, और अन्य उपासक भी जो कहे हुये प्रकार जानता है, वह भी एकसौ सोलह वर्षतक जीता है, इस प्रकार के यज्ञशास्त्रविधान को ऋषिपत्नी इतरा के पुत्र महिदास ने कहा है ॥ ७ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्, अशिशिषति, यत्, पिपासति, यत्, न, रमते, ताः, अस्य, दीक्षाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो	यत्	जो
सः	वह यज्ञपुरुष	+सः	वह पुरुष
अशिशिषति	भोजन की इच्छा करता है	पिपासति	पानीकी इच्छा करता है

यत्=पर	+तस्मात्=इसलिये
सः=वह	ताः=ये सब
न रमते= उस प्रिय वस्तु में आसक्त नहीं रहता है	अस्य=इस यज्ञकर्त्ता के
	दीक्षाः=व्रत हैं

भावार्थ ।

यज्ञके प्रारम्भ में यज्ञकर्त्ता या उपासक न इच्छानुसार भोजन करता है, न पानी पीता है और इसी कारण ये उसकी दीक्षायें हैं यह अवस्था यज्ञकर्त्ता का प्रथम यज्ञव्रत है, याने वह इस यज्ञव्र त को करता है, पीछे यज्ञका अनुष्ठान करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदै-रेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अश्नाति, यत्, पिबति, यत्, रमते, तत्, उपसदैः, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=और		रमते=रमण करता है	
यत्=जो		तत्=वह	
+ सः=वह		उपसदैः= यज्ञकर्त्ता को पयोव्रतवाले ऋत्विजों के समान	
अश्नाति=खाता है			
यत्=जो			
पिबति=पीता है			
यत्=जो अनध्यादिकमें		एति=बना देता है	

भावार्थ ।

जब यज्ञकर्त्ता या उपासक अल्प खाता है, अल्प पीता है, अल्प भोग करता है, तब वह मानो उपसदव्रत को करता है, उपसद वह व्रत है जिसमें ऋत्विज आदिक केवल दुग्धपान करके आनन्द से रहते हैं, इसलिये यज्ञकर्त्ता में और उपसद व्रत करनेवालों में समानता है, याने जैसे उपसद व्रत करनेवाले अल्पाहार करके तृप्त और आनन्द से रहते हैं, वैसेही यज्ञकर्त्ता या उपासक भी अल्पाहार करके आनन्द से रहता है, यह उपासक का द्वितीय स्वात्मसम्बन्धि व्रत है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, हसति, यत्, जक्षति, यत्, मैथुनम्, चरति, स्तुतशस्त्रैः, एव, तत्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	चरति	करता है
यत्	जब	तत्	तब
हसति	हँसता है	स्तुतशस्त्रैः	स्तुतशस्त्र की समानता को
यत्	जब	एव	अवश्य
जक्षति	भोजनकरता है	एति	प्राप्त होता है
यत्	जब		
मैथुनम्	मैथुन		

भावार्थ ।

और जब यज्ञकर्त्ता या उपासक हास्य करता है, दूसरे के

साथ या दूसरे को खिलाता है, और उसके संग में आनन्द करता है, तब वह मानो स्तुतशस्त्रों के तुल्य होजाता है, क्योंकि इन दोनों में शब्द करके समानता है, याने जैसे खाने, पीने और हास्य और भोग करते समय शब्द होता है, वैसेही शास्त्रग्रंथ के पाठ के समय में जो सामवेद का एक हिस्सा है, शब्द होता है, यह तीसरा व्रत दूसरे के आत्मा के सुख देने के निमित्त है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तपः, दानम्, आर्जवम्, अहिंसा, सत्य-वचनम्, इति, ताः, अस्य, दक्षिणाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	इति	इस प्रकार जो कहे गये हैं
यत्	जो	ताः	वे
तपः	तप है	अस्य	इस यज्ञकर्त्ता पुरुष की
दानम्	दान है	दक्षिणाः	दक्षिणा हैं
आर्जवम्	आर्जव है		
अहिंसा	अहिंसा है		
सत्यवचनम्	सत्यबोलना है		

भावार्थ ।

यज्ञकर्त्ता का चौथा व्रत तप करना, कोमल होना, दान देना, सत्य बोलना है और हिंसा न करना ऊपर के तीनों व्रतों से श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

मूलम्।

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावभृथः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

तस्मात्, आहुः, सोष्यति, असोष्ट, इति, पुनः, उत्पादनम्, एव, अस्य, तन्मरणम्, एव, अस्य, अवभृथः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ मातरि गर्भवत्याम्	= माता गर्भवती होने पर	तस्मात्	= इस लिये
आहुः	= लोग कहते हैं	अस्य	= इस यज्ञकर्त्ता पुरुष का
सोष्यति	= यह पुत्र उत्पन्न करैगी	उत्पादनम्	= उत्पन्न करना
इति	= ऐसा देखकर	+ च	= और
पुत्रोत्पत्ति-पश्चात्	= पुत्र उत्पत्ति के पीछे	+ पुनः	= फिर
आहुः	= कहते हैं कि	तन्मरणम्	= उस पुत्रका मरना
असोष्ट	= हां उत्पन्न किया है	एव	= निश्चय करके
		अवभृथः	= अवभृथ कर्म के समान है

भावार्थ।

सोष्यति और सवन ये दोनों शब्द षूङ् धातु से निकले हैं, जिसके अर्थ यज्ञ और लड़का उत्पन्न करने के हैं, इसलिये जब लड़का उत्पन्न होता है तब वह यज्ञरूप है, क्योंकि दोनों में षूङ् धातु करके समानता है, जब माता गर्भवती होती है तब लोग कहते हैं कि " सोष्यति " यह स्त्री लड़का उत्पन्न करैगी, और

जब लड़का उत्पन्न होता है तब लोग कहते हैं कि इसने लड़का उत्पन्न किया। सोष्यति और असोष्ट इन दोनों शब्दों का धातु षूङ् है, इस कारण भी यज्ञ और यज्ञकर्त्ता में एकता है, क्योंकि जैसे यज्ञ में सोमलताके रसकी आहुति दीजाती है, वैसेही पति स्वभार्या में सोमलतारूपी वीर्यकी आहुति देता है, यज्ञसमाप्ति होनेपर अवभृथ स्नान किया जाता है, उसी तरह यज्ञकर्त्ता के मरने पर उसके मृतक शरीर का स्नान कराया जाता है, इस कारण भी दोनों में समानता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव सोन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, घोरः, आङ्गिरसः, कृष्णाय, देवकीपुत्राय, उक्त्वा, उवाच, अपिपासः, एव, सः, बभूव, सः, अन्तवेलायाम्, एतत्, त्रयम्, प्रतिपद्येत, अक्षितम्, असि, अच्युतम्, असि, प्राणसंशितम्, असि, इति, तत्र, एते, द्वे, ऋचौ, भवतः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आङ्गिरसः	=अङ्गिराकापुत्र	तत्	=पूर्वोक्तप्रकार
घोरः	=घोरऋषि	एतत्	=इस यज्ञशास्त्र को
देवकीपुत्राय	=देवकीके पुत्र	उक्त्वा	=कह कर
कृष्णाय	=कृष्णसे		

एतत्=इन
त्रयम्=तीन अगले मन्त्रों को
उवाच=कहता भया कि
सः=वह यज्ञपुरुष
अन्तवेलायाम्=मरण समय में
+एतत्=इन
+त्रयम्=तीन मन्त्रोंको
प्रतिपद्येत=जपे यानी स्मरण करै
अक्षितम् असि=तू नाशरहित है
अच्युतम् असि=तू एकरस है
प्राणसंशितम्=तू मुख्यप्राण
असि=है
तत्र=तिस विषयमें
एते=ये
द्वे=दो
ऋचौ=ऋचा
भवतः=प्रमाण हैं
+तदा=तब
सः=वह कृष्ण
+एतत्=इसको
+श्रुत्वा=सुनकर
अपिपासः=अन्य विद्याओं से तृष्णारहित
एव=अवश्य
बभूव=होता भया

भावार्थ ।

देवकीपुत्र कृष्णसे अङ्गिरा के पुत्र घोरऋषिने यज्ञशास्त्र के विधान को पूर्वोक्त प्रकार से बयान किया, और यह भी कहा कि यज्ञकर्ता मरते समय इन तीन मन्त्रोंको यानी अक्षितमसि, अच्युतमसि, प्राणसंशितमसि स्मरण करै यह विचारता हुआ कि हे जीवात्मा ! तू नाशरहित है, एकरस है, और मुख्य प्राण यानी ब्रह्मरूप है, इस विषय में आगेवाले दो मन्त्र प्रमाण हैं, तब कृष्ण ऐसा सुनकर अन्य विद्याओं से तृष्णारहित होता भया ॥ ६ ॥

मूलम् ।

आदित्प्रत्नस्य रेतसः उद्वयंतमसस्परिज्योतिः पश्यन्तउतरꣳस्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तममितिज्योतिरुत्तममिति ॥ ७ ॥

इति सप्तदशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

आत्, इत्, प्रत्नस्य, रेतसः, उत्, वयम्, तमसः, परि, ज्योतिः, पश्यन्तः, उत्तरम्, स्वः, पश्यन्तः, उत्तरम्, देवम्, देवत्रा, सूर्यम्, अगन्म, ज्योतिः, उत्तमम्, इति, ज्योतिः, उत्तमम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ब्रह्मविदः	ब्रह्मवेत्ता
प्रत्नस्य	आदि
रेतसः	जगत् के कारण को
आ	चारों तरफ़
+ पश्यन्ति	देखते हैं
तमसः	अन्धकार से
परि	पृथक्
उत्तरम्	सूर्यस्थ
ज्योतिः	ज्योतिस्स्वरूप को
वयम्	हम ब्रह्मवेत्ता
पश्यन्तः	देखनेवाले
उदगन्म	ऊर्ध्व गति को प्राप्त हुये हैं
तत्	वही ज्योति
स्वः	अपने हृदय में है यानी ये दोनों ज्योति एकही हैं
तत्	तिसी
देवम्	प्रकाशमान
उत्तरम्	अत्यन्तऊपर
देवत्रा	संपूर्ण देवोंसे

उत्तमम्=श्रेष्ठतर	+वयम्=हम ब्रह्मवेत्ता
ज्योतिः=ज्योतीरूप	पश्यन्तः=देखनेवाले
सूर्यम्=सूर्य को	उद्गन्म=प्राप्त हुये हैं

भावार्थ ।

ज्योति तीन प्रकार की है, और उसके रहने के स्थान भी तीन हैं, एक ज्योति जो यज्ञकर्त्ता के हृदय विषे है, दूसरी ज्योति सूर्य विषे है, और तीसरी ज्योति ब्रह्मरूप है, जो ज्योति हृदय विषे है वही सूर्य विषे है, और जो सूर्य विषे है, वही ब्रह्म विषे है, इसलिये तीनों ज्योति में समानता है, और ऐसा ध्यान यज्ञकर्त्ता करै ॥ ७ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशोब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ब्रह्म, इति, उपासीत, इति, अध्यात्मम्, अथ, अधिदैवतम्, आकाशः, ब्रह्म, इति, उभयम्, आदिष्टम्, भवति, अध्यात्मम्, च, अधिदैवतम्, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
मनः=मन	इति=ऐसा
+ब्रह्म=ब्रह्म है	अध्यात्मम्=आध्यात्मिक उपासनाहै
इति=इस प्रकार	अथ=और
उपासीत=उपासना करै	

आकाशः=आकाश	च=और
ब्रह्म=ब्रह्म है	अधिदैवतम्=देवता विषयक उपासना
इति=ऐसा उपासना	च=भी
अधिदैवतम्=देवताविषयक है	आदिष्टम् भवति=कथित होती है यानी कही गई है
+एवम्=इस प्रकार	
उभयम्=दोनों यानी	
अध्यात्मम्=आध्यात्मिक उपासना	

भावार्थ ।

मन ब्रह्म है, इस प्रकार उपासना करे, यह उपासना आध्यात्मिक उपासना है जो शरीर से सम्बन्ध रखती है, आकाश ब्रह्म है, ऐसी उपासना करे, यह उपासना देवताविषयक है, यानी इसका सम्बन्ध देवता से है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्मवाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, चतुष्पात्, ब्रह्म, वाक्, पादः, प्राणः, पादः, चक्षुः, पादः, श्रोत्रम्, पादः, इति, अध्यात्मम्, अथ, अधिदैवतम्, अग्निः, पादः, वायुः, पादः,

आदित्यः, पादः, दिशः, पादः, इति, उभयम्, एव, आदिष्टम्, भवति, अध्यात्मम्, च, एव, अधिदैवतम्, च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	वही मनोरूप	अग्निः	अग्नि
एतत्	यह	पादः	एक चरण है
ब्रह्म	ब्रह्म	वायुः	वायु
चतुष्पात्	चार चरण का है	पादः	एक चरण है
वाक्	वाणी	आदित्यः	सूर्य
पादः	एक चरण है	पादः	एक चरण है
प्राणः	प्राण	दिशः	दिशा
पादः	एक चरण है	पादः	एक चरण है
चक्षुः	नेत्र	इति	इस प्रकार ये
पादः	एक चरण है	उभयम्	दोनों
श्रोत्रम्	कर्ण	एव	निश्चयकरके
पादः	एक चरण है	अध्यात्मम्	आत्मविषयक उपासना
इति	इसप्रकार यह	च	और
अध्यात्मम्	आत्मविषयक उपासना है	अधिदैवतम्	देवता सम्बन्धी उपासना
अथ	अब	च	भी
अधिदैवतम्	देवता विषयक उपासना	आदिष्टम् भवति	कथित होती है यानी कही गई
उच्यते	कहाजाती है		

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म चार चरणवाला है, इसका एक चरण वाणी है, एक चरण प्राण है, एक चरण नेत्र है, एक चरण कर्ण है इस प्रकार यह आत्मविषयक उपासना है, दूसरी उपासना देवताविषयक है, वह इस प्रकार है, अग्नि एक चरण है, वायु एक चरण है, सूर्य एक चरण है, दिशा एक चरण है इस प्रकार ये दोनों आत्मविषयक और देवताविषयक उपासना कही गई हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, अग्निना, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाक्	वाणी
एव	अवश्य
ब्रह्मणः	मनोरूपी ब्रह्म का
चतुर्थः	चौथा
पादः	पाद है
सः	वह वाणीरूप पाद
अग्निना ज्योतिषा	अग्निसे उत्पन्नहुये प्रकाश करके
भाति च	भासता है
च	और
तपति	उसमें तेज घृतादिक के खानेसे आता है

यः=जो उपासक	यशसा=परोक्ष कीर्त्ति करके
एवम्=कहेहुये प्रकार	च=और
वेद=जानता है	ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
+सः=वह	+ युक्तः=युक्त
कीर्त्या=प्रत्यक्ष कीर्त्ति करके	+ भवति=होता है

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्मका चौथा पाद वाणी है, यह वाणी अग्नि के प्रकाश करके प्रकाशमान होती है, और घृतादिक के खानेसे उसमें तेजी आती है, जो उपासक कहेहुये प्रकार उपासना करता है वह परोक्ष और अपरोक्ष कीर्त्तिको प्राप्त होता है, और ब्रह्मतेज करके युक्त होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, वायुना, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
प्राणः=प्राण	चतुर्थः=चौथा
एव=ही	पादः=पाद है
ब्रह्मणः=ब्रह्म का	सः=वह पाद यानी प्राण

वायुना=वायुके	वेद=जानता है
ज्योतिषा=तेज करके	+ सः=वह
भाति=प्रकाशित है	कीर्त्या=समक्ष कीर्त्ति करके
च=और	च=और
तपति=गर्म रहता है	यशसा=परोक्ष कीर्त्ति करके
भाति च=प्रकाशित है	च=और
च=और	ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
तपति=गर्म रहता है	+ युक्तः=युक्त
यः=जो उपासक	+ भवति=होताहै
एवम्=कहेहुये प्रकार	

भावार्थ ।

प्राण मनरूपी ब्रह्मका चौथा पाद है, वह प्राण बाह्य वायु के तेज करके प्रकाशित है, और गर्म रहताहै, जो उपासक इस प्रकार जानता है, वह समक्ष कीर्त्ति करके व परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेजकरके युक्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः, सः, आदित्येन, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चक्षुः	=चक्षु	तपति च	=गर्म रहता है
एव	=ही	यः	=जो उपासक
ब्रह्मणः	=ब्रह्म का	एवम्	=कहे हुये प्रकार
चतुर्थः	=चौथा	वेद	=जानता है
पादः	=पाद है	+ सः	=वह
सः	=वह चक्षुरूपी पाद	कीर्त्या	=समक्ष कीर्त्ति करके
आदित्येन	=सूर्य से उत्पन्न हुये	यशसा	=परोक्ष कीर्त्ति करके
ज्योतिषा	=तेज करके	च	=और
भाति	=प्रकाशित है	ब्रह्मवर्चसेन	=ब्रह्मतेज करके
च	=और	+ युक्तः	=युक्त
		+ भवति	=होता है

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद चक्षु है, वह चक्षु सूर्य से उत्पन्न हुये तेजकरके प्रकाशता है, और गर्म रहता है, जो उपासक इस प्रकार जानता है, वह समक्ष कीर्त्ति करके व परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेज करके युक्त होता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सदिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, एव, ब्रह्मणः, चतुर्थः, पादः सः, दिग्भिः, ज्योतिषा, भाति, च, तपति, च, भाति, च, तपति, च, कीर्त्या, यशसा, ब्रह्मवर्चसेन, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
श्रोत्रम्	श्रोत्र
एव	ही
ब्रह्मणः	ब्रह्म का
चतुर्थः	चौथा
पादः	पाद है
सः	वह श्रोत्ररूपी पाद
दिग्भिः	दिशारूप
ज्योतिषा	तेज करके
भाति	प्रकाशित है
च	और
तपति	गर्म रहता है
भाति च	प्रकाशित है
तपतिच	और गर्म रहता है
यः	जो उपासक
एवम्	कहे हुये प्रकार
वेद	जानता है
सः	वह
कीर्त्या	समक्ष कीर्त्ति
च	और
यशसा	परोक्ष कीर्त्ति करके
+च	और
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्म तेज करके
+ युक्तः	युक्त
+ भवति	होता है

भावार्थ ।

मनरूपी ब्रह्म का चौथा पाद श्रोत्र है, यह श्रोत्र दिशा के प्रकाश से प्रकाशित है, और गर्म रहता है, जो उपासक इस प्रकार जानता है, वह समक्ष कीर्त्ति करके व परोक्ष कीर्त्ति करके और ब्रह्म तेज करके युक्त होता है ॥ ६ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

अथ तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्त्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आदित्यः, ब्रह्म, इति, आदेशः, तस्य, उपव्याख्यानम्, असत्, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, तत्, सत्, आसीत्, तत्, समभवत्, तत्, आण्डम्, निरवर्त्तत, तत्, संवत्सरस्य, मात्राम्, अशयत, तत्, निरभिद्यत, ते, आण्डकपाले, रजतम्, च, सुवर्णम्, च, अभवताम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
आदित्यः	सूर्य
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इस प्रकार का
आदेशः	उपदेश है
तस्य	उसी उपदेश का
उपव्याख्यानम्	व्याख्यान
+ क्रियते	किया जाता है
इदम्	यह
असत्	नामरूपात्मक जगत्
अग्रे	अपनी उत्पत्ति से पहिले
आसीत्	ऐसा न था
तत्	यह असत् जगत्
सत्	सत्तावाला

आसीत्=भया
ततः=फिर
तत्=वह
+लब्धपरिमाणम्=परिमाण वाला
समभवत्=होता भया
+पुनः=फिर
तत्=स्थूल हुवा
+पुनः=फिर
आण्डम्=अण्डाकार
निरवर्त्तत=होता भया
+पुनः=फिर
तत्=वह अण्डा
संवत्सरस्य=एक वर्ष
मात्राम्=पर्यन्त
अशयत=जैसा का तैसा पड़ा रहा
तत्=एक साल के पीछे
निरभिद्यत=पक्षियों के अण्डा की तरह फूटता भया
ते=तिस
आण्डकपाले=फूटे हुये अण्डे के दो भाग
रजतम्=एक चांदी
च=और
सुवर्णम् च=दूसरा सोना
अभवताम्=होते भये

भावार्थ ।

सूर्य ब्रह्म है, इस उपदेश का व्याख्यान करते हैं, यह नाम रूपवाला जगत् अपनी उत्पत्ति से पहिले ऐसा आकारवाला न था, यह पहिले निराकार था, फिर परिमाणवाला हुआ, फिर स्थूल हुवा, फिर अण्डाकार होता भया, फिर वह अण्डा एक वर्ष तक जैसा का तैसा पड़ा रहा, बाद एक वर्ष के फूटगया, उसके दो भाग होगये, एक चांदीरूप दूसरा सोनारूप ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ सा द्यौर्यज्जरायु

ते पर्वता यदुल्बꣳसमेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, रजतम्, सा, इयम्, पृथिवी, यत्, सुवर्णम्, सा, द्यौः, यत्, जरायु, ते, पर्वताः, यत्, उल्बम्, समेघः, नीहारः, याः, धमनयः, ताः, नद्यः, यत्, वास्तेयम्, उदकम्, सः, समुद्रः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=	उन दोनों भागों में	पर्वताः=	पर्वत हैं
यत्=	जो	यत्=	जो
रजतम्=	रजत भाग था	उल्बम्=	गर्भ परिवेष्टन है
सा=	वह	+ तत्=	वह
इयम्=	यह	समेघः=	मेघों के साथ
पृथिवी=	पृथिवी है	नीहारः=	कुहिरा है
च=	और	याः=	जो
यत्=	जो	धमनयः=	नसें हैं
सुवर्णम्=	सोने का भाग था	ताः=	वह
सा=	वह	नद्यः=	नदी हैं
द्यौः=	आकाश है	यत्=	जो
यत्=	जो	वास्तेयम्=	नाभि के नीचे
जरायु=	गर्भाशय है	उदकम्=	जल है
ते=	वे	सः=	वही
		समुद्रः=	समुद्र है

भावार्थ ।

इन दोनों भागों में से जो चांदी का भाग है वह यह पृथ्वी है, और जो सोने का भाग है वह यह आकाश है, जो अण्डे का गर्भाशय है वह पर्वत हैं, जो गर्भपरिवेष्टन है वह मेघों के साथ कुहिरा है, जो उसमें नसें हैं वह नदी हैं, और जो नाभिके नीचे उदर में जल है वह समुद्र है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यत्तदजायतसोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रतिघोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, तत्, अजायत, सः, असौ, आदित्यः, तम्, जायमानम्, घोषाः, उलूलवः, अनु, उदतिष्ठन्, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च, कामाः, तस्मात्, तस्य, उदयम्, प्रति, प्रत्यायनम्, प्रति, घोषाः, उलूलवः, अनु, उदतिष्ठन्ति, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च, कामाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=अब	सः=वह
यत्=जो	असौ=यह प्रत्यक्ष
तत्=वह अण्डा से	आदित्यः=सूर्य है
अजायत=उत्पन्न भया	जायमानम्=उत्पन्न हुये

तम्=उस सूर्य के
अनु=साथ
उलूलवः=उत्साह वाले
घोषाः=शब्द
उदतिष्ठन्=होते भये
+च=और
पुनः=फिर
सर्वाणि=सब
भूतानि=स्थावर जंगम जीव
+अजायन्त=उत्पन्न होते भये
च=और
पुनः=फिर
सर्वे=सब
कामाः=भोग्यपदार्थ
अजायन्त=उत्पन्न होते भये
तस्मात्=इसलिये
तस्य=उस सूर्य के
उदयम्=उदय
प्रति=होने पर
+च=और
प्रत्यानयनम् प्रति=अस्तहोने पर
उलूलवः=उत्सव के
घोषाः=शब्द
अजायन्त=उत्पन्न होते भये
च=और
सर्वाणि=सब
भूतानि=स्थावर जंगम भूत
च=और
सर्वे=सब
कामाः=भोग्यपदार्थ
अनु=उसके पीछे पीछे
उत्तिष्ठन्ति=उत्पन्न होते भये

भावार्थ ।

उस अण्डे से सूर्य उत्पन्न हुवा, जब वह उत्पन्न भया तब उत्साह और आह्लाद के शब्द होते भये, और तत् पश्चात् स्थावर जंगम जीव, और भोगसामग्री उत्पन्न भये, और यही कारण है कि जब सूर्योदय होता है और सूर्यास्त होता है तो उत्साह

और हर्ष के शब्द होने लगते हैं, और सब जीव और भोग सामग्री उत्पन्न होती हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशोह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, आदित्यम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अभ्याशः, ह, यत्, एनम्, साधवः, घोषाः, आ, च, गच्छेयुः, उप, च, निम्रेडेरन्, निम्रेडेरन् ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एवम्	पूर्वोक्त प्रकार
विद्वान्	जानता
+सन्	हुवा
एतम्	इस
आदित्यम्	सूर्य को
ब्रह्मेति	ब्रह्मबुद्धिकरके
उपास्ते	उपासना करता है तो
सः	वह
अभ्याशः	शीघ्र
+प्रतिपद्यते	सूर्यस्वरूप हो जाता है
ह	और
एनम्	उसउपासकको
साधवः	आनंद देने वाले
घोषाः	शब्द
आगच्छेयुः	प्राप्त होते हैं
च	और
उपनिम्रेडेरन्	प्राप्त होते रहेंगे

भावार्थ ।

जो पूर्व कहे हुये प्रकार को जानता हुवा सूर्यकी उपासना ब्रह्म बुद्धि से करता है वह सूर्य रूप होजाता है, और आनन्द के शब्द उसको प्राप्त होते हैं और होते रहेंगे ॥ ४ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमःखण्डः ॥

मूलम् ।

ॐ । जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयांचक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

जानश्रुतिः, ह, पौत्रायणः, श्रद्धादेयः, बहुदायी, बहुपाक्यः, आस, सः, ह, सर्वतः, आवसथान्, मापयांचक्रे, सर्वतः, एव, मे, अत्स्यन्ति इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
ह	पूर्वकाल में
जानश्रुतिः	जनश्रुत का (एक) परपोता
आस	था
सः	वह
श्रद्धादेयः	श्रद्धा पूर्वक द्रव्य का देने वाला
च	और
बहुदायी	देने में बड़ा शूरवीर था
+तस्य	उसके
बहुपाक्यः	घर में भोजनार्थियों के वास्ते बहुत अन्न पकताथा
सः	वह परपोता

सर्वतः=सबदिशाओंमें	+अन्नम्=अन्न को
आवसथान्=धर्मशालों को	सर्वतः=चारों तरफ़ के
मापयांचक्रे=बनवाता भया	वसंतः=रहने वाले
इति=इस ख्याल से	लोग
मे=मेरे	अत्स्यन्ति=खायँ

भावार्थ ।

ब्रह्म पदको वर्णन करके अब एक आख्यायिका कहते हैं, ताकि समझ में आजाय कि श्रद्धा और अन्नदान ब्रह्मकी प्राप्ति के कारण हैं, पूर्वकाल में एक जानश्रुति राजा था, उसका एक परपोता था वह बड़ा दानी था, वह ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक दान देता था, उसके घरमें बहुत भोजन बनता था, और दीन दुखियों को दिया जाता था, उसने संसार के चारों तरफ़ गावों और क़सबों में बहुतसी धर्मशालायें बनवादीं, ताकि लोग उनमें रहकर भोजन करें ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽपि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समंदिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, हंसाः, निशायाम्, अतिपेतुः, तत्, ह, एवम्, हंसः, हंसम्, अभ्युवाद, हो, हो, अपि, भल्लाक्ष, भल्लाक्ष, जानश्रुतेः, पौत्रायणस्य, समम्, दिवा, ज्योतिः, आततम्, तत्, मा, प्रसाङ्क्षीः, तत्, त्वा, मा, प्रधाक्षीः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	अब अन्न दान के फल को कहते हैं	हो होऽपि	हे भल्लाक्ष हे भल्लाक्ष याने हे अज्ञानी मित्र
हंसाः	कई ऋषि हंस के सूरत में	जानश्रुतेः पौत्रायणस्य	जनश्रुत के पुत्र के पुत्रका
निशायाम्	रात्रि विषे	ज्योतिः	तेज
अतिपेतुः	पौत्रायण राजा के सामने से उड़ते भये	दिवा	स्वर्ग
		समम्	सदृश
		आततम्	व्याप्त है
		तत्	उसतेज को
तद्ध	उस समय	मा प्रसाङ्क्षीः मा	मत छू नहीं तो
हंसः	एक हंस ने		
हंसम्	दूसरे हंस से	तत्	वह तेज
एवम्	इस प्रकार	त्वा	तुझको
अभ्युवाद	कहा कि	प्रधाक्षीः	जला देगा

भावार्थ ।

अब अन्नदान के महिमा को कहते हैं, एक मर्त्तबा कई ऋषि हंसके रूप में एकरात्रि को पौत्रायण राजा के सामने से उड़ते भये, अगले हंस से पिछले वाले हंस ने कहा कि हे भल्लाक्ष ! हे अज्ञानी मित्र ! जनश्रुत के परपोते पौत्रायण का तेज स्वर्ग के सदृश उज्ज्वल व्याप्त है, उस तेज को मत उल्लङ्घन कर नहीं तो तू जल जायगा ॥ २ ॥

मूलम् ।

तमुह परः प्रत्युवाच कंवर एनमेतत्सन्तꣳ सयुग्वानमिवरैक्कमात्थेति यो नु कथꣳसयुग्वारैक्क इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, उ, ह, परः, प्रत्युवाच, कम्, उ, वरः, एनम्, एतत्, सन्तम्, सयुग्वानम्, इव, रैक्कम्, आत्थ, इति, यः, नु, कथम्, सयुग्वा, रैक्कः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वरः	=श्रेष्ठ	एतत्	=इस बातको सुन करके
परः	=अग्रगामी हंसने	सः	=उसने
तम् उह	=पीछे बोलने वाले हंससे	आह	=कहाकि
प्रत्युवाच	=कहा	यः	=जो
कम्	=क्या	नु	=अब
एनम्	=इसकी	सयुग्वा	=गाड़ीवाला
उ	=प्रसिद्ध	रैक्कः	=रैक्क
सन्तम्	=सज्जन	इति	=इस प्रकार
सयुग्वानम्	=गाड़ीवाले	त्वया	=तुझ करके
रैक्कम्	=रैक्क से	उच्यते	=कहागया है
इव	=उपमा	+सः	=वह
आत्थ	=तू देता है	कथम्	=कैसा है

भावार्थ ।

अगलेवाले हंसने पिछलेवाले हंससे कहा कि क्या तू इस राजा

की उपमा प्रशंसा कियेहुये रैकसे देता है, इस बातको सुनकर पिछले हंसने कहा कि रैक जिसके घरमें रथादिक बहुत हैं वह कैसा है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, कृताय, विजिताय, अधरेयाः, संयन्ति, एवम्, एनम्, सर्वम्, तत्, अभिसमैति, यत्, किंच, प्रजाः, साधु, कुर्वन्ति, यः, तत्, वेद, यत्, सः, वेद, सः, मया, एतत्, उक्तः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे लोकमें	संयन्ति	संबंध रखते हैं याने जो कृत नामक पासे को जीतलेता है वह उस करके और तीनों पासोंका जीतने वाला समझा जाता है
कृताय विजिताय	कृतनामक (सत्ययुग) चारके अंक वालेपासेसे		
अधरेयाः	एक दो तीन के अंकवाले पासे याने कलियुगद्वापर त्रेता		

एवम्=इस प्रकार	यः=जो
सर्वम्=सब	कश्चित्=कोई
एनम्=रैक्कके सत्ययुग रूपी राज्य में	तत्=उस विधान या कर्म को
अभिसमैति=अन्तर्भूत रहते हैं	वेद=जानता है
यत्किंच=जो कुछ	यत्=जिसको
प्रजाः=प्रजा	सः=वह रैक्क
साधु=सुकार्य याने धर्म को	वेद=जानता है तो
कुर्वन्ति=करती है	सः=वह भी
+तत्=वह	एतत्=उसी रैक्क वाले फल को
+सर्वम्=सब	+प्राप्नोति=प्राप्त होता है
+रैक्कधर्मे=रैक्क राजा के धर्म में	एतत्=यह बात
+अंतर्भवति=अंतर्भूत हो जाते हैं	इति=इस प्रकार
	मया=मुझ करके
	उक्तः=कही गई है

भावार्थ ।

इसपर राजाने वह हाल बयान किया जो एक हंसने दूसरे हंस से कहाथा, राजाने कहा सुन हे मित्र ! जैसे द्यूत खेलने में कृत नामक पासा चार अंकवाले पासे के जीतसे एक दो तीन अंकवाले पासे जो कलियुग द्वापर त्रेता को बताते हैं जीत लियेजाते हैं, इसीप्रकार सब धर्म रैक्क के धर्म में जीतेहुये पड़े हैं, याने अंतर्भूत हैं, और जो कुछ प्रजा सुकार्य करती है याने धर्म करती है वह सब रैक्क के धर्म में चलीजाती है, और जो कोई उस कर्म को

करता है जिसको रैक करता है वहभी उसी फलको प्राप्त होता है जिसको रैक प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथ ँ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, उपशुश्राव, सः, ह, संजिहानः, एव, क्षत्तारम्, उवाच, अङ्ग, अरे, ह, सयुग्वानम्, इव, रैक्कम्, आत्थ, इति, यः, नु, कथम्, सयुग्वा, रैक्कः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
जानश्रुतिः पौत्रायणः	जनश्रुतका पर पोता पौत्रायण
तदु ह	उस हंसके वाक्यको
उपशुश्राव	सुनता भया
+च	और
सः	वह
शयनम्	पलँग को
संजिहानः	छोड़ता हुवा

अन्वयः	पदार्थ
क्षत्तारम्	प्रातःकाल की स्तुति करने वाले बंदीजनसे
हएव	निश्चय करके
उवाच	कहताभया कि
अरे	हे
अङ्ग	मित्र
+त्वम्	तू
सयुग्वानम्	गाड़ी वाले

रैक्वम्=रैक्वके
इव=ऐसा
माम्=मुझको याने मेरी प्रशंसा
इति=इस प्रकार
आत्थ=कहता है
+तदा=तब उसबंदीजनने
नु=प्रश्न किया कि
यः=जो
सयुग्वा=गाड़ीवाला
रैक्वः=रैक्व है
सः=वह
कथम्=कैसा है

भावार्थ ।

जब सोकर पलँग से उठरहा था तब उस हंस के वाक्य को जनश्रुतका परपोता पौत्रायण राजा सुनता भया और प्रातःकाल में स्तुति करनेवाले बंदीजन को बुलाकर कहा कि तू मेरी तारीफ़ रैक्वके तुल्य क्यों करता है तब उसने प्रश्न किया कि हे महाराज ! वह गाड़ीवाला रैक्व कौनहै ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, कृताय, विजिताय, अधरेयाः, संयन्ति, एवम्, एनम्, सर्वम्, तत्, अभिसमैति, यत्, किंच, प्रजाः, साधु, कुर्वन्ति, यः, तत्, वेद, यत्, सः, वेद, सः, मया, एतत्, उक्तः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	लोकमें जैसे
कृताय-विजिताय	कृत नामक सत्ययुगके चारकेअंक-वालेपासे से
अधरेयाः	एकदो तीन के अंकवाले पासे याने कलियुगद्वापर त्रेता
संयन्ति	संबंध रखते हैं याने जो कृत नामक पासेकोजीत लेता है वह उस करके और तीनों पासोंका जीतनेवाला समझा जाता है
एवम्	इसी प्रकार
सर्वम्	सब
तत्	त्रेतादि युगधर्म
एनम्	रैकके सत्ययुगरूपी राज्य में
अभिसमैति	अंतर्भूत रहते हैं
यत्किंच	जो कुछ
प्रजाः	प्रजा
साधु	सुकार्य याने धर्म को
कुर्वन्ति	करती हैं
+तत्	वह
+सर्वम्	सब धर्म
+रैकधर्मे	रैकके धर्म में
+अन्तर्भवति	अंतर्भूत हो जाते हैं
यः	जो
कश्चित्	कोई भी
तत्	उस विधान या कर्म को
वेद	जानता है
यत्	जिसको
सः	वह रैक
वेद	जानता है तो
सः	वह भी

एतत्=उसी रैक्व वाले फल को	इति=इस प्रकार
आप्नोति=प्राप्त होता है	मया=मुझ करके
+एतत्=यह बात	उक्तः=कही गई है

भावार्थ ।

इसपर राजाने वह सब हाल बयान किया जो एक हंसने दूसरे हंस से उड़ते जातेहुये कहा था, और कहा हे मित्र ! जैसे द्यूत के खेलने में कृत नामक पासा चार अंक वाले के जीत से एक दो तीन अंक वाले पासे जो कलियुग द्वापर त्रेता को बताते हैं जीत लिये जाते हैं, इसीप्रकार सब धर्म रैक्व के धर्म में जीते हुये पड़े हैं, याने अंतर्भूत हैं, और जो कुछ प्रजा सुकार्य याने धर्म को करती है वह सब रैक्वके धर्म में चलीजाती है, और जो कोई रैक्व सदृश कर्म करताहै वहभी उसी फलको प्राप्त होताहै जिसको रैक्व प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

मूलम् ।

स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमृच्छेति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, क्षत्ता, अन्विष्य, न, अविदम्, इति, प्रत्येयाय, तम्, ह, उवाच, यत्र, अरे, ब्राह्मणस्य, अन्वेषणा, तत्, एनम्, ऋच्छ, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यदा=जब	अन्विष्य=तलाश करके
सः=वह	+आगत्य=वापस आकर
क्षत्ता=बंदीजन	उवाच=कहता भयाकि
+नगरम्=शहर में	तम्=उस रैक्व को

न=नहीं
अविदम्=पाया
च=और
प्रत्येयाय=लौट आया
तब
जानश्रुतिः पौत्रायणः = { जनश्रुत का परपोता पौत्रायण राजा
तम् ह=उससे
उवाच=कहता भया कि
+अरे=हे मित्र
यत्र= { एकांत स्थल में नदी के किनारे या वन में
ब्राह्मणस्य=ब्रह्मवेत्ता की
अन्वेषणा=खोज
भवति=होती है
तत्=वहां पर जाकर
एनम्=रैक को
ऋच्छ=तलाश करो
इति= { इस प्रकार जानश्रुति ने कहा

भावार्थ ।

वह बंदीजन रैक को कई नगरों में तलाश किया, पर वह नहीं मिला, तब राजा के पास वापस आनकर बयान किया कि वह नहीं मिला, इसपर राजा पौत्रायण ने कहा, हे मित्र ! तू क्या कहता है ? ब्रह्मवेत्ता की खोज एकांत स्थल विषे नदी के किनारे पर या वन में होती है शहर में नहीं, तू जाकर रैक को इस प्रकार तलाश कर ॥ ७ ॥

मूलम् ।

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳहाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक इत्यहꣳ ह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, अधस्तात्, शकटस्य, पामानम्, कषमाणम्, उपोपविवेश, तम्, ह, अभ्युवाद, त्वम्, नु, भगवः, सयुग्वा, रैकः, इति, अहम्, हि, अरा, इति, ह, प्रतिजज्ञे, सः, ह, क्षत्ता, अविदम्, इति, प्रत्येयाय ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह बंदीजन
शकटस्य अधस्तात्	एक गाड़ी के पास
पामानम्	खुजली को
कषमाणम्	खुजलाते हुये एक पुरुष को
+दृष्ट्वा	देख कर
उप	उसके समीप
उपविवेश	विनय पूर्वक बैठ गया
+च	और
ह	निश्चयके साथ
तम्	उससे
अभ्युवाद	कहा
भगवः	हे भगवन्
नु	मैं पूछता हूँ
+किम्	क्या तू
सयुग्वा	गाड़ी वाला
रैकः	रैक ऋषि
+असि	है
इति	ऐसा कहने पर
सः	उसने
ह	निश्चयके साथ
प्रतिजज्ञे	जवाब दिया
अरा ३ इतिह	हां हां हां वही मैं रैक हूं
अहम्	मैं
क्षत्ता	बंदीजन
इति	इस प्रकार
अविदम्	रैक को जानता भया
+च	और (जान करके)
प्रत्येयाय	लौट आया

भावार्थ ।

वह बंदीजन राजाकी आज्ञा पाकर रैक्व ऋषिके तलाशमें फिर चला और एक पुरुष को एक गाड़ी के समीप अपने शरीर बिषे खुजली को खुजलाते हुये बैठा हुआ देखा और उसके समीप विनयपूर्वक वह भी बैठ गया, और उससे कहा हे भगवन्! क्या गाड़ी वाला रैक्व तू ही है, ऐसा सुनने पर उसने जवाब दिया, हां हां हां मैं वही रैक्व हूं, बंदीजन ऐसा जान कर राजा के पास वापस आया ॥ ८ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

तदुह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट् शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, षट्, शतानि, गवाम्, निष्कम्, अश्वतरीरथम्, तत्, आदाय, प्रतिचक्रमे, तम्, ह, अभ्युवाद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	तब याने बंदीजन के वाक्य के सुनने पर	+अभिप्रायम्	धनकी इच्छा और गृहस्थाश्रमी होनेकी इच्छा को
+ऋषेः	रैक्व ऋषि के	+ज्ञात्वा	जानकर

तत्=तत्पश्चात्
जानश्रुतिः=जनश्रुत का
पौत्रायणः=परपोता पौत्रायण राजा
षट् शतानि गवाम् =छःसौ गौओं को
निष्कम्=एक कंठहार को
अश्वतरीरथम्=दो खच्चर वाली गाड़ी को
आदाय=साथ में लेकर
रैक्कम्=रैक्क के पास
प्रतिचक्रमे=जाता भया और
तम्=उस रैक्क से
अभ्युवाद=कहता भया

भावार्थ ।

बंदीजन के वाक्य को सुनकर पौत्रायण राजा ने रैक्कऋषि के धनकी इच्छा को और गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा को जान लिया और छः सौ गौओं को एक कंठहार को दो खच्चरों की एक गाड़ी को साथ में लेकर रैक्कऋषि के पास गया और कहा ॥ १ ॥

मूलम् ।

रैक्केमानि षट् शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथो नु म एतां भगवो देवताᳪं शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

रैक्क, इमानि, षट्, शतानि, गवाम्, अयम्, निष्कः, अयम्, अश्वतरीरथः, नु, मे, एताम्, भगवः, देवताम्, शाधि, याम्, देवताम्, उपास्से, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+हे	हे	+आदत्स्व	ले
रैक	रैक ऋषि	+च	और
इमानि	ये	नु	निश्चय करके
षट्	छः	भगवः	हे भगवन्
शतानि	सौ	एताम्	उस
गवाम्	गौवों को	देवताम्	देवता को
अयम्	इस	मे	मेरे लिये
निष्कः	कंठहार को	शाधि	बता
अयम्	इस	याम्	जिस
अश्वतरी-रथः	दो खच्चर वाली गाड़ी को	देवताम्	देवता को
		उपास्से	उपासना करता है तू

भावार्थः ।

हे रैकऋषि ! इन छःसौ गौओं को, इस कंठहार को, और इस दो खच्चरवाली गाड़ी को ले, और मुझको उस देवता को बता जिसकी उपासना तू करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेवजानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, उ, ह, परः, प्रत्युवाच, अह, हारेत्वा, शूद्र,

तव, एव, सह, गोभिः, अस्तु, इति, तत्, उ, ह, पुनः, एव, जानश्रुतिः, पौत्रायणः, सहस्रम्, गवाम्, निष्कम्, अश्वतरीरथम्, दुहितरम्, तत्, आदाय, प्रतिचक्रमे ॥

अन्वयः	पदार्थ
परः	रैक्वऋषि
तम्उह	उसजानश्रुति पौत्रायण को
प्रत्युवाच	जवाब देता-भया कि
शूद्र	हे शूद्र
गोभिः	गायों के
सह	सहित
हारेत्वा	यह गाड़ी
तव	तुमारी
एव	ही
अस्तु	होवे याने तुम्हारे पास रहै मैं इनकी इच्छा नहीं रखता हूँ
तत्	तत्पश्चात्
+ऋषेः	रैक्वऋषि के
तत्	इस अभि-प्राय को
+ज्ञात्वा	जानकर
जानश्रुतिः पौत्रायणः	जनश्रुतका परपोता राजा पौत्रा-यण
ह	निश्चय करके
सहस्रम् गवाम्	एक हजार गौओं को
निष्कम्	एक कण्ठहार को
अश्वतरीरथम्	दो खच्चरवाली गाड़ी को
दुहितरम्	अपनीकन्याको
आदाय	साथ लेकर
प्रतिचक्रमे	रैक्वऋषि के पास जाता भया

भावार्थ ।

इस पर रैकऋषिने राजा से कहा कि हे शूद्र ! ये गौवें और यह गाड़ी तेरे ही पास रहें मैं इनकी इच्छा नहीं रखता हूँ तत्पश्चात् रैकऋषि के अभिप्राय को जानकर एक हजार गौओं को एक कंठहार को दो खच्चरवाली गाड़ी को और अपनी कन्याको साथ लेकर दूसरी बार रैकऋषि के पास जाता भया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तꣳ हाभ्युवाद रैकेदꣳसहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेन्वेवमाभगवः शाधीति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, अभ्युवाद, रैक, इदम्, सहस्रम्, गवाम्, अयम्, निष्कः, अयम्, अश्वतरीरथः, इयम्, जाया, अयम्, ग्रामः, यस्मिन्, आस्से, अनु, एव, मा, भगवः, शाधि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तम्	उस रैकऋषि से
जानश्रुतिःपौत्रायणः	जानश्रुति पौत्रायण राजा
अभ्युवाद	कहता भया कि
रैक	हे रैक
इदम्	यह जो
सहस्रम् गवाम्	एकसहस्र गायें हैं
अयम्	यह जो
निष्कः	कंठहार है
अयम्	यह जो
अश्वतरीरथः	दो खच्चरवाली गाड़ी है
इयम्	यह जो

जाया=कन्या है
यस्मिन्=जिस ग्राम में
आस्से=तू बैठा है
अयम्=यह जो
ग्रामः=ग्राम है
+एतत्, +सर्वम्=इनको
+आदाय=लेकर
भगवः=हे भगवन्
मा=मुझको
एव=अवश्य
अनुशाधि=उपदेश कर

भावार्थ ।

रैक्वऋषि से जानश्रुति पौत्रायण राजाने कहा कि यह एक हजार गौ, यह कंठहार, यह दो खच्चरवाली गाड़ी, यह कन्या और यह ग्राम जिसमें तू बैठा है, इन सबको लेकर हे भगवन्! तू मुझको उपदेश कर ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाऽऽजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यात्रास्मा उवास तस्मै होवाच ॥ ५ ॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्याः, ह, मुखम्, उपोद्गृह्णन्, उवाच, आजहार, इमाः, शूद्र, अनेन, एव, मुखेन, आलापयिष्यथाः, इति, ते, ह, एते, रैक्वपर्णाः, नाम, महावृषेषु, यत्र, अस्मै, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्याः	उस राजकन्या के
मुखम्	मुख के तरफ
उपोद्गृह्णन्	देखते हुये
सः	वह रैक ऋषि
उवाच	बोलता भया
शूद्र	हे शूद्र
+ भवान्	तू
इमाः	इन गायों को
आजहार	वापिस लेजा
अनेन एव	इसके
मुखेन	जरिये से
आलापयिष्यथाः	तू मुझ से विद्या सीखना चाहता है
इति	इस पर
महावृषेषु	अति पवित्र
+ देशेषु	देशों विषे
यत्र	जिन ग्रामों में
+ रैकः	रैक ऋषि
उवास	वास करता भया
+ तान्	उन गांवों को
+ जानश्रुतिः	जानश्रुतिपौत्रायण राजा
अस्मै	रैकऋषि के लिये
+ अदात्	देता भया
+ तदा	तब
तस्मै	उस जानश्रुति से
+ विद्याम्	विद्याको
ह	भली प्रकार
उवाच	रैकऋषि कहता
+ च	और
एते	वे गांव
रैकपर्णाः नाम	रैकऋषि के नाम से प्रसिद्ध होते भये

भावार्थ ।

उस राजकन्या के मुख के तरफ देखकर वह रैकऋषि

कहता भया कि हे राजन्! तू इन गौओं को वापिस लेजा, क्या तू इनके द्वारा विद्या सीखना चाहता है, यह सुनकर वह राजा पवित्र देशों के विषे जिन जिन ग्रामों में रैकऋषि वास करता भया उन सब ग्रामों को रैकऋषि के प्रति देता भया, तब रैक ऋषि भली प्रकार राजा को विद्याका उपदेश करता भया ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्यो स्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रो स्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वायुः, वा, व, संवर्गः, यदा, वा, अग्निः, उद्वायति, वायुम्, एव, अप्येति, यदा, सूर्यः, अस्तम्, एति, वायुम्, एव, अप्येति, यदा, चन्द्रः, अस्तम्, एति, वायुम्, एव, अप्येति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ बाह्यः	बाहर का	यदावा	जब
वायुः	वायु	अग्निः	अग्नि
वाव	ही	उद्वायति	शान्त होता है याने बुझता है
संवर्गः	सबका संग्रहण करने वाला	तदा	तब
+ अस्ति	है	वायुम्	वायु में
		एव	ही

अप्येति=लीन होता है	यदा=जब
यदा=जब	चन्द्रः=चन्द्रमा
सूर्यः=सूर्य	अस्तम्=अस्त को
अस्तम्=अस्त को	एति=प्राप्त होता है
एति=प्राप्त होता है	+ तदा=तब
+ तदा=तब	वायुम्=वायु में
वायुम्=वायु में	एव=ही
एव=ही	अप्येति=लीन होता है
अप्येति=लीन होता है	

भावार्थ ।

वायुही सबका संग्रहण करनेवाला है, जब अग्नि बुझजाता है तब वह वायुमें ही लीन होजाता है, जब सूर्य अस्त को प्राप्त होजाता है तब वायुमें ही लीन होजाता है, जब चन्द्रमा अस्त को प्राप्त होजाता है तब वायुमें ही लीन होजाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदाऽऽप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, आपः, उच्छुष्यन्ति, वायुम्, एव, अपियन्ति, वायुः, हि, एव, एतान्, सर्वान्, संवृङ्क्ते, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यदा=जब	उच्छुष्यन्ति=प्रलयकाल में सूख जाते हैं
आपः=जल	

+तदा=तब
वायुम्=वायु में
एव=ही
अपियन्ति=लीन होता है
हि=क्योंकि
वायुः=वायु
एव=ही
एतान्=इन
सर्वान्=सब अग्न्यादिकों को
संवृङ्क्ते=अपने में रखता है
इति=इस प्रकार
अधिदैवतम्=देवतासम्बन्धी
संवर्गदर्शनम्=संवर्ग
उक्तम्=कहागया है

भावार्थ ।

जब जल प्रलयकाल में सूख जाता है तब वायु में ही लीन होता है, क्योंकि वायु ही सब अग्नि आदिकों का आधार है, इस प्रकार यह देवतासंबन्धी संवर्ग कहागया है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, प्राणः, वाव, संवर्गः, सः, यदा, स्वपिति, प्राणम्, एव, वाक्, अप्येति, प्राणम्, चक्षुः, प्राणम्, श्रोत्रम्, प्राणम्, मनः, प्राणः, हि, एव, एतान्, सर्वान्, संवृङ्क्ते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	चक्षुः	नेत्र
अध्यात्मम्	शरीरसम्बन्धी	प्राणम्	प्राण में ही
संवर्गदर्शनम्	संवर्ग	+अप्येति	लयहोता है
उच्यते	कहाजाता है	श्रोत्रम्	करण
प्राणः	प्राण	प्राणम्	प्राण में ही
वाव	ही	अप्येति	लय होता है
संवर्गः	सबको अपने में रखने वाला है	मनः	मन
सः	पुरुष	प्राणम्	प्राण में ही
यदा	जब	+अप्येति	लय होता है
स्वपिति	सोता है	हि	क्योंकि
+तदा	तब	प्राणः	प्राण
वाक्	वाणी	एव	ही
प्राणम्	प्राण में	एतान्	इन
एव	ही	सर्वान्	सब वागादिकों को
अप्येति	लयहोती है	इति	कहेहुए प्रकार
		संवृङ्क्ते	अपने में लयकर लेता है

भावार्थ ।

अथाध्यात्मम्=अब शरीरसम्बन्धी संवर्गविद्या को कहते हैं, प्राणही निश्चय करके संवर्ग हैं, याने लय करनेवाला है, क्योंकि जिस काल में कोई पुरुष शयन करता है उस काल में वागिन्द्रिय, चक्षुः इन्द्रिय, श्रोत्र इन्द्रिय और मन प्राण में ही

लयभाव को प्राप्त होते हैं, इसी कारण प्राण ही सब इन्द्रियों का लय करनेवाला है-येहीअध्यात्म उपदेश है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, वा, एतौ, द्वौ, संवर्गौ, वायुः, एव, देवेषु, प्राणः, प्राणेषु ॥

अन्वयः	पदार्थ
तौ	येही
एतौ द्वौ	ये दो
वा	निश्चय करके
संवर्गौ	संवर्ग
उक्तौ	कहेगये हैं
वायुः	वायु
एव	ही
देवेषु	अधिदैवत में
+च	और
प्राणः	प्राण ही
प्राणेषु	अध्यात्म में

भावार्थ ।

देवतों में वायु संवर्गगुणवाला है, और इन्द्रियों में प्राण संवर्ग गुणवाला है, इसलिये अधिदैव और अध्यात्मभेद करके दो संवर्ग कहेगए हैं, याने देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च

काक्षसेनिं परिवेष्यमाणौ ब्रह्मचारी विभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, शौनकम्, च, कापेयम्, अभिप्रतारिणम्, च, काक्षसेनिम्, परिवेष्यमाणौ, ब्रह्मचारी विभिक्षे, तस्मै, उ, ह, न, ददतुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
ह	पूर्व कालकी
+आख्यायिका	कथा को
+आरभ्यते	आरंभकरतेहैं
ब्रह्मचारी	एकश्रेष्ठ ब्रह्मचारी ने
कापेयम्	कपिगोत्रवाले
शौनकम्	शौनकऋषि
च	और
अभिप्रतारिणम्	अभिप्रतारी
काक्षसेनिम्	कक्षसेन के पुत्र से
यौ	जो
सूपकारैः	रसोई पकाने वालों करके
परिवेष्यमाणौ	सेवा सत्कार पारहे थे
विभिक्षे	भिक्षामांगी
उह	तब वह दोनोंने
तस्मै	उस ब्रह्मचारी के निमित्त
+भिक्षाम्	भिक्षा
न	नहीं
ददतुः	दिया

भावार्थ ।

अब इन दोनों देवताओं याने वायु और प्राणकी स्तुति करने के लिये कथा का आरंभ करते हैं, एक समय कपि गोत्रवाला

शौनक और कक्षसेन का पुत्र अभिप्रतारक जो भोजन करने के वास्ते बैठे थे और जिनके सामने भोजन परोसा जा रहा था, उनके समीप आकर एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगा, तिस ब्रह्मचारी को उन्हों ने भिक्षा नहीं दिया, उनका उसके प्रति भिक्षा न देने का यह तात्पर्य्य था कि जब वह भिक्षा नहीं पावेगा तब हमको वह अपना आत्मज्ञान कथा सुनावेगा ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन् बहुधा वसन्तम् यस्मै वा एतत् अन्नम् तस्मै एतत न दत्तम् इति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, महात्मनः, चतुरः, देवः, एकः, कः, सः, जगार, भुवनस्य, गोपाः, तम्, कापेय, न, अभिपश्यन्ति, मर्त्याः, अभिप्रतारिन्, बहुधा, वसन्तम्, यस्मै, वा, एतत्, अन्नम्, तस्मै, एतत्, न, दत्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह ब्रह्मचारी	+यः	=जो
ह	=निश्चयकरके	चतुरः	=चारों
उवाच	=प्रश्नकरता भया कि	महात्मनः	=महात्मावों को
सः	=वह	जगार	=ग्रासकरजाता है
एकम्	=एक कौन	+च	=और
देवः	=देवता है	सः	=वह

कः=कौन है
यः=जो
भुवनस्य=भूरादि लोकों का
गोपाः=रक्षा करने वाला है
कापेय=हे कापेयगोत्र वाले ऋषि
+यम्=जिसको
मर्त्याः=मरण धर्मसम्बन्धी मनुष्य
इति=इस प्रकार
न=नहीं
+अभिपश्यंति=जानते हैं
अभिप्रतारन=हे अभिप्रतारन
बहुधा=बहुत जगह
वसन्तम्=वासकरनेवाले उसरक्षक को
नाभिपश्यन्ति=अविवेकीजन नहीं जानतेहैं
यस्मै=जिसके वास्ते
वा=निश्चय करके
एतत्=यह
अन्नम्=अन्न है
तस्मै=उसी के लिये
एतत्=यह अन्न
न=नहीं
दत्तम्=दिया गया है

भावार्थ ।

ब्रह्मचारी ने उनसे प्रश्न किया कि वह कौन एक देवता है जो अग्नि आदिकोंका और वागादिकोंका भक्षण करनेवाला है, और भुवनों की रक्षा करनेवाला है, जिसको, हे कापेय ! मरण धर्मवाले अज्ञानी जीव अनेक प्रकार से उसी में बसते हुए भी नहीं जानते हैं, जिस प्रजापति के लिये प्रतिदिन यह भोजन संस्कार किया जाता है उसी प्रजापति के प्रति तुमने अन्नको नहीं दिया है, इसमें क्या कारण है, क्या तुम उस प्रजापति की उपासना को नहीं करते हो ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानां हिरण्यदंष्ट्रो बभसोनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, उ, ह, शौनकः, कापेयः, प्रतिमन्वानः, प्रत्येयाय, आत्मा, देवानाम्, जनिता, प्रजानाम्, हिरण्यदंष्ट्रः, बभसः, अनसूरिः, महान्तम्, अस्य, महिमानम्, आहुः, अनद्यमानः, यत्, अनन्नम्, अत्ति, इति, वै, वयम्, ब्रह्मचारिन्, आ, इदम्, उपास्महे, दत्तः, अस्मै, भिक्षाम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
कापेयः	कपि गोत्रोत्पन्न
शौनकः	शौनकऋषि
तत् उह	ब्रह्मचारी के वचन को
प्रतिमन्वानः	मन से विचार करता हुआ
प्रत्येयाय	ब्रह्मचारी के पास आकर
आह च	कहता भया कि
तम्	उस प्रजापति को
वयम्	हम
पश्यामः	जानते हैं
देवानाम्	वह अग्नि आदिक देवतों का

आत्मा=आत्मा
प्रजानाम्=स्थावर जंगम प्रजाका
जनिता=उत्पन्न करने वाला है
हिरण्यदंष्ट्रः=सुवर्ण दांत वाला है
बभसः=भक्षण करने वाला है
अनसूरिः=विद्वान् है
ब्रह्मविदः=ब्रह्मवेत्ता
अस्य=इस प्रजापति के
महिमानम्=ऐश्वर्य को
महान्तम्=अतिमहान्
आहुः=कहते हैं
यत्=क्योंकि वह
अन्यैः=औरों करके
अनद्यमानः=खाया नहीं जाता है पर
अनन्नम्=अग्नि वाणी आदि जो अन्न नहीं हैं
अत्ति=उन को भी वह खा जाता है
इति=इसलिये
ब्रह्मचारिन्=हे ब्रह्मचारी
वहम्=हम
इदम्=इस
आ=चारों तरफ वाले याने ब्रह्मकी
उपास्महे=उपासना करते हैं
अस्मै=इस ब्रह्मचारी के लिये
भिक्षाम्=भिक्षा
दत्त=देवो
इति=इस प्रकार
सः=शौनकऋषि
भृत्यान्=नौकरों को
अवोचत=कहता भया

भावार्थ ।

ब्रह्मचारी के वाक्य को सुनकर और मनमें विचार करके

शौनक कापेय ब्रह्मचारी के पास आ करके इस प्रकार कहता भया कि जिसको तू ने हे ब्रह्मचारी कहा है कि अज्ञानी मनुष्य नहीं जानते हैं, अर्थात् नहीं देखते हैं, उसीको हम देखते हैं, वही संपूर्ण स्थावर जंगमरूप प्रजाका आत्मा है, वही संपूर्ण अग्नि आदिक देवतोंका उत्पन्न करनेवाला है, वही फिर अपने में ही लय करनेवाला भी है, वही वायुरूप करके अग्नि आदिकों का अधिदैवत है, और प्राणरूप करके वागादिकों का अध्यात्मक भी है, और संपूर्ण प्रजोंका उत्पन्न करनेवाला है, और सुवर्ण की तरह दाढ़ रखने वाला है, यानी अनादिकाल का भक्षण करनेवाला है, वही बड़ा बुद्धिमान् है, और सबसे महान् भी है, जो किसी करके नहीं खाया जाता है उसका भी वह खानेवाला है, हे ब्रह्मचारिन् ! हमलोग उसी की उपासना को करते हैं, ऐसे कह करके उस ब्रह्मचारी के प्रति अन्न देने की आज्ञा दिया ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पंचान्ये पंचान्ये दशासन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतं सैषा विराडन्नादी तयेदं सर्वं दंष्ट्रं सर्व-मस्येदं दृष्टं भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मै, उ, ह, ददुः, ते, वै, एते, पंच, अन्ये, पंच, अन्ये, दश, सन्तः तत्, कृतम्, तस्मात्, सर्वासु, दिक्षु, अन्नम्, एव, दश, कृतम्, सा, एषा, विराट्, अन्नादी, तया, इदम्, सर्वम्, दंष्ट्रम्, सर्वम्, अस्य, इदम्, दृष्टम्, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते उ, ह	वे नौकर निश्चय करके
तस्मै	उस ब्रह्मचारी के लिये
+ भिक्षाम्	भिक्षा को
ददुः	देते भये
वै	निश्चय करके
एते	ये
पञ्च	पांच प्राण, वाणी, मन, चक्षु, और श्रोत्र देवता
अन्ये	पृथक् हैं
+ च	और
एते	ये
पंच	पांच वायु, अग्नि, सूर्य, चंद्र, और जल देवता
अन्ये	पृथक् हैं
+ इति	इस प्रकार
दश	दशदेवता
सन्ताः	मिलकर
तत्	वह
कृतम्	कृतयुग
भवति	होता है
तस्मात्	इसलिये
सर्वासु	सब
दिक्षु	दिशाओं में
अन्नम्	अन्न याने भोग्य वस्तु
एव	ही
दश	दश देवता
कृतम्	कृत याने सत्ययुग नाम से प्रसिद्ध हैं
सा	वही
एषा	यह
विराट्	दश देवता
अन्नादी	अन्नादिक हैं
तया	तिन दश देवतों करके
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत्
दृष्टम्	देखा गया है याने रचागयाहै

यः=जो	इदम्=यह
एवम्=कहे हुए प्रकार से	सर्वम्=सब जगत्
वेद=जानता है	दृष्टम्=देखा हुआ
अस्य=उस जाननेवाले को	भवति=होता है

भावार्थ ।

शौनक ऋषि कहते हैं हे ब्रह्मचारी! इस शरीरके बाहर जो वायु है वह भोक्ता है, और अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल उसके भोग्य हैं; क्योंकि अग्नि वायु में लय रहती है; विना वायुके अग्नि की स्थिति नहीं; वायु आधार है, और अग्नि आधेय है. आधार आधेय को लिये हुये ऐसा दिखाई पड़ता है कि मानो वह उस को अपने में पकड़े है. यदि घट में अग्नि या दीपक रख दिया जाय और उसका मुँह ऐसा बंद कर दिया जाय कि उसमें वायु न जा सके तो अग्नि या दीपक बुझ जायगा याने उसको वह (वायु) भक्षण कर जायगा. सूर्य चन्द्र की गति भी वायु करके ही होती है. याने वे वायु करके चारोंओर ग्रसित हैं. महाप्रलय में जब वायु प्रचंड होताहै, तब अग्नि, सूर्य, चन्द्र, और जलका कहीं पता नहीं लगता है, वायु उन सबों को भक्षण करजाता है, और सृष्टि के उत्पत्ति समय इन सबों को वह अपने में से बाहर निकाल देता है. इसी कारण यह वायु आधिदैविक संवर्ग कहा जाता है, याने अपने में सबको खींचकर रखता है, इसी प्रकार इस शरीरके अन्तर प्राण भी भोक्ता है, और वाणी, चक्षु, मन और श्रोत्र इसके भोग्य हैं, क्योंकि यह प्राण केही वश रहते हैं, यह प्राण इस कारण आध्यात्मिक संवर्ग कहा जाता है; याने अपने में इन चारों को खींचकर रखता है. प्राण के निकलने पर ये चारों अपने अपने स्थानों में नहीं रह सकते हैं; उसके साथ खिचे चलेजाते हैं. सुषुप्ति अवस्था में अथवा मरणकाल में यह चारों प्राण में ही लय होजातेहैं; और फिर जाग्रत् अवस्था अथवा

उत्पत्ति समय उसी प्राण से निकल आते हैं और अपने २ स्थानों में स्थित होजाते हैं ॥

ऊपर कहे हुये जो दो भोक्ता—याने वायु और प्राण—और आठ भोग्य—याने अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, वाणी, नेत्र, मन और श्रोत्र—हैं, इन सबों का भोक्ता आत्मा है, सोई अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप से दशो दिशाओं में व्याप्त है. यावत् दशो दिशाओं में व्याप्त है वही अन्न है, वही भोग्य है, वही विराट् है. इस विराट्की उपमा उस विराट् छन्द से है जो वेदों में दश अक्षरों करके संयुक्त है. इसी की उपमा द्यूत में कृतनामवाले पासे से भी देते हैं जो अपने चार अंकोंसे युक्त है, और जिसमें तीन (=त्रेता), दो (=द्वापर), और एक (=कलि) अंकवाले पासे अन्तर्भूत हैं. और जैसे कृत नामक पासे को जीत लेने से बाकी के तीनों पासे जीते समझे जाते हैं वैसेही कृतयुगके जीत लेने से बाकी के तीनों युग भी—याने त्रेता, द्वापर और कलि—जीते हुये समझे जाते हैं. इसी प्रकार अन्न के दान देने से सर्व वस्तुओं का दान दिया हुआ जाना जाता है, और आत्मा के भोग लेने से सब का भोग किया हुआ होजाता है. विराट् का अर्थ भोग्य और भोक्ता दोनों है. इसलिये जो भोग्यरूपसे स्थित है वह और जो भोक्तारूपसे स्थित है वह भी दोनो आत्माही है; याने वही भोग्य है, और वही भोक्ता है, ऐसा जो—देखनेवाला है, वही तत्त्वदर्शी और अन्न का भोक्ता समझा जाता है ॥ ८ ॥ इति तृतीयःखण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थःखण्डः ।

मूलम् ।

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सत्यकामः, ह, जाबालः, जबालां, मातरम्, आमन्त्रयांचक्रे, ब्रह्मचर्य्यम्, भवति, विवत्स्यामि, किंगोत्रः, नु, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
जाबालः	जबाला का पुत्र
सत्य कामः	सत्य काम
जबालाम्	जबाला नामक
मातरम्	अपनीमातासे
ह	श्रद्धापूर्वक
आमन्त्रयांचक्रे	पूछता भया कि
हे	हे
भवति	पूजनीय माता
ब्रह्मचर्य्यम्	वेद ग्रहण के वास्ते
आचार्य्य कुले	आचार्य्यकुल में
विवस्यामि	मैं वासकरूंगा
अहम्	मैं
किंगोत्रः	किस वंश में उत्पन्न हुआ
अस्मि	हूं
इति	यह मेरा
नु	प्रश्न है

भावार्थ ।

सत्यकाम जबाला का पुत्र जब कि वह बारह वर्ष का होगया एक दिन उसने अपने माता से जाकरके कहा हे माता ! मेरी इच्छा गुरु के घर जाकर ब्रह्मचर्य्य को धारण करके वेदों के पढ़ने की है जब मैं गुरु के पास जाऊंगा तो उनको मैं अपना कौन गोत्र बताऊंगा, मैं अपने गोत्र को नहीं जानता हूं, आप मेरे गोत्र को बता दीजिये ॥ १ ॥

मूलम् ।

साहैनमुवाच नाऽहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जवाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जावालो ब्रवीथा इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, एनम्, उवाच, न, अहम्, एतत्, वेद, तात, यद्गोत्रः, त्वम्, असि, बहु, अहम्, चरन्ती, परिचारिणी, यौवने, त्वाम्, अलभे, सा, अहम्, एतत् न, वेद, यद्गोत्रः, त्वम्, असि, जवाला, तु, नाम, अहम्, अस्मि, सत्यकामः, नाम, त्वम्, असि, सः, सत्यकामः, एव, जावालः, ब्रवीथाः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा ह	वह जवाला	त्वम्	तू
एनम्	उस सत्यकाम से	यद्गोत्रः	किस वंशका
उवाच	कहती भई कि	असि	है
तात	हे बेटा	अहम्	मैं
अहम्	मैं	+ भर्तृगृहे	अपने पतिके घर में
एतत्	यह		
न	नहीं	बहु	अतिथि अभ्यागतों की सेवा
वेद	जानती हूं कि		

चरन्ती=करती हुई
परिचारिणी=सेवास्वभाव वाली
अभूवम्=होती भई
च=और
यौवने=युवा अवस्था में
त्वाम्=तुझको
अलभे=मैंने पाया
सा=सोई
अहम्=मैं
एतत्=इसको
न=नहीं
वेद=जानती हूं कि
त्वम्=तू
यद्गोत्रः=किस गोत्र-वाला
असि=है
अहं तु=मैं तो
जवाला=जवाला
नाम=इस तरह प्रसिद्ध
अस्मि=हूं
च=और
त्वम्=तू
सत्यकामः=सत्यकाम
नाम=इस तरह प्रसिद्ध
असि=है
सः, एव=वही
सत्यकामः=सत्यकाम
जावालः=जवालाकापुत्र
अहम्=मैं
अस्मि=हूं
इति=ऐसा गुरुसे
ब्रुवीथाः=कह तू

भावार्थ ।

पुत्रकी वार्ताको सुन करके माताने कहा, हे तात ! किस गोत्र का तू है इस बात को मैं भी नहीं जानती हूं, गोत्र के न जानने में कारण यह है कि जब से मैं अपने पतिके घर आई तब से मैं पति की सेवा में रही, और आए गए अतिथियों की सेवा सत्कार करती रही, कभी मैंने अपने पति से नहीं पूछा कि आप

का क्या गोत्र है, क्योंकि पतिव्रता स्त्री का धर्म केवल पतिकी सेवा और पति की आज्ञा का पालन करना है, यौवन अवस्था में तू मेरे को प्राप्त हुआ, उसके थोड़े काल के पीछे तेरे पिताका देहान्त होगया, इसवास्ते मैं इतनाही जानतीहूं कि जबाला मेरा नाम है, और सत्यकाम तेरा नाम है, जब गुरु तुम्हारे से गोत्र पूछैं तब तुम उन से कहदेना कि सत्यकाम मेरा नाम है, और जबाला मेरी माता का नाम है, केवल इतनाही मेरी माता जानती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्य्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, हारिद्रुमतम्, गौतमम्, एत्य, उवाच, ब्रह्मचर्य्यम्, भगवति, वत्स्यामि, उपेयाम्, भगवन्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वही सत्यकाम
गौतमम्	गौतम गोत्र वाले
हारिद्रुमतम्	हरिद्रुमान् के पुत्र हारिद्रुमत ऋषि के पास
एत्य	जाकर
उवाच	कहताभया कि
ब्रह्मचर्य्यम्	वेदग्रहण के लिये
भगवति	आपके पास
वत्स्यामि	मैं वास करना चाहता हूं
अतः	इसलिये

भगवन्तम्=आप पूज्य के पास | अपेयाम्=प्राप्त होऊं

भावार्थ ।

माता के वचन को सुन करके सत्यकाम हारिद्रुमत ऋषि के समीप जाकर कहता भया मैं आपके पास शिष्य बन करके और ब्रह्मचर्य्य को धारण करके रहने के लिये आया हूं आप हमारे पूज्य हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तं होवाच किं गोत्रो नु सौम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नामत्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, किम्, गोत्रः, नु, सौम्य, असि, इति, सः, ह, उवाच, न, अहम्, एतत्, वेद, भोः, यद्गोत्रः, अहम्, अस्मि, अपृच्छम्, मातरम्, सा, मा, प्रत्यब्रवीत्, बहु, अहम्, चरन्ती, परिचारिणी, यौवने, त्वाम्, अलभे, सा, अहम्, एतत्, न, वेद, यद्गोत्रः,

त्वम्, असि, जबाला, तु, नाम, अहम्, अस्मि, सत्यकामः, नाम, त्वम्, असि, इति, सः, अहम्, सत्यकामः, जाबालः, अस्मि, भोः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+गौतमः	तब गौतम	अहम्	मैंने
तम् ह	उस सत्यकाम से	यदा	जब
उवाच	कहता भया कि	मातरम्	अपनी माता से
+हे	हे	अपृच्छम्	पूछा तब
सौम्य	प्रियदर्शन	सा	वह
किं गोत्रः	किस वंशका तू	मा	मुझ से
असि	है	प्रत्यब्रवीत्	कहती भाई कि
नु	मेरा यह प्रश्न है	अहम्	मैं
इति	इस प्रकार	बहु	अतिथि अभ्यागतोंकी बहुतसी सेवा
पृष्टः	जब पूछा गया तब	चरन्ती	करती रही
सः ह	वह सत्यकाम	परिचारिणी	सेवा स्वभाव वाली
उवाच	कहता भया कि	+अभूवम्	होती हुई
यद्गोत्रः	जिस गोत्रका	यौवने	यौवन अवस्था में
अहम्	मैं हूं	त्वाम्	तुझको मैंने
एतत्	उसको	आलभे	प्राप्त किया
न	नहीं	सा	वह
वेद	जानता हूं		
भोः	हे भगवन्		

अहम्=मैं	त्वम्=तू
एतत्=यह	सत्यकामः नाम = सत्यकामनाम से प्रसिद्ध
न=नहीं	असि=है
वेद=जानती हूं कि	भोः=हे भगवन्
त्वम्=तू	सः=वही
यद्गोत्रः=किसगोत्र का	अहम्=मैं
असि=है	सत्यकामः=सत्यकाम
अहम् तु=मैं तो	जाबालः=जबालाकापुत्र
जबालानाम=जबाला नाम से प्रसिद्ध	अस्मि=हूं
अस्मि=हूं	इति=ऐसा गुरु से कहा
च=और	

भावार्थ ।

शास्त्र की यह आज्ञा है कि विना कुल गोत्र के जाने किसी को शिष्य न बनावे, इस कारण हारिद्रुम ने सत्यकाम से पूछा, तुम्हारा कौन गोत्र है, सत्यकाम ने कहा, जब आपके पास आकर ब्रह्मचर्य्य धारण करके निवास करने की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न भई तब मैंने अपनी माता से पूछा कि मेरा कौन गोत्र है, क्योंकि गुरु के प्रति गोत्र हमको बताना होगा, मेरी माता ने कहा मैं नहीं जानतीहूं कि तुम्हारा कौन गोत्र है, क्योंकि मैं तो पातिव्रत धर्म को धारण करके पति की सेवा में ही रही, कभी भी मैंने तुम्हारे पिता से नहीं पूछाथा कि आपका कौन गोत्र है, यौवन अवस्था में तू मुझको प्राप्त हुआ, तत्पश्चात् तुम्हारे पिताका शरीर छूटगया, सो तू अपने गुरु से कहना, जबाला मेरी माता का नाम है, और सत्यकाम जाबाल मेरा नाम है, इतनाही मैं जानताहूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सौम्याऽऽहरोपत्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सौम्यानुव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्त्तेयमिति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रं संपेदुः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, न, एतत्, अब्राह्मणः विवक्तुम्, अर्हति, समिधम्, सौम्य, आहर, उपत्वा, नेष्ये, न, सत्यात्, अगाः, इति, तम्, उपनीय, कृशानाम्, अबलानाम्, चतुःशताः, गाः, निराकृत्य, उवाच, इमाः, सौम्य, अनुव्रज, इति, ताः, अभिप्रस्थापयन्, उवाच, न, असहस्रेण, आवर्त्तेयम्, इति, सः, ह, वर्षगणम्, प्रोवास, ताः, यदा, सहस्रम्, संपेदुः ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ गौतमः	=गौतम
तम् ह	=सत्यकाम से
उवाच	=कहताभया कि
एतत्	=यह
+ वचः	=सत्य वचन
अब्राह्मणः	=ब्राह्मण के सिवाय और कोई
विवक्तुम्	=कहने को
न	=नहीं
अर्हति	=योग्य है
सौम्य	=हे सौम्य
समिधम्	=लकड़ियों को संस्कारकेलिये
आहर	=ले आ

अहम्=मैं
त्वा=तेरा
उपनेष्ये=उपनयन क-
रूंगा
+ यतः=क्योंकि
सत्यात्=सत्यरूप ब्रा-
ह्मणधर्म से
मा=नहीं
अगा=रहित है तू
इति=ऐसा कहकर
+ सः=वह गौतम
तम्=उस सत्यकाम
का
उपनीय=उपनयन क-
रके
कृशानाम्=दुबली
अबलानाम्=शक्तिहीन
गवाम्=गौवों के
+ समूहात्=समूहों में से
चतुःशताः=चारसौ
गाः=गौवों का
निराकृत्य=पृथक् करके
उवाच=कहता भया
कि

सौम्य=हे सत्यकाम
इमाः=इन गौवों के
अनुव्रज=पीछे पीछे जा
इति + श्रुत्वा=ऐसे सुन करके
सः=वह सत्यकाम
ताः=उन गौवों को
वनम्=वनकी ओर
अभिप्रस्थापयन्=लेजाते हुये
उवाच=गुरु से कहता भया कि
असहस्रेण=जबतक एक हज़ार न हो जायेंगी
न=नहीं
आवर्तयम्=लौटूंगा मैं
इति=इसलिये
सः ह=वह सत्यकाम
वर्षगणम्=बहुत बरसों तक
+ गाः=गौवों को
+ तृणोदक बहुलम्=तृण औरजल करके भरेहुये

+अरण्यम्=वन में	यदा=जबतक
+प्रवेश्य=प्रवेश करके	ताः=वे गौवें
+ सह=उनके साथ	सहस्रम्=एक हज़ार
प्रोवास=वास करता भया	न=नहीं
	संपेदुः=होती भईं

भावार्थ ।

तिस सत्यकाम से गौतम ने कहा जो ब्राह्मण नहीं है वह इसप्रकार कदापि सत्य कथन नहीं करसक्ता है, जो ब्राह्मण होता है वही सत्य को कहता है, तुमने सत्य २ कहा है, इस वास्ते मुझको विश्वास है कि तुम ब्राह्मण हो, हे सौम्य ! लकड़ियों को वन से बीन करके लावो, होम को करके मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूंगा, क्योंकि तुम सत्यभाषण से चलायमान नहीं हुए हो, सत्यकाम का उपनयन कराकर और ब्रह्मचर्य्य धारण कराकर गुरु ने गौवों के यूथ में से दुर्बल चार सौ गौवों को पृथक् करके सत्यकाम से कहा, हे सौम्य! इनको तुम वनमें लेजावो, जब उन गौवों को सत्यकाम ले करके वनको चला, तब ऋषि से कहा कि जबतक यह गौवें एक हज़ार पूरी न हो जायँगी तबतक वन से मैं नहीं लौटकर आऊंगा, इसतरह कहकर वह सत्यकाम सुख दुःखको सम जानकर बरसों तक वन में रहकर उन गौवों की सेवा करता रहा, और उस वनमें गौवों को लेगया जिसमें सुन्दर २ घास और जल बहुत थे, और जबतक गौवें एक सहस्र पूर्ण नहीं हुई थीं तब तक उनकी सेवा को करता रहा ॥ ५ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम इति भगव

इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सौम्य सहस्रं स्मः प्रापय न आचार्य्यकुलम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, ऋषभः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव, प्राप्ताः, सौम्य, सहस्रम्, स्मः, प्रापय, नः, आचार्य्यकुलम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	ऋषभः प्रतिशुश्राव	बैलने जवाब दिया
ह	निश्चय करके	सौम्य	हे सौम्य
ऋषभः	बैल	सहस्रम्	एक हज़ार
एनम्	सत्यकाम से	प्राप्ताः	हम सब प्राप्त होगये
अभ्युवाद	कहता भयाकि	स्मः	हैं
सत्यकाम	हे सत्यकाम	नः	हम सब को
इति	इस पर	अधुना	अब
+सत्यकामः	सत्यकाम ने कहा	आचार्य्यकुलम्	आचार्य्य के घर
भगवः	हे पूज्य	प्रापय	ले चलो
+वद	कहिये		
इति	तब		
+संबोध्य	संबोधन करके		

भावार्थ ।

तब वायुदेवता बैल का रूप धारण करके कहता भया हे सत्यकाम ! तब सत्यकाम ने कहा हे भगवन् ! क्या आज्ञा है,

कहिये, तब ऋषभ ने कहा हे सौम्य ! हम एक हज़ार पूर्ण होगये हैं तुम हम को आचार्य्य के घर ले चलो ॥ १ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रुवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणादिक्कलोदीचीदिक्कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, च, ते, पादम्, ब्रुवाणि, इति, ब्रवीतु , मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, प्राची, दिक्, कला, प्रतीची, दिक्, कला, दक्षिणा, दिक्, कला, उदीची, दिक्, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ
+अपि	इसके सिवाय
+अहम्	मैं
ते	तेरे लिये
ब्रह्मणः	ब्रह्म का
पादम्	पाद
ब्रुवाणि	कहूंगा
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहा हुआ
	सत्यकाम ने
प्रत्युवाच	जवाब दिया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरे लिये
ब्रवीतु	कहें
इति	तब
+ सः	वह बैल
तस्मै	सत्यकाम से
उवाच ह	कहता भया
	कि

प्राची=पूर्व	दिक्कला=दिशा
दिक्=दिशा	×एकपादः=एकपाद है
कला=एक पाद है	सौम्य=हे सत्यकाम
प्रतीची=पश्चिम	ब्रह्मणः=परब्रह्म के
दिक्कला=दिशा	प्रकाशवान्=प्रकाशस्वरूप
×एकपादः=एकपाद है	चतुष्कला=चार अंगों वाले
दक्षिणा=दक्षिण	नाम=प्रसिद्ध
दिक्कला=दिशा	एषः=यह
+एकपादः=एकपाद है	पादः=यह चारपाद हैं
उदीची=उत्तर	

भावार्थ ।

मैं तुम्हारे प्रति ब्रह्म के पादको कहूंगा, सत्यकाम ने कहा हे भगवन्! कहिये, ऐसा सुनकर ऋषभ ने सत्यकाम से कहा, पूर्व दिशा एक पाद है, पश्चिम दिशा एक पाद है, दक्षिण दिशा एक पाद है, उत्तर दिशा एक पाद है, कलाशब्द का अर्थ अवयव है, अर्थात् इन चारों अवयवोंवाला ब्रह्म का एक पाद है और वह प्रकाश गुणवाला भी है, और यही उसका नाम भी है इसी प्रकार बाकी के तीन पाद भी चार २ अवयवोंवाले हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वान् चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्च तुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, इति, उपास्ते, प्रकाशवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, प्रकाशवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, प्रकाशवान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
चतुष्कलम्	चारभागवाले
एतम् एवम्	इसी
पादम्	पादको
प्रकाशवान्	प्रकाशवान्
इति	ऐसा
+ विदित्वा	जानकर
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
प्रकाशवान्	विख्यात
भवति	होता है यह दृष्ट फल है
+च	और
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
ब्रह्मणः	ब्रह्मके
चतुष्कलम्	चारअङ्गवाले
एतं एवमेव	इसी
पादम्	पाद को
प्रकाशवान्	प्रकाशवान्
+इतिज्ञात्वा	ऐसा जान करके
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
ह	निश्चय करके
प्रकाशवतः	प्रकाशवाले

लोकान्=देवतादिकों के लोकों को	जयति=प्राप्त होताहै (यह अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस प्रकार चार अवयवोंवाले प्रकाशवान् ब्रह्मके पाद की उपासना करता है सो इस लोक में प्रकाशवाला होता है, अर्थात् प्रसिद्ध होता है और प्रकाशवाले लोक को भी वह देह त्याग के अनन्तर प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निः, ते, पादम्, वक्ता, इति, स, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयाञ्चकार, ताः, यत्र, अभि, सायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमाधाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+सः	=वह	+ब्रह्मणः	=ब्रह्म के
अग्निः	=अग्नि	पादम्	=दूसरे पादको
ते	=तेरेलिये	वक्ता	=कहेगा

इति=इस प्रकार	अभिव्र-भूवुः=इकट्ठी होती भईं
+ उपराम=कहकर बैल चुप होगया	तत्र=वहीं
सः ह=वह सत्यकाम	अग्निम्=अग्नि को
श्वोभूते=दूसरे दिन	उपसमाधाय=संस्कारपूर्वक स्थापन करके
+ नित्यकर्म=नित्यकर्म	+च=और
कृत्वा=करके	गाः=गौओं को
गाः=गौवों को	उपरुध्य=रोक करके
+ आचार्यकुलम् प्रति=आचार्य के घरकी तरफ़	समिधम्=लकड़ी
अभिप्रस्थापयाञ्चकार=ले चलता भया	आधाय=होम के लिये रखकर
ताः=वह गौवें	अग्नेः=अग्नि के
यत्र=जिस स्थान में	पश्चात्=पीछे
सायम्=रात्रि के विषे	उपप्राङ्=पूर्वाभिमुख होकर
	उपविवेश=बैठता भया

भावार्थ ।

फिर ऋषभ ने सत्यकाम से कहा, अग्निदेवता तुम्हारे प्रति ब्रह्म के दूसरे पाद को कहेगा, ऐसे कहकर ऋषभ तूष्णीम् होता भया, दूसरे दिन सत्यकाम सवेरे नित्यकर्म करके गौवों को आचार्य के घरको लेजाने के वास्ते हांकता भया, अर्थात् ले करके चला, चलते २ जहां सन्ध्याका समय आया वहींपर सब गौवों को रोक दिया, और गौवें भी सब वहांपर बैठगईं, तब लकड़ियों को लाकर अग्नि को जलाकर सत्यकाम अग्नि के पीछे पूर्वमुख

होकर बैठगया और ऋषभ के वाक्य को स्मरण करने लगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, अग्निः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगव, इति, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सत्यकाम	हे सत्यकाम	उक्तः	कहाहुआ सत्यकाम
इति	इस प्रकार	+ तम्	उस अग्नि को
+ संबोध्य	संबोधन करके	इति ह	इस प्रकार
अग्निः	अग्निने	प्रतिशुश्राव	जवाब देता भया
तम्	सत्यकाम से	भगवः	हे पूज्य
अभ्युवाद	कहा		
इति	ऐसा		

भावार्थ ।

तब अग्नि ने कहा हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने उत्तर दिया हे भगवन् ! क्या आज्ञा है ॥ २ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, पृथिवी, कला, अन्तरिक्षम्, कला, द्यौः, कला, समुद्रः, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, अनन्तवान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सत्यकाम
ते	तेरेलिये
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
पादम्	पाद को
ब्रवाणि	कहूंगा मैं
इति	इस प्रकार
+ उक्तः	कहेगये सत्यकाम ने
+ बभूव	जवाब दिया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरे लिये
ब्रवीतु	कहैं
इति	तब
सः	वह अग्नि
तस्मै	उस सत्यकाम के लिये
ह	निश्चय करके
उवाच	कहता भया कि
पृथिवी	पृथिवी
कला	एक पाद है
अन्तरिक्षम्	आकाश
कला	एक पाद है
द्यौः	स्वर्ग
कला	एक पाद है
समुद्रः	समुद्र
कला	एक पाद है
सौम्य	हे सत्यकाम
एषः	यह
चतुष्कलः	ये चार पाद
वै	निश्चय करके
अनन्तवान्	अविनाशी
नाम	प्रसिद्ध
ब्रह्मणः	ब्रह्मके
पादः	पादहैं

भावार्थ ।

अग्नि ने कहा हे सौम्य ! ब्रह्म के पाद को मैं तुम्हारे प्रति कहूंगा, सत्यकाम ने कहा हे भगवन् ! कहिये, तब तिस सत्यकाम के प्रति अग्नि कहता है, पृथिवी एक पाद है, अन्तरिक्ष एक पाद है, द्युलोक एक पाद है, समुद्र एक पाद है, हे सौम्य ! इन्हीं चार अवयवोंवाला ब्रह्म का एक पाद अनन्त नामवाला है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, अनन्तवान्, इति, उपास्ते, अनन्तवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, अनन्तवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, अनन्तवान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	पादम्	=पाद को
विद्वान्	=विद्वान्	अनन्तवान्	=अविनाशी
एतम्	=इसही	ज्ञात्वा	=जान करके
चतुष्कलम्	=चारभाग वाले	इति	=ऊपर कहे हुये प्रकार
ब्रह्मणः	=ब्रह्मके		

उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
अस्मिन्=इस
लोके=लोकमें
अनन्तवान्=अनन्त गुण वाला
भवति=होता है (दृष्ट-फल)
ह=और
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
चतुष्कलम्=चार अंगवाले
ब्रह्मणः=ब्रह्मके
पादम्=पाद को
अनन्तवान्=अविनाशी
विदित्वा=जान करके
इति=ऊपर कहेहुये प्रकार
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
अनन्तवतः=अविनाशी
लोकान्=लोकों को
जयति=प्राप्तहोता है (यह अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस अनन्त नामवाले चार पाद से ब्रह्मकी उपासना करता है, वह इसलोक में अनन्त नामवाला होता है, अर्थात् नाश से रहित होजाता है, और फिर शरीर त्याग के पीछे नाशरहित लोकों को भी प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

हंसस्ते पादं वक्तेति सह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्नि-

मुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चा-
दग्नेः प्राङ्गुपोपविवेश ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

हंसः, ते, पादम्, वक्ता, इति, सः, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयाञ्चकार, ताः, यत्र, अभि, सायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमाधाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ
+सः	वह
हंसः	हंस
ते	तेरे लिये
पादम्	दूसरे पादको
वक्ता	कहेगा
इति	इसप्रकार
+उक्त्वा	कहकर
अग्निः	अग्नि
+उपरराम बभूव	चुप होगया
सः	तब वह सत्यकाम
श्वोभूते	दूसरे दिन
+नित्यकर्म	नित्यकर्म
+ कृत्वा	करके
गाः	गौओं को
+आचार्य्य कुलम्प्रति	आचार्य्य के घरको
अभिप्रस्थापयाञ्चकार	लेजाता भया
ताः	वे गौवें
यत्र	जहां
सायम्	रात्रि विषे
अभिसंबभूवुः	इकट्ठी होकर रहती भई
तत्र	वहीं
गाः	गौओं को
उपरुध्य	रोककर
समिधम्	लकड़ी को

आधाय=होमके वास्ते पास रखकर	अग्नेः=अग्निके
+च=और	पश्चात्=पीछे
अग्निम्=अग्नि को	प्राङ्=पूर्वाभिमुखहो-कर सत्यकाम
उपसमाधाय=संस्कारपूर्वक स्थापन करके	उप=अग्निकेसमीप
	उपविवेश=बैठता भया

भावार्थ ।

फिर अग्नि ने कहा हंस तुम्हारे प्रति दूसरे पाद को कहेगा, सो सत्यकाम दूसरे दिन होतेही सब गौवों को आचार्य के घरकी तरफ़ ले चलता भया, चलते चलते जहांपर सायंकाल का समय होगया वहांपर गौवोंको बिठलाकर लकड़ियों को लाकर अग्नि को जलाकर तिसके पीछे पूर्वमुख हो करके आप बैठ गया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं हंस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, हंसः, उपनिपत्य, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
तदा=तब	इति=इस प्रकार
हंसः=हंस	संबोध्य=संबोधन करके
उपनिपत्य=समीप आकर	तम्=उस सत्यकामसे
सत्यकाम=हे सत्यकाम	अभ्युवाद=कहा

तदा=तब वह	प्रतिशुश्राव=जवाब देता भया।
+ उक्तः=कहाहुआ सत्य-काम	भगवः=हे भगवन्
	+ वद=कहिये

भावार्थ ।

सत्यकाम से हंस ने आकरके कहा, हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने भी कहा हे भगवन् ! क्या आज्ञा है, इस प्रकार उत्तर देताभया ॥ २ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्य्यः कला चन्द्रः कला विद्युत् कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, अग्निः, कला, सूर्य्यः, कला, चन्द्रः, कला, विद्युत्, कला, एषः, वै, सौम्य, चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, नाम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे सौम्य		इति=इसप्रकार	
ते=तेरेलिये		+ उक्तःबभूव=कहागयासत्यकामने कहा	
ब्रह्मणः=परब्रह्मके		मे=मेरेलिये	
पादम्=पादको		भगवान्= हे पूज्य आप	
ब्रवाणि=कहूंगा मैं			

ब्रवीतु=कहें	विद्युत्=बिजुली
इति=तब उस हंसने	कला=एक पाद है
तस्मै=सत्यकाम के लिये	सौम्य=हे सौम्य
उवाच ह=कहताभया कि	एषः=ये
अग्निः=अग्नि	चतुष्कलः=चारकलावाले
कला=एक पाद है	ज्योतिष्मान्=प्रकाशमान
सूर्य्यः=सूर्य्य	नाम=प्रसिद्ध
कला=एक पाद है	ब्रह्मणः=ब्रह्म के
चन्द्रः=चन्द्रमा	वै=निश्चयकरके
कला=एक पाद है	पादः=पाद हैं

भावार्थ ।

हंसने कहा हे सौम्य ! ब्रह्म के पादको तुम्हारे प्रति मैं कहूंगा तब सत्यकाम ने कहा कहिये, तिस सत्यकाम को हंस कहता भया, अग्नि एक पाद है, सूर्य एक पाद है, चन्द्रमा एक पाद है, विद्युत् एक पाद है, हे सौम्य ! यह चार अवयवोंवाला ब्रह्म का ज्योतिष्मान् पाद है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतोह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥ इति सप्तमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्,

ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, इति, उपास्ते, ज्योतिष्मान्, अस्मिन्, लोके, भवति, ज्योतिष्मतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, ज्योतिष्मान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एतम्	इस
एव	ही
चतुष्कलम्	चार कलावाले
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
ज्योतिष्मान्	प्रकाशमान
पादम्	पाद की
इति	इस प्रकार
उपास्ते	उपासना करताहै
सः	वह
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
ह	निश्चय करके
ज्योतिष्मान्	दीप्तिमान्
भवति	होता है (यहदृष्टफलहै)
+ च	और

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
+ एतम्	इसी
एवम्	ही
चतुष्कलम्	चारअंगवाले
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
ज्योतिष्मान्	प्रकाशमान
पादम्	पाद की
इति	इसप्रकार
उपास्ते	उपासना को करता है
सः	वह पुरुष
ज्योतिष्मतः	चन्द्रादिकों के दीप्तिमान्
लोकान्	लोकों को
जयति	प्राप्त होता है (यह अदृष्ट फल है)

भावार्थ ।

जो इसको इस प्रकार चार अवयवोंवाले ज्योतिष्मान् नामक ब्रह्म के पाद की उपासना को करता है, वह ज्योतिष्मान् होता है, अर्थात् प्रतापी होता है, और मरने के पश्चात् वह सूर्य्यादि लोकों का जीतनेवाला भी होता है ॥ ४ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मद्गुः, ते, पादम्, वक्ता, इति, सः, ह, श्वोभूते, गाः, अभिप्रस्थापयां, चकार, ताः, यत्र, अभिसायम्, बभूवुः, तत्र, अग्निम्, उपसमाधाय, गाः, उपरुध्य, समिधम्, आधाय, पश्चात्, अग्नेः, प्राङ्, उप, उपविवेश ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मद्गुः	=जलचर पक्षी	सः	=वह हंस
ते	=तेरेलिये	उक्त्वा	=कहकर
पादम्	=दूसरे पाद को	+उपरराम	=चुप होता भया
वक्ता	=कहेगा	तत्र	
इति	=इस प्रकार	सः	=वह सत्यकाम

श्वोभूते=दूसरे दिन
+नित्यकर्म=नित्यकर्म को
+कृत्वा=करके
गाः=गौवों को
अभिप्रस्थापयाञ्चकार=ले चलता भया
यत्र=जहां
ताः=वे गौवें
सायम्=रात्रि विषे
अभिबभूवुः=ठहरती भई
तत्र=वहीं
गाः=गौवों को
उपरुध्य=रोक करके
समिधम्=होमार्थ लड़की को
आधाय=रखकर
च=और
अग्निम्=अग्नि को
उपसमाधाय=संस्कारपूर्वक स्थापन करके
अग्नेः=अग्नि के
उप=थोड़ी दूर
पश्चात्=पीछे
प्राङ्=पूर्वाभिमुख होकर सत्यकाम
उपविवेश=बैठता भया

भावार्थ ।

फिर हंसने सत्यकाम से कहा, मद्गु नामवाला जलचर पक्षी तुम्हारे प्रति ब्रह्म के दूसरे पाद को कहेगा, ऐसे कह करके वह चुप होगया, दूसरे दिन सवेरे नित्यकर्म करके सत्यकाम गौवों को लेचला संध्यासमय एक स्थान में सबको एकत्र करके और बिठला करके पूर्वमुख होकर बैठ गया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तंमद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रति शुश्राव ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, मद्गुः, उपनिपत्य, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मद्गुः	=जलचर पक्षी	इति	=तब
उपनिपत्य	=पास आकर	सः	=वह
सत्यकाम	=हे सत्यकाम	इति	=इस प्रकार
+इति	=इस प्रकार	प्रतिशुश्राव	=जवाब देता भया कि
+संबोध्य	=संबोधन करके	भगवः	=हे पूज्य आप
तम्	=उस सत्यकामसे	+वद	=कहें क्याकहते हैं
अभ्युवाद	=कहता भया		

भावार्थ ।

तब मद्गु तिस सत्यकाम के समीप आकरके कहा हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने जवाब दिया हे भगवन् ! ॥ २ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मणः सौम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मणः, सौम्य, ते, पादम्, ब्रवाणि, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच, प्राणः, कला, चक्षुः, कला, श्रोत्रम्, कला, मनः, कला, एषः, वै, सौम्य,

चतुष्कलः, पादः, ब्रह्मणः, आयतनवान्, नाम ॥

अन्वयः पदार्थ

सौम्य=हे सत्य काम
ते=तेरे लिये
ब्रह्मणः=ब्रह्म के
पादम्=पाद को
ब्रवाणि=कहूंगा में
इति=तब
सः बभूव=उसने कहा
मे=मेरे लिये
भगवान्=हे पूज्य आप
ब्रवीतु=कहें
इति=इस प्रकार
उक्तः=कहा गया
जल चरपक्षी
तस्मै=उस सत्यकाम के लिये
उवाच=कहता भया
प्राणः=प्राण

अन्वयः पदार्थ

कला=एक पाद है
चक्षुः=नेत्र
कला= एक पाद है
श्रोत्रम्=कर्ण
कला=एक पाद है
मनः=मन
कला=एक पाद है
सौम्य=हे सत्यकाम
वै=निश्चय करके
चतुष्कलः=चारअंगवाला
आयतनवान्=आयतनवान्
नाम=प्रसिद्ध
एषः=यह
ब्रह्मणः=ब्रह्म का
पादः=पाद है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तुम्हारे प्रति मैं ब्रह्म के पाद को कहूंगा, सत्यकाम ने कहा हे भगवन् ! कहिये, तिसके प्रति मद्गु कहता भया, प्राण एक पाद है, चक्षु एक पाद है, श्रोत्र एक पाद है, मन एक पाद है, हे सौम्य ! यह चार अवयवोंवाला ब्रह्म का नाम आयतनवान् है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतोह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥
इत्यष्टमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, आयतनवान्, इति, उपास्ते, आयतनवान्, अस्मिन्, लोके, भवति, आयतनवतः, ह, लोकान्, जयति, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, चतुष्कलम्, पादम्, ब्रह्मणः, आयतनवान्, इति, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
चतुष्कलम्	चार अंगवाले
एतमेवम्	इसही
पादम्	पादकी
आयतनवान्	सबका आश्रय
ज्ञात्वा	जानकर
इति	इस प्रकार

अन्वयः	पदार्थ
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
आयतनवान्	आश्रयवाला
भवति	होता है
+ च	और
ह	निश्चय करके

यः=जो	इति=ऐसा
विद्वान्=विद्वान्	विदित्वा=जान करके
चतुष्कलम्=चार अंगोंवाले	उपास्ते=उपासना करताहै
ब्रह्मणः=ब्रह्म के	सः=वह उपासक
एतमेवम्=इसही	आयतनवतः=विस्तृत
पादम्=पादको जो	लोकान्=लोकोंको
आयतनवान्=सबका आश्रयहै	जयति=प्राप्त होताहै

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस चार कलावाले ब्रह्मके आयतन नामवाले पादकी उपासना करता है, वह इस लोक में घरवाला होता है, और मरने के पीछे बहुत घर सहित लोकों को प्राप्त होताहै ॥४॥
इत्यष्टमःखण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

प्राप हाचार्य्यकुलं तमाचार्य्योऽभ्युवाद सत्यकाम इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राप, ह, आचार्य्यकुलम्, तम्, आचार्य्यः, अभ्युवाद, सत्यकाम, इति, भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
+ सः=वह सत्यकाम	आचार्य्यकुलम्=आचार्य्य के घरको
+ ब्रह्मवित्=ब्रह्मवेत्ता	प्रापह=प्राप्तहोताभया
सन्=होता हुआ	

हि=तब
सत्यकाम=हे सत्यकाम
इति=इस प्रकार
+संबोध्य=संबोधनकरके
आचार्य्यः=गुरु
तम्=उस सत्यकाम से
अभ्युवाद=कहता भया
इति=इस प्रकार
+उक्तः=कहागया सत्यकाम
भगवः=हे भगवन्
+वद=कहिये
इति=ऐसा
प्रतिशुश्राव=जवाब देता भया

भावार्थ ।

सत्यकाम इसप्रकार ब्रह्मवित् होकर आचार्य्य के घर की एक हज़ार गौवोंको साथ लेकर आताभया तिसके मुख को देख करके आचार्य्य ने संबोधन करके कहा हे सत्यकाम ! उसने कहा हे भगवन् ! क्या आज्ञा है ॥ १ ॥

मूलम् ।

ब्रह्मविदिव वै सौम्य भासि को नु त्वानुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवांस्त्वेवमे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मवित्, इव, वै, सौम्य, भासि, कः, नु, त्वा, अनुशशास, इति, अन्ये, मनुष्येभ्यः, इति, ह, प्रतिजज्ञे, भगवान्, तु, एव, मे, कामे, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे सत्यकाम
ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता की
इव	तरह
वै	निश्चय करके

भासि=शोभित होता है तू
नु=प्रश्न है कि
कः=कौन
त्वा=तुझको
अनुशशास=शिक्षा देता भया
इति=इस प्रकार
+ प्रष्टः
+ बभूव } = { पूछा गया सत्यकाम ने जवाब दिया कि
मनुष्येभ्यः=मनुष्यों से
अन्ये=भिन्न याने देवता
+ माम्=मुझको
+ अनुशासितवन्तः } = अनुशासन करते भये
इति ह=इसप्रकार
प्रतिजज्ञे=इच्छा करता भया कि
भगवान् तू=हे भगवन् आपही
एव=निश्चय करके
मे=मेरी
कामे=इच्छा के विषय में
ब्रूयात्=कहें

भावार्थ ।

सत्यकाम को प्रसन्नमुख देख करके आचार्य ने कहा, हे सौम्य ! तुम ब्रह्मवित् की तरह भान होते हो, हे सौम्य ! तुम को किसने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है, सत्यकाम ने कहा, मनुष्य से भिन्न कौन देवता आपके शिष्य को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करसक्ता है, अब आप मेरे प्रति मेरी इच्छा के पूर्ण करने के वास्ते मुझको उपदेश करें, मैं आपके उपदेश के सिवाय औरों के उपदेश को ज़्यादा फलदायक नहीं समझता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्य्याद्धैव विद्या

विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किंचन वीयायेति वीयायेति ॥ ३ ॥ इति नवमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

श्रुतम्, हि, एव, मे, भगवद्दृशेभ्यः, आचार्य्यात्, ह, एव, विद्या, विदिता, साधिष्ठम्, प्रापयति, इति, तस्मै, ह, एतत्, एव, उवाच, अत्र, ह, न, किंचन, वीयाय, इति, वीयाय, इति ॥

अन्वयः पदार्थ

हि=क्योंकि

भगवद्दृशेभ्यः=आप ऐसे पूज्य

+ ऋषिभ्यः एव=ऋषियोंसेही

मे=मया=मैंने

श्रुतम्=सुना है कि

विद्या=विद्या

आचार्य्यात् ह एव=गुरुही से

विदिता=जानी गई

साधिष्ठम्=अति उत्तमता को

प्रापयति=प्राप्त होती है

इति=इसलिये

अन्वयः पदार्थ

+ भगवाने व ब्रूयादित्युक्तआचार्य्यः=आपही उपदेश करें इस तरह कहा गया आचार्य्य

तस्मै=उस सत्यकाम के लिये

एतत् एव=उसी विद्याको

उवाच=कहता भया

इति=इस प्रकार

अत्र ह=गुरु से प्राप्त भई विद्या में

किंचन=कुछ भी

नवीयाय=न छूटा यानी भली प्रकार उपदेश कियागया

भावार्थ ।

क्योंकि मैंने आप ऐसे महर्षियों से सुना है कि आचार्य्य सेही विद्या जानी हुई उत्तमता को पहुँचाती है, इसवास्ते आपही मुझ को विद्या का प्रदान करैं, इस पर आचार्य्यने उन देवताओं करके कही हुई विद्या को कहता भया, और ऐसा उपदेश किया कि किंचित्मात्र भी बाक़ी न रहा, अर्थात् समग्ररूप से शिक्षा दिया ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्य्यमुवास तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तं ह स्मैव न समावर्तयति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उपकोसलः, ह, वै, कामलायनः, सत्यकामे, जाबाले, ब्रह्मचर्य्यम्, उवास, तस्य, ह, द्वादश, वर्षाणि, अग्नीन्, परिचचार, सः, ह, स्म, अन्यान्, अन्तेवासिनः, समावर्तयन्, तम्, ह, स्म, एव, न, समावर्तयति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
कामलायनः	=कमलका पुत्र	सत्यकामे	=सत्य काम के समीप
उपकोसलः	=उपकोसल नामक ऋषि	ब्रह्मचर्य्यम्	=ब्रह्मविद्या के लिये
ह वै	=निश्चय करके	उवास	=वासकरताभया
जाबाले	=जबालाके पुत्र		

ह=और
तस्य=उस आचार्य्य के
अग्नीन्=अग्नियों को
द्वादश=बारह
वर्षाणि=वर्ष पर्यन्त
परिचचार=सेवन करता भया
सः ह=वह आचार्य्य
अन्यान्=और
अन्तेवासिनः=शिष्यों को
समावर्तयन्=विद्या ग्रहण कराकर गृहस्थाश्रम करनेकेलियेवापसकरदिया
+ परन्तु=पर
तम् ह एव=उस उपकोसलको
न=नहीं
समावर्तयतिस्म=वापस करता भया

भावार्थ ।

अब इस खण्ड में दूसरी रीति से ब्रह्मविद्या को कहते हैं, ब्रह्मविद्या के साधन श्रद्धा और तप हैं, इनको इतिहास द्वारा कहते हैं, उपकोसल नामवाला कमलका पुत्र कामलायन सत्यकाम जाबाल ऋषि के समीप जाकरके ब्रह्मचर्य्य को धारण करके निवास करता भया, और बारह वर्षतक आचार्य्य के अग्नि की सेवा करतारहा, जब सब विद्यार्थी विद्या पढ़चुके, गुरु ने उनको उपदेश देकर घर जाने की आज्ञा दी, परन्तु उपकोसल को उपदेश देकर बिदा नहीं किया ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासांचक्रे ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, जाया, उवाच, तप्तः, ब्रह्मचारी, कुशलम्, अग्नीन्, परिचचारीत्, मा, त्वा, अग्नयः, परिप्रवोचन्, प्रब्रूहि, अस्मै, इति, तस्मै, ह, अप्रोच्य, एव, प्रवासांचक्रे ॥

अन्वयः	पदार्थ
जाया	गुरुपत्नी
तम्	आचार्य्य से
उवाच	कहती भई कि
एषः	यह
तप्तः	तप करचुकने वाला
ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी
कुशलम्	अच्छी तरह
अग्नीन्	अग्नियों को
परिचचारीत्	सेवन करता भया
अग्नयः	अग्नि
त्वा	आपको
परिप्रवोचन्	निन्दा न करें यानी आप को बुरा न समझें

अन्वयः	पदार्थ
अतः	इसलिये
अस्मै	इस उपकोसल के लिये
इष्टविद्याम्	अभीष्ट विद्या
प्रब्रूहि	आप उपदेश करें
इति	इस प्रकार
जायया	स्त्री करके
उक्तः	कहागया आचार्य्य
तस्मै ह	उस उपकोसल के लिये
अप्रोच्य	कुछ उपदेश न करके
एव	निश्चय करके
प्रवासांचक्रे	बाहर जाता भया याने विदेश को चलागया

भावार्थ ।

आचार्य्य की स्त्रीने अपने पति से कहा हे भगवन् ! यह ब्रह्मचारी बड़ा तप्त होरहा है, अर्थात् दुःखित होरहा है, और बहुत दुःखको उठाकर आपकी अग्निकी सेवा भी कररहा है, आप इस को उपदेश करके घर वापस जाने की आज्ञा दें ताकि अग्नि आपकी निन्दा न करें, स्त्री के कथन को सुन करके भी आचार्य्य ने उपकोसल को विसर्जन न करके बाहर चला गया ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्य्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किंनु नाश्नासीति सहोवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, व्याधिना, अनशितुम्, दध्रे, तम्, आचार्यजाया, उवाच, ब्रह्मचारिन्, अशान, किम्, नु, न, अश्नासि, इति, सः, ह, उवाच, बहवः, इमे, अस्मिन्, पुरुषे, कामाः, नानात्ययाः, व्याधिभिः, प्रतिपूर्णः, अस्मि, न, अशिष्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वहउपकोसल	दध्रे	धारण करता भया तब
ह	अति	आचार्य्यजाया	गुरुपत्नी
व्याधिना	मानस दुःख करके	तम्	उसउपकोसलसे
अनशनम्	लंघन		

उवाच=कहती भई कि
ब्रह्मचारिन्=हे ब्रह्मचारी !
अशान=खा तू
किम्=क्यों
न=नहीं
अश्नासि=खाता है
+ इति=ऐसा
नु=प्रश्न करती है
इति=तब
सः=उपकोसल
उवाच=कहता भया
कि हे माता !
अस्मिन्=इस
पुरुषे=पुरुष के बिषे
इमे=ये
बहवः=बहुतसी
कामाः=इच्छायें
नानात्ययाः=नानाप्रकारकी
सन्ति=होती हैं
व्याधिभिः=तिनकेनप्राप्त होनेसे दुःखों करके
प्रतिपूर्णः=परिपूर्ण
अस्मि=मैं हूं
इति=इसलिये
न=नहीं
अशिष्यामि=खाऊंगा

भावार्थ ।

उपकोसल नामवाला ब्रह्मचारी मानसी दुःखकरके पीड़ित हुआ २ अनशनव्रत को धारण करके अग्नि के मन्दिर में चुपचाप होकरके बैठ गया, तिस उपकोसल को दुःखी और बिना भोजनके चुपचाप बैठेहुये देखकर आचार्य्यकी स्त्रीने उससे कहा, हे ब्रह्मचारी ! तुम भोजन क्यों नहीं करते हो, ब्रह्मचारी ने कहा मेरे मनमें अनेक प्रकार की कामनायें भरी हैं, उनमें से एकभी अभी तक पूर्ण नहीं हुई है, जो उनकी चिन्ता है वही एक व्याधि है, उसी करके मेरा चित्त बड़ा दुःखी होरहा है, इसीसे मैं नहीं भोजन करूंगा, ऐसा कह करके ब्रह्मचारी चुप होगया ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ ह अग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं

नः पर्य्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, अग्नयः, समूदिरे, तप्तः, ब्रह्मचारी, कुशलम्, नः, पर्यचारीत्, हन्त, अस्मै, प्रब्रवाम, इति, तस्मै, ह, ऊचुः, प्राणः, ब्रह्म, कम्, ब्रह्म, खम्, ब्रह्म, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके बाद
अग्नयः	तीनों अग्नि
समूदिरे	मिलकर कहते भये कि
तप्तः	तप किया है जिसने ऐसा
ब्रह्मचारी	उपकोसल ब्रह्मचारी
कुशलम्	अच्छीतरहसे
नः	हम तीनों की
पर्यचारीत्	सेवा करता भया
हन्त	इस हमारे भक्तको छोड़ कर आचार्य्य चलागया

अन्वयः	पदार्थ
अधुना	अब
वयम्	हमतीनोंअग्नि
अस्मै	इस ब्रह्मचारी के लिये
+ ब्रह्मविद्याम्	ब्रह्मविद्या का
प्रब्रवाम	उपदेश करें
इति	इसप्रकार
+ संप्रधार्य	निश्चय करके
+ ते	वहतीनोंअग्नि
तस्मै ह	उस ब्रह्मचारी के लिये
इति	इसप्रकार
ऊचुः	ब्रह्मविद्या को कहते भये

प्राणः=प्राण	ब्रह्म=ब्रह्म है
ब्रह्म=ब्रह्म है	खम्=ख (आकाश)
कम्=क (सुख)	ब्रह्म=ब्रह्म है

भावार्थ ।

तीनों अग्नि चुपचाप बैठेहुये ब्रह्मचारी पर दया करके कहने लगे, यह ब्रह्मचारी बड़ा तपस्वी है, और श्रद्धालु भी है, हमारा भक्त है, आवो हम सब मिलकरके इसको ब्रह्मविद्या का उपदेश करें, ऐसा सलाह करके उपदेश करना आरम्भ किया यह कहते हुये, कि हे उपकोसल! प्राणही ब्रह्म है, (क) यानी आनन्द ब्रह्म है, और (ख) यानी आकाश भी ब्रह्म है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेवकमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥५॥

इति दशम खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, विजानामि, अहम्, यत्, प्राणः, ब्रह्म, कम्, च, तु, खम्, च, न, विजानामि, इति, ते, ह, ऊचुः, यत्, वाव, कम्, तत्, एव, खम्, यत्, एव, खम्, तत्, एव, कम्, इति, प्राणम्, च, ह, अस्मै, तत्, आकाशम्, च, ऊचुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=वहउपकोसल		अहम्=मैं	
ह=निश्चयपूर्वक		विजानामि=जानता हूं	
उवाच=कहताभया कि		यत्=जो	

प्राणः=प्राण है	कम्=सुख है
तत्=वही	तत् एव=वही
+ ब्रह्म=ब्रह्म है	खम्=आकाश है
तु=पर	+ च=और
कम्=क	यत्=जो
च=और	वाव=निश्चय करके
खम्=ख	खम्=आकाश है
ब्रह्म=ब्रह्म है	तत् एव=वही
न=नहीं	कम्=सुख है
विजानामि=जानता हूं	इति=इस प्रकार
इति=तब	प्राणम्=प्राण को
ते ह=वह तीनों अग्नि	च=और
ऊचुः=कहते भये	तत्=उस
यत् वाव=जो	आकाशम्=आकाश को
	ऊचुः=कहते भये

भावार्थ ।

अग्नियों के उपदेश को सुन करके ब्रह्मचारी ने कहा जो अपने प्राण को ब्रह्म कहा है सो तो मैं जानता हूं, क्योंकि प्राण प्रसिद्ध हैं, और शरीर में उनके रहने से ही पुरुष का जीवन होता है, और शरीर से निकल जाने पर पुरुष का जीवन समाप्त होजाता है, इसीसे प्राणों को ब्रह्मपना युक्त है, परंतु क और ख ब्रह्म के वाचक कैसे होसक्के हैं। क शब्द का वाच्य जो सुख अथवा आनन्द है सो तो क्षणध्वंसी है, और ख शब्द का वाच्य जो आकाश है सो अचेतन है, इन दोनों को कैसे ब्रह्मता होसक्की है, तब वे अग्नि ब्रह्मचारी के प्रति कहते भये जो क है सोई ख है, अर्थात् जिसको क हम कहते हैं उसीको ख भी हम कहते हैं ख का अर्थ

व्यापक है, और क का अर्थ सुख याने आनन्द है, जो व्यापक हो और सुखरूप भी हो सोई ब्रह्म है, यहां भूताकाश अचेतन का ग्रहण नहीं होसक्ता है, क्योंकि वह व्यापक तो है परन्तु सुखरूप नहीं है, किन्तु जड़ है, और न विषयसुख का ग्रहण होसक्ता है क्योंकि वह परिच्छिन्न है इसलिये क से मतलब हृदयानन्द से है, और ख शब्द से मतलब व्यापक से है, याने हृदयाकाश ब्रह्मानन्द-रूप है, और तुमसे भिन्न नहीं है, किन्तु तुम्हारा स्वरूपही है ॥५॥

इति दशमः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्नि-रन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, गार्हपत्यः, अनुशशास, पृथिवी, अग्निः, अन्नम्, आदित्यः, इति, यः, एषः, आदित्ये, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	अनुशशास	अनुशासन करता भया कि
गार्हपत्यः	गार्हपत्य अग्नि	पृथिवी	पृथिवी
एनम्	इस ब्रह्मचारी को	अग्निः	अग्नि
		अन्नम्	अन्न
इति	इस प्रकार	आदित्यः	सूर्य्य

एताः=ये
मम=मेरे
तनवः=शरीर हैं
तत्र=तिस विषे
एषः=यह
यः=जो
आदित्ये=सूर्य्य में
पुरुषः=पुरुष
दृश्यते=दीख पड़ता है
सः=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूं
सः एव=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

प्रथम तो सब अग्नियों ने मिल करके ब्रह्मचारी को उपदेश किया,अब वह तीनों अग्नियें भिन्न२ होकर अपने भिन्न२ उपदेश को करते हैं,उन तीनों अग्नियों में से पहले गार्हपत्य अग्नि उस ब्रह्मचारीको उपदेश करता है, पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य यह चार मेरे शरीर हैं, और आदित्य विषे जो पुरुष दिखाई देता है, सो मैं हूं अर्थात् सोई मैं गार्हपत्य अग्नि हूं, और जो गार्हपत्य अग्नि है वही मैं आदित्य में पुरुष हूं, अर्थात् गार्हपत्य अग्निही आदित्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्,

जीवति, न, अस्य, अवरपुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम्, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एतम्	इस गार्हपत्य अग्नि की
एवम्	कहेहुएप्रकारसे
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
पापकृत्याम्	पापकर्म को
अपहते	नष्ट करता है
लोकी	लोकों का मालिक
भवति	होता है
सर्वम्	संपूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	सुयश के साथ
जीवति	जीता है
अस्य	इसउपासकके
अवरपुरुषाः	वंश के लोग
न	नहीं
क्षीयन्ते	नष्ट होते हैं
+किंच	और
वयम्	हम तीनों अग्नि
तम्	उसउपासकको
अस्मिन्	इस
+लोके	लोक में
च	और
अमुष्मिन् लोके	परलोक में
च	भी
उपभुञ्जामः	पालन करतेहैं
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एतम्	गार्हपत्य अग्निकी
एवम्	कहे हुए प्रकार
उपास्ते	उपासना करता है

भावार्थ ।

सो जो पुरुष इस गार्हपत्य अग्नि की अन्न और अन्नादरूप से उपासना करता है सो संपूर्ण पापकर्मों को नाश करता है, और अपनी पूर्ण आयु अर्थात् सौबरस तक जीता है, और शुद्ध जीवनवाला होता है, अर्थात् उसके जीवन में कोई कलंक नहीं लगता है, और इसके कुल में कोई पुरुष कम आयुवाला नहीं होता है, हम उसकी इसलोक और परलोक में पालना करते हैं ॥ २ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैनमन्वाहार्य्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, अन्वाहार्य्यपचनः, अनुशशास, आपः, दिशः, नक्षत्राणि, चन्द्रमाः, इति, यः, एषः, चन्द्रमसि, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	अनुशशास	अनुशासन करताभया
अन्वाहार्य्यपचनः	दक्षिणाग्नि	आपः	जल
एनम्	इस ब्रह्मचारी को	दिशः	दिशा
		नक्षत्राणि	नक्षत्र

चन्द्रमाः=चन्द्रमा	पुरुषः=पुरुष
एताः=ये	दृश्यते=दीखपड़ता है
मम=मेरे	सः=वह
तनवः=शरीर हैं	अहम्=मैं
इति=इसप्रकार	अस्मि=हूं
यः=जो	सः एव=वही
एषः=यह	अहम्=मैं
चन्द्रमसि=चन्द्रमाकेविषे	अस्मि=हूं

भावार्थ ।

अब इसके अनन्तर उस उपकोसल ब्रह्मचारी को दक्षिणाग्नि इस प्रकार उपदेश करता भया, जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा ये चार मेरे शरीर हैं, और मैं अन्वाहार्य नामवाला अग्नि अपने को चार विभाग करके स्थित हूं, जो यह चन्द्रमा में पुरुष दिखाई देता है, सो पुरुष मैंही हूं ॥ १ ॥

मूलम् ।

सयएतमेवंविद्वानुपास्तेऽपहतेपापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्ते उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥२॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, न, अस्य, अवरपुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम्, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एवम्	इसप्रकार
एतम्	दक्षिणाग्निकी
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
पापकृत्याम्	पापकर्म को
अपहते	नष्ट करता है
लोकी	लोकों का स्वामी
भवति	होता है
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयुको
एति	प्राप्त होता है
ज्योक्	सुयश के साथ
जीवति	जीता है
अस्य	इसउपासकके
अवरपुरुषाः	वंश के लोग
न	नहीं
क्षीयन्ते	नष्ट होते हैं
वयम्	हम तीनों अग्नि
अस्मिन्	इस
लोके	लोकमें
च	और
अमुष्मिन्लोके च	उसलोकमें भी
तम्	उस उपासक को
उपभुञ्जामः	पालन करतेहैं
यः	जो
विद्वान्	विद्वान्
एवम्	कहेहुए प्रकार से
एतम्	इसदक्षिणाग्नि की
उपास्ते	उपासना करता है

भावार्थ ।

जो विद्वान् इस प्रकार मेरी उपासना करता है, वह पाप कर्मोंसे रहित होजाता है, सौबरस तक जीता है, उज्ज्वल कीर्तिको प्राप्त

होता है, कुल में किसी संतान का क्षय नहीं होता है, और न कुल में कोई नीच पुरुष उत्पन्न होता है, और हम उसकी दोनों लोकों में पालना करते हैं ॥ २ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, आहवनीयः, अनुशशास, प्राणः, आकाशः, द्यौः, विद्युत्, इति, यः, एषः, विद्युति, पुरुषः, दृश्यते, सः, अहम्, अस्मि, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ ह	इसके पीछे	द्यौः	स्वर्ग
आहवनीयः	आहवनीयाग्नि	विद्युत्	बिजुली
एनम्	इस उपासक को	+एताः	ये चार
अनुशशास	अनुशासन करता भया कि	+ मे	मेरे
प्राणः	प्राण	+तनवः	शरीर हैं
आकाशः	आकाश	+तत्र	तहां
		यः	जो
		एषः	यह
		विद्युति	बिजुली में

पुरुषः=पुरुष
दृश्यते=दीख पड़ताहै
सः=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूं
सः=वही
एव=निश्चय करके
अहम्=मैं
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

दक्षिणाग्नि के उपदेश के अनन्तर इस ब्रह्मचारी को आहवनीय अग्नि उपदेश करता भया, प्राण, आकाश, द्यौ और विद्युत्, ये चार मेरे शरीर हैं, और जो यह पुरुष विद्युत् में दीखताहै, सोई मैं हूं, और जो मैं आहवनीय हूं सोई विद्युत् में पुरुष है ॥१॥

मूलम् ।

सयएतमेवंविद्वानुपास्तेऽपहतेपापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उपवयं तं भुञ्जामोऽस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥२॥ इति त्रयोदशःखण्डः॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते, अपहते, पापकृत्याम्, लोकी, भवति, सर्वम्, आयुः, एति, ज्योक्, जीवति, न, अस्य, अवरपुरुषाः, क्षीयन्ते, उपवयम्, तम्, भुञ्जामः, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, यः, एतम्, एवम्, विद्वान्, उपास्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		एवम्=कहेहुए प्रकार से	
विद्वान्=विद्वान्			

एतम्=इसआहवनी-
याग्निकी
उपास्ते=उपासना को
करता है
सः=वह पुरुष
पापकृत्याम्=पापकर्म को
अपहते=नष्ट करता है
लोकी=लोकों का
स्वामी
भवति=होताहै
सर्वम्=संपूर्ण
आयुः=आयुको
एति=प्राप्त होताहै
ज्योक्=सुयशके साथ
जीवति=जीताहै
अस्य=इस उपासकके
अवरपुरुषाः=वंशके लोग
न=नहीं
क्षीयन्ते=नष्ट होते हैं
वयम्=हम तीनों
अग्नि
अस्मिन्=इस
लोके=लोकमें
च=और
अमुष्मिन्=उस लोकमें
तम्=उसउपासकको
उपभुञ्जामः=पालन करतेहैं
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
एवम्=कहेहुए प्रकार
एतम्=इस आहवनी-
याग्नि की
उपास्ते=उपासना क-
रता है

भावार्थ ।

जो पुरुष दक्षिणाग्नि की पूर्वोक्त प्रकार से जान करके उपासना करता है, वह संपूर्ण पापों को नाश करता है, और लोक में प्रसिद्ध गुणोंवाला होता है, और पूर्ण आयु तक तेजस्वी होकरके जीता है, इसके कुल में कोई भी अल्पआयुवाला होकरके नहीं मरता है, किन्तु पूर्ण आयुवाले होकरके सब जीते हैं, हम उस की इसलोक और परलोक में पालना करते हैं ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

ते होचुरुपकोसलैषा सौम्य तेऽस्मद्विद्यात्मविद्या चाऽऽचार्य्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्य्यस्तमाचार्य्योऽभ्युवादोपकोसल इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, ऊचुः, उपकोसल, एषा, सौम्य, ते, अस्मत्, विद्या, आत्मविद्या, च, आचार्य्यः, तु, ते, गतिम्, वक्ता, इति, आजगाम, ह, अस्य, आचार्य्यः, तम्, आचार्य्यः, अभ्युवाद, उपकोसल, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
ते ह	वे तीनों अग्नि
ऊचुः	कहतेभये कि
उपकोसल	हे उपकोसल
सौम्य	हे सौम्य
ते	तेरे लिये
अस्मद्विद्या	अग्निविद्या
च	और
आत्मविद्या	ब्रह्मविद्या
+ कथिता	कहीगई है
तु	लेकिन
ते	तेरेलिये
आचार्य्यः	गुरु
इति	इस

अन्वयः	पदार्थ
गतिम्	उत्तम मार्गको
वक्ता	कहेगा
+ ततः	इसके पीछे
+ कालेन	कुछकालकरके
अस्य	इस उपकोसल का
आचार्य्यः	गुरु
आजगाम	आताभया
उपकोसल	हे उपकोसल
इति	इसप्रकार
संबोध्य	संबोधन करके
आचार्य्यः	आचार्य्यने
अभ्युवाद	कहा

भावार्थ ।

भिन्न २ उपदेशों को करके तीनों अग्नियोंने मिल करके उपकोशल से कहा, हे उपकोशल! हे सौम्य! इस अग्निविद्या और ब्रह्मबोध को हमने तुम्हारे प्रति कहा है, अब आचार्य्य तुम्हारे प्रति अग्नि और ब्रह्मके विद्यामार्ग को कहेगा, यह कह करके तीनों अग्नि उपराम होगये कुछ कालके पीछे आचार्य्य भी बाहर से लौटकरके अपने घर आया. और उपकोशलके मुखको देखकर कहा, हे उपकोशल ! ॥ १ ॥

मूलम् ।

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सौम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु माऽनुशिष्याद्भो इति हापेव निन्हत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इति हाग्नीनभ्यूदे किं नु सौम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

भगवः, इति, ह, प्रतिशुश्राव, ब्रह्मविदः, इव, सौम्य, ते, मुखम्, भाति, कः, नु, त्वाम्, अनुशशास, इति, कः, नु, मा, अनुशिष्यात्, भोः, इति, ह, अप, इव, निह्नते, इमे, नूनम्, ईदृशाः, अन्यादृशाः, इति, ह, अग्नीन्, अभ्यूदे, किम्, नु, सौम्य, किल, ते, अवोचन्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
भगवः=	"हे पूज्य"	प्रतिशुश्राव=	उपकोशल ने जवाबदियातब
इति ह=	इस प्रकार निश्चय करके	आचार्य्यः=	गुरुने

आह=कहा (हे उपकोशल)
ब्रह्मविदः=ब्रह्मवेत्ताकी
इव=तरह
ते=तेरा
मुखम्=मुख
प्रसन्नम्=हर्षित
भाति=मालूमहोताहै
नु=मैं पूछता हूं
त्वा=तुझको
कः=कौन
अनुशशास=अनुशासनकरताभया
इति=इस प्रकार
उक्तः=कहागया उपकोशल
नु=प्रश्नका उत्तर देता है कि
भोः=हे आचार्य्य
मा=मुझको आपके सेवाय
कः=कौन अन्य पुरुष
अनुशिष्यात्=अनुशासन करैगा
इति=इसप्रकार कहनेसे
इव=ऐसा मालूम होता है कि
इह=इस विषय में
अपनिह्नुते इव=कहीहुईबातको वह छिपाता है
इमे=ये तीनों अग्नि जो
नूनम्=निश्चयकरके
ईदृशाः=कंपितहोतेहुये पुरुष की तरह
+भान्ति=मालूम होते हैं
च=और
+ये=जो
अन्यादृशाः=पहले ऐसे नहीं
+भान्तिस्म=मालूमहोते थे
+इति ह=इस प्रकार (हाथ उठाकर)
अग्नीन्=अग्नियोंकी तरफ़ निर्देश करता हुआ
अभ्युवाद=कहताभयातब
+आचार्य्यः=गुरुने पूछा

सौम्य=हे उपकोशल	किम्=क्या
ते=ये अग्नि	ते=तेरे लिये
किल=पूर्वकाल में	अवोचन्=कहते भये

भावार्थ ।

हे भगवन्! यह मैं हूं क्या आज्ञा है, कहिये, तब आचार्य्य ने कहा, हे सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मवित्‌की तरह सुशोभित होरहा है, तुझको किसने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है, उन अग्नियों की ओर देखकर आचार्य्य ने कहा क्या तुझको इन अग्नियों ने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है (यह सुनकर तीनों अग्नि कंपायमान होगये) इसके जवाब में उपकोशल कहता है हे स्वामिन्! हां क्योंकि आपके जाने के पीछे मनुष्यों में कौन मेरे को उपदेश कर सक्ता था ॥ २ ॥

मूलम् ।

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सौम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यत एवमेवं विदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥३॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, इति, ह, प्रतिजज्ञे, लोकान्, वाव, किल, सौम्य, ते, अवोचन्, अहम्, तु, ते, तत्, वक्ष्यामि, यथा, पुष्करपलाशे, आपः, न, श्लिष्यते, एवम्, एवम्, विदि, पापम्, कर्म, न, श्लिष्यते, इति, ब्रवीतु, मे, भगवान्, इति, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	इसप्रकार
पृष्टः	पूंछेहुये उपकोशल ने
प्रतिजज्ञे	जवाब दिया कि अग्नियों काकहा हुआ
इदम्	यह उपदेशहै
+ तदा	तब
+आचार्य्यः	गुरु ने
+ उवाच	कहा कि
सौम्य	हे उपकोशल
एते	जो कुछ
ते	तीनोंअग्नियों ने
उवाच	कहा है
तत्	वह
लोकान्वाव	पृथिव्यादि लोक विषयक
किल	निश्चय करके
अवोचन्	कहा है
+ अहम्	मैं
तत्	उसको
ते	तेरेलियेउत्तम रीति

अन्वयः	पदार्थ
तु	अवश्य
वक्ष्यामि	कहूंगा
यत्	जिसको
ज्ञात्वा	जानकरके
यथा	जैसे
पुष्कर-पलाशे	कमलपत्र से
आपः	जल
न	नहीं
श्लिष्यते	सम्बन्धकरताहै
एवम्	वैसेही
+ ब्रह्म	ब्रह्मको
एवंविदि	पूर्वोक्तरीति से जानने वालेपुरुषको
पापम्	पाप
कर्म	कर्म
न	नहीं
श्लिष्यते	सम्बंधकरताहै
+इति सः उवाच	इस पर वह उपकोशल कहता भया
भगवान्	हे पूज्य आप
मे	मेरेलिये

इति=उसी प्रकार	तस्मै=उसउपकोशल के लिये
ब्रवीतु=कहें	उवाच=कहता भया
इति=तब आचार्य	

भावार्थ ।

पर हे भगवन् ! दृष्टान्तरूप से अग्नियों ने मेरे प्रति उपदेश किया है, अब आप मेरे प्रति उसको स्पष्टरूप से कहिये, आचार्य ने कहा हे सौम्य ! अग्नियों ने तेरे प्रति पृथिवी आदि लोक का उपदेश किया है, ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं किया है, अब मैं तेरे प्रति उत्तम रीति से ब्रह्मविद्या का उपदेश करता हूं, जिसके माहात्म्य के श्रवण करने से जाननेवाले को पाप वैसेही स्पर्श नहीं करसक्ता है जैसे कमलके पत्ते को जल स्पर्श नहीं करसक्ता है, इस तरह आचार्य के वाक्यों को सुन करके उपकोशलने आचार्य से कहा अब आप मेरे प्रति उपदेश कीजिये ॥ ३ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एषः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तत्, यद्यपि, अस्मिन्, सर्पिः, उदकम्, वा, सिञ्चति, वर्त्मनी, एव, गच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
एषः	यह
पुरुषः	पुरुष
अक्षिणि	नेत्र विषे
दृश्यते	दीखपड़ता है
एषः	यही
आत्मा	आत्मा
प्राणिनाम्	प्राणियों का
+ अस्मि	है
एतत्	यही
अमृतम्	अविनाशी है
अभयम्	भयरहित
ब्रह्म	ब्रह्म है
यद्यपि	जिसकाल में
अस्मिन्	पुरुषके नेत्रमें
सर्पिः	घी

अन्वयः	पदार्थ
वा	अथवा
उदकम्	जल
सिञ्चति	डालाजाता है
तत्	वह घी या जल
वर्त्मनी एव	नेत्रोंकी पलकों से
गच्छति	नीचे गिर जाता है उन नेत्रोंकोहरज नहीं पहुँच सक्ता है
+ तदा	तब
+ कथम्	कैसे कोई
+ अक्षिणि	नेत्रविषे स्थित
+ पुरुषम्	पुरुष को
+ क्लेशम्	क्लेश देसक्ता है

भावार्थ ।

अब आचार्य्य उपकोशल के प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश करता है, हे सौम्य ! जो नेत्रों में पुरुष दिखाई देता है, यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अभय है, यही ब्रह्म है, यह ब्रह्मात्मा उसी पुरुष करके देखा जाता है जिसने बाह्यविषयों की तरफ़ से नेत्रों को हटा लिया है, और ब्रह्मचर्य्यादि साधनों करके सम्पन्न है, शान्तचित्त और विवेकी है, जब कोई नेत्रों में घृत अथवा जल डालता है तो वह पक्ष्मोंद्वारा बाहर निकल जाता है, और नेत्र को कोई हानि नहीं पहुँचता है, जैसे कमलका पत्ता जल में रहता है परंतु जल

का स्पर्श उसको हानि नहीं पहुँचाता है, हे सौम्य ! जिसके रहने के स्थान का ऐसा माहात्म्य है तो उसके अन्दर रहनेवाले का कैसा माहात्म्य होगा तुम अनुभव करसके हो॥ १ ॥

मूलम् ।

एतं संयद्वाम इत्याचक्षत एतं हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एतम्, संयद्वामः, इति, आचक्षते, एतम्, हि, सर्वाणि, वामानि, अभिसंयन्ति, सर्वाणि, एनम्, वामानि, अभिसंयन्ति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतम्	=नेत्रस्थपुरुषको	+ अतः	=इसलिये
संयद्वामः	=संयद्वाम	सर्वाणि	=सब
आचक्षते	=कहते हैं	वामानि	=सुंदर पदार्थ
हि	=क्योंकि	एनम्	=उस पुरुष को
सर्वाणि	=सब	अभिसंयन्ति	=प्राप्त होते हैं
वामानि	=वाम याने सुंदर पदार्थ	यः	=जो
एतम्	=इस पुरुष को	+ एतम्	=इसको
अभिसंयन्ति	=प्राप्त होते हैं	एवम्	=इसप्रकार
		वेद	=जानता है

भावार्थ ।

इसी यथोक्त पुरुषको यानी आत्मा को संयद्वाम करके कहते हैं, वामनाम उत्तम पदार्थ का है, जिस कारण से संपूर्ण सुंदर २ अथवा उत्तम पदार्थ आकरके नेत्रस्थ पुरुषको मिलते हैं, इसी

कारण जो पुरुष इस प्रकार से जानता है उसको भी संपूर्ण उत्तम २ और सुंदर पदार्थ आकरके प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एष उ एव वामनीरेषहि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, वामनीः, एषः, हि, सर्वाणि, वामानि, नयति, सर्वाणि, वामानि, नयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषःउएव	यही नेत्रस्थ पुरुष	नयति	प्राप्त करता है
वामनी	वामनी है	सः	वह उपासक
हि	क्योंकि	सर्वाणि	सब
एषः	यही नेत्रस्थ पुरुष	वामानि	सुंदर पदार्थों को
सर्वाणि	सब	नयति	प्राप्त करता है
वामानि	सुंदरपदार्थों को	यः	जो
+प्राणिभ्यः	प्राणियोंकेलिये	एवम्	कहेहुये प्रकार
		वेद	जानता है

भावार्थ ।

हे उपकोशल ! यही आत्मा वामनी है, क्योंकि यही आत्मा संपूर्ण पुण्यकर्मों के फलों को पुण्यकर्मों के अनुसार ही प्राप्त करता है, जो पुरुष इस प्रकार उसको वामनीरूप कर के जानता है उसमें भी आत्मा के धर्म होजाने से संपूर्ण पुण्यकर्मों के फल प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

एष उ एव भामनीरेषहि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, भामनीः, एषः, हि, सर्वेषु, लोकेषु, भाति, सर्वेषु, लोकेषु, भाति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषःउएव	=यह नेत्रस्थ पुरुष	भाति	=भासता है
भामनीः	=भामनीहै यानी प्रकाश देने वाला है	यः	=जो
हि	=क्योंकि	+एतम्	=इसको
एषः	=यह नेत्रस्थपुरुष यानी आत्मा	एवम्	=इसप्रकार
सर्वेषु	=सब	वेद	=जानता है
लोकेषु	=लोकों में	सः	=वही
		सर्वेषु	=सब
		लोकेषु	=लोकों में
		भाति	=प्रकाश करता है

भावार्थ ।

यही आत्मा भामनीरूप भी है क्योंकि संपूर्णलोकों में वह सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा की सूरत में प्रकाशता है, और उन सबको यही आत्मा प्रकाश देता भी है जो पुरुष इस आत्मा को भामनीरूप से जानता है, अथवा उपासना करता है, वह भी संसार में प्रकाशमान होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिष-मेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्य-माणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासांस्तान्मासेभ्यः सं-

वत्सरं संवत्सरादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥ ५ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, उ, च, एव, अस्मिन्, शव्यम्, कुर्वन्ति, यदि, च, न, अर्चिषम्, एव, अभिसंभवन्ति, अर्चिषः, अहः, अह्नः, आपूर्यमाणपक्षम्, आपूर्यमाणपक्षाद्यान्, षट्, उदङ्, एति, मासान्, तान्, मासेभ्यः, संवत्सरम्, संवत्सरात्, आदित्यम्, आदित्यात्, चन्द्रमसम्, चन्द्रमसः, विद्युतम्, तत्, पुरुषः, अमानवः, सः, एतान्, ब्रह्म, गमयति, एषः, देवपथः, ब्रह्मपथः, एतेन, प्रतिपद्यमानाः, इमम्, मानवम्, आवर्तम्, न, आवर्तन्ते, न, आवर्तन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
अस्मिन्	इस संसार में मरनेपर
यत् उ च एव	जो
+ ऋत्विजः	ऋत्विज
शव्यम्	और्ध्वदैहिककर्म
कुर्वन्ति	करते हैं
च	और
यदि	जो
+ ऋत्विजः	ऋत्विज
+ शव्यम्	और्ध्वदैहिक कर्म

न=नहीं
कुर्वन्ति=करते हैं
ते=वह
अर्चिः=ज्योति अभिमानी देवताको
अभिसंभवन्ति=प्राप्त होते हैं
अर्चिषः=ज्योति अभिमानीदेवतासे
अहः=दिनके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं
अह्नः=दिनके देवता से
आपूर्यमाणपक्षम्=शुक्लपक्षअभिमानी देवताकोप्राप्त होते हैं
षट्=छः
आपूर्यमाणपक्षाद्यान्=शुक्लपक्षवाले
मासान्=महीनोंको
यस्मिन्=जिसमें
+सविता=सूर्य
उदङ्=उत्तर दिशामें
एति=रहता है
तान्=तिन
मासान्=महीना अभिमानी देवताको यानी उत्तरायणदेवताको
ते=वे उपासक
+एति=प्राप्त होते हैं
मासेभ्यः=षण्मासवाले देवताके बाद
संवत्सरम्=संवत्सर देवता को
+एति=प्राप्त होते हैं
संवत्सरात्=संवत्सर देवता के बाद
आदित्यम्=सूर्य्य देवताको
+एति=प्राप्त होते हैं
आदित्यात्=सूर्य्यके बाद
चन्द्रमसम्=चन्द्रमा
चन्द्रमसः=चन्द्रमाके बाद

विद्युतम्=विद्युतको
एति=प्राप्त होते हैं
अमानवः=मनुष्यसे पृथक्
सः=वह
पुरुषः=पुरुष
एतान्=इन पुरुषों को
+ब्रह्म-लोकात्=ब्रह्मलोक से
+एत्य=आकर
तत्=उस
ब्रह्म=सत्यलोकस्थ ब्रह्मको
गमयति=ले जाता है
एषः=यही
देवपथः=देवमार्ग है
+च=और यही
ब्रह्मपथः=ब्रह्मपथ है
एतेन=इसी मार्ग से
प्रतिपद्य-मानाः=जानेवालेलोक
इमम्=इस
मानवम्=मनुसम्बन्धी
आवर्तम्=संसारचक्र को फिर
न=नहीं
आवर्तन्ते=वापस आते हैं
न=नहीं
आवर्तन्ते=लौट आते हैं

भावार्थ ।

अब ब्रह्मवेत्ता की गति को कहते हैं, ब्रह्मवेत्ता के मरजाने पर उसके हितकारी उसका शवकर्म अर्थात् मृतकसंस्कार करें व न करें, उसको मृतकसंस्कार करने से न कोई लाभ होता है, और न करने से न कोई हानि पहुँचती है, क्योंकि यह सब अज्ञानियों के लिये बनाये गये हैं, ज्ञानियों के लिये नहीं, ब्रह्मवित् ज्ञानी जब मरता है तब पहले ज्योति अभिमानी देवता को प्राप्त होता है, फिर दिन अभिमानी देवता को, फिर शुक्लपक्ष अभिमानी देवता को, फिर उत्तरायण अभिमानी देवता को, फिर छह मास अभिमानी देवता को, फिर वर्ष अभिमानी देवता को, फिर सूर्य अभिमानी देवता को, फिर चन्द्रमा अभिमानी देवता को,

फिर बिजुलीअभिमानी देवता को प्राप्त होता है, इसके पीछे एक अमानव पुरुष ब्रह्मलोक से आकर उसको ब्रह्मलोक को ले जाता है, यही मार्ग ब्रह्ममार्ग भी कहाजाता है, इसी मार्ग से जाने वाला पुरुष फिर लौट करके इस मृत्युलोक में नहीं आता है ॥५॥
इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदं सर्वं पुनाति यदेष यन्निदं सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाग्वर्तनी ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, ह, वै, यज्ञः, यः, अयम्, पवते, एषः, ह, यन्, इदम्, सर्वम्, पुनाति, यत्, एषः, यन्, इदम्, सर्वम्, पुनाति, तस्मात्, एषः, एव, यज्ञः, तस्य, मनः, च, वाक्, वर्तनी ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषः ह वै	यही	ह	निश्चय करके
× वायुः	वायु	यन्	चलता
यः	जो	+सन्	हुआ
पवते	चलता है	इदम्	इस
अयम्	यही	सर्वम्	संपूर्ण वस्तुवों को
यज्ञः	यज्ञ है	पुनाति	पवित्र करता है
एषः	यही वायु		

यत्=जिसकारण	एषःएव=यही वायु
एषः=यह वायु	यज्ञः=यज्ञ है
इदम्=इस	तस्य=इसके
सर्वम्=संपूर्ण जगत् को	मनः=मन
	च=और
पुनाति=पवित्रकरता है	वाक्=वाणी
तस्मात्=तिसीकारण	वर्तनी=मार्ग हैं

भावार्थ ।

यह चलता हुआ वायु यज्ञ है, यही वायु शुद्ध है, शुद्ध होकरके यही वायु संसार के सर्व पदार्थों को पवित्र करता है, इसीसे यह वायु ही यज्ञरूप है, इस यज्ञ के दो मार्ग हैं, एक मन है, और दूसरी वाणी है, यज्ञ का अधिष्ठाता देवता वायु है, यही प्राण अपान है, इसी करके यज्ञ की सिद्धि होती है, इसी करके मन और वाणी की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होताऽध्वर्युरुद्गाताऽन्यतरां स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

तयोः, अन्यतराम्, मनसा, संस्करोति, ब्रह्मा, वाचा, होता, अध्वर्युः, उद्गाता, अन्यतराम्, सः, यत्र, उपाकृते, प्रातरनुवाके, पुरा, परिधानीयायाः, ब्रह्मा, व्यववदति ॥

---

* इस मंत्र के अर्थ का सम्बन्ध आगेवाले से है ।

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ब्रह्मा	ब्रह्माऋत्विक्	अन्यतराम्	दूसरे मार्गको
तयोः	उन दोनों मार्गों में से	वाचा	वाणी करके
अन्यतराम्	एक	संस्कुर्वन्ति	पूजन करते हैं
वर्त्तनीम्	मार्ग को	यत्र	ऐसीहालत में
मनसा	मनकरकेविवेक	सः	वह
संस्करोति	करता है	ब्रह्मा	ब्रह्माऋत्विज
होता	ऋग्वेदी ऋत्विज	प्रातरनुवाके	प्रातरनुवाक नामक कर्म के
अध्वर्युः	यजुर्वेदी ऋत्विज	उपाकृते	प्रारम्भ
उद्गाता	सामवेदी ऋत्विज	सति	होने पर
एते	यह	च	और
त्रयः	तीन	परिधानीयायाः	परिधानीय ऋचा के जपसे
		पुरा	पहले
		व्यववदति	बोलता है

भावार्थ ।

उन दो मार्गों में से एक मार्ग को ब्रह्मा जो खास ऋत्विज होता है वह मनसे वाणीका संस्कार करता है, अर्थात् चुपचाप ऋचा का ध्यान करताहै, और होता, अध्वर्यु, उद्गाता यह तीनों ऋत्विज वाणी से ही वाणी का संस्कार करके सजाते हैं, याने ऋचा पढ़ते हैं, फिर जिस काल में ब्रह्मा परिधानीय ऋचा से पहले अनुवाक् कर्म के आरंभ में मौनको त्याग करताहै और बोल उठता है॥२॥

मूलम् ।

अन्यतरामेव वर्तनीं संस्करोति हीयतेऽन्यतरा

स यथैकपाद् व्रजन् रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञं रिष्यन्तं यजमानोनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अन्यतराम्, एव, वर्तनीम्, संस्करोति, हीयते, अन्यतरा, सः, यथा, एकपाद्, व्रजन्, रथः, वा, एकेन, चक्रेण, वर्तमानः, रिष्यति, एवम्, अस्य, यज्ञः, रिष्यति, यज्ञम्, रिष्यन्तम्, यजमानः, अनुरिष्यति, सः, इष्ट्वा, पापीयान्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+तदा	तब	रिष्यति	नष्ट होजाता है
अन्यतराम्	केवल एक	वा	अथवा
एव	ही	एकेन	एक
वर्तनीम्	वाणीरूपमार्ग को	चक्रेण	चक्र करके
संस्करोति	पवित्र करताहै	वर्तमानः	चलनेवाला
च	और	रथः	रथ
अन्यतरा हीयते	मानो मार्ग नष्ट होजाता है	+यथा	जैसे
यथा	जैसे	रिष्यति	नष्ट होजाता है
एकपाद्	एकपाद से	एवम्	इसी प्रकार
व्रजन्	चलता हुआ पुरुष	अस्य	इस यजमान का

यज्ञः= { यज्ञ मन से न ध्यान करनेपर और वाणी से उच्चारण करने पर	यजमानः=यजमान भी
	अनुरिष्यति=नष्ट होजाताहै
	च=और
	सः=वह यजमान ऐसे
	इष्ट्वा=यज्ञ करके
रिष्यति=नष्ट होजाता है	पापीयान्=बड़ा पापी
	भवति=बनता है

भावार्थ ।

तब वाणीरूपी मार्ग काही संस्कार करता है मन का नहीं क्योंकि परिधानीय ऋचाके उच्चारण करने से मन एकाग्र नहीं रहता है, इसी से यज्ञका नाश होजाता है, और जैसे एक पांव से चलता हुआ पुरुष या एक चक्र से चलता हुआ रथ नाशको प्राप्त होजाता है उसी तरह ब्रह्मा करके अविधिपूर्वक किया हुआ यजमान का यज्ञभी नाशको प्राप्त होजाता है, और यज्ञ के नष्ट होजाने से यजमान का भी नाश होजाता है, क्योंकि यज्ञही यजमान का प्राण होता है, इसीवास्ते यज्ञ के नाश से यजमान का नाश होजाना योग्य है, और वह यजमान भी यज्ञ करने से पापी होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥*

---

* इस मंत्र का सम्बन्ध अगलेवाले से है ।

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, उपाकृते, प्रातरनुवाके, न, पुरा, परिधानीयायाः, ब्रह्मा, व्यववदति, उभे, एव, वर्तनी, संस्कुर्वन्ति, न, हीयते, अन्यतरा ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	फिर	एव	ही
यत्र	जहां	वर्तनी	मार्गोंको यानी मन सम्बन्धी और वाणी सम्बन्धी मार्गों को
ब्रह्मा	ब्रह्मा ऋत्विज	संस्कुर्वन्ति	संस्कारयुक्त करते हैं
प्रातरनुवाके	प्रातरनुवाक कर्म के	तत्र	वहां
उपाकृते	प्रारंभ	अन्यतरा	दोनों मार्गों मेंसे कोई एक भी मार्ग
सति	होने पर	न	नहीं
परिधानीयायाः	परिधानीय ऋचासे	हीयते	नष्ट होता है यानी यज्ञ ठीक होजाता है
पुरा	पहले		
न	नहीं		
व्यववदति	मौन किये रहता है		
च	और		
+ सर्वर्त्विजः	सब ऋत्विज		
उभे	दोनों		

भावार्थ ।

जब ब्रह्मा प्रातरनुवाक कर्म के प्रारंभ होजाने पर परिधानीय ऋचा के उच्चारण करने से पहले मौनका त्यागही करता है तब

यजमानके दोनों मार्ग संस्कारयुक्त रहते हैं और दोनों में से एक काभी नाश नहीं होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

सयथोभयपाद् व्रजन् रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ॥ ५ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, उभयपाद्, व्रजन्, रथः, वा, उभाभ्याम्, चक्राभ्याम्, वर्तमानः, प्रतितिष्ठति, एवम्, अस्य, यज्ञः, प्रतितिष्ठति, यज्ञम्, प्रतितिष्ठन्तम्, यजमानः, अनुप्रतितिष्ठति, सः, इष्ट्वा, श्रेयान्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे
उभयपाद्	दो पांव वाला पुरुष
व्रजन्	मार्ग चलते हुये
न	नहीं
हीयते	नष्ट होता है यानी नहीं गिरता है
उभाभ्याम्	दो
चक्राभ्याम्	पहियों से
रथः	रथ
यथा	जैसे
+ न	नहीं
+ हीयते	गिरता है
एवम्	वैसेही
अस्य	इसयजमानका
यज्ञः	यज्ञ
प्रतितिष्ठति	दोनों मार्गों से युक्त होकर नहीं गिरता है
च	और
यजमानः	यज्ञकर्ता

प्रतिति-ष्ठन्तम् = विधियुक्त
यज्ञम् = यज्ञ के
अनुप्रति-तिष्ठति = अनुसार फलको प्राप्त होता है
च = और
सः = वह यजमान
इष्ट्वा = यज्ञ करके
श्रेयान् = श्रेष्ठ
भवति = होता है

भावार्थ ।

फिर जैसे दोनों चक्रों से चलता हुआ रथ स्थिर रहता है, इसी प्रकार इस यजमान का यज्ञ भी स्थिर रहता है, यज्ञके स्थिर रहने से यजमान भी स्थिर रहता है, सो यजमान यज्ञ को करके कल्याण को प्राप्त होजाता है ॥ ५ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानां रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्यावायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः १

पदच्छेदः ।

प्रजापतिः, लोकान्, अभ्यतपत्, तेषाम्, तप्यमानानाम्, रसान्, प्राव्हत्, अग्निम्, पृथिव्याः, वायुम्, अन्तरिक्षात्, आदित्यम्, दिवः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	प्रजापति	+उद्दिश्य	लोकाऽभिमानी देवताओं का
लोकान्	लोकोंका और		

अभ्यतपत्=ध्यानरूप तप करता भया
च=और
तप्यमानानांतेषाम्=तिन तपाये हुये लोकों को
रसान्=साररूप रसों को
एवम्=इस प्रकार
प्रावृहत्=ग्रहण करता भया
पृथिव्याः=पृथिवी से
अग्निम्=अग्नि को
अन्तरिक्षात्=आकाश से
वायुम्=वायु को
दिवः=स्वर्ग से
आदित्यम्=सूर्य को

भावार्थ ।

प्रजापति ने लोकों से सारवस्तु के ग्रहण करने की इच्छा करके ध्यानरूपी तपको किया, उस ध्यानरूपी तप से पृथिवी से अग्निरूपी रसको, और अन्तरिक्ष से वायुरूपी रसको, और स्वर्ग से आदित्यरूपी रसको निकालता भया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानां रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एताः, तिस्रः, देवताः, अभ्यतपत्, तासाम्, तप्यमानानाम्, रसान्, प्रावृहत्, अग्नेः, ऋचः, वायोः, यजूंषि, सामानि, आदित्यात् ॥

अन्वयः पदार्थ

सः=वह प्रजापति
एताः=इन
तिस्रः=तीन अग्नि, वायु, सूर्य

देवताः=देवताओं का	प्रावृहत्=निकालता भया
अभ्यतपत्=ध्यानरूप तप करताभया	अग्नेः=अग्निसे
तप्यमानानाम्=ध्यानकियेहुये	ऋचः=ऋग्वेदको
तासाम्=उन देवताओं के	वायोः=वायुसे
रसान्=सारको	यजूंषि=यजूर्वेदको
	आदित्यात्=सूर्य्य से
	सामानि=सामवेदको

भावार्थ ।

फिर प्रजापतिने अग्नि, वायु और आदित्य इन तीनों देवताओं को ध्यानरूपी तपसे तपाया, तिन तपाये हुये देवताओं से अर्थात् अग्नि से ऋग्वेदरूपी रसको, और वायु से यजुर्वेदरूपी रसको, और आदित्य से सामवेदरूपी रसको निकालताभया ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृहद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एताम्, त्रयीम्, विद्याम्, अभ्यतपत्, तस्याः, तप्यमानायाः, रसान्, प्रावृहत्, भूः, इति, ऋग्भ्यः, भुवः, इति, यजुर्भ्यः, स्वः, इति, सामभ्यः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
पुनः=फिर	एताम्=इन
सः=वह प्रजापति	त्रयीम्=तीन

विद्याम्=यानी तीनवेदों का
अभ्यतपत्=ध्यानरूप तप करता भया
तप्यमानायाः=ध्यान की हुई
तस्याः=वेदत्रयी के
रसान्=सार को
प्रावृहत्=निकालताभया
ऋग्भ्यः=ऋग्वेद से
भूः=भूः
इति=ऐसी व्याहृति को
यजुर्भ्यः=यजुर्वेद से
भुवः=भुवः
इति=ऐसी व्याहृति को
सामभ्यः=साम वेद से
स्वः=स्वः
इति=एसीव्याहृतिको
+जग्राह=ग्रहण करता भया

भावार्थ ।

फिर तिस प्रजापतिने ऋक्, साम और यजुर्वेदत्रयी को ध्यानः रूपी तप से तपाया, तिस तपे हुये ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेदसे भुवः और सामवेद से स्वः व्याहृतिरूपी रसको निकाला, इसी वास्ते तीनों लोक, तीनों देवता, और तीनों वेदों का रसरूप यह तीनों व्याहृतियां हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्यदृक्तो रिष्येद् भूःस्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेन वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, ऋक्तः, रिष्येत्, भूःस्वाहा, इति, गार्हपत्ये, जुहुयात्, ऋचाम्, एव, तत्, रसेन, वीर्येण, ऋचाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	इसलिये	ऋचाम्	ऋग्वेद के
यत्	यदि (अगर)	वीर्येण	महत्त्वकरके
ऋक्तः	ऋग्वेदसंबन्धी	+यजमानः	यजमान के
यज्ञः	यज्ञ	यज्ञस्य	यज्ञकी
रिष्येत्	नष्ट होजाय तो	विरिष्टम्	अपूर्णता को
भूःस्वाहा	भूःस्वाहा	सः	वह ब्रह्मा ऋत्विज
इति	इसमंत्र करके	संदधाति	पूर्ण करताहै यानीयज्ञकी कमीको मिटाता है
गार्हपत्ये	गार्हपत्य अग्नि में		
जुहुयात्	होम करै		
ऋचाम्	ऋग्वेद के		
रसेन	सार करके		

भावार्थ ।

यदि ऋग्वेदकी ऋचाओं की ओर से यज्ञ में किसी तरह की हानि पहुँचे तब गार्हपत्याग्निमें "भूः स्वाहा" इस मंत्र करके हवन करने से क्षति दूर होजाती है, क्योंकि ऋग्वेद से उत्पन्न हुई हानि ऋग्वेद के रसरूपी व्याहृति से ही दूर होसक्ती है ॥४॥

मूलम् ।

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद् भुवःस्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, यजुष्टः, रिष्येत्, भुवः, स्वाहा, इति,

दक्षिणाग्नौ, जुहुयात्, यजुषाम्, एव, तत्, रसेन, यजुषाम्, वीर्येण, यजुषाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब	यजुषाम्	यजुर्वेदके
यदि	अगर	रसेन	सार करके
यजुष्टः	यजुर्वेदके संबन्धसे	यजुषाम्	यजुर्वेद के
+ यज्ञः	यज्ञ	वीर्येण	प्रभाव करके
रिष्येत्	अपूर्ण होवै तो	यत्	जो
भुवःस्वाहा	भुवःस्वाहा	यजुषाम्	यजुर्वेद के
इति	इस मंत्रकरके	यज्ञस्य	यज्ञकी
दक्षिणाग्नौ	दक्षिणाग्निमें	विरिष्टम्	कमीको
जुहुयात्	हवन करै	एव	अवश्य
तत्	तब	सः	वह ऋत्विज
		संदधाति	पूर्ण करता है

भावार्थ ।

यदि यजुर्वेद के मंत्रों से यज्ञ में किसी तरह की क्षति होवै तब दक्षिणाग्नि में भुवःस्वाहा इस मंत्र से हवन के करने से वह क्षति दूर होजाती है क्योंकि यजुर्वेद के मंत्रों से यज्ञ में हानि पहुँची हुई यजुर्वेद के रसरूपी व्याहृति सेही दूर होसक्की है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वःस्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, सामतः, रिष्येत्, स्वः स्वाहा, इति, आहवनीये, जुहुयात्, साम्नाम्, एव, तत्, रसेन, साम्नाम्, वीर्येण, साम्नाम्, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	तत्	तब
यदि	अगर	साम्नाम्	सामवेद के
यज्ञः	यज्ञ	रसेन	सार करके
सामतः	सामवेद के सम्बन्ध से	साम्नाम्	सामवेद के
रिष्येत्	अपूर्णता को प्राप्त हो तो	वीर्येण	प्रभाव करके
स्वःस्वाहा	स्वःस्वाहा	साम्नाम्	सामवेद के
इति	इस मंत्रकरके	यज्ञस्य	यज्ञ की
आहवनीये	आहवनीय अग्नि में	विरिष्टम्	अपूर्णता
जुहुयात्	होम करै	एव	अवश्य
		सः	वह ऋत्विज
		संदधाति	पूर्ण करता है

भावार्थ ।

यदि यज्ञ में सामवेद के मंत्रों के उच्चारण करने से किसी तरह की क्षति हुई हो तब आहवनीयअग्नि में स्वःस्वाहा इस मंत्र करके हवन करने से वह क्षति पूर्ण होजाती है क्योंकि सामवेद के मंत्रों से उत्पन्न हुई क्षति सामवेद के रसरूपी व्याहृति करके ही दूर होसक्ती है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतं

रजतेन त्रपु त्रपुणा सीसं सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ७ ॥*   पदच्छेदः ।

तत्, यथा, लवणेन, सुवर्णम्, संदध्यात्, सुवर्णेन, रजतम्, रजतेन, त्रपु, त्रपुणा, सीसम्, सीसेन, लोहम्, लोहेन, दारु, दारु, चर्मणा ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	तत्र	सीसेन	सीसे करके
यथा	जैसे	लोहम्	लोहे को
+ पुरुषः	पुरुष	लोहेन	लोहे करके
लवणेन	सुहागा करके	दारु	लकड़ी को
सुवर्णम्	सुवर्ण को	च	और
सुवर्णेन	सुवर्ण करके	चर्मणा	चमड़े करके भी
रजतम्	चांदी को	दारु	लकड़ी को
रजतेन	चांदी करके	संदध्यात्	बांधता वा साफ़ और मुलायम करताहै यानी अपना कार्य निकालता है
त्रपु	रांगा को		
त्रपुणा	रांगा करके		
सीसम्	सीसे को		

भावार्थ ।

जैसे कोई सुहागा करके सुवर्ण को और सुवर्ण करके रजत को और रजत करके रांगे को और रांगा करके सीसाको और सीसा करके लोहे को और लोहे करके काष्ठको और काष्ठको चरम करके बांधताहै और साफ़ करदेताहै यानी अपना कार्य निकालताहै॥७॥

मूलम् ।

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या

* इस मंत्र का अन्वय अगले मंत्र से है ।

विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवं विद्ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एषाम्, लोकानाम्, आसाम्, देवतानाम्, अस्याः, त्रय्याः, विद्यायाः, वीर्येण, यज्ञस्य, विरिष्टम्, संदधाति, भेषजकृतः, ह, वै, एषः, यज्ञः, यत्र, एवम्, विद्, ब्रह्मा, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एवम्	=इसी प्रकार	एषः	=वह
एषाम्	=इन कहेहुये	यज्ञः	=यज्ञ
लोकानाम्	=लोकों के	वै	=निश्चयकरके
आसाम्	=इन कहेहुये	+वांछितफलंदायकः	=वांछितफल का देनेवाला
देवतानाम्	=देवताओं के	भवति	=होता है
अस्याः	=इन कहेहुये	यत्र	=जिस यज्ञ में
त्रय्याः	=वेदत्रयी	ब्रह्मा	=ब्रह्माऋत्विज
विद्यायाः	=विद्या के	एवम्विद्	=इस प्रकार व्याहृति-होमका और प्रायश्चित्त कर्म काज्ञाता
वीर्येण	=रसरूपप्रभावसे	भवति	=होता है
यज्ञस्य	=यज्ञकी		
विरिष्टम्	=कमीको		
+ब्रह्माऋत्विक्	=ब्रह्माऋत्विज		
संदधाति	=पूर्ण करता है		

भावार्थ ।

इसी प्रकार इन कहे हुये लोकों के देवताओं के त्रयीविद्याके

रसरूपी व्याहृतियों करके ऋत्विज ब्रह्मा यज्ञ की हानिको पूर्ण करदेता है, और जैसे रोग का जाननेवाला सुशिक्षित वैद्य रोगी पुरुष को रोग से रहित कर देता है वैसे ही जिस यज्ञ में व्याहृती और होमरूप प्रायश्चित्त का जाननेवाला ब्रह्मा ऋत्विज होता है वह यज्ञ भी फलदायकही होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

एष ह वाउदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवं विद् ब्रह्मा भवत्येवं विदं ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, ह, वै, उदक्प्रवणः, यज्ञः, यत्र, एवम्, विद्, ब्रह्मा, भवति, एवम्, विदम्, ह, वै, एषा, ब्रह्माणम्, अनुगाथा, यतः, यतः, आवर्तते, तत्, तत्, गच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एषः ह	यही
यज्ञः	यज्ञ
वै	निश्चयकरके
उदक्प्रवणः	उत्तरमार्ग के प्राप्तका हेतु
भवति	होता है
एवम्विद्	इसप्रकार व्याहृति होमका और प्रायश्चित्त कर्मका ज्ञाता
ब्रह्मा	ब्रह्मा ऋत्विज
भवति	होता है
एवंविदम्	उस ज्ञाता
ब्रह्माणम्	ब्रह्माके
प्रति	प्रति
एषा	यह
ह	निश्चय करके
वै	ऐसी
अनुगाथा	गाथा है कि
यतः	जहां

यतः=जहां से	ततत्तत्=तहां तहां
+अध्वर्युः=अध्वर्यु	+ तम्=उसको
आवर्तते=गिरता है	गच्छति=पहुँचा देताहै

भावार्थ ।

यह यज्ञ उत्तरकी ओर प्रवाहवाला होता है यानी उत्तम लोक को लेजाता है, ऐसा जाननेवाला ब्रह्मा होता है, इसी वास्ते यह गाथा ब्रह्माकी स्तुति विषे कही गई है कि जिस जिस स्थान से होता, अध्वर्यु आदि करके हानि पहुँचती है उसी स्थान में ब्रह्मा यज्ञ के प्रायश्चित्त को अनुसंधान करके उस क्षति की पूर्ति को करदेता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानं सर्वांश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवं विदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवं विदं नानेवं विदम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

मानवः, ब्रह्मा, एव, एकः, ऋत्विक्, कुरून्, अश्वा, अभिरक्षति, एवम्, विद्, ह, वै, ब्रह्मा, यज्ञम्, यजमानम्, सर्वान्, च, ऋत्विजः, अभिरक्षति, तस्मात्, एवम्, विदम्, एव, ब्रह्माणं, कुर्वीत, न, अनेवम्, विदम्, न, अनेवम्, विदम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एकः=एक		मानवः=ज्ञाता	
एव=ही		ब्रह्मा=ब्रह्मा	

ऋत्विक्=ऋत्विज
कुरून्=यज्ञकर्ताओं को
अभिरक्षति=रक्षा करता है
यथा=जैसे
अश्वा=घोड़ी अपने सवार को युद्ध में रक्षा करती है
एवंविद्=इस प्रकार व्याहृतिहोम का और प्रायश्चित्त कर्म का ज्ञाता
ब्रह्मा=ब्रह्मा ऋत्विज
यज्ञम्=यज्ञ की
यजमानम्=यजमान की
च=और
सर्वान्=सब
ऋत्विजः=ऋत्विजों की
हवै=निश्चय करके
अभिरक्षति=रक्षा करता है
तस्मात्=इसलिये
एवंविदम्=इस प्रकार यथोक्त व्याहृत्यादि के ज्ञाता को
एव=ही
ब्रह्माणम्=ब्रह्मा ऋत्विज
कुर्वीत=नियुक्त करै
अनेवंविदम्=यथोक्त व्याहृत्यादि के न जाननेवाले को न करै

भावार्थ ।

व्याहृति आदिकों का ज्ञाता यज्ञकी रक्षा को और ऋत्विजों की भी रक्षाको वैसेही करता है जैसे घोड़ी लड़ाई में सवार की रक्षाको करती है, इसवास्ते व्याहृति आदिकों के जाननेवाले को ही ब्रह्मा बनाना चाहिये दूसरे को नहीं ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इति श्रीछान्दोग्योपनिषत्पूर्वार्धः समाप्तिं पफाणेतिशम् ॥

अथ छान्दोग्योपनिषदुत्तरार्द्धं ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

ॐ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, ज्येष्ठम्, च, श्रेष्ठम्, च, वेद, ज्येष्ठः, च, ह, वै, श्रेष्ठः, च, भवति, प्राणः, वाव, ज्येष्ठः, च, श्रेष्ठः, च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
हवै	निश्चय करके	भवति	होता है
ज्येष्ठम्	आयुमें बड़ेको	च	और
च	और	प्राणः	प्राण
श्रेष्ठम्	गुणोंमेंउत्तमको	वाव	ही
वेद	जानता है	च	निस्सन्देह
सः	वह	ज्येष्ठः	इन्द्रियोंमेंज्येष्ठ
हवै	ही	च	और
ज्येष्ठः	सब में ज्येष्ठ	श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
च	और	+ अस्ति	है

भावार्थ ।

पुनरावृत्तिरूपा दक्षिणायनगति और बारम्बार जन्मरूपा संसारगति ये दोनों अतिनिकृष्ट और क्लिष्ट हैं, इनसे मुमुक्षुको

वैराग्यवान् होना उचित है, इसलिये इस पञ्चम प्रपाठक का भाषा टीका आरम्भ किया जाता है, प्राण के उपासकों के अर्थ सब इन्द्रियों में प्राणकी ज्येष्ठता और श्रेष्ठता प्रथम निरूपण करते हैं, और कहते हैं कि जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है वह भी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनजाता है, इस फल का लोभ दिखाकर उपासक की वृत्तिको श्रुति अपने सम्मुख करके कहती है कि हे प्रियदर्शन ! सब इन्द्रियों में प्राणही ज्येष्ठ है, क्योंकि जब बालक गर्भ विषे आता है तब उसके पिण्ड में प्रथम प्राणही का आगमन होता है, और फिर वह वाक् आदि इन्द्रियों के आने के लिये उनके गोलकों में प्रवेश करके उन गोलकों को फैलाता और बढ़ाता है जिस करके उनके शरीर की वृद्धि और चक्षुआदि इन्द्रियों की स्थिति होती है, इसीकारण प्राण ज्येष्ठ है, " एतस्माज्जायते प्राणः " " प्राणमसृजत " इत्यादि श्रुति प्रमाण, और प्राण श्रेष्ठ भी है, जैसे उत्तम घोड़के दृष्टान्तसे आगे मालूम होगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

योह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, वसिष्ठम्, वेद, वसिष्ठः, ह, स्वानाम्, भवति, वाक्, वाव, वसिष्ठः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		सः=वह	
वसिष्ठम्=धनाढ्य को		ह=भी	
ह वै=स्पष्ट		स्वानाम्=अपनी जाति वालों में	
वेद=जानता है			

वसिष्ठः=धनाढ्य	वाव=ही
+ भवति=होता है	वसिष्ठः=सब इन्द्रियोंमें
वाक्=वाणी	धनाढ्य है

भावार्थ ।

जो वसिष्ठ यानी धनाढ्य को जानता है, यानी उपासता है वह भी वसिष्ठ यानी धनाढ्य होजाता है, वाक् इन्द्रिय वसिष्ठ है, अर्थात् जो वाणीरूप प्राण की उपासना करता है, वह श्रेष्ठवक्ता और धनवान् होता है, और सभाविषे अपनी ज्ञातियों में सबको पराजय करके उत्तम धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, प्रतिष्ठाम्, वेद, प्रति, ह, तिष्ठति, अस्मिन्, च, लोके, अमुष्मिन्, च, चक्षुः, वाव, प्रतिष्ठा ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	अमुष्मिन्=परलोक में
प्रतिष्ठाम्=दृढ़ता को	च=भी
ह वै=स्पष्ट	प्रतितिष्ठति=दृढ़ स्थिति को
वेद=जानता है	प्राप्त होता है
सः=वह	चक्षुः=नेत्र
अस्मिन्=इस	ह=ही
लोके=लोक में	वाव=स्पष्ट
च=और	प्रतिष्ठा=दृढ़स्थितिवाला है

भावार्थ ।

जो पुरुष इस प्रसिद्ध प्रतिष्ठित चक्षुविशिष्टप्राण को जानता है वह जीते हुये इस लोक में और मरने के पश्चात् परलोक में प्रतिष्ठा यानी उत्तम स्थान को प्राप्त होता है, या दृढ़ता को प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा क्या है उस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि चक्षु ही प्रतिष्ठित यानी दृढ़ है, क्योंकि ऊंच, नीच, सम, दुर्गमस्थलविषे चक्षुसे सम्यक् प्रकार देख करके पुरुष उत्तमस्थान विषे दृढ़ताके साथ स्थित होता है, इसलिये चक्षु ही प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यो ह वै संपदं वेद सꣳहास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, संपदम्, वेद, सम्, ह, अस्मै, कामा, पद्यन्ते, दैवाः, च, मानुषाः, च, श्रोत्रम्, वाव, संपत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	मानुषाः	=मनुष्यसम्बन्धी
वै	=निस्सन्देह	च	=भी
सम्पदम्	=सम्पत्तिको	कामाः	=कामनायें
वेद	=जानता है	सम्	=सम्यक्प्रकार
+अस्मै	=उसके लिये	पद्यन्ते	=प्राप्त होती हैं
ह	=स्पष्ट	श्रोत्रम्	=श्रोत्र
दैवाः	=देवसम्बन्धी	वाव	=ही
च	=और	संपत्	=संपत्ति है

भावार्थ ।

जो संपदाको जानता है, वह देव और मनुष्यसम्बन्धी

कामनाओं को प्राप्त होता है, संपदा क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में श्रुति कहती है कि श्रोत्र ही सम्पदा है, यानी जब पुरुष श्रोत्र-विशिष्ट प्राण की उपासना करता है तब श्रोत्रइन्द्रिय करकेही वेदों के मंत्रों को ग्रहणकर उसके अर्थ को जानता है, फिर उसके अनुसार यज्ञादि कर्मों को करता है, तिसके पीछे अपनी इष्टकामनाओं को प्राप्त होता है, इसकारण श्रोत्र ही काम संपत्ति के हेतु होने से सम्पदा है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यो ह वा आयतनं वेद आयतनं ह स्वानाम् भवति मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, आयतनम्, वेद, आयतनम्, ह, स्वानाम्, भवति, मनः, ह, वै, आयतनम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	स्वानाम्=अपनेलोगोंका
वै=भले प्रकार	आयतनम्=घर या आश्रम
आयतनम्=घरको या आश्रम को	भवति=होता है
ह=स्पष्ट	मनः=मन
वेद=जानता है	वै=निस्सन्देह
+सः=वह	ह=स्पष्ट
ह=निश्चयकरके	आयतनम्=घर या आश्रम
	+अस्ति=है

भावार्थ ।

जो कोई अपने स्थानको जानता है, वह अपने लोगों क

आश्रय होता है, अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण किये हुये भोगार्थ व ज्ञानार्थ विषयों का मनही आश्रय है इसलिये मनही सबका आयतन है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳश्रेयान-स्म्यहꣳश्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणाः, अहम्, श्रेयसि, वि, ऊदिरे, अहम्, श्रेयान्, अस्मि, अहम्, श्रेयान्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	अहम्	मैं
इति	इस प्रकार	श्रेयान्	श्रेष्ठ
ह	निश्चय करके	अस्मि	हूं
प्राणाः	इन्द्रियां	अहम्	मैं
व्यूदिरे	आपस में लड़ती भई कि	श्रेयान्	श्रेष्ठ
श्रेयसि	कल्याणकारक वस्तुवों में	अस्मि	हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सब इन्द्रियां यथोक्त गुणों से संयुक्त होतेसंते भी साहंकार एक दूसरे से लड़ती झगड़ती भई, और कहती भई कि हम श्रेष्ठ हैं, हम श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को

नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, प्राणाः, प्रजापतिम्, पितरम्, एत्य, ऊचुः, भगवन्, कः, नः, श्रेष्ठः, इति, तान्, ह, उवाच, यस्मिन्, वः, उत्क्रान्ते, शरीरम्, पापिष्ठतरम्, इव, दृश्येत, सः, वः, श्रेष्ठः, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ते=वे सब	ह=स्पष्ट
प्राणाः=प्राण आदि इन्द्रियां	+प्रजापतिः=प्रजापति
ह=स्पष्ट	इति=ऐसा
पितरम्=पितृरूप	उवाच=उत्तर देता भया कि
प्रजापतिम्=प्रजापति के पास	वः=तुममें से
एत्य=जाकर	यस्मिन्=जिसके
इति=इस प्रकार	उत्क्रान्ते=निकलजानेपर
ऊचुः=कहती भई कि	शरीरम्=शरीर
भगवन्=हे स्वामिन्	पापिष्ठतरम्=शव
नः=हम सबों में	इव=ऐसा
कः=कौन	दृश्येत=देख पड़े
श्रेष्ठः=उत्तम	सः=वही
+ अस्ति=है	वः=तुममें
तान्=उन सबों को	श्रेष्ठः=श्रेष्ठ
	+ अस्ति=है

भावार्थ ।

तब सब इन्द्रियां इस बात के जानने के लिये कि कौन हम में श्रेष्ठ है अपने पिता प्रजापति के पास जाकर प्रणाम करके कहती भईं कि हे भगवन्! हम लोगों के मध्य में गुणों करके कौन श्रेष्ठ है, आप कृपा करके कहें ताकि हमारे आपुस का विवाद मिटजाय, तब तिसको श्रवणकर प्रजापति उन इन्द्रियों से कहता भया कि जिस एकके निकलजाने से यह शरीर अतिशय करके अपवित्र दिखलाई पड़े वही तुम्हारे सब के मध्य श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, वाक्, उत्, चक्राम, सा, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, कलाः, अवदन्तः, प्राणन्तः, प्राणेन, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, वाक् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+तदा	तब	+च	और
सा	वह	सा	वह
वाक्	वाक्इन्द्रिय	संवत्सरम्	एकवर्षपर्यन्त
ह	स्पष्ट	प्रोष्य	बाहररहकर
उच्चक्राम	निकलती भई	पर्येत्य	फिरआकरके

उवाच=बोलती भई कि
यूयम्=तुम सब
मत्=मेरे
ऋते=विना
कथम्=किसतरह
जीवितुम्=जीने को
अशकत=शक्तिमान् होते भये
इति=इसपर
ते=उन सबों ने
ऊचुः=कहा कि
यथा=जिसप्रकार
कलाः=गूंगे
अवदन्तः=नहीं बोलते हुये पर
प्राणेन=प्राण से
प्राणन्तः=श्वास लेते हुये
चक्षुषा=नेत्र से
पश्यन्तः=देखते हुये
श्रोत्रेण=कान से
शृण्वन्तः=सुनते हुये
मनसा=मन से
ध्यायन्तः=ध्यानकरते हुये
+जीवन्ति=जीते हैं
एवम्=उसी प्रकार
वयम्=हम सब
जीवामः=जीते हैं
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुनकर
वाक्=वाक् इन्द्रिय
ह=स्पष्ट
प्रविवेश=शरीर में लौट आई

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सर्वज्ञ प्रजापति के कहने पर वाक् इन्द्रिय अपने स्थान से निकल कर एक सालतक अपने व्यापार से उपराम होकर बाहर स्थित होती भई, और जब एक साल व्यतीत हो-गया तब शरीर के निकट पुनः आकर अन्य इन्द्रियों से प्रश्न करती भई कि हे सहचारियो ! तुमलोग मुझ विना किस प्रकार अपने जीवन के धारण करने विषे समर्थ होते भये, इस प्रश्नके सुनने पर सबों ने कहा कि ।जिस प्रकार गूंगा पुरुष लोकविषेवाणी विना प्राण करके जीवता है, चक्षु करके देखता है, श्रोत्र करके

श्रवण करता है, मन करके मनन करता है इसी प्रकार तुम्हें एक विना हम लोग जीते हैं, इस प्रकार जब इन्द्रियोंने कहा तब वह वाक् इन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठता समझ कर श्रेष्ठता के अहंकार को त्याग कर, अपने स्थान में स्थित हो, अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ ८ ॥

मूलम् ।

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, अन्धाः, अपश्यन्तः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, चक्षुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	तत्पश्चात्	प्रोष्य	बाहर रहकर के
चक्षुः	नेत्र	पर्येत्य	फिर आकर
ह	स्पष्ट	उवाच	पूछता भया कि
उच्चक्राम	निकलता भया	यूयम्	तुम सब
च	और	मत्	मेरे
तत्	वह	ऋते	विना
संवत्सरम्	एक वर्षतक	कथम्	कैसे

जीवितुम्=जीने को
अशकत=समर्थ भये
इति=इसपर
ते=उन सबोंने
ऊचुः=कहा कि
यथा=जैसे
अन्धाः=अन्धे
अपश्यन्तः=नहीं देखते हुये
प्राणेन=प्राण से
प्राणन्तः=श्वास लेतेहुये
वाचा=वाणी से
वदन्तः=बोलते हुये
श्रोत्रेण=श्रोत्र से
शृण्वन्तः=सुनते हुये
मनसा=मन से
ध्यायन्तः=ध्यानकरतेहुये
+ जीवन्ति=जीते हैं
एवम्=उसी तरह
+ वयम्=हम सब
+ जीवामः=जीते हैं
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुन करके
चक्षुः=नेत्र
ह=स्पष्ट
प्रविवेश=शरीर के अन्दरलौट आता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वाक् इन्द्रिय वापस आकर अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई, तब चक्षुइन्द्रिय अपने विषे श्रेष्ठता का अभिमान कर शरीर से निकलकर, एक वर्षतक बाहर रहकर, अपने व्यापार से उपराम होकर, इन्द्रियादिकों के समीप आकर, पूछती भई कि तुम सब मेरे विना अपने जीवनके धारण करने में कैसे समर्थ हुये, इसके जवाब में सबों ने कहा कि जैसे लोक बिषे अन्धा विना नेत्र के प्राण करके जीता है, वाणी करके बोलता है, श्रोत्र करके श्रवण करता है, मन करके मनन करता है, इसी प्रकार अन्धपुरुषवत् तुझ विना हम सब अपने अपने व्यापारों को करते हुये प्राणकरके जीवते हैं, जब सब इन्द्रियों ने इस प्रकार कहा तब वह चक्षुइन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठता का अनुभव कर श्रेष्ठता

के अभिमान को त्यागकर, अपने स्थान में प्रवेशकर, अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ ९ ॥

मूलम् ।

श्रोत्रꣳहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, बधिराः, अशृण्वन्तः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, ध्यायन्तः, मनसा, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, श्रोत्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	=तिसके पीछे	उवाच	=बोलती भई कि
श्रोत्रम्	=श्रोत्रइन्द्रिय	यूयम्	=तुम सब
ह	=स्पष्ट	मत्	=मेरे
उच्चक्राम	=निकलती भई	ऋते	=बिना
च	=और	कथम्	=कैसे
तत्	=वह	जीवितुम्	=जीवन को
संवत्सरम्	=एक वर्ष तक	अशकत	=समर्थ होते भये
प्रोष्य	=बाहर रहकर	इति	=इस पर
पर्येत्य	=फिर आकर	+ ते	=वे सब

ऊचुः=कहते भये कि	+ जीवन्ति=जीते हैं
यथा=जैसे	एवम्=इसी प्रकार
बधिराः=बहिरे	+ जीवामः=हम सब जीते हैं
अशृण्वन्तः=नहीं सुनते हुये	इति=ऐसा
प्राणेन=प्राण से	+ श्रुत्वा=सुनकरके
प्राणन्तः=श्वास लेते हुये	श्रोत्रम्=कर्ण इन्द्रिय
वाचा=वाणी से	ह=स्पष्ट
वदन्तः=बोलते हुये	प्रविवेश=शरीर के अन्दर वापस आती भई
चक्षुषा=नेत्र से	
पश्यन्तः=देखते हुये	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब चक्षुइन्द्रिय अपने स्थान में आकर स्थित हुई, तिसके पश्चात् श्रोत्रइन्द्रिय शरीर से निकल कर एक वर्ष तक बाहर रहकर अपने व्यापार से उपराम होकर फिर आकर बोली कि हे इन्द्रियो ! मुझ विना तुम सब अपने जीवनके धारण करने में कैसे समर्थ हुये, तब सबोंने उत्तर दिया कि जैसे बहिरा पुरुष विना श्रोत्र इन्द्रिय के प्राण करके जीवता है, वाणी करके बोलता है, चक्षु करके देखता है, मन करके मनन करता है, इसी प्रकार हे श्रोत्रइन्द्रिय ! तेरे विना बधिर पुरुषवत् हमारे सबका जीवनव्यापार होता है, इस प्रकार जब सब इन्द्रियों ने कहा तब श्रोत्रइन्द्रिय अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्यागकर और अतिलज्जित हो अपने स्थान में आकर फिर अपने व्यापार में प्रवृत्त होती भई ॥ १० ॥

मूलम् ।

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः

प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ह, उत्, चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, पर्येत्य, उवाच, कथम्, अशकत, ऋते, मत्, जीवितुम्, इति, यथा, बालाः, अमनसः, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, एवम्, इति, प्रविवेश, ह, मनः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ ततः	=तिसके पीछे	कथम्	=किस प्रकार
मनः	=मन	जीवितुम्	=जीने को
ह	=स्पष्ट	अशकत	=समर्थ हुये
उच्चक्राम	=निकलता भया	इति	=इसपर
+ च	=और	+ ते	=वे सब
तत्	=वह	+ ऊचुः	=बोलते भये कि
संवत्सरम्	=एक वर्षतक	यथा	=जिस तरह
प्रोष्य	=देहसे बाहर रहकर	बालाः	=छोटे बालक
+ पुनः	=फिर	अमनसः	=मनरहित
पर्येत्य	=वापस आकर	प्राणेन	=प्राण से
उवाच	=पूछता भया कि	प्राणन्तः	=श्वास लेते हुये
+ यूयम्	=तुम सब	वाचा	=वाणी से
मत्	=मेरे	वदन्तः	=बोलते हुये
ऋते	=विना	चक्षुषा	=नेत्र से
		पश्यन्तः	=देखते हुये

श्रोत्रेण=कानसे	इति=ऐसा
शृण्वन्तः=सुनते हुये	+श्रुत्वा=सुनकर
+जीवन्ति=जीते हैं	मनः=मन
एवम्=इसी प्रकार	ह=स्पष्ट
+जीवामः=हम सब जीते हैं	प्रविवेश=शरीर में लौट आया

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! तदनन्तर सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन ने अभिमान सहित विचार किया कि सब का जीवनव्यापार मेरे आधीन है, अगर मैं शरीर विषे न रहूं तो कोई जी नहीं सक्ता है, ऐसा सोचकर शरीर से बाहर निकल गया और एक वर्ष पर्यन्त बाहर रहकर अपने व्यापार से उपराम होकर शरीरादिकों के निकट आकर इन्द्रियों से पूछता भया कि तुम लोग मुझ विना कैसे जीवन के धारण विषे समर्थ हुये, तब इन्द्रियों ने उत्तर दिया कि जैसे बालक मन विना प्राण करके जीवता है, वाणी करके बोलता है, चक्षु करके देखता है, श्रोत्र करके सुनता है, इसी प्रकार हे मन ! तुम्हारे विना हमलोग भी बालकवत् जीवन का व्यापार करते हैं, तिसको सुनकर अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्याग कर, लज्जा खाकर, अपने स्थान में स्थित होकर, अपने व्यापार में प्रवृत्त होता भया ॥ ११ ॥

मूलम् ।

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पड्वीशशङ्कून् संखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्तᳬ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणः, उत्, चिक्रमिषन्, स , यथा, सुहयः, पड्वीशशङ्कून्, सम्, खिदेत्, एवम्, इतरान्, प्राणान्, सम्, अखिदत्, तम्, ह, अभि, सम्, एत्य, ऊचुः, भगवन्, एधि, त्वम्, नः, श्रेष्ठः, असि, मा, उत्, क्रमीः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	अब
प्राणः	प्राण
ह	स्पष्ट
उच्चिक्रमिषन्	निकलने की इच्छा करता भया
यथा	जिस प्रकार
सुहयः	उत्तम घोड़ा
पड्वीशशङ्कून्	मेखों को
संखिदत्	उखाड़कर फेंक देता है
एवम्	उसी तरह
+ सः	वह
इतरान्	अन्य
प्राणान्	इन्द्रियों को
समखिदत्	उखाड़ता भया
+ तदा	तब

अन्वयः	पदार्थ
+ ते	वे सब
अभिसमेत्य	एक साथ मिलके
तम्	उस प्राण से
+ ऊचुः	कहती भईं
भगवन्	हे भगवन्
एधि	आप सदा ऐश्वर्य को प्राप्त होवें
नः	हमलोगों के मध्य
त्वम्	आप
ह	ही
श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
+असि	हैं
इति	ऐसा कहकर
+पुनः	फिर

+ऊचुः=कहती भईं कि मा=मत	उत्क्रमीः=आप इस शरीर के बाहर जावें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सब इन्द्रियां हार मानकर और लज्जित होकर अपने अपने स्थानों में आनकर अपने काम में प्रवृत्त होती भईं, तब मुख्य प्राण अपने अंश अपानादिकों को लेकर और उनके आधीन इन्द्रियों को उखाड़ कर बाहर निकलने की इच्छा करता भया, जैसे तीव्र घोड़ा परीक्षक के ताड़ने से मेखों को जिस से वह बँधा रहता है, उखाड़ कर भागने की इच्छा करता है, जब इन्द्रियां प्राण के निकलने से विकल होती भईं, तब सब प्राणके समीप आय नम्रतापूर्वक कहती भईं कि हे भगवन् ! आप पूजा नमस्कार के योग्य हैं, हम आपकी प्रजा हैं, और आप के अर्थ बलि (कर) देने को तैयार हैं, आप हमारे स्वामी हैं, आप अपना कर लेवें, और इस देह में रहें, आपके निकलने से हम सब नाशको प्राप्त होजायँगी ॥ १२ ॥

मूलम् ।

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठासीति ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, वाक्, उवाच, यत्, अहम्, वसिष्ठः, अस्मि, त्वम्, तत्, वसिष्ठः, असि, इति, अथ, ह, एनम, चक्षुः, उवाच, यत्, अहम्, प्रतिष्ठा, अस्मि, त्वम्, तत्, प्रतिष्ठा, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तब	अथ	फिर
वाक्	वाणी	चक्षुः	नेत्र
ह	स्पष्ट	ह	स्पष्ट
एनम्	इस प्राण से	एनम्	इस प्राण से
उवाच	कहती भई कि	उवाच	कहताभयाकि
यत्	अगर	यत्	अगर
अहम्	मैं	अहम्	मैं
वसिष्ठः	धनाढ्य	प्रतिष्ठा	दृढ़ता
अस्मि	हूं	अस्मि	हूं
इति	तो	इति	तो
त्वम्	आप	त्वम्	आप
+अपि	भी	+अपि	भी
तत्	वैसे ही	तत्	वैसेही
वसिष्ठः	धनाढ्य	प्रतिष्ठा	दृढ़ता
असि	हैं	असि	हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वाक् इन्द्रिय फिर कहती भई कि हे भगवन् ! जो वसिष्ठत्व गुण मेरे बिषे है वह आपही का दिया हुआ है, पर अज्ञान करके उस आपके गुणको अपना गुण मानकर वृथा अभिमान करती भई, तिसके उपरान्त मुख्य प्राण से चक्षु इन्द्रिय कहती भई कि हे भगवन् ! जो प्रतिष्ठत्वगुण मुझ बिषे है वह आपही का है, परन्तु उसको न जान के उसगुण को अपना जानकर वृथा अभिमान करती भई ॥ १३ ॥

मूलम् ।

अथ हैनꣳश्रोत्रमुवाच यदहꣳ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, श्रोत्रम्, उवाच, यत्, अहम्, सम्पत्, अस्मि, त्वम्, तत्, सम्पत्, असि, इति, अथ, ह, एनम्, मनः, उवाच, यत्, अहम्, आयतनम्, अस्मि, त्वम्, तत्, आयतनम्, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्	अथ	फिर
श्रोत्रम्	कर्णइन्द्रिय	मनः	मन
ह	स्पष्ट	ह	स्पष्ट
एनम्	उक्त प्राण से	एनम्	इस प्राण से
इति	इस प्रकार	इति	इस प्रकार
उवाच	कहती भई कि	उवाच	कहताभयाकि
यत्	अगर	यत्	अगर
अहम्	मैं	अहम्	मैं
सम्पत्	सम्पत्ति	आयतनम्	आश्रय
अस्मि	हूं	अस्मि	हूं
तत्	तो	तत्	तो
त्वम्	आप	त्वम्	आप
+ अपि	भी	+ अपि	भी
सम्पत्	सम्पत्ति	आयतनम्	आश्रय
असि	हैं	असि	हैं

भवार्थ ।

हे सौम्य ! जब मुख्य प्राणसे वाक् और चक्षु अपनी आधीनता प्रकट करचुके, तदनन्तर श्रोत्र और मन उस मुख्य प्राण से कहने लगे, प्रथम श्रोत्र ने कहा कि हे भगवन् ! आप पूजा और नमस्कार के योग्य हैं, जो मेरे में सम्पदत्वरूप गुण है, सो आपही का है, मेरा नहीं, मैंने इसको अपना अज्ञानता करके मान रक्खाथा, इसके उपरान्त मन मुख्य प्राण से कहनेलगा कि हे भगवन् ! आप पूजा और नमस्कारके योग्य हैं जो आयतनत्वरूप गुण मेरे बिषे है, वह आपही का है, मैंने उसको अज्ञानता से अपना गुण मान रक्खा था, जिसके कारण मुझको लज्जित होना पड़ा ॥ १४ ॥

मूलम् ।

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥ १५ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

न, वै, वाचः, न, चक्षूंषि, न, श्रोत्राणि, न, मनांसि, इति, आचक्षते, प्राणाः, इति, एव, आचक्षते, प्राणः, हि, एव, एतानि, सर्वाणि, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	इस कारण	न	न
वै	निश्चय करके	चक्षूंषि	नेत्रों को
न	न	न	न
वाचः	वाक्यों को	श्रोत्राणि	कानों को

न=न	इति=करके
मनांसि=मनइन्द्रियोंको	आचक्षते=कहते हैं
+करणानि=करण	हि=क्योंकि
आचक्षते=कहते हैं	प्राणः=प्राण
+ एतानि=इन	एव=ही
+ सर्वाणि=सबों को	एतेषाम्=इन सबों का
प्राणाः=प्राण	+ करणम्=करण
एव=ही	भवति=होता है

भवार्थ ।

सब वागादि इन्द्रियों में श्रेष्ठता केवल प्राणको ही है, क्यों कि कार्य के करने में प्राण ही करण है, यानी इसीके द्वारा कार्य किया जाता है, प्राणरहित वागादि इन्द्रियों करके नहीं किया जाता है, प्राण स्वतंत्र है, वागादि उसके परतंत्र हैं, और इसी कारण सब इन्द्रियों को प्राणही के नाम से कहते हैं, अगर वादी शंका करे कि इन्द्रियां जड़ होने के कारण उनका शरीर से निकलना, प्रजापति के पास जाना, पुनःशरीर में वापस आना, एक वर्ष पर्यन्त बाहर रहना, अपने व्यापार से उपराम होना, फिर वापस आकर प्रश्न करना, लज्जित होना, स्वस्थान में आकर स्वव्यापार में प्रवृत्त होना इत्यादि कुछ संभवै नहीं, इसके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि अग्नि आदि देवता चेतनावान् हैं और उनके आश्रित ये इन्द्रियां हैं, अधिष्ठान से अधिष्ठित पृथक् न होने के कारण तादात्म्य अध्यास करके वागादि इन्द्रियों को चेतनपना संभवै है, इसलिये उन बिषे वचनआदि क्रिया होती है " अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशदिति " यह श्रुति प्रमाण है ॥ १५ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

स होवाच किं मेऽन्नम् भष्यितीति यत्किंचिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किंचनानन्नं भवतीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

स, ह, उवाच, किम्, मे, अन्नम्, भविष्यति, इति, यत्, किंचित्, इदम्, आश्वभ्यः, आशकुनिभ्यः, इति, ह, ऊचुः, तत्, वै, एतत्, अनस्य, अन्नम्, अनः, ह, वै, नाम, प्रत्यक्षम्, न, ह, वै, एवम्विदि, किंचन, अनन्नम्, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह प्राण	ऊचुः	कहा कि
ह	स्पष्ट	यत्	जो
उवाच	कहता भया कि	किंचित्	कुछ
मे	मेरे लिये	आश्वभ्यः	कुत्तों से लेकर
किम्	क्या	च	और
अन्नम्	भोग्यवस्तु	आशकुनिभ्यः	पक्षियों से लेकर
भविष्यति	होगी	इदम्	यह भक्षण करने योग्य है
इति	इस प्रकार	एतत्	वह सब
+ ते	उन सबों ने		
ह	स्पष्ट		

वै=निश्चय करके
अनस्य=प्राण काही
अन्नम्=भोग
\+ अस्ति=है
\+ अतः=इसलिये
अनः=अन
हवै=ही
\+ तस्य=उसका
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
नाम=नाम यानी इन्द्रियों में रहनेवाला है
इति=इस प्रकार
एवंविदि=जाननेवाले को
हवै=निश्चय करके
किंचन=जो कुछ भोजन किया हुआ होता है
अनन्नम्=नहीं भोजन किया
भवति=होता है
\+ तत्=ऐसा
न=नहीं

भवार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे राजा को प्रजा बलि अर्पण करता है, तैसेही जब प्राण को इन्द्रियों ने अपना अपना भाग अर्पण किया तब शरीर में स्वस्थ होकर प्राण ने उन इन्द्रियों से पूछा कि मेरा भोग क्या होगा, इसपर वागादि कहती भई कि हे भगवन्! जो कुछ इस लोक विषे कुत्तों से लेकर पक्षियों तक भोग्य भोग करने योग्य है, वह सब आपका आहार होगा, अथवा जो कुछ प्राणीमात्र करके खाया जाता है वह सब आपका भोग होगा "प्राणोऽत्ता सर्वस्यान्नस्य" इस श्रुतिप्रमाणसे प्राण और इन्द्रियों की आख्यायिका को कहकर श्रुति स्वयं प्राण की प्रतिष्ठा को इस प्रकार कहती है कि अन्न (भोग) अन (प्राण) काही है अर्थात् जो कुछ लोकविषे भोग्य वस्तु है वह सब प्राण काही है ऐसा जाननेवाले पुरुष को अन्न सदा प्राप्त रहता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, किम्, मे, वासः, भविष्यति, इति, आपः, इति, ह, ऊचुः, तस्मात्, वै, एतत्, अशिष्यन्तः, पुरस्तात्, च, उपरिष्टात्, च, अद्भिः, परिदधति, लम्भुकः, ह, वासः, भवति, अनग्नः, ह, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह प्राण	तस्मात्	=यही कारण है कि
इति	=ऐसा	अशिष्यन्तः	=भोजन करने की इच्छावाले
ह	=स्पष्ट	पुरस्तात्	=भोजन से पहिले
उवाच	=पूछता भयाकि	च	=और
किम्	=क्या	उपरिष्टात्	=भोजन के पीछे
मे	=मेरा	वै	=अवश्य
वासः	=वस्त्र	एतत्	=इस प्राण को
भविष्यति	=होगा	अद्भिः	=जल से
आपः	=जल	परिदधति	=ढांकते हैं यानी पानी पीते हैं
इति	=ऐसा		
+ ते	=वेसबइन्द्रियां		
ह	=स्पष्ट		
ऊचुः	=कहती भई		

च=और
+ यः=जो
वासः=वस्त्र को
लम्भुकः भवति = प्राप्त होने वालाहोताहै याने प्राण रखने वाला प्राणीहोताहै

सः=वह
ह=निश्चयकरके
अनग्नः भवति = नग्न नहीं होताहैयानी वस्त्र संयुक्त सदारहताहै

भवार्थ ।

हे सौम्य ! प्राण फिर इन्द्रियों से प्रश्न करता भया कि मेरा वस्त्र क्या होगा ? उसके जवाब में वागादि इन्द्रियों ने कहा कि आपका वस्त्र जल होगा, और यही कारण है कि विद्वान् ब्राह्मण भोजन के पहिले और पीछे जल वस्त्र स्थानापन्न समुझकर प्राण को अर्पण करता है, ऐसे विद्वान् को वस्त्र सदा प्राप्त रहता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, एतत्, सत्यकामः, जाबालः, गोश्रुतये, वैयाघ्रपद्याय, उक्त्वा, उवाच, यदि, अपि, एनत्, शुष्काय, स्थाणवे, ब्रूयात्, जायेरन्, एव, अस्मिन्, शाखाः, प्ररोहेयुः, पलाशानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सत्यकामः	=सत्यकाम	यदि	=अगर
जाबालः	=जाबालनामक ऋषि	+प्राणोपासकः	=प्राणविद्या का जाननेवाला
तत्	=उस	शुष्काय	=सूखे
ह	=ही	स्थाणवे	=वृक्ष से
एतत्	=इसप्राणस्तुति को	अपि	=भी
वैयाघ्रपद्याय	=व्याघ्रपद नाम वाले ऋषि के पुत्र वैयाघ्रपद नामक	एनत्	=इस प्राणविद्या को
गोश्रुतये	=गोश्रुति ऋषि के प्रति	ब्रूयात्	=कहै तो
उक्त्वा	=कह करके	अस्मिन्	=इसमें
इति	=यह	शाखाः	=डालियां
उवाच	=कहता भयाकि	जायेरन्	=उत्पन्न होआवैं
		+च	=और
		पलाशानि	=पत्ते
		एव	=निस्सन्देह
		प्ररोहेयुः	=निकल आवें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सत्यकाम जाबाल नामक ऋषि जो प्राणविद्या का सम्यक् प्रकार ज्ञाता था, वैयाघ्रपाद गोश्रुति ऋषिसे कहता भया कि यदि प्राणविद्या का जाननेवाला प्राणोपासक किसी सूखे काष्ठ के ठूंठ से प्राणविद्या को कहै तो उस सूखे ठूंठ में नवीन शाखा पत्र पुष्पादिक प्रकट होआवें, और यदि यह प्राणविद्या साधन-सम्पन्न जिज्ञासु प्रति सम्यक् प्राणोपासक करके उपदेश किया जाय तो यदि उस जिज्ञासु के अन्तःकरण में श्रद्धारूपा शाखा,

धारणारूप पत्र, और अहमग्रे उपासनारूप पुष्प, और सूत्रात्मा के पदकी प्राप्तिरूप फल प्राप्त होवें तो आश्चर्यही क्या है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याᳬ रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, महत्, जिगमिषेत्, अमावास्यायाम्, दीक्षित्वा, पौर्णमास्याम्, रात्रौ, सर्वौषधस्य, मन्थम्, दधिमधुनोः, उपमथ्य, ज्येष्ठाय, श्रेष्ठाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे
यदि	अगर
महत्	महत्त्वपाने की
जिगमिषेत्	इच्छा करै तो
अमावास्यायाम्	अमावस्याको
दीक्षित्वा	ब्रह्मचर्य व्रत करके
पौर्णमास्याम्	पौर्णमासी की
रात्रौ	रात में
सर्वौषधस्य	सब ओषधियों के
मन्थम्	कच्चेरसको
+च	और
दधिमधुनोः	दही और शहदको
+पात्रे	पात्र में
उपमथ्य	मिला करके
ज्येष्ठाय	ज्येष्ठाय

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
श्रेष्ठाय=श्रेष्ठाय	अग्नौ=अग्नि में
स्वाहा=स्वाहा	हुत्वा=डाल करके
एताभ्याम्=इनदोनोंमंत्रों	सम्पातम्=बचेखुचेघीको
इति=करके	मन्थे=ओषधियों के रसमें
आज्यस्य=घीकी आहुति को	अवनयेत्=डाले

भावार्थ ।

जो विद्वान् महत्त्व पानेकी इच्छा करता है उसके लिये निम्न कर्मकी विधि कहते हैं, धन करके यज्ञ होता है, और यज्ञ करके देवयान व पितृयान की प्राप्ति होती है, इसलिये इन मार्गों की प्राप्ति के निमित्त मन्थाख्य कर्म विद्वान् को कर्तव्य है, वह विद्वान् पहिले सत्यभाषण करे, ब्रह्मचर्यसे रहे, स्नानादि से पवित्र रहे, भूमि पर कम्मल या चटाई पर शयन करे, इन्द्रियों को विषयों से रोके, समाहित चित्त होता हुआ प्राणकी ज्येष्ठता व श्रेष्ठता आदि गुणों को श्रुतियों के वाक्यानुसार विचारता रहे, अन्नको त्यागकर केवल दूधमात्र का आहार करे, इस प्रकार आचरण करता हुआ अमावस्या से दीक्षित होकर पौर्णमासी की रात्रि में कर्म को आरम्भ करे और ग्राम में व अरण्य में प्राप्त होनेवाली ओषधियों को अपनी शक्ति के अनुसार एकत्र करे और फिर उन ओषधियों को कूट कर मैदा बनावे और एकपात्र में रक्खे, उसमें फिर दही और सहत मिलाकर गूलर की लकड़ी से मन्थन करे, जब हवन विधिपूर्वक " अग्नये स्वाहा " इत्यादि घृताहुति करचुके, तब " ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहा " इन दो मंत्रों से घृताहुति करे, और आहुतिदानसे बचेहुये घीको मन्थामें डाले ॥ ४ ॥

मूलम् ।

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

वसिष्ठाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत्, प्रतिष्ठायै, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत्, सम्पदे, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत्, आयतनाय, स्वाहा, इति, अग्नौ, आज्यस्य, हुत्वा, मन्थे, सम्पातम्, अवनयेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
वसिष्ठाय	वसिष्ठाय
स्वाहा	स्वाहा
इति	इस मंत्र करके
आज्यस्य	घृतको
अग्नौ	अग्नि में
हुत्वा	डालकर
सम्पातम्	स्रुवा में बचे हुये घीको
मन्थे	मन्थ में
अवनयेत्	डाले
प्रतिष्ठायै	प्रतिष्ठायै
स्वाहा	स्वाहा
इति	इस मंत्र करके
आज्यस्य	घृत को
अग्नौ	अग्नि में
हुत्वा	डालकर

सम्पातम्=स्रुवा में बचे हुये घृतको
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले
सम्पदे=सम्पदे
स्वाहा=स्वाहा
इति=इस मंत्रकरके
आज्यस्य=घृत को
अग्नौ=अग्नि में
हुत्वा=डालकर
सम्पातम्=स्रुवामें बचेहुये घृत को
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले
आयतनाय=आयतनाय
स्वाहा=स्वाहा
इति=इस मंत्रकरके
आज्यस्य=घृतको
अग्नौ=अग्नि में
हुत्वा=डालकर
सम्पातम्=स्रुवा में बचे हुये घृतको
मन्थे=मन्थ में
अवनयेत्=डाले

भावार्थ ।

हे सौम्य ! विद्वान् आहुतिको इसप्रकार देवे "वसिष्ठाय स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचे हुये घी को मन्थ में डाले "प्रतिष्ठायै स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़ कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचेहुये घी को मन्थ में डाले "सम्पदे स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में बचेहुये घी को मन्थमें डाले "आयतनाय स्वाहा" इस मन्त्र को पढ़कर घृताहुति को अग्नि में देवे और स्रुवा में बचेहुये घी को मन्थ में डाले ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो

राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, प्रतिसृप्य, अञ्जलौ, मन्थम्, आधाय, जपति, अमः, नाम, असि, अमा, हि, ते, सर्वम्, इदम्, सः, हि, ज्येष्ठः, श्रेष्ठः, राजा, अधिपतिः, सः, मा, ज्यैष्ठ्यम्, श्रैष्ठ्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, गमयतु, अहम्, एव, इदम्, सर्वम्, असानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	हवनके पश्चात्	सर्वम्	सब जगत्
+ अग्नेः	अग्नि से	अस्ति	है
प्रतिसृप्य	कुछ दूर हटके	सः	वह यानी आप
अञ्जलौ	हाथ में	हि	निस्सन्देह
मन्थम्	मन्थ को	ज्येष्ठः	ज्येष्ठ
आधाय	लेकर	श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
जपति	उसकी स्तुति करे	राजा	दीप्तिमान्
		अधिपतिः	स्वामी हैं
अमः	अमयानीप्राण	सः	वह यानी आप
नाम	नामक आप	मा	मेरे लिये
असि	हो	ज्यैष्ठ्यम्	ज्येष्ठता को
अमा	प्राणके सहित	श्रैष्ठ्यम्	श्रेष्ठता को
ते	आपका	राज्यम्	राज्य को
हि	ही	च	और
इदम्	यह	आधिपत्यम्	स्वामित्व को

गमयतु=प्राप्त करे	इदम्=इस
इति=ताकि	सर्वम्=सब ऐश्वर्य को
अहम्=मैं	असानि=प्राप्त होऊं
एव=निस्सन्देह	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऊपर कहेहुये प्रकार श्रद्धापूर्वक हवन करने के पश्चात् अग्निदेव से कुछ हटकर अपने दोनों हाथों की अञ्जुली में इस मन्था को लेकर उसकी स्तुति इस प्रकार करे " अमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानि " इस मन्त्र को पढ़े जिसका अर्थ यह है कि हे मन्थ ! तूही प्राण है, और प्राणसहित सम्पूर्ण जगत् तूही है, तूही ज्येष्ठ श्रेष्ठ स्वामी है, तू मेरे को ज्येष्ठता, श्रेष्ठता, स्वामित्व को प्राप्त कर, ताकि मैं सब प्रकारके ऐश्वर्य को प्राप्त होऊं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति तुरं भगस्य धीमहीति सर्वम् पिबति निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियम्पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, खलु, एतया, ऋचा, पच्छः, आचामति,

तत्, सवितुः, वृणीमहे, इति, आचामति, वयम्, देवस्य, भोजनम्, इति, आचामति, श्रेष्ठम्, सर्वधातमम्, इति, आचामति, तुरम्, भगस्य, धीमहि, इति, सर्वम्, पिबति, निर्णिज्य, कंसम्, चमसम्, वा, पश्चात्, अग्नेः, सम्, विशति, चर्मणि, वा, स्थण्डिले, वा, वाचंयमः, अप्रसाहः, सः, यदि, स्त्रियम्, पश्येत्, समृद्धम्, कर्म, इति, विद्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पश्चात्
खलु	निश्चय करके
एतया	इस आगे कहे हुये
ऋचा	मंत्र से
पच्छः	एक २ पाद
+ पठित्वा	पढ़ करके
आचामति	पीताजाय
तत्सवितुर्वृणीमहे	" तत्सवितुर्वृणीमहे "
इति	इस मन्त्र को पढ़ करके
आचामति	मन्थ को पीवे यानीभक्षणकरे
"वयमृदेवस्य भोजनम्	" वयम् देवस्य भोजम् "
इति	इस मन्त्र को पढ़ करके
आचामति	मन्थ को पीवे
श्रेष्ठम्सर्वधातमम्	" श्रेष्ठम् सर्वधातमम् "
इति	इस
तृतीयपादम्	तीसरे पादको
पठित्वा	पढ़ करके
आचामति	मन्थ को पीवे
तुरम्भगस्यधीमहि	" तुरम् भगस्य धीमहि "
इति	इस मन्त्र से
सर्वम्	सब मन्थ लेपको

पिबति=पीजावे	चर्मणि=मृगचर्म पर
कंसम्=कांसेके पात्रको	वा=अथवा
वा=अथवा	स्थण्डिले=शुद्धभूमि पर
चमसम्=चमसाकार औदुम्बर पात्रको	संविशति=शयन करे
निर्णिज्य=धोकर	यदि=अगर
सर्वम्=सब	स्वप्ने=स्वप्न में
पिबति=पीजावे	स्त्रियम्=स्त्रीको
सः=वह	पश्येत्=देखे तो
अप्रसाहः=समाहितचित्त	इति=ऐसा
अग्नेः=अग्नि के	विद्यात्=जाने कि
पश्चात्=पश्चिम ओर	कर्म=कार्य
वाचंयमः=मौन होकर	समृद्धम्=सिद्ध हुआ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तिसके पश्चात् एक एक पाद पढ़ कर मन्थ में से एक एक ग्रास निकाल कर भक्षण करता जाय " तत्सवितुर्वृणीमहे " इस प्रथम पादको पढ़ कर प्रथम ग्रास को भक्षण करे " वयम् देवस्य भोजनम् " इस द्वितीय पादको पढ़कर द्वितीय ग्रास को भक्षण करे " श्रेष्ठꣳसर्वधातमम् " इस तृतीय पादको पढ़ करके तृतीय ग्रास को भक्षण करे " तुरम्भगस्य धीमहि " इस चतुर्थ पादको पढ़ कर बचे खुचे उस मन्थके पात्रको धोकर पीजाय, तिसके पश्चात् समाहितचित्त होकर अग्नि की ओर मस्तक कर पूर्वदिशा में मृगचर्म पर या केवल भूमि पर शयन करे, इस प्रकार सोया हुआ यजमान यदि स्वप्न में स्त्री को देखे

तो निश्चय करे कि मेरा कार्य सिद्ध हुआ, मुझको लक्ष्मी प्राप्त होगी ॥ ७ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳस्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥ ८ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, यदा, कर्मसु, काम्येषु, स्त्रियम्, स्वप्नेषु, पश्यति, समृद्धिम्, तत्र, जानीयात्, तस्मिन्, स्वप्ननिदर्शने, तस्मिन्, स्वप्ननिदर्शने ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	तस्मिन्	उस
काम्येषु	किसीकामनासे	स्वप्ननिदर्शने	स्वप्नदेखनेपर
कर्मसु	यज्ञादि कर्मों के करने में	समृद्धिम्	सिद्धिकीप्राप्ति को
स्वप्नेषु	स्वप्नविषे	जानीयात्	जाने
स्त्रियम्	स्त्रीको	तत्	इसबिषे
पश्यति	देखे तो	एषः	यह
तत्र	उसी क्षण	श्लोकः	मंत्र
तस्मिन्	उस	भवति	प्रमाण है
स्वप्ननिदर्शने	स्वप्नदेखनेपर		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो विद्वान् पुरुष धनकी कामना करके कर्म की

समाप्ति करता है, यदि वह पुरुष सौभाग्यवती स्त्रीको स्वप्न में देखे तो जाने कि मुझको धन यानी लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होगी, दो बार जो " तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने " मंत्र में पाठ है, वह कर्म की समाप्ति सूचनार्थ है ॥ ८ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाᳬसमितिमेयाय तᳬह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतकेतुः, ह, आरुणेयः, पञ्चालानाम्, समितिम्, एयाय, तम्, ह, प्रवाहणः, जैवलिः, उवाच, कुमार, अनु, त्वा, अशिषत्, पिता, इति, अनु, हि, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आरुणेयः=	अरुणकापौत्र और आरुणि का पुत्र	एयाय=	जाता भया
श्वेतकेतुः=	श्वेतकेतुनामक ऋषि	+ तत्र=	वहांपर
ह=	निश्चयकरके	जैवलिः=	जीवलका पुत्र
पञ्चालानाम्=	पञ्चाल देश के राजा की	प्रवाहणः=	प्रवाहणनामक राजा
समितिम्=	सभा को	तम्=	उस आये हुये श्वेतकेतु से
		इति=	इस प्रकार
		ह=	स्पष्ट

उवाच=प्रश्न करता भया कि	+ उवाच=उत्तर दियाकि
कुमारानु=हे बालब्रह्म-चारी	भगवः=हे राजकुमार
पिता=तेरा पिता	इति=इस प्रकार
त्वा=तुझको	अनु=शिक्षा दिया हुआ
अशिषत्=शिक्षादी है	हि=निस्सन्देह
+ सः=उसने	+ अस्मि=मैं हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! मुमुक्षु पुरुषों में इस नामरूप क्रियात्मक अति-दुःखमय संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के अर्थ श्रुति भगवती एक आख्यायिका कहती हैं जिसमें उद्दालक नामक ऋषि और प्रवाहण नामक राजाका संवाद है, उसमें राजाने ऋषि को संसारगति देखाने के अर्थ पञ्चाग्निविद्या का उपदेश किया है, सो वह आख्यायिका इस प्रकार कहीगई है, एक समय अरुण ऋषिका पौत्र और आरुणिका पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालनाम देश के राजा की सभा में गया, तिससे जीवलनाम राजाका पुत्र जैवलि प्रवाहण राजपुत्र ने प्रश्न किया कि हे कुमार ! तेरे पिताने तुझ को विद्याकी शिक्षा दी है ? उसने जवाब दिया कि हां, मैं शिक्षा पाया हुआहूं ॥ १ ॥

मूलम् ।

वेत्थ यदितोऽधिप्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्तन्त इति न भगव इति वेत्थ

पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना इति न भगव इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

वेत्थ, यत्, इतः, अधि, प्रजाः, प्रयन्ति, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, यथा, पुनः, आवर्तन्ते, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, पथोः, देवयानस्य, पितृयाणस्य, च, व्यावर्तना, इति, न, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जिस प्रकार	+पप्रच्छ	उसने पूछा
प्रजाः	प्रजा	यथा	जिस प्रकार
इतः	इस लोक से	+गत्वा	जाकरके
+मृत्वा	मरकर	पुनः	फिर
अधि	ऊपर के लोक को	आवर्तन्ते	लौटती है
प्रयन्ति	जाती है	इति	ऐसा
इति	सो	+त्वम्	तू
+त्वम्	तू	वेत्थ	जानता है
वेत्थ	जानता है	+सः	उसने
+सः	उसने	+प्रत्युवाच	उत्तरदियाकि
+उवाच	उत्तर दियाकि	भगवः	हे भगवन्
भगवः	हे भगवन्	इति	ऐसा
इति	ऐसा	न	नहीं जानता
न	नहीं जानता	+पुनः	फिर
+पुनः	फिर	+पप्रच्छ	प्रश्न किया कि
		+तत्स्थानम्	उस स्थानको

वेत्थ=जानता है
+यतः=जहां से
देवयानस्य=देवयान
च=और
पितृयाणस्य=पितृयाण
पथोः=मार्गों का
व्यावर्तना=वियोग
+अभूत्=हुआ है
+सः=उसने
इति=ऐसा
उवाच=उत्तर दिया कि
भगव=हे भगवन्
इति=ऐसा
+अपि=भी
न=नहीं जानता
हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रवाहण राजा ने प्रश्न किया कि जिस प्रकार इस लोक से प्रजा मरकरके ऊर्ध्वलोक को जाती है क्या तू जानता है ? श्वेतकेतु ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! उसको मैं नहीं जानता हूं, पुनः राजा ने प्रश्न किया कि जिस प्रकार से वह प्रजा फिर इस लोक विषे आती है क्या तिसको तू जानता है ? श्वेतकेतु ने जवाब दिया कि हे भगवन् ! उसको भी मैं नहीं जानताहूं, तब फिर राजा ने प्रश्न किया कि हे कुमार ! तू उस जगह को भी जानता है जहां से देवयान और पितृयान मार्ग अलग अलग होते हैं, और देवमार्ग से गये हुये पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त होते हैं, और पितृमार्ग से गये हुये फिर लौट आते हैं, उसके उत्तर में श्वेतकेतु कहता है कि हे राजन् ! मैं उसको नहीं जानता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्यत इति न भगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

वेत्थ, यथा, असौ, लोकः, न, सम्, पूर्यते, इति, न, भगवः, इति, वेत्थ, यथा, पञ्चम्याम्, आहुतौ, आपः, पुरुषवचसः, भवन्ति, इति, न, एव, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जिस कारण	आहुतौ	आहुति में
असौ	यह	आपः	जल
लोकः	पितृलोक	पुरुषवचसः	पुरुष वाचक अथवा जीव वाचक
न	नहीं	भवन्ति	होते हैं
सम्पूर्यते	भर जाता है	इति	ऐसा
इति	तिस कारण को	+त्वम्	तू
+त्वम्	तू	वेत्थ	जानता है
वेत्थ	जानता है	सः	उसने
भगवः	हे भगवन्	उवाच	उत्तर दिया कि
इति	इस कारण को	भगवः	हे भगवन्
न	नहीं	इति	ऐसा
+वेद्मि	जानता हूं	एव	भी
यथा	जिस प्रकार	+न वेद्मि	नहीं जानता हूं
पञ्चम्याम्	पांचवीं		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब श्वेतकेतु ने प्रवाहण राजा के तीन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तब राजा ने फिर प्रश्न किया कि हे श्वेत-केतो ! पितृलोक सम्बन्धी स्वर्गलोक में अनेक कर्म करनेवाले जाते हैं तो भी वह नहीं भर जाता है, इसका क्या कारण है तू

जानता है ? इसके उत्तर में श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! उसको मैं नहीं जानता हूं, फिर राजा ने प्रश्न किया कि हे श्वेतकेतो ! आहुति किया हुआ जल पांचवीं आहुति में पुरुषाकार होजाता है, क्या तू उसको जानता है ? उसने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! मैं नहीं जानता हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ नु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात् कथꣳ सोनुशिष्टो ब्रवीतेति स हायस्तः पितुरर्धमेयाय तꣳ होवाचाऽननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनुत्वाऽशिषमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, नु, किम्, अनुशिष्टः, अवोचथाः, यः, हि, इमानि, न, विद्यात्, कथम्, सः, अनुशिष्टः, ब्रवीत, इति, सः, ह, आयस्तः, पितुः, अर्धम्, एयाय, तम्, ह, उवाच, अननुशिष्य, वाव, किल, मा, भगवान्, अब्रवीत्, अनु, त्वा, अशिषम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तब
+प्रवाहणः	राजा प्रवाहण ने
ह	स्पष्ट
+उवाच	कहा कि
+त्वम्	तू
+अज्ञः	अज्ञ
+सन्	होता हुआ
नुकिम्	क्यों
अनुशिष्टः	शिक्षा पाया हुआ अपने को
अवोचथाः	कहा
यः	जो

हि=किसी प्रकार
इमानि=इन प्रश्नों के उत्तरों को
न=न
विद्यात्=जाने
सः=वह
कथम्=कैसे
अनुशिष्टः=शिक्षित हुआ अपने को
ब्रवीत=कहै
+तदा=तब
सः=वह श्वेतकेतु
इति=इस प्रकार
+राज्ञा=राजा करके
आयस्तः=परास्त किया हुआ
पितुः=अपने पिताके
अर्धम्=पास
एयाय=गया
+च=और
तम्=उससे
ह=स्पष्ट
उवाच=कहता भया कि
भगवान्=आप
मा=मुझको
अनुशिष्य=विना शिक्षा दिये हुये
वाव=ही
इति=ऐसा
किल=झूठ
अब्रवीत्=कहा कि
त्वा=तुझको
अनुशिषम्=मैंनेशिक्षादीहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब श्वेतकेतु राजा के प्रश्नों का उत्तर न देसका तब राजा ने कहा कि जब तू इस प्रकार का अज्ञ था तब तूने क्यों कहा कि मैं अपने पिता करके शिक्षा पाया हुआ हूं, और क्यों इधर उधर अहंकार सहित गप्प मारता था कि मैं सब प्रकारकी विद्याको जानता हूं, मेरे प्रश्नोंका उत्तर न जानता हुआ तू विद्वानों के मध्य कैसे प्रतिष्ठाको पासक्ता है, तब वह श्वेतकेतु निरादरित और लज्जित होकर राजसभा से निकल कर अपने

पिता के घर गया, और पिता के निकट प्राप्त होकर कहा कि हे पितः ! आपने विना अनुशासन किये हुये मुझ से समावर्तन के समय कहा कि मैंने तुझको सर्वविद्या अध्ययन करादिया है, अब कोई विद्या तेरे अध्ययन करने योग्य अवशिष्ट नहीं रही, सो यह आपने मिथ्याही कहा ॥ ४ ॥

मूलम् ।

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्चनाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

पञ्च, मा, राजन्यबन्धुः, प्रश्नान्, अप्राक्षीत्, तेषाम्, न, एकञ्चन, अशकम्, विवक्तुम्, इति, सः, ह, उवाच, यथा, मा, त्वम्, तत्, एतान्, अवदः, यथा, अहम्, एषाम्, न, एकञ्चन, वेद, यदि, अहम्, इमान्, अवेदिष्यम्, कथम्, ते, न, अवक्ष्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
राजन्यबन्धुः=	बहुत हैं क्षत्रिय बन्धु जिसके ऐसे प्रवाहण राजा ने	प्रश्नान्=	प्रश्नों को
		मा=	मुझ से
		अप्राक्षीत्=	पूछा
		+परञ्च=	परन्तु
		अहम्=	मैं
पञ्च=	पांच	तेषाम्=	उन प्रश्नों में से

एकञ्चन=एक का भी
विवक्तुम्=अर्थ करने को
न=न
अशकम्=समर्थ होता भया
+यदा=जब
इति=इस प्रकार
+श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
+जगाद=कहा
तत्=तब
सः=वह पिता
+पुनः=फिर
ह=स्पष्ट
उवाच=बोलता भया कि
मा=मुझसे
यथा=इसी प्रकार
त्वम्=तू ने
+प्राक्=पहिले
+एव=ही
एतान्=इन प्रश्नों को
अवदः=पूछा था पर
अहम्=मैं
एषाम्=उनमें से
एकञ्चन=एक को भी
यथा=अच्छी तरहसे
न=नहीं
वेद=जानता हूं
यदि=जो
अहम=मैं
इमान्=इनको
अवेदिष्यम्=जानता
+तर्हि=तो
इति=ऐसा
ते=तेरे लिये
कथम्=क्यों
न=न
अवक्ष्यम्=कहता

भावार्थ ।

हे सौम्य ! श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि से कहता भया कि उस क्षत्रिय राजपुत्र ने मुझ से पांच प्रश्न किये, पर मैं एक का भी उत्तर न दे सका, इस लिये जो आपने मुझसे समावर्तन काल में कहाथा कि मैंने तुझको सब विद्याओं में शिक्षित किया है, सो आपने असत्यही कहा है, तब उद्दालक ऋषि अपने

असत्यवादपने के निवारणार्थ अपने पुत्र से कहते हैं कि हे पुत्र ! जैसे तू राजा के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हुआ वैसेही मुझको उनके उत्तर देने में असमर्थ जान, यदि मैं उस विद्याको जानता होता तो अवश्य तुझको उसमें शिक्षित करता, हे पुत्र ! तू मुझ को प्रिय है, यदि वह विद्या मैं जानता होता तो तुझको समावर्त्तनकाल विषे अवश्य कहता ॥ ५ ॥

मूलम् ।

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायाहाँञ्चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳ होवाच मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, गौतमः, राज्ञः, अर्धम्, एयाय, तस्मै, ह, प्राप्ताय, अर्हाञ्चकार, स, ह, प्रातः, सभागे, उत्, एयाय, तम्, ह, उवाच, मानुषस्य, भगवन्, गौतम, वित्तस्य, वरम्, वृणीथाः, इति, सः, ह, उवाच, तव, एव, राजन्, मानुषम्, वित्तम्, याम्, एव, कुमारस्य, अन्ते, वाचम्, अभाषथाः, ताम्, एव, मे, ब्रूहि, इति, स, ह, कृच्छ्री, बभूव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	गौतमः	गौतम

ह=स्पष्ट
राज्ञः=राजा के
अर्धम्=समीप
एयाय=गया
+तदा=तब
+सः=वह
+राजा=राजा
तस्मै=उस
प्राप्ताय=आये हुये गौ-तम का
ह=निश्चय पूर्वक
अर्हाञ्चकार=पूजन करता भया
+पुनः=फिर
प्रातः=दूसरे दिन सुबह को
सः=वह गौतम
सभागे=सभा में राजा के जाने पर
ह=अवश्य
उदेयाय=पहुँचता भया
+च=और
सः=उस राजा ने
तम्=उस गौतम ऋषि से
इति=इस प्रकार
उवाच=कहा कि
भगवन्=हे भगवन्
गौतम=गौतम तुम
मानुषस्य=मनुष्य सम्बन्धी
वित्तस्य=धन का
वरम्=वरदान
वृणीथाः=मांग लो
सः=उस गौतम ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
राजन्=हे राजन्
मानुषम्=मनुष्यलोक का धनादिक
तव=तुम्हारे
एव=ही
+तिष्ठतु=पास रहे
कुमारस्य=मेरे पुत्र के
अन्ते=समीप में यानी उससे
याम्=जिस
वाचम्=वाणी (प्रश्न) को
अभाषथाः=आपने कहा था
ताम्=उसी प्रश्न को

एव=ही
मे=मेरे लिये
(मुझसे)
ब्रूहि=कहिये
इति=यह

श्रुत्वा=सुन करके
सः=वह राजा
ह=अति
कृच्छ्री=दुःखित
बभूव=होता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा कि मैं भी राजा के प्रश्नों का उत्तर नहीं देसक्ता हूं, और अपने को उस विद्या से अज्ञात पाकर उसके जाननेके लिये जिज्ञासा धारण करके पञ्चालदेश के जैवलि नाम राजा के राजगृह को जाताभया, और जब पहुँचा तब राजाने उसके समीप जाकर कुशलप्रश्नपूर्वक अर्घ पाद्यादि आतिथ्यसत्कार करके सुख विश्राम निमित्त उसको एक मकान में ठहरा दिया, दूसरे दिन उद्दालक ऋषि स्नान संध्योपासनादि नित्यकर्म करके राजा की सभा में पहुँचे और फिर उस राजा ने ऋषिका पूजा आदि सत्कार किया और हाथ जोड़ विनयपूर्वक ऋषि से कहा कि हे पूजा के योग्य, गौतम ! मनुष्यलोकसम्बन्धी धन, ग्राम, रत्न, रथ आदि पदार्थों में से अपनी कामनानुसार मांग लीजिये, इसके जवाब में गौतम ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! मनुष्यलोकसम्बन्धी धनादिक सब आपकेही पास रहें मुझको उनकी कामना नहीं है, तब राजाने शंकापूर्वक प्रश्न किया कि फिर आपकी क्या इच्छा है, किस अर्थ के लिये आपका आगमन हुआ है ? तब उद्दालक ऋषि ने जवाब दिया कि हे राजन् ! जो आपने मेरे पुत्र प्रति पांच प्रश्न किये हैं और जिसका उत्तर वह नहीं देसका उनको मैं भी नहीं जानता हूं, इसलिये जो पञ्चप्रश्नलक्षणा विद्या आपमें है उसको मेरे प्रति कहिये, यह सुनकर राजाको बड़ा खेद हुआ ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तꣳह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तꣳहोवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ७ ॥
इति तृतीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, चिरम्, वस, इति, आज्ञापयाञ्चकार, तम्, ह, उवाच, यथा, मा, त्वम्, गौतम, अवदः, यथा, इयम्, न, प्राक्, त्वत्तः, पुरा, विद्या, ब्राह्मणान्, गच्छति, तस्मात्, उ, सर्वेषु, लोकेषु, क्षत्रस्य, एव, प्रशासनम्, अभूत्, इति, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सः	उस प्रवाहण राजा ने
तम्	उस गौतम-ऋषि से
ह	स्पष्ट
आज्ञापयाञ्चकार	कहा कि
+ त्वम्	आप
चिरम्	कुछ कालतक
+ अत्र	यहां
वस	रहें
+ च	और
इति	ऐसा कहकर
+ पुनः	फिर भी
तम्	उस गौतम ऋषि से
ह	स्पष्ट
उवाच	कहता भयाकि
गौतम	हे गौतम
यथा	चूंकि

त्वम्=तुमने
मः=मुझसे
अवदः=पूछा कि
× पञ्चप्रश्नलक्षणवतीम् = पांचप्रश्नलक्षणवाली
+ विद्याम्=विद्याको
+ मे=मुझसे
+ ब्रूहि=कहो
यथा=इसकारण
अहम्=मैं
+ वदामि=कहता हूं
त्वत्तः=आप से
प्राक्=पहिले
इयम्=यह
+ विद्या=विद्या
ब्राह्मणान्=ब्राह्मणोंकेपास
न=नहीं
गच्छति=थी
+ च=और
तस्मात्=इसी कारण
उ=निश्चय करके
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों विषे
क्षत्रस्य=क्षत्रियवंश में
एव=ही
प्रशासनम्=इस विद्याका पठन पाठन
अभूत्=रहा
इति=ऐसा
उक्त्वा=कहकरके
+ सः=वह राजा
तस्मै=गौतम ऋषिसे
+ क्षमस्व=क्षमा कीजिये
+ इति=ऐसा
उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब गौतम ने संसारसम्बन्धी वित्तादिकों की याचना न करके विद्या पाने की इच्छा प्रकट की तब राजा दुःखित होकर विचारने लगा कि यह सर्वोत्तम विद्या क्षत्रियवंश में ही आजतक रही, इसी विद्या को यह ब्राह्मण मांगता है, अगर नहीं देता हूं तो धर्म से च्युत होता हूं, क्योंकि क्षत्रियों को सुपात्र

ब्राह्मणों को दान देना परमधर्म है, अगर देता हूं तो यह अद्वितीय विद्या मेरे क्षत्रिय घरसे निकलकर ब्राह्मणों के घर जाती है, पर क्षत्रिय को धर्म से च्युत होना अयोग्य है, इसलिये इस ब्राह्मण जिज्ञासु को परीक्षा लेकर विद्याप्रदान करना ही उचित है, ऐसा विचार कर राजा ने कहा कि हे गौतम ! यहां एक वर्ष पर्यन्त मेरे पास निवास करो, पश्चात् मैं विद्या को आपके प्रति कहूंगा, और इस प्रकार कहे हुये मेरे वाक्य पर आप क्षमा करें, हे गौतम ! आप सब प्रकार की विद्या जानते हैं, और सर्वोत्तम ब्राह्मण हैं, तो भी उस विद्याको न जानते हुये जिसके प्रति मैंने आपके पुत्र से पांच प्रश्न कियेथे आपको उस विद्याके पाने के निमित्त तप करना उचितहै, इस शास्त्ररीति को आप भलीप्रकार जानते हैं ऐसा निवेदन कर एक वर्ष बाद उस गौतम से राजा जैवलि विद्या कहता भया ॥ ७ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

असौ, वाव, लोकः, गौतम, अग्निः, तस्य, आदित्यः, एव, समित्, रश्मयः, धूमः, अहः, अर्चिः, चन्द्रमाः, अङ्गाराः, नक्षत्राणि, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
गौतम	=हे गौतम	लोकः	=लोक
असौ	=यह स्वर्ग	वाव	=ही

अग्निः=अग्नि है	धूमः=धुवां है
च=और	अर्चिः=प्रकाश
तस्य=उसका	अहः=दिन है
समित्=ईंधन	अङ्गाराः=अङ्गार
एव=निश्चय करके	चन्द्रमाः=चन्द्रमा है
आदित्यः=सूर्य है	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
रश्मयः=किरणें	नक्षत्राणि=नक्षत्र हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! अग्नि का उपासक हवन करते समय ऐसा चिन्तवन करता है कि मेरे सम्मुख की आहवनीय अग्नि स्वर्गरूप अग्नि है, इसका ईंधन सूर्य है, इसकी ज्वाला दिन है, इसकी चिनगारियां नक्षत्र हैं, इसका अंगार चन्द्रमा है, ऐसा समझकर इस अग्नि को स्वर्ग से तादात्म्यता करके जब शरीर छोड़ता है, तब उसी आहवनीय अग्नि की आहुतियां उसको स्वर्गलोक में लेजाती हैं, और वहां वह स्वकर्मानुसार उत्तम सुखों को भोग कर चन्द्रलोक में आता है, और चन्द्रलोक से जलद्वारा पृथ्वीपर आता है, और व्रीह्यादि अन्नद्वारा मनुष्य का वीर्य बनता है, और फिर स्त्रीयोनिको प्राप्त होकर पुरुष की सूरत में बाहर निकलता है, और बड़े होनेपर फिर अपने अग्निहोत्रादि कर्म को करने लगता है, जिस करके स्वर्गादि को प्राप्त हुआथा, इसी प्रकार कर्म द्वारा पुण्यजन्य उत्तम लोकों को प्राप्त होता रहता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा सम्भवति ॥ २ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, श्रद्धाम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, सोमः, राजा, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः	यजमान की प्राणादि इन्द्रियां	जुह्वति	हवन करती हैं
		च	और
		तस्याः	उस
तस्मिन्	उस	आहुतेः	आहुति से
एतस्मिन्	स्वर्गलोक	फलम्	फलरूप
अग्नौ	अग्नि में	सोमः	चन्द्रमा
श्रद्धाम्	श्रद्धारूप जल को	राजा	राजा
		सम्भवति	उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

जब हवनकर्ता पय घृतादि द्रव्य को स्वर्गाख्य अग्नि को स्मरण करता हुआ अपनी सम्मुख की आहवनीय अग्नि में हवन करता है, तब हवन कीहुई घृतादि वस्तु सूक्ष्म परिणाम को प्राप्त हुई सूर्य की किरणों करके स्वर्ग को प्राप्त होती हैं, और वहां एकत्रित रहती हैं, जब अग्निहोत्रकर्ता शरीर को त्यागता है, और उसके शरीर का दाह उसके अग्निहोत्र अग्नि में किया जाता है, तब उस पुरुष को अग्निदेव स्वर्ग को पहुँचाता है, और वहां वह अपने पूर्वकृत कर्म के फल को भोगता है, और जब कर्मफल क्षय होने पर होता है, तब फिर वह शेषकर्मभोगार्थ स्वर्गाख्य अग्नि में श्रद्धारूप सूक्ष्म जल को हवन करता है, और उन्हीं आहुतियों के साथ तन्मय हुआ आप भी हवन किया हुआ सा होता है, जिसका फल सोम राजा होता है, यानी वह चन्द्रलोक के भोगों को भोगने के लिये चन्द्रलोक में उत्पन्न होता है, हे गौतम! यजमान

के प्राण आदि इन्द्रियों को अग्नि आदि देवताओं के आश्रय होने के कारण देवता कहते हैं, यह जो अग्निहोत्र की घृतादि आहुतियां हैं वे, इस परिणामरूप होने के पहिले सूक्ष्म जलरूप थीं, और श्रद्धा करके भावित होने से श्रद्धा कही जाती हैं, और यही श्रद्धारूपी जल स्वर्गाख्य अग्नि बिषे हवन किया हुआ पांचवीं आहुति करके स्त्रीरूपाग्नि में पुरुष के परिणाम को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पर्जन्यः, वाव, गौतम, अग्निः, तस्य, वायुः, एव, समित्, अभ्रम्, धूमः, विद्युत्, अर्चिः, अशनिः, अङ्गाराः, ह्रादनयः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम	वायुः=पवन
पर्जन्यः=वर्षाभिमानी देवता	एव=ही है
वाव=ही	धूमः=धूम
अग्निः=अग्नि है	अभ्रम्=बादल है
तस्य=उसका	अर्चिः=प्रकाश
समित्=ईंधन	विद्युत्=बिजुली है
	अङ्गाराः=अंगार

अशनिः=वज्र है	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
ह्रादनयः=गर्जनशब्द	हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! अग्नि का उपासक दूसरी बार अपने सम्मुख अग्नि को मेघदेवरूपाग्नि समझ कर कल्पना करता है कि इस का ईंधन वायु है, जैसे ईंधन से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होता है वैसेही वायु करके मेघ बढ़ता है, और वृष्टि होती है, उसका धूम अभ्र (बादल) है, जैसे धूम से अग्नि की सिद्धि होती है, वैसेही अभ्ररूप धूम से मेघदेव की सिद्धि होती है, उसकी ज्वाला बिजुली है, जैसे ज्वाला में चमक होती है वैसेही बिजुली में चमक है, उसका अंगार बिजुली का चमकना है, जैसे अंगार में चमक होती है वैसेही बिजुली में चमक होती है, उसकी चिनगारियां मेघ का गर्जन शब्द हैं, जैसे चिनगारियों में शब्द होते हैं वैसेही मेघों के गर्जने में शब्द होते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ सम्भवति ॥ २ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, सोमम्, राजानम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, वर्षम्, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः=	यजमान की प्राणादि इन्द्रियां	तस्मिन्=उसी	
		एतस्मिन्=इस मेघरूप	
		अग्नौ=अग्नि में	

सोमम्=सोम	आहुतेः=आहुति से
राजानम्=राजा को	वर्षम्=वर्षारूप
जुह्वति=हवन करती हैं	फलम्=फल
तस्याः=तिस	सम्भवति=उत्पन्न होताहै

भावार्थ ।

हे गौतम ! ऐसे पर्जन्यरूप अग्नि बिषे यजमान की इन्द्रियां जो देवता कही जाती हैं, सोम राजा यानी सोमलोकस्थ जीवात्मा को हवन करती हैं, यानी लेजाती हैं, और तिस दीहुई आहुति से वर्षारूप फल उत्पन्न होता है, हवनकर्ता ऐसी कल्पना करता है ॥ २ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, वाव, गौतम, अग्निः, तस्याः, संवत्सरः, एव, समित्, आकाशः, धूमः, रात्रिः, अर्चिः, दिशः, अङ्गाराः, अवान्तरदिशः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम	तस्याः=उसका
पृथिवी=पृथ्वी	समित्=ईंधन
वाव=ही	संवत्सरः=संवत्सर है
अग्निः=अग्नि है	+च=और

धूमः=धूम	अङ्गाराः=अंगार
आकाशः=आकाश है	दिशः=दिशा हैं
अर्चिः=प्रकाश	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
एव=ही	अवान्तर-दिशः=उपदिशा हैं
रात्रिः=रात्रि है	

भावार्थ ।

राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम ! यह पृथ्वी प्रसिद्ध अग्नि है, इसका ईंधन संवत्सर है, जैसे ईंधन से अग्नि प्रकाश होती है वैसेही ब्रीह्यादिक अन्न संवत्सर करके उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रकाश करते हैं, इसका धूम आकाश है, जैसे अग्नि से धूम ऊपरको उठता है वैसेही पृथ्वी से उठा हुआ आकाश भासता है, इसका अंगार पूर्वादि दिशा हैं, जैसे अग्नि अंगाररूप होजाने से शान्त प्रतीत होने लगती है वैसे दिशा भी शान्त प्रतीत होती हैं, इसकी चिनगारियां ईशानादिक चारों कोण हैं, जैसे चिनगारियां अग्नि से इधर उधर निकलती हैं वैसेही उपदिशायें भी दिशाओं से इधर उधर निकली हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳ सम्भवति ॥ २ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, वर्षम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, अन्नम्, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः	=प्राणादि इन्द्रियां	तस्मिन्	=उसी
		एतस्मिन्	=इस पृथ्वीरूप

अग्नौ=अग्नि में	आहुतेः=आहुति से
वर्षम्=वर्षा को	अन्नम्=अन्नरूप
जुह्वति=हवन करतीहैं	+ फलम्=फल
+ च=और	सम्भवति=उत्पन्न होता
तस्याः=उस	है

भावार्थ ।

जब ऐसी पृथ्वीरूपाग्नि विषे देवता वर्षा की आहुति करते हैं, तब तिस आहुतिसे व्रीहि जवादिक अन्न उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥
इति षष्ठः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषः, वाव, गौतम, अग्निः, तस्य, वाक्, एव, समित्, प्राणः, धूमः, जिह्वा, अर्चिः, चक्षुः, अङ्गाराः, श्रोत्रम्, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम	तस्य=उसका
पुरुषः=पुरुष	समित्=ईंधन
वाव=ही	वाक्=वाणी
अग्निः=अग्नि है	एव=ही है

धूमः=धूम	अङ्गाराः=अंगारे
प्राणः=प्राण है	चक्षुः=नेत्र हैं
अर्चिः=प्रकाश	विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
जिह्वा=जिह्वा है	श्रोत्रम्=श्रोत्र हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! यह पुरुष ही प्रसिद्ध अग्नि है, इसका ईंधन वाणी है, जैसे ईंधन करके अग्नि प्रज्वलित होता है, वैसेही वाणी करके प्रतिष्ठारूप पुरुष प्रकाशको प्राप्त होता है, उसका धूम प्राण है, जैसे अग्नि से धूमका उत्थान होता है, तैसे पुरुष रूपाग्नि से मुख द्वारा प्राण का उत्थान होता है, इसकी ज्वाला जिह्वा है, जैसे ज्वाला लाल रंगवाली होती है, वैसे जिह्वा भी लाल होती है, उसका अंगार चक्षु है, जैसे अंगार झलकता है वैसे नेत्र भी झलकता है, तिसकी चिनगारियां श्रोत्र हैं, जैसे चिनगारियां इधर उधर बिखरती हैं, वैसेही श्रोत्र भी घूम फिर करके शब्द ग्रहण करता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेतः सम्भवति ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, अन्नम्, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, रेतः, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः=प्राणादि इन्द्रियां		तस्मिन्=उसी	
		एतस्मिन्=इस पुरुषरूप	

अग्नौ=अग्नि में	तस्याः=उस
अन्नम्=अन्न को	आहुतेः=आहुति से
जुह्वति=हवन करती हैं	रेतः=वीर्य
+ च=और	सम्भवति=उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

ऐसी पुरुषरूपाग्नि विषे इन्द्रिय देवता व्रीहि जवादिक अन्नकी आहुति करते हैं तब तिस आहुति से वीर्यरूप फल उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

योषा, वाव, गौतम, अग्निः, तस्याः, उपस्थः, एव, समित्, यत्, उप, मन्त्रयते, सः, धूमः, योनिः, अर्चिः, यत्, अन्तः, करोति, ते, अङ्गाराः, अभिनन्दाः, विस्फुलिङ्गाः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
गौतम=हे गौतम	तस्याः=उसका
योषा=स्त्री	उपस्थः=लिङ्गेन्द्रिय
वाव=ही	एव=ही
अग्निः=अग्नि है	समित्=ईंधन है

यत्=जो (उससे)
उपमन्त्रयते=वार्तालाप करना है
सः=वह
धूमः=धूम है
योनिः=योनि इन्द्रिय
अर्चिः=ज्वाला है
यत्=जो
अन्तःकरोति=मैथुन है
ते=वे
अङ्गाराः=अंगारे हैं
अभिनन्दाः=विषयजन्य सुखाभास
विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम ! यह स्त्री ही प्रसिद्ध अग्नि है, तिसका ईंधन पुरुष की उपस्थ इन्द्रिय है, जैसे ईंधन से अग्नि प्रज्वलित होता है, उसी तरह स्त्री भी पुत्रादि के उत्पन्न करने के लिये प्रकाशित होती है, उसका धूम वार्तालाप है, जैसे धूम से अग्नि की सिद्धि होती है उसी प्रकार वार्तालाप से स्त्री की स्थिति प्रकट होती है, उसकी ज्वाला योनि है, जैसे ज्वाला में अरुणता होती है वैसेही योनि में भी अरुणता होती है, उसका अंगार मैथुन है, जैसे अग्नि अंगाररूप होने पर शान्त होजाती है, वैसेही मैथुन के पीछे कामाग्नि की शान्ति हो जाती है, उसकी चिनगारियां स्त्रीभोगजन्य आनन्द है, जैसे चिनगारियां अग्नि से निकलकर क्षणमात्र में नष्ट होजाती हैं, वैसेही भोगजन्य सुखाभासभी क्षणमात्र में नष्ट होजाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, एतस्मिन्, अग्नौ, देवाः, रेतः, जुह्वति, तस्याः, आहुतेः, गर्भः, सम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देवाः	प्राणादि इन्द्रियां	+ च	और
तस्मिन्	उसी	तस्याः	उस
एतस्मिन्	इस स्त्रीरूप	आहुतेः	आहुति से
अग्नौ	अग्नि में	गर्भः	गर्भरूप
रेतः	वीर्यको	+ फलम्	फल
जुह्वति	हवन करती हैं	संभवति	उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

जब ऐसी स्त्रीरूप अग्नि विषे देवता वीर्य की आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से गर्भरूप फल उत्पन्न होता है, हे गौतम! श्रद्धाशब्द का वाच्य जल स्वर्गलोकादि उक्त अग्नियों विषे हवन-क्रम करके सोम, वर्षा, अन्न, रेत, इत्यादि परिणामको पाता हुआ स्त्रीरूप अग्नि विषे गर्भरूप परिणाम को प्राप्त होता है, आहुति को जल कहने का कारण यह है कि आहुति में जलभाग यानी घृत विशेष रहता है, और अन्न यानी पार्थिव और अग्नि भाग न्यून रहता है, इस कारण इसको जल का परिणाम कहते हैं ॥२॥

इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भव-

न्तीति स उल्वावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

इति, तु, पञ्चम्याम्, आहुतौ, आपः, पुरुषवचसः, भवन्ति, इति, सः, उल्वावृतः, गर्भः, दश, वा, नव, वा, मासान्, अन्तः, शयित्वा, यावत्, वा, अथ, जायते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उल्वावृतः	=झिल्लीसे लिपटा हुआ	अथ	=तत्पश्चात्
सः	=वह	जायते	=उत्पन्न होताहै
गर्भः	=गर्भस्थपुरुष	इति तु	=इस प्रकार
दश	=दश	पञ्चम्याम्	=पांचवीं
वा	=अथवा	आहुतौ	=आहुति में
नव	=नव	आपः	=जल
वा	=अथवा	पुरुषवचसः	=पुरुषके परिणामको
यावत्	=कमज़्यादा	इति	=ऊपर कहे हुये प्रकार प्राप्त
मासान्	=महीनोंतक	भवन्ति	=होता है
अन्तः	=पेट में		
शयित्वा	=रहकर		

भावार्थ ।

हे गौतम ! श्रद्धारूप जल जो प्रथम स्वर्गाख्य अग्नि में हवन किया गया था वही क्रम से पञ्चम स्त्रीरूपाग्नि में वीर्यरूप से

हवन किया हुआ पुरुषाकार परिणाम को प्राप्त होता है, यह उत्तर इस प्रश्न का है (पञ्चम्यामाहुतौ आपः पुरुषवचसो भवन्ति) पांचवीं आहुति में जल पुरुष नामवाला होता है जिसको कि मैंने तुम्हारे पुत्र से पूछा था, इस प्रश्न का तात्पर्य वैराग्य दिखलाने का है, ताकि ऐसे परिणाम को प्राप्त हुआ पुरुष अनेक प्रकार के दुःखों से जो गर्भाशय में उसको वारंवार सहना पड़ता है बचने का प्रयत्न करे ॥ १ ॥

मूलम् ।

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति॥२॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, जातः, यावत्, आयुषम्, जीवति, तम्, प्रेतम्, दिष्टम्, इतः, अग्नये, एव, हरन्ति, यतः, एव, इतः, यतः, सम्भूतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
जातः	पैदा हुआ	प्रेतम्	मरा हुआ
सः	वह पुरुष	दिष्टम्	देख करके
यावत्	जितनी	अग्नये	दाहकर्मकेलिये
आयुषम्	उसकी आयुहै	एव	निश्चय करके
तावत्	उतनेकालतक	इतः	उसके ग्रामसे
जीवति	जीता है	+ ऋत्विजादयः	ऋत्विक् या उसकेलड़के आदिक
+ पुनः	फिर		
तम्	उसको		

+उपाग्नि=अग्नि के समीप
हरन्ति=लेजाते हैं
यतः=जिससे
+सः=वह
इतः=इस संसार में
आगतः=पैदा हुआ है
यतः=जिससे
एव=निश्चय करके
सम्भूतः=आया
भवति=है

भावार्थ ।

हे गौतम ! ऊपर कहे हुये प्रकार पुरुष गर्भाशय में निवास कर और बाहर आकर जितनी उसकी आयु होती है उतने काल पर्यन्त जीता है, और जब कर्मफल को भोगकर मरता है तब यदि वह राजा है तो उसके मृतक शरीर को प्रोहित आदिक श्मशान में ले जाते हैं, और यदि वह गृहस्थ साधारण पुरुष है तो उसके पुत्रादि श्मशान में ले जाते हैं, और वहां उस अग्नि में दाह करते हैं, जिससे वह उत्पन्न हुआथा, इसका तात्पर्य यह है कि केवल वेदोक्त अग्निहोत्रकर्ता घटीयंत्रवत् (रहँट की तरह) बारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होता है, कभी ऊर्ध्वलोक को जाकर स्वर्गलोक के भोगों को भोगता है, और कभी लौटकर मृत्युलोक में स्त्रीयोनि को प्राप्त होकर अनेक प्रकार का दुःख उठाता है, और अंतको उसी अग्नि में दाह किया जाता है जिस पञ्चाग्निसे पैदा हुआ था, और स्वर्गलोक गया था ॥ २ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

तद्य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्य-

माणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, इत्थम्, विदुः, ये, च, इमे, अरण्ये, श्रद्धा, तपः, इति, उप, आसते, ते, अर्चिषम्, अभि, सम्, भवन्ति, अर्चिषः, अहः, अह्नः, आपूर्यमाणपक्षम्, आपूर्यमाणपक्षात्, यान्, षट्, उदङ्, एति, मासान्, तान् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ये	=जो गृहस्थाश्रमी पुरुष	हिरण्यगर्भम्	=हिरण्यगर्भ की
तत्	=उस पञ्चाग्नि को	उपासते	=उपासना करते हैं
इत्थम्	=इस प्रकार	ते	=वे
विदुः	=जानते हैं	अर्चिषम्	=प्रकाश को
च	=और	सम्भवन्ति	=प्राप्त होते हैं
ये	=जो	अर्चिषः	=प्रकाश से
इमे	=वानप्रस्थ संन्यासी	अहः	=दिन को
अरण्ये	=वनविषे	अह्नः	=दिन से
श्रद्धा	=श्रद्धा	आपूर्यमाणपक्षम्	=शुक्लपक्ष को
च	=और		
तपः	=तपपूर्वक	आपूर्यमाणपक्षात्	=शुक्लपक्ष से
इति	=इस प्रकार		

तान्=उन
षट्=छह
मासान्=महीनों को
यान्=जिनमें
आदित्यः=सूर्य
उदङ्=एति=उत्तर मार्ग से निकलता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो अग्निहोत्र कर्मका कर्ता गृहस्थ पुरुष, जिस में उपकुर्वाण ब्रह्मचारी भी शामिल हैं, इसके वास्तविकरूपको न जानकर कर्म करते हैं वे वारंवार ऊपरकहे हुये प्रकार जन्म मरणको प्राप्त होते हैं, पर जे अग्निहोत्र कर्मके कर्ता इस पञ्चाग्नि विद्या के यथार्थ रूपको जानकर हिरण्यगर्भ की उपासना सहित यज्ञकर्म को करते हैं वे उपासनाकर्मबल करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं, और वहां ब्रह्मासे ब्रह्मविद्या पाकर जन्ममरण-रहित होते हैं, इसीप्रकार जो वानप्रस्थ और संन्यासी श्रद्धा और तपपूर्वक हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं, वे भी ब्रह्म-लोक को प्राप्त होकर ब्रह्मा से ब्रह्मविद्या पाकर मुक्त होते हैं, ब्रह्म-चारी दो प्रकार के होते हैं, उपकुर्वाण और नैष्ठिक--उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वे हैं जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन के बाद गृहस्थाश्रमी बनते हैं, और नैष्ठिक ब्रह्मचारी वे हैं जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके गृहस्थाश्रम को नहीं ग्रहण करते हैं, और उनको वानप्रस्थ व संन्यास का अधिकार होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्या-च्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स ए-नान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

मासेभ्यः, संवत्सरम्, संवत्सरात्, आदित्यम्, आदि-

त्यात्, चन्द्रमसम्, चन्द्रमसः, विद्युतम्, तत्, पुरुषः, अमानवः, सः, एनान्, ब्रह्म, गमयति, एषः, देवयानः, पन्थाः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मासेभ्यः	=षट् मास से	पुरुषः	=पुरुष
संवत्सरम्	=वर्ष को	एनान्	=उन उपासकों को
संवत्सरात्	=संवत्सर से	ब्रह्म	=ब्रह्मलोक
आदित्यम्	=सूर्य को	गमयति	=लेजाता है
आदित्यात्	=सूर्य से	इति	=इस प्रकार
चन्द्रमसम्	=चन्द्रमा को	एषः	=यह
चन्द्रमसः	=चन्द्रमा से	देवयानः	=देवयान
विद्युतम्	=विद्युत् को	पन्थाः	=मार्ग
तत्	=वहां से	+ अस्ति	=है
सः	=वह		
अमानवः	=दिव्य		

भावार्थ ।

हे गौतम ! जब विद्वान् उपासक उत्तरायण मार्ग के षट्मासाभिमानी देवता को प्राप्त होता है तब वहां से उसको संवत्सराभिमानी देवता लेजाता है, इस संवत्सराभिमानी देवता के पाससे चन्द्राभिमानी देवता चन्द्रलोक को ले आताहै, और चन्द्रलोक से विद्युत् अभिमानी देवता अपने लोक को लेजाता है, उस विद्युत् लोक से ब्रह्मलोक का दिव्य पुरुष आकर उसे ब्रह्मलोक को लेजाता है, और वहां वह देवतारूप होता हुआ सर्वोत्तम भाव को पाय ब्रह्मा के साथ निवास करता है इसीको देवयानमार्ग कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिꣳरात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, इमे, ग्रामे, इष्टापूर्ते, दत्तम्, इति, उप, आसते, ते, धूमम्, अभि, सम्, भवन्ति, धूमात्, रात्रिम्, रात्रेः, अपरपक्षम्, अपरपक्षात्, यान्, षट्, दक्षिणा, एति, मासान्, तान्, न, एते, संवत्सरम्, अभि, प्र, आप्नुवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	उपासते	करते हैं
ये	जो	ते	वे सब
इमे	ये कर्मोपासक गृहस्थ	धूमम्	धूमाभिमानी देवता को
इष्टापूर्ते	अग्निहोत्र कूप तड़ागादिक	अभिसम्भवन्ति	प्राप्त होते हैं
		धूमात्	धूमलोक से
च	और	रात्रिम्	रात्रिअभिमानी देवताको
दत्तम्	दानादिक		
इति	ऐसे और दूसरे कर्मों को	रात्रेः	रात्रिलोक से
		अपरपक्षम्	कृष्णपक्ष को

अपरपक्षात्=कृष्णपक्ष से
एते=वे
तान्=उन
षट्=छह
मासान्=मासाभिमानी देवताओं के लोकों को
+गच्छन्ति=प्राप्त होते हैं
यान्=जिनमें
+आदित्यः=सूर्य
दक्षिणा=दक्षिणायन
एति=होता है
संवत्सरम्=संवत्सर अभिमानी देवता को
न=नहीं
अभिप्राप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो गृहस्थ इष्टापूर्त दानादि कर्म करते हैं पर प अग्नि विद्या को नहीं जानते हैं वे मरणोत्तर अग्नि विषे दाह हुये धूमाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं, और धूम-लोक से रात्रि अभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं, और फिर रात्रिलोक से कृष्णपक्षाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं, और कृष्णपक्षाभिमानी लोक से षट्मासाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं, जिसमें सूर्य दक्षिणायन रहता है, पर ये गृहस्थकर्मी संवत्सराभिमानी देवता को नहीं प्राप्त होते हैं, इष्टा से मतलब अग्निहोत्र वैदिक कर्म के हैं, और पूर्त से मतलब बाग़, कूप, पाठशालादिक के हैं, दान से मतलब उत्तम दान व निकृष्ट दान के हैं, उत्तम दान धन, अन्न, वस्त्रादि हैं, जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ स्वकर्मारूढों को श्रद्धापूर्वक दिये जाते हैं, और निकृष्ट दान वह है जो स्वनामप्रकाशार्थ अन्धे, लूले, लँगड़े या अन्य कर्मरहित ब्राह्मणों को दिया जाता है, यह पितृयानमार्ग कहलाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

मासेभ्यः, पितृलोकम्, पितृलोकात्, आकाशम्, आकाशात्, चन्द्रमसम्, एषः, सोमः, राजा, तत्, देवानाम्, अन्नम्, तम्, देवाः, भक्षयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मासेभ्यः	षट्मासाभिमानी देवता के लोक से	तत्	इसीकारण
पितृलोकम्	पितृलोक को	एषः	यह
पितृलोकात्	पितृलोक से	सोमः	सोम
आकाशम्	आकाश को	राजा	राजा
आकाशात्	आकाश से	देवानाम्	देवताओं का
चन्द्रमसम्	चन्द्रमा को	अन्नम्	अन्न है
प्राप्नुवन्ति	प्राप्त होते हैं	तम्	उसको
च	और	देवाः	देवता
		भक्षयन्ति	भोग करते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! पूर्व मंत्रोक्त षट्मासाभिमानी देवता के लोक से पितृलोक को प्राप्त होते हैं, पितृलोक से आकाशाभिमानी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं, और आकाश से चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं, यह वही चन्द्रमा है, जो अंतरिक्ष में दृष्टिगोचर है, और जिसमें

लोक प्राप्त हुये यजमान इन्द्रादि देवताओं के अन्न (भोग) बनते हैं, तात्पर्य यहहै कि जब यजमान शरीर त्यागकर चन्द्र-लोक में जाते हैं, तब वहां वह स्त्री, सेवक, पशु स्वकर्मानुसार बन जाते हैं, और उनके साथ इन्द्रादि देवता क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ा करने में उनको वैसाही आनन्द मिलता है जैसा इन्द्रादिक देवताओं को मिलता है, चन्द्ररूप अन्न के भक्षण करने का यही मतलब है जो ऊपर कहा गया, यह नहीं है कि जैसे मनुष्य अन्न को ग्रास कर करके खाते हैं वैसाही देवता उपासकों को भक्षण करते हैं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, यावत्, संपातम्, उषित्वा, अथ, एतम्, एव, अध्वानम्, पुनः, निर्, वर्तन्ते, यथा, एतम्, आकाशम्, आकाशात्, वायुम्, वायुः, भूत्वा, धूमः, भवति, धूमः, भूत्वा, अभ्रम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
संपातम्	कर्मक्षय होने	पुनः	फिर
यावत्	तक	तम्	उस
तस्मिन्	उस चन्द्रमंडल में	एव	ही
उषित्वा	रहकरके	अध्वानम्	मार्ग से
अथ	तत्पश्चात्	यथा	जिसप्रकार

+ चन्द्र-मण्डलम् = चन्द्रमण्डल को	+ पुनः=फिर
इतम्=गये थे	वायुः=वायु
तथा=उसीप्रकार	भूत्वा=होकर
ततः=वहां से	धूमः=धूम
आकाशम्=आकाशको	भवति=होता है
निर्वर्तन्ते=लौट आते हैं	+ च=और
आकाशात्=आकाश से	धूमः=धूम
वायुम्=वायुलोक को आते हैं	भूत्वा=होकर
	अभ्रम्=कोमल मेघ
	भवति=होता है

भावार्थ ।

हे गौतम ! जब कर्मों का कर्मफल क्षय हो जाता है तब वह चन्द्रलोक से उसी मार्ग करके आता है जिस मार्ग करके गयाथा, यानी चन्द्रलोक से आकाश को, आकाश से वायुलोक को, वायु-लोकमें वह वायु होकर धूम होता है, धूम होकर मेघ होताहै॥प्रश्न॥ जो ऐसा कहा है कि इष्टापूर्तादि सर्व कर्मफल को कर्मी चन्द्रलोक में भोगलेता है और उन कर्मोंके क्षय होनेपर मृत्युलोक को लौट आता है, यह असंभव है, क्योंकि जब कुछ कर्म शेष रहा नहीं तो वह कर्मी कैसे मृत्युलोक में आसक्ता है ॥ उत्तर ॥ कर्मी इष्टापूर्त के कर्मफलको चन्द्रलोक में भोगता है, और उस कर्मफलकी समाप्ति वहीं होजाती है, पर जो उसने और दूसरे कर्म किये हैं उसका भोग मृत्युलोकही में हो सक्ता है, उस कर्मसंस्कार से प्रेरित हुआ वह कर्मी मृत्युलोक में लौट आताहै, और अपने कर्मानुसार जन्म पावताहै, और फिर कर्म करने लगता है॥प्रश्न॥जब शरीर नष्ट होता है तब उसके साथ कर्म भी नष्ट हो जातेहैं, तब इष्टापूर्तकर्म करने के पहिले और शरीर करके किया गया जो कर्म है वह कर्म इष्टा-

पूर्व कर्म के पश्चात् शरीर के दाह होनेपर नष्ट हो गया, तब फिर कर्मी चन्द्रलोक से मृत्युलोक में कैसे आसक्ता है ॥ उत्तर ॥ शरीर के नाश होने से कर्मफल विना भोगे कभी नाश नहीं होता है, कर्मका सूक्ष्मसंस्कार बुद्धि आदि में स्थित रहता है, और उस कर्मी के जन्म लेने में कारण बनता है, यदि ऐसा न हो तो पैदा होतेही अपने माता पिता के अनुसार कर्मको नहीं करसक्ता है, जब मर्कट (वानर) का बच्चा पैदा होता है तब पैदा होतेही अपने माता पिता के ऐसेही कूदफांद करने लगता है, कारण यह है कि वह बच्चा इस जन्म के पहिले भी मर्कट था, और उस जन्म के किये हुये कर्मके संस्कार बने थे,अगर ऐसा न होता तो पैदा होतेही कूदफांद मर्कट की तरह न करसक्ता, क्योंकि उसको किसीने सिखलाया नहीं ॥ प्रश्न ॥ श्रुतिने कर्मीके जाने को जैसे चन्द्रलोक में कहा है वही विधि चन्द्रलोक से आने को भी कही है, पर इस प्रकार कर्मी नहीं आता है ॥ उत्तर ॥ श्रुति के कहने का तात्पर्य चन्द्रलोकसे मृत्युलोकमें आनेका है, किसी मार्ग करके आवे ॥ ५ ॥

मूलम् ।

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अभ्रम्, भूत्वा, मेघः, भवति, मेघः, भूत्वा, प्रवर्षति, ते, इह, व्रीहियवाः, ओषधिवनस्पतयः, तिलमाषाः, इति, जायन्ते, अतः, वै, खलु, दुर्निष्प्रपतरम्, यः, यः, हि, अन्नम्, अत्ति, यः, रेतः, सिञ्चति, तत्, भूयः, एव, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह पुरुष	वै खलु	निश्चय करके
अभ्रम्	अभ्र	दुर्निष्प्रपतरम्	कठिन है
भूत्वा	होकर	हि	क्योंकि
मेघः	मेघ	यः	जो
भवति	होता है	यः	जो
मेघः	मेघ	अन्नम्	अन्न को
भूत्वा	होकर	अत्ति	खाता है
प्रवर्षति	वर्षता है	+च	और
+ च	और	पुनः	फिर
ते	वे सब	यः	जो
इह	मृत्युलोक में	रेतः	वीर्य को
व्रीहियवाः	धान यव	सिञ्चति	सिंचन करता है
ओषधिवनस्पतयः	ओषधि वनस्पति	भूयः	फिर
तिलमाषाः	तिल उर्द	तत्	वही
इति	रूप से	एव	निश्चय करके उसी रूप से उत्पन्न
जायन्ते	उत्पन्न होते हैं	भवति	होता है
अतः	इससे		
+निस्सरणम्	निकलना		

भावार्थ ।

हे गौतम ! वे पुरुष जिनके विशेष कर्म स्वर्ग में क्षीण होगये

हैं, और शेष कर्म भोगार्थ रहगये हैं, वे अभ्र में रहकर मेघ में आते हैं, और मेघ से वर्षा में आते हैं, और फिर पृथ्वी को प्राप्त होते हैं, और पृथ्वी से अन्न अथवा वनस्पति में जाते हैं, और फिर अन्न के भक्षण करने पर पुरुष को प्राप्त होकर उसके वीर्य में रहते हैं, और फिर स्त्री के गर्भाशय में प्राप्त होते हैं, और फिर मनुष्य शरीर पाकर बचे खुचे कर्मफल को भोगते हैं, और भविष्यफल-भोगार्थ कर्म करतेहैं, यह गति शुभकर्मियों की है, और जो अशुभ-कर्मी हैं, वे वर्षा में होकर नदी, समुद्र, पर्वत, वन आदि स्थानों में गिरते हैं, और घासादिमें प्रवेश करके क्रूरजीवों के भक्ष्य बनते हैं, और अचेत अनादिकाल तक पड़े रहते हैं, और जब किञ्चित् कर्म फल देने को उदय होते हैं, तब उद्भिज्ज के आकार को प्राप्त होते हैं, यानी जो पृथ्वी को फोड़कर निकलते हैं, जैसे घास वृक्ष आदि, और तिसके पीछे स्वेदज को प्राप्त होते हैं, जैसे जुआं, खटमल आदि, बाद को अण्डज को प्राप्त होते हैं, जैसे चील, कौआ आदि, यह घटीयंत्र की तरह क्रूरयोनियों में वारंवार आया जाया करता है, और असंख्य काल तक उद्धार नहीं होता। हे गौतम ! तुम अनुभव कर सके हो कि स्त्री के गर्भाशय को प्राप्त होनाही और योनियों की अपेक्षा अतिदुर्लभ है और श्रेष्ठ कर्मों का फल है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, इह, रमणीयचरणाः, अभ्याशः, ह, यत्, ते, रमणीयाम्, योनिम्, आपद्येरन्, ब्राह्मणयोनिम्, वा, क्षत्रिययोनिम्, वा, वैश्ययोनिम्, वा, अथ, ये, इह, कपूयचरणाः, अभ्याशः, ह, यत्, ते, कपूयाम्, योनिम्, आपद्येरन्, श्वयोनिम्, वा, सूकरयोनिम्, वा, चण्डालयोनिम्, वा ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	उनमें से	ब्राह्मणयोनिम्	ब्राह्मणयोनि
ये	जो	वा	अथवा
इह	इस संसार विषे	क्षत्रिययोनिम्	क्षत्रिययोनि
रमणीयचरणाः	उत्तम स्वभाव यानी उत्तम आचरणवाले	वा	अथवा
+सन्ति	हैं	वैश्ययोनिम्	वैश्ययोनि को
ते	वे	आपद्येरन्	प्राप्त होते हैं
अभ्याशः	शीघ्र	अथ	और
ह	ही	ये	जो
रमणीयाम्	उत्तम	इह	इस संसार विषे
योनिम्	योनि को	कपूयचरणाः	निन्दित आचरणवाले
यत्	यानी	+सन्ति	हैं
		ते	वे

अभ्याशः=शीघ्र
ह=ही
कपूयाम्=निन्दित
योनिम्=योनि
यत्=यानी
श्वयोनिम्=कुत्तों की योनि को
वा=अथवा
सूकरयोनिम्=सूकरयोनि को
वा=अथवा
चण्डालयोनिम्=चण्डालयोनि को
आपद्येरन्=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो दैवीसम्पदावाले पुरुष हैं यानी जिन्होंने इष्टापूर्त आदि कर्म किये हैं और साथही साथ उसके सत्य, दया, आर्जव और क्षमा आदि लक्षणों से लक्षित रहते हैं वे चन्द्रलोक में अपने इष्टापूर्त आदि कर्मों के फल को भोगकर मृत्युलोक में ऊपर कहे हुये मार्ग द्वारा आकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न होते हैं, यानी जिनके सत्यगुणात्मक कर्म उत्तम हैं वे ब्राह्मणकुलमें, जिनके मध्यम हैं वे क्षत्रियकुल में, और जिनके निकृष्ट हैं वे वैश्यकुल में उत्पन्न होते हैं, और जो इनके विपरीत आसुरीसम्पदावाले हैं यानी इष्टापूर्तादि कर्म करते हैं पर असत्य,परस्त्रीगमन,निर्दयता, कुटिलता,क्रोध आदि दुष्ट लक्षणों से लक्षित रहते हैं, वे इष्टापूर्तादि कर्मफल चन्द्रलोक में भोगकर मृत्युलोक में आकर अधम योनि यानी श्वान, सूकर, चण्डाल आदि योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयꣳ स्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एतयोः, पथोः, न, कतरेण, च, न, तानि, इमानि, क्षुद्राणि, असकृत्, आवर्तीनि, भूतानि, भवन्ति, जायस्व, म्रियस्व, इति, एतत्, तृतीयम्, स्थानम्, तेन, असौ, लोकः, न, सम्, पूर्यते, तस्मात्, जुगुप्सेत, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वय	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	यन्ति	जाते हैं
ये	जो	तानि	वे
+ न	न	इमानि	ये
+ विद्यासेविनः	पञ्चाग्निविद्या के सेवी हैं	च न	निश्चय करके
+ च	और	क्षुद्राणि	क्षुद्र कीट पतंगादि
+ न	न	असकृत्	वारंवार
+ इष्टादिकर्म	इष्टापूर्तादि कर्म को	आवर्तीनि	जीने मरने वाले
+ सेवन्ते	सेवन करतेहैं	भूतानि	जीव
ते	वे	भवन्ति	उत्पन्न होते हैं
एतयोः	इन ऊपर कहे हुये दोनों	तत्	इसलिये
पथोः	मार्गों में से	जन्मस्व	जन्में
कतरेण	किसी मार्ग द्वारा	च	और
+ न	नहीं	म्रियस्व	मरें
		एषः	यह
		+ ईश्वरस्य	ईश्वर की

श्लोकः=आज्ञा है	असौ=यह
इति=इस प्रकार	लोकः=लोक
एतत्=यह	न=नहीं
तृतीयम्=तृतीय	सम्पूर्यते=पूर्ण होता है
स्थानम्=स्थान है	तस्मात्=इसलिये
+ च=और	एनम्=इस संसार से
तेन=इसी कारण से	जुगुप्सेत=घृणा करे

भावार्थ ।

हे गौतम ! पञ्चाग्नि की उपासना करनेवाले उत्तरायण मार्ग से क्रमशः संवत्सर को प्राप्त होते हैं, उसीतरह इष्टापूर्तादि कर्म करके कर्मी दक्षिणायन मार्ग से संवत्सरकी अवधि तक पहुँचतेहैं, फिर संवत्सर के आगे पञ्चाग्नि का उपासक उत्तरायण मार्ग से सूर्यलोकको प्राप्त होता है, और इष्टापूर्तादि कर्मका कर्ता दक्षिण मार्ग करके पितृलोक को प्राप्त होता है, अग्निका उपासक ब्रह्मलोकमें दिव्य भोगों को भोगता है, और ब्रह्मासे ब्रह्मविद्या पाकर स्वेच्छित मृत्युलोक में आताहै, और इष्टापूर्तादि कर्मका कर्ता अपने कर्मफलों को अल्पकाल तक चन्द्रलोक में भोगकर क्रमशः मृत्युलोक में जन्मको पाता है, पर जो इन दोनों मार्गों के कर्मोंसे गिरे हैं, यानी जो न इष्टापूर्तादि कर्म करतेहैं और न पञ्चाग्निविद्या की उपासना करते हैं, वे मृत्युलोकही में अधमयोनि यानी कीट, पतंगादि योनियों को प्राप्त होते रहतेहैं, क्योंकि ईश्वरका संकेत (आज्ञा) है कि ऐसे जीव जो दोनों मार्गों से गिरे हैं वे वारंवार जन्में और मरें, और यही कारण है कि न ये स्वर्गलोकको जाते हैं, और न स्वर्गलोक पूर्ण होता है, यह संसार घृणाके योग्य है, इस कारण कि इसमें किञ्चित्मात्र सुख नहीं है, यह केवल दुःखरूप है, जीव घटीयन्त्र की तरह ऊपर नीचे अहर्निश फिरा करते हैं ॥ ८ ॥

मूलम् ।

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

स्तेनः, हिरण्यस्य, सुराम्, पिबन्, च, गुरोः, तल्पम्, आवसन्, ब्रह्महा, च, एते, पतन्ति, चत्वारः, पञ्चमः, च, आचरन्, तैः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
हिरण्यस्य	सुवर्ण का	ब्रह्महा	ब्राह्मण का मारनेवाला
स्तेनः	चुरानेवाला	एते	ये
च	और	चत्वारः	चारों
सुराम्	मदिरा को	पतन्ति	पातकी होते हैं
पिबन्	पीनेवाला	+च	और
गुरोः	गुरु की	तैः	उनके
तल्पम्	शय्या में	+सह	साथ
आवसन्	बसनेवाला यानी गुरुस्त्री-गमन करने वाला	आचरन्	रहता हुआ
		पञ्चमः	पांचवां भी
		इति	इसी प्रकार
+च	और	+पतति	पतित होता है

भावार्थ ।

हे गौतम! चार प्रकार के महापातकी होते हैं, तिनमें से प्रथम

वह जो ब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है, द्वितीय वह ब्राह्मण जो मद्य पान करता है, तृतीय वह जो गुरुस्त्रीसे गमन करता है, और चतुर्थ वह जो ब्राह्मण का वध करता है, और पांचवां वह जो इन महापातकियों का साथ करता है, यह पांचों पतित होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥ इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, यः, एतान्, एवम्, पञ्चाग्नीन्, वेद, न, सह, तैः, अपि, आचरन्, पाप्मना, लिप्यते, शुद्धः, पूतः, पुण्यलोकः, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	वेद	जानता है
यः	जो पुरुष	यः	जो
ह	निस्सन्देह	एवम्	इस प्रकार
एतान्	इन पूर्वोक्त	वेद	जानता है
पञ्चाग्नीन्	पञ्चाग्नियों को	+सः	वह
एवम्	भली प्रकार	तैः	ऊपर कहे हुये उन पातकियों के
वेद	जानता है	सह	साथ
यः	जो		
एवम्	इस प्रकार		

अपि=भी	शुद्धः=शुद्धान्तःकरण वाला
पाप्मना=पाप से	पूतः=पवित्र
न=नहीं	पुण्यलोकः=स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होने वाला
लिप्यते=लिप्त होता है	भवति=होता है
च=और	
सः=वह	

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो पञ्चाग्निविद्या को भली प्रकार जानता है, वह इन पापियों से संयुक्त हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता है, वह पञ्चाग्निविद्या के प्रसाद से शुद्ध होता हुआ प्रजापति आदि लोकों को प्राप्त होता है, और जो (यः एवंवेद) दो बार कहा गया है, सो समस्त प्रश्नों के निर्णय के अर्थ, और पञ्चाग्निविद्या की समाप्ति के अर्थ कहा गया है ॥ १० ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसांचक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राचीनशालः, औपमन्यवः, सत्ययज्ञः, पौलुषिः,

इन्द्रद्युम्नः, भाल्लवेयः, जनः, शार्कराक्ष्यः, बुडिलः, आश्वतराश्विः, ते, ह, एते, महाशालाः, महाश्रोत्रियाः, समेत्य, मीमांसांचक्रुः, कः, नः, आत्मा, किम्, ब्रह्म, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राचीनशालः	प्राचीनशाल नामक ऋषि	एते	ये पांचों ऋषि
औपमन्यवः	उपमन्युकापुत्र	ह	स्पष्ट
सत्ययज्ञः	सत्ययज्ञ नामक	महाशालाः	बड़े गृहस्थ
पौलुषिः	पुलुषका पुत्र	महाश्रोत्रियाः	वेदाध्ययन में तत्पर रहनेवाले
इन्द्रद्युम्नः	इन्द्रद्युम्न नामक	समेत्य	इकट्ठे होकर
भाल्लवेयः	भाल्लविका पुत्र	इति	यह
जनः	जननामक	मीमांसांचक्रुः	विचार करते भये कि
शार्कराक्ष्यः	शर्कराक्षकापुत्र	कः	कौन
बुडिलः	बुडिलनामक	नः	हम सबका
आश्वतराश्विः	अश्वतराश्व का पुत्र	आत्मा	आत्मा है
ते	वे	+ च	और
		ब्रह्म	ब्रह्म
		किम्	क्या है

भावार्थ ।

पञ्चाग्निविद्या की समाप्ति के पश्चात् वैश्वानरविद्या को कहते हैं, हे सौम्य ! उपमन्युका पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषका पुत्र

सत्ययज्ञ, भाल्लवि का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन, और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल ये पांचों ऋषि अकस्मात् किसी एक तीर्थपर मिले, और स्नानादि करके अपनी वैश्वानरविद्या का पाठ करने लगे, परन्तु वैश्वानर के एक एक अंगके ज्ञाता होने के कारण उनका पाठ एक दूसरे से न मिलता भया, तब सब परस्पर मिलकर वैश्वानर आत्मानिमित्त विचार करनेलगे, (१) हमारा आत्मा कौन है (२) क्या आत्मा ब्रह्म है; (३) क्या ब्रह्म और आत्मा एक दूसरे का विशेष विशेषण भाव है ? (४) क्या अध्यात्मउपाधिपरिच्छिन्न होने से ब्रह्मही आत्मा कहाजाता है, (५) क्या उपाधिके अभावसे आत्माही ब्रह्म कहा है, क्या अभेदकर (अयमात्मा ब्रह्म) आत्माही ब्रह्म है, (नातः परमस्ति) इससे पृथक् कुछ नहीं है, (तत्त्वमसि) वही ब्रह्म तू जीवात्माहै, इत्यादि श्रुतिप्रमाणपूर्वक विचार करने लगे ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, सम्पादयाञ्चक्रुः, उद्दालकः, वै, भगवन्तः, अयम्, आरुणिः, सम्प्रति, इमम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, अधि, एति, तम्, हन्त, अभि, आ, गच्छामः, इति, तम्, ह, अभि, आ, जग्मुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
भगवन्तः	=ऐश्वर्यहै जिन में	ते	=ऐसे वे ऋषि
		इति	=यह

सम्पादयाञ्चक्रुः = निश्चयकरते भये कि
सम्प्रति = इस समय
आरुणिः = अरुण का पुत्र
उद्दालकः = उद्दालक नामक ऋषि
इमम् = इस
वैश्वानरम् = वैश्वानर
आत्मानम् = आत्मा को
हन्त = भलीप्रकार
अध्येति = जानता है
\+ अतः = इसलिये
\+ वयम् = हम सब
तम् = उसके पास
अभ्यागच्छामः = चलें
ह = ऐसा
\+ निश्चित्य = निश्चय करके
तम् = उस उद्दालक ऋषिके पास
अभ्याजग्मुः = जाते भये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! पूर्वोक्त पांचों ऋषियों ने यह जानकर कि इस समय अरुण का पुत्र उद्दालक ऋषि इस वैश्वानरविद्याको भली प्रकार जानता है, इसलिये उसके पास चलना उचित है, और ऐसा निश्चयकरके वे सब उसके पास जाते भये ॥ २ ॥

मूलम् ।

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, सम्पादयाञ्चकार, प्रक्ष्यन्ति, माम्, इमे, महाशालाः, महाश्रोत्रियाः, तेभ्यः, न, सर्वम्, इव, प्रतिपत्स्ये, हन्त, अहम्, अन्यम्, अभि, अनु, शासानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उद्दालक ऋषि
+ तान्	उन पांचों ऋषियों को
+ दृष्ट्वा	देखकर
ह	निस्सन्देह
इति	ऐसा
सम्पादयाञ्चकार	विचारता भया कि
इमे	ये
महाशालाः	गृहस्थ
महाश्रोत्रियाः	वेदपढ़नेवाले
माम्	मुझसे
वैश्वानरम्	वैश्वानर आत्माको
प्रक्ष्यन्ति	पूछेंगे
+ परञ्च	परन्तु
अहम्	मैं
सर्वम्	सम्पूर्ण विद्या को
तेभ्यः	उनसे
हन्त	भलीप्रकार
+ वक्तुम्	कहने को
न	नहीं
प्रतिपत्स्ये	समर्थ हूं
इव	ऐसा
+ बुद्ध्वा	समझकर
+ तेभ्यः	उनसे
अन्यम्	दूसरे
+ उपदेष्टारम्	उपदेशक के पास
+ गन्तुम्	जाने को
अभ्यनुशासानि	कहूंगा।

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उन पांचों ऋषियों को आते देखकर उद्दालक ने निश्चय किया कि ये सब गृहस्थ वेद पढ़नेवाले वैश्वानरविद्या के प्रति मुझ से प्रश्न करेंगे, और मैं उनके प्रश्नों के उत्तर को अच्छी तरह न देसकूंगा, इसलिये मुनासिब यही है कि उनके लिये दूसरे उपदेशक को बताऊं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोयं कैकयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छामेति तꣳहाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, अश्वपतिः, वै, भगवन्तः, अयम्, कैकयः, संप्रति, इमम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, अधि, एति, तम्, हन्त, अभि, आ, गच्छाम, इति, तम्, ह, अभि, आजग्मुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह उद्दालक	वैश्वानरम्	वैश्वानर
तान्	उन पांचों ऋषियों से	आत्मानम्	आत्मा को
ह	स्पष्ट	वै	निश्चय करके
उवाच	कहता भया कि	हन्त	अच्छी तरह
भगवन्तः	हे भगवन्	अध्येति	जानता है
अयम्	यह	तम्	उसके पास
अश्वपतिः	अश्वपति	+ वयम्	हम सब
कैकयः	केकयदेश का राजा	अभ्यागच्छाम	चलें
संप्रति	इस समय	इति	ऐसा
इमम्	इस	निश्चित्य	निश्चय करके
		अभ्याजग्मुः	जाते भये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि ने उन पांचों ऋषियों से कहा कि

इस समय केकयदेश का राजा अश्वपति वैश्वानरविद्या को भलीप्रकार जानता है, हमलोग उसके पास चलें, और उससे इस विद्याको ग्रहण करें, ऐसा विचार कर अश्वपति राजा के पास जाते भये ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तो हमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तेभ्यः, ह, प्राप्तेभ्यः, पृथक्, अर्हाणि, कारयाञ्चकार, सः, ह, प्रातः, सम्, जिहान, उवाच, न, मे, स्तेनः, जनपदे, न, कदर्यः, न, मद्यपः, न, अनाहिताग्निः, न, अविद्वान्, न, स्वैरी, स्वैरिणी, कुतः, यक्ष्यमाणः, वै, भगवन्तः, अहम्, अस्मि, यावत्, एकैकस्मै, ऋत्विजे, धनम्, दास्यामि, तावत्, भगवद्भ्यः, दास्यामि, वसन्तु, भगवन्तः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह राजा	अर्हाणि	पूजन
प्राप्तेभ्यः	आये हुये	पृथक्	अलग अलग
तेभ्यः	उन ऋषियों का	ह	भली प्रकार

कारयाञ्च- कार } =कारवाला भया
+ च=और
प्रातः=प्रातःकाल
+ अन्येद्युः=दूसरे दिन
इति=ऐसा
तान्=उनसे
उवाच=कहा कि
यक्ष्यमाणः=मैं यज्ञ करूंगा
वै=निश्चय करके
भगवन्तः=आप लोग
वसन्तु=ठहरें
च=और
यावत्=जितना
धनम्=धन
एकैकस्मै=हरएक
ऋत्विजे=ऋत्विज के लिये
दास्यामि=दूंगा
तावत्=उतना ही
भगवद्भ्यः=आप लोगोंको
दास्यामि=दूंगा
एवं श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
ते=उन ऋषियोंने
+ अस्वीचक्रुः } =इन्कार किया
+ तदा=तब
+ राजा=राजाने
+ उवाच=कहा कि
मे=मेरे
जनपदे=देश में
न=न
स्तेनः=चोर है
न कदर्यः=न लोभी है
न=न
मद्यपः=मदिरा का पीने वाला है
न=न
अनाहिताग्निः } =यज्ञहीन है
न=न
अविद्वान्=मूर्ख है
न=न
स्वैरी=व्यभिचारी है
कुतः=कहां से
स्वैरिणी=व्यभिचारिणी
+ सम्भवति=होसक्ती है

+ अतः=इसलिये	+ धनम्=धनको
भगवन्तः=आपलोग	संजिहान=ग्रहण करें

भावार्थ ।

राजा आयेहुये उन छहों ऋषियों का भलीप्रकार सत्कार करवाता भया, और दूसरेदिन प्रातःकाल उनसे कहा कि यदि आपलोग धन निमित्त आये हैं तो मेरे दियेहुये धनको आप ग्रहण करें, ऋषियों ने धन स्वीकार करने में इन्कार किया, तब राजा को संशय हुआ कि ऋषियों ने मेरे धनको अयोग्य समझ कर इन्कार किया है, इसलिये इनके संशय दूर करने के निमित्त कहा कि हे ऋषियो ! मेरे देश में चोर, लोभी, कुकर्मी, मूर्ख, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी आदि कोई नहीं हैं, आप किस कारण धन लेने में इन्कार करते हैं, फिर राजा को शंका हुई कि कदाचित् थोड़ा धन पाने का ख्याल करके लेने से इन्कार करते हैं, इस शंका के दूर करने के लिये राजा कहता है कि मैं यज्ञ करूंगा, और जितना धन मैं अपने ऋत्विजों में से हरएक को दूंगा, उतनाही धन आप लोगों में से हरएक को दूंगा, आप ठहरें ॥ ५ ॥

मूलम् ।

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ हैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, ऊचुः, येन, ह, एव, अर्थेन, पुरुषः, चरेत्, तम्, ह, एव, वदेत्, आत्मानम्, एव, इमम्, वैश्वानरम्, संप्रति, अधि, एषि, तम्, एव, नः, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ते=वे ऋषि	प्रयोजनम्=अर्थ को
ह=स्पष्ट	ह=निश्चय करके
एव=ऐसा	वदेत्=कहे
ऊचुः=कहते भये कि	सम्प्रति=इस समय
येन=जिस	इमम्=उस
अर्थेन=प्रयोजन निमित्त	वैश्वानरम्=वैश्वानर
पुरुषः=एक पुरुष	आत्मानम्=आत्मा को
चरेत्=दूसरे के पास जाय	अध्येषि=आप जानते हैं
तम्=उस	इति=इसलिये
एव=ही	तम् एव=उसही को
	नः=हमसे
	ब्रूहि=आप कहें

भावार्थ।

हे सौम्य ! ऋषियों ने राजा से कहा कि जब एक पुरुष दूसरे पुरुष के पास जावे तो उसको चाहिये कि अपने अर्थ को प्रथम प्रकट करे, हम लोगों ने सुना है कि आप वैश्वानर विद्या को भली प्रकार जानते हैं, इसलिये उस विद्या का प्रदान आप हम लोगों को करें ॥ ६ ॥

मूलम् ।

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ७ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, प्रातः, वः, प्रतिवक्ता, अस्मि, इति,

ते, ह, समित्पाणयः, पूर्वाह्णे, प्रति, चक्रमिरे, तान्, ह, अनुपनीय, एव, एतत्, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वः	आप लोगोंको	पूर्वाह्णे	प्रातःकाल
प्रातः	प्रातः काल	+राज्ञः	राजा के पास
ह	अवश्य	प्रतिचक्रमिरे	जाते भये
प्रतिवक्ता	उत्तरदेनेवाला	+च	और
अस्मि	मैं होऊंगा	सः	वह राजा
इति	ऐसा	तान्	उनको
तान्	उन ऋषियोंसे	अनुपनीय	शिष्य कर्म न कराकर
ह	स्पष्ट	एव	ऐसा
उवाच	कहता भया	उवाच	कहता भया
ते	वे छहों ऋषि		
समित्पाणयः	समिध हाथों में लेकर		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने उन ऋषियों से कहा कि जिस विद्या को आप लोग चाहते हैं उसका प्रदान कल प्रातःकाल करूंगा, वे छहों ऋषि दूसरे दिन भोर होतेही स्नानादि नित्य कर्म करके, समिधा हाथ में लिये हुये शिष्यवत् नम्रभाव से राजा के पास वैश्वानर विद्याग्रहणार्थ गये, और राजा शिष्य कर्म बिना कराये हुये उनको वैश्वानर विद्या का प्रदान करता भया ॥ ७ ॥

इत्येकादशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

औपमन्यव, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, दिवम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, सुतेजाः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, तव, सुतम्, प्रसुतम्, आसुतम्, कुले, दृश्यते ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
औपमन्यव=हे उपमन्यु के पुत्र	+पप्रच्छ=पूछता भया
त्वम्=आप	+ऋषिः=ऋषि ने
कम्=किस	उवाच=उत्तर दिया
आत्मानम्=वैश्वानरआत्मा को	भगवः=हे भगवन्
उपास्से=उपासना करते हैं	राजन्=हे राजन्
इति=ऐसा	दिवम्=द्यौ लोक को
+राजा=राजा	+पुनः=फिर
	+राजा=राजा ने
	ह=स्पष्ट
	उवाच=कहा कि

एषः=यह	उपास्से=उपासते हो
वैश्वानरः=वैश्वानर	+ च=और
आत्मा=आत्मा	तस्मात्=इसीलिये
सुतेजाः=सुतेजा नाम से	तव=तुम्हारे
प्रख्यातः=विख्यात है	कुले=कुल बिषे
यम्=जिस	सुतम्=लड़के
आत्मानम्=आत्मा को	प्रसुतम्=पोते
त्वम्=तुम	आसुतम्=नाती
	दृश्यते=दिखाई देते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उन छहों ऋषियों में से एक ऋषि से जिसका नाम औपमन्यव था उससे राजा ने प्रश्न किया कि हे ऋषे ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, उसने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं द्यौलोकसम्बन्धी आत्मा की उपासना करता हूं, राजाने कहा कि हे ऋषे ! तुम सुतेजानामक वैश्वानर की उपासना पूरे अंगसे करतेहो. और यही कारण है कि तुम्हारा कुल लड़के, पोते, और प्रपोतों से सम्पन्न है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, मूर्धा, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, मूर्धा, ते, वि, अपतिष्यत्, यत्, माम्, न, आ, गमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ त्वम्	तुम	ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेज
अन्नम्	अन्नको	भवति	होता है
अत्सि	खाते हो	अन्नम्	अन्न को
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को	अत्ति	खाता है
पश्यसि	देखते हो	प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को
तथा	इसी प्रकार	पश्यति	देखता है
यः	जो	तु	पर
अन्यः	कोई दूसरा	एषः	यह
+ अपि	भी	आत्मनः	वैश्वानर आत्माका
एतम्	इस	मूर्धा	शिर यानी एक अंग है
वैश्वानरम्	वैश्वानर	इति	ऐसी
आत्मानम्	आत्मा की	+ उपासनात्	उपासना करने से
उपास्ते	उपासनाकरता है	ते	तुम्हारा
अस्य	उसके		
कुले	कुल में		

मूर्धा=शिर	माम्=मेरेपास
व्यपतिष्यत्=गिरजाता	न=न
+ यदि=जो	आगमिष्यः=आते
त्वम्=तुम	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा औपमन्यव ऋषि से कहता है कि जो तुम द्यौलोकसम्बन्धी वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, वह सुतेजा नामक वैश्वानर आत्मा का शिर है, यानी एक अंग है, परन्तु तुम उस एकाङ्गी उपासना को पूर्ण वैश्वानर का अंग समझकर उपासना करते हो इस कारण तुम आरोग्य हो, भोजन भली प्रकार करते हो, और प्रियपुत्रादिकों से भली प्रकार सम्पन्न हो, इसी प्रकार दूसरा भी कोई वैश्वानर की उपासना करेगा, वह भी आरोग्य प्रियपुत्रादिकों से सम्पन्न ब्रह्मतेजस्वी होगा, यदि तुम मेरे पास न आते और किसी सभा में शास्त्रार्थ करते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता ॥ २ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिम् प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, सत्ययज्ञम्, पौलुषिम्, प्राचीन-

योग्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, आदित्यम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, विश्वरूपः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, तव, बहु, विश्वरूपम्, कुले, दृश्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके बाद	+अहम्	मैं
राजा	राजा ने	+उपासे	उपासता हूं
सत्ययज्ञम्	सत्ययज्ञ	इति	ऐसा
पौलुषिम्	पुलिषकेपुत्र से	+ श्रुत्वा	सुनकर
इति	ऐसा	+ राजा	राजा ने
उवाच	कहा कि	ह	स्पष्ट
प्राचीनयोग्य	हे प्राचीन योग्य	उवाच	कहा कि
त्वम्	तुम	एषः	यह
कम्	कौन	वै	ही
आत्मानम्	वैश्वानर आत्माको	विश्वरूपः	विश्वरूप
उपास्ते	उपासते हो	आत्मा	आत्मा
भगवन्	हे भगवन्	वैश्वानरः	वैश्वानर
राजन्	हे राजन्	अस्ति	है
आदित्यम्	सूर्य को	यम्	जिसको
एव	ही	त्वम्	तुम
		उपास्से	उपासते हो
		+ च	और

तस्मात्=यही कारण	विश्वरूपम्=बहुत धन दौलत
तव=तुम्हारे	दृश्यते=दिखाई देती है
कुले=वंशविषे	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे राजा ने सत्ययज्ञ पुलुष के पुत्र से पूछा कि हे प्राचीनयोग्य ! तुम कौन वैश्वानर आत्मा का पूजन करते हो, उसने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं सूर्य की उपासना करता हूं, ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि यही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम्हारे घर में बहुतसी धन दौलत दिखाई देती है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुस्त्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

प्रवृत्तः, अश्वतरीरथः, दासीनिष्कः, अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, चक्षुः, तु, एतत्, आत्मनः, इति, ह, उवाच, अन्धः, अभविष्यः, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ ते	तुम्हारे लिये
अश्वतरीरथः	खञ्चरगाड़ी
+ च	और
दासीनिष्कः	दास दासी और मणि आदिक
प्रवृत्तः	तैयार हैं
त्वम्	तुम
अन्नम्	अन्नको
अत्सि	भोजनकरतेहो
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को
पश्यसि	देखते हो
यः	जो कोई
एतम्	इस
आत्मानम्	आत्मा
वैश्वानरम्	वैश्वानरको
उपास्ते	उपासता है
सः	वह
अन्नम्	अन्नको
अत्ति	खाता है
प्रियम्	प्रियपुत्रादिकों को

अन्वयः	पदार्थ
पश्यति	देखता है
+ च	और
अस्य	इसके
कुले	वंश में
ब्रह्मवर्चसम्	ब्रह्मतेज
भवति	होता है
तु	पर
आत्मनः	वैश्वानर आत्माका
एषः	यह
चक्षुः	नेत्र है यानी एक अंग है
+ सः	वह राजा
इति	ऐसा
ह	साफ़
उवाच	कहता भया कि
यत्	जो
त्वम्	तुम
माम्	मेरे पास
न	न
आगमिष्यः	आते तो
अन्धः	अन्धे
अभविष्यः	होजाते

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ने प्राचीनयोग्य ऋषिसे कहा कि जो तुम सूर्यरूप वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो वह सूर्य वैश्वानर आत्माका नेत्र है, इसलिये तुम एकाङ्गी उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम आरोग्यहो, भली प्रकार भोजन करते हो, प्रियपुत्रादिकों को देखते हो, और तुम्हारे यहां बहुतेरे खच्चर, गाड़ी, दास, दासी, रत्नादि तुम्हारे भोगार्थ मौजूद हैं, और दूसराभी जो कोई इस वैश्वानर की उपासना इसीप्रकार करेगा वह भी तुम्हारे ऐसा ऐश्वर्यवान् होगा, अगर तुम मेरे पास न आये होते और किसी सभा में शास्त्रार्थ निमित्त जाते तो एकाङ्गी उपासना के कारण नेत्रहीन होजाते ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, इन्द्रद्युम्नम्, भाल्लवेयम्, वैयाघ्रपद्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, वायुम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, पृथग्वर्त्मा, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्,

उप. आस्से, तस्मात्, त्वाम्, पृथक्, वलयः, आयन्ति, पृथक्, रथश्रेणयः, अनुयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्	+राजा	राजा ने
सः	वह राजा	उवाच	कहा कि
ह	स्पष्ट	एषः	यह
भाल्लवेयम्	भाल्लविके पुत्र	एव	ही
इन्द्रद्युम्नम्	इन्द्रद्युम्न से	वै	निस्संदेह
इति	ऐसा	पृथग्वर्त्मा	अनेक मार्गों में फिरनेवाला
उवाच	पूछताभया कि	आत्मा	वैश्वानर आत्मा
वैयाघ्रपद्य	हे व्याघ्रपद के पुत्र	अस्ति	है
त्वम्	तुम	यम्	जिस
कम्	किस	आत्मानम्	वैश्वानर को
आत्मानम्	वैश्वानर आत्माको	त्वम्	तुम
उपास्से	उपासतेहो	उपास्से	उपासते हो
+सः	उस ऋषिने	+च	और
उवाच	उत्तर दिया कि	तस्मात्	इसी कारण
भगवः	हे भगवन्	तव	तुम्हारे पास
राजन्	हे राजन्	पृथक्	बहुत से
वायुम्	वायुको	वलयः	भोग्यवस्तु
इति	ऐसा	आयन्ति	प्राप्त हैं
श्रुत्वा	सुनकर		

+च=और	रथश्रेणयः=रथादिक भी
पृथक्=बहुतेरे	अनुयन्ति=प्राप्त हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तत्पश्चात् राजा ने भाल्लविके पुत्र इन्द्रद्युम्न से पूछा कि हे ऋषे ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, ऋषि ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं वायु की उपासना करता हूं, यह सुनकर राजाने कहा कि यह वायु निस्संदेह अनेक मार्गों द्वारा फिरनेवाला वैश्वानर आत्मा है, जिसकी तुम उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम्हारे पास बहुत भोग्य वस्तु और बहुतेरे रथादिक सवारियां प्राप्त हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, प्राणः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, प्राणः, ते, उत्, अक्रमिष्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+त्वम्=तुम		अन्नम्=अन्नको	

अत्सि=खाते हो
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को
पश्यसि=देखते हो
यः=जो कोई
एतम्=इस
एव=ही
वैश्वानरम्=वैश्वानर
आत्मानम्=आत्मा को
उपास्ते=उपासता है
+ सः=वह
अपि=भी
अन्नम्=अन्न को
अत्ति=खाता है
प्रियम्=प्रियपुत्रादिकों को
पश्यति=देखता है
अस्य=इसके
कुले=वंश में
ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेज
भवति=होता है
तु=पर
एषः=यह
आत्मनः=वैश्वानर आत्मा का
प्राणः=प्राण है
यदि=जो
माम्=मेरे पास
त्वम्=तुम
न=न
आगमिष्यः=आते तो
ते=तुम्हारा
प्राणः=प्राण
उदक्रमिष्यत्=निकलजाता
इति=ऐसा
+राजा=राजा ने
उवाच=कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजाने इन्द्रद्युम्न ऋषि से कहा कि तुम आरोग्य हो, अन्न को खाते हो, प्रिय पुत्रादिकों को देखते हो, जो कोई दूसरा भी इसी प्रकार इस वैश्वानर की उपासना करता है, वह भी अन्न के भक्षण करने में समर्थ होता है, और प्रिय पुत्रादिकों को देखता है, और उसके वंश में ब्रह्म तेज होता है, पर यह

वैश्वानर आत्मा का प्राण है, यानी उसका एक अंग है, अगर मेरे पास तुम न आये होते तो तुम्हारा प्राण निकल जाता ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ होवाच जनꣳ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मान-मुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाच चैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, जनम्, शार्कराक्ष्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, आकाशम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, च, एषः, वै, बहुलः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, बहुलः, असि, प्रजया, च, धनेन, च ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=तत्पश्चात्	शार्कराक्ष्य=हेशार्कराक्ष्यके पुत्र
+राजा=राजा ने	त्वम्=तुम
ह=स्पष्ट	कम्=किस
जनम्=जननामक ऋषि से	आत्मानम्=वैश्वानर आत्माको
इति=ऐसा	उपास्से=उपासते हो
उवाच=कहा कि	

+ऋषिः=ऋषि ने	वैश्वानरः=वैश्वानर
ह=ऐसा	आत्मा=आत्मा
उवाच=उत्तर दियाकि	+अस्ति=है
भगवः=हे भगवन्	यम्=जिसको
राजन्=हे राजन्	त्वम्=तुम
आकाशम्=आकाश को	उपास्से=उपासते हो
एव=ही	च=और
इति=ऐसा	तस्मात्=इसी लिये
+श्रुत्वा=सुनकर	त्वम्=तुम
+राजा=राजाने	प्रजया=सन्तान
उवाच=कहाकि	च=और
एषः=यह	धनेन=धन करके
वै=ही	बहुलः=सम्पन्न हुये
बहुलः=बहुल (सम्पूर्ण)	+ असि=हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे राजा ने जननामक ऋषि से पूछा कि तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, उस ऋषि ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! मैं आकाशरूप वैश्वानर की उपासना करता हूं ऐसा सुनकर राजाने कहा कि यही बहुल नामक यानी व्यापक वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम बहुत सन्तान और धन करके सम्पन्न हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं

भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, संदेहः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, संदेहः, ते, व्यशीर्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्वम्=तुम		वैश्वानरम्=वैश्वानर	
अन्नम्=अन्न को		आत्मानम्=आत्मा को	
अत्सि=खाते हो		उपास्ते=उपासता है	
च=और		अस्य=इसके	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को		कुले=वंश में	
पश्यसि=देखते हो		ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेज	
यः=जो कोई		भवति=होता है	
+अन्यः=दूसरा		+ च=और	
अपि=भी		अन्नम्=अन्न को	
+इति=इसी प्रकार		अत्ति=खाता है	
एतम्=इस		प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को	

पश्यति=देखता है
तु=पर
आत्मनः=वैश्वानर आत्मा का
एषः=यह
संदेहः=शरीर का मध्य भाग है
यत्=जो
त्वम्=तुम
माम्=मेरे पास
न=न
आगमिष्यः=आये होते तो
ते=तुम्हारा
संदेहः=देह का मध्य भाग
व्यशीर्यत्=गलजाता
इति=ऐसा
+ राजा=राजा ने
उवाच=कहा

भावार्थ ।

हे ऋषे ! तुम अन्न के भोजन करने में समर्थ हो, और प्रिय पुत्रादिकों को अपने घर में देखते हो, जो कोई दूसरा भी इस वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, उसके वंश में ब्रह्मतेज होता है, और वह अन्न के भोगने में नीरोगता के कारण समर्थ होता है, और प्रियपुत्रादिकों को अपने घर में देखता है, पर यह वैश्वानर आत्मा के देह का मध्यभाग है, जो तुम मेरे पास न आये होते, तो तुम्हारे शरीर का मध्यभाग गिरजाता ॥ २ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरोयं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान्पुष्टिमानसि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, बुडिलम्, आश्वतराश्विम्, वैयाघ्रपद्य, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, अपः, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, रयिः, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, रयिमान्, पुष्टिमान्, असि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्	एव	ही
राजा	राजा	इति	ऐसा
बुडिलम्	बुडिलनामक	+ श्रुत्वा	सुनकर
आश्वतराश्विम्	अश्वतराश्व के पुत्र से	+ राजा	राजाने
ह	स्पष्ट	उवाच	कहा कि
इति	ऐसा	एषः	यह
उवाच	कहताभया कि	वै	ही
वैयाघ्रपद्य	हे व्याघ्रपद्के पुत्र	रयिः	धनरयिरूप
त्वम्	तुम	वैश्वानरः	वैश्वानर
कम्	किस	आत्मा	आत्मा है
आत्मानम्	आत्माको	यम्	जिसको
उपास्से	उपासते हो	त्वम्	तुम
भगवः	हे भगवन्	उपास्से	उपासते हो
राजन्	हे राजन्	+ च	और
अपः	जलको	तस्मात्	यही कारण है कि
		त्वम्	तुम

रयिमान्=धनवान्	पुष्टिमान्=शरीर से बलवान्
च=और	+ असि=हो

भावार्थ ।

हे सोम्य ! इसके पीछे राजा ने बुडिलनामक अश्वतराश्व के पुत्र से पूछा कि हे व्याघ्रपद के पुत्र ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, उसने उत्तर दिया कि हे राजन् ! जलरूपी वैश्वानरकी उपासना करता हूं, यह सुनकर राजाने कहा कि यही रयिरूप यानी धनरूप वैश्वानर आत्मा है, जिसकी तुम उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम धनवान् और शरीर से बलवान् हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति षोडशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, बस्तिः, तु, एषः, आत्मनः, इति, ह, उवाच, बस्तिः, ते, वि, अभेत्स्यत्, यत्, माम्, न, आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्वम्=तुम		अन्नम्=अन्नको	

अत्सि=खाते हो
प्रियम्=प्रियपुत्रादिकों को
पश्यसि=देखते हो
यः=जो कोई
अन्यः=दूसरा भी
एतम्=इस
वैश्वानरम्=वैश्वानर
आत्मानम्=आत्मा को
इति=इस प्रकार
उपास्ते=उपासता है
अस्य=उसके
कुले=वंश में
ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेज
भवति=होता है
+ च=और
+ सः=वह
अन्नम्=अन्नको
अत्ति=खाता है
प्रियम्=प्रियपुत्रादिकों को
पश्यति=देखता है
तु=पर
एषः=यह
आत्मनः=वैश्वानर आत्मा का
बस्तिः=मूत्रसंग्रह-स्थान
अस्ति=है
यत्=जो
त्वम्=तुम
माम्=मेरेपास
न=न
आगमिष्यः=आये होते तो
ते=तुम्हारा
बस्तिः=मूत्रसंग्रह-स्थान
व्यभेत्स्यत्=फटजाता
इति=ऐसा
+ राजा=राजा
उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजाने कहा कि हे ऋषे ! तुम अन्नको खाते हो, प्रिय पुत्रादिकों को देखते हो, जो कोई दूसरा भी इस प्रकार वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है वहभी अन्नको खाता है,

और अपने घर में प्रियपुत्रादिकों को देखता है, और उसके वंश में ब्रह्मतेज होता है, पर यह वैश्वानर आत्मा का मूत्रसंग्रह-स्थान है, जो तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारा मूत्रसंग्रह-स्थान फटजाता ॥ २ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, उद्दालकम्, आरुणिम्, गौतम, कम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, इति, पृथिवीम्, एव, भगवः, राजन्, इति, ह, उवाच, एषः, वै, प्रतिष्ठा, आत्मा, वैश्वानरः, यम्, त्वम्, आत्मानम्, उप, आस्से, तस्मात्, त्वम्, प्रतिष्ठितः, असि, प्रजया, च, पशुभिः, च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ=तत्पश्चात्		उवाच=पूछा कि	
राजा=राजाने		गौतम=हे गौतम	
आरुणिम्=अरुणके पुत्र		त्वम्=तुम	
उद्दालकम्=उद्दालकऋषि से		कम्=किस	
इति=ऐसा		आत्मानम्=वैश्वानर आत्माको	

उपास्से=उपासते हो
भगवः=हे भगवन्
राजन्=हे राजन्
पृथिवीम्=पृथ्वी को
एव=ही
इति=यह
श्रुत्वा=सुनकर
राजा=राजा ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
एषः=यह
वै=ही
वैश्वानरः=वैश्वानर
आत्मा=आत्मा
प्रतिष्ठा=पादरूप
अस्ति=है
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
आत्मानम्=वैश्वानरआत्मा के नाम से
उपास्से=उपासते हो
च=और
तस्मात्=यही कारण है कि
त्वम्=तुम
प्रजया=संतान
च=और
पशुभिः=पशुओं करके
प्रतिष्ठितः=प्रतिष्ठित
असि=हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पश्चात् राजा ने अरुण के पुत्र उद्दालक ऋषि से पूछा कि तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो, ऋषि ने कहा कि हे राजन् ! मैं पृथ्वीरूप वैश्वानर की उपासना करता हूं, यह सुनकर राजा ने कहा कि यह वैश्वानर आत्मा पादरूप है, यानी उसका एक अंग है, जिसकी तुम उपासना करते हो, और यही कारण है कि तुम बहुत संतान और पशु आदिकों करके सम्पन्न हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं

भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अत्सि, अन्नम्, पश्यसि, प्रियम्, अत्ति, अन्नम्, पश्यति, प्रियम्, भवति, अस्य, ब्रह्मवर्चसम्, कुले, यः, एतम्, एवम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, पादौ, तु, एतौ, आत्मनः, इति, ह, उवाच, पादौ, ते, वि, अम्लास्येताम्, यत्, माम्, न आगमिष्यः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
त्वम्=तुम	
अन्नम्=अन्नको	
अत्सि=खाते हो	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को	
पश्यसि=देखते हो	
यः=जो	
अन्यः=कोई दूसरा भी	
एतम्=इस	
एव=ही	

अन्वयः	पदार्थ
वैश्वानरम्=वैश्वानर	
आत्मानम्=आत्माको	
इति=इसप्रकार	
उपास्ते=उपासता है	
+ सः=वह	
अपि=भी	
अन्नम्=अन्नको	
अत्ति=खाता है	
+ च=और	
प्रियम्=प्रिय पुत्रादिकों को	

पश्यति=देखता है	त्वम्=तुम
अस्य=उसके	माम्=मेरे पास
कुले=वंश में	न=न
ब्रह्मवर्चसम्=ब्रह्मतेज	आगमिष्यः=आते तो
भवति=होता है	ते=तुम्हारे
तु=पर	पादौ=पैर
आत्मनः=वैश्वानर आत्मा के	व्यम्लास्येताम् } =सूख जाते
एतौ=ये	इति=ऐसा
पादौ=पैर हैं	+राजा=राजा ने
यत्=जो	उवाच=कहा

भावार्थ ।

हे उद्दालक ऋषे ! तुम अन्न से सम्पन्न हो, और प्रियपुत्रादिकों को अपने घर में देखते हो, इसी प्रकार जो कोई दूसरा पुरुष वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, वह भी आपके ऐसा अन्न और पुत्रादिकों से सम्पन्न होता है, पर जिसकी तुम उपासना करते हो वह वैश्वानर आत्मा का पैर है, अगर तुम मेरे पास न आये होते तो तुम्हारे पैर गल जाते, और तुम लूले होजाते ॥ २ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वांसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमा-

त्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, एते, वै, खलु, यूयम्, पृथक्, इव, इमम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, विद्वांसः, अन्नम्, अत्थ, यः, तु, एतम्, एवम्, प्रादेशमात्रम्, अभिविमानम्, आत्मानम्, वैश्वानरम्, उप, आस्ते, सः, सर्वेषु, लोकेषु, सर्वेषु, भूतेषु, सर्वेषु, आत्मसु, अन्नम्, अत्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+राजा	राजा ने
तान्	उन छओं ऋषियों से
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
यूयम्	तुम
एते	ये सब
इमम्	इस
वैश्वानरम्	वैश्वानर
आत्मानम्	आत्मा को
पृथक्	पृथक् पृथक्
इव विद्वांसः	जानते हुये

अन्वयः	पदार्थ
अन्नम्	अनेकप्रकार के भोगों को
अत्थ	भोगते हो
तु	पर
यः	जो कोई
एतम्	इस
वैश्वानरम्	वैश्वानर
आत्मानम्	आत्मा को
प्रादेशमात्रम्	प्रादेशमात्र
+च	और
अभिविमात्रम्	अभिविमान

ज्ञात्वा=जानकर	भूतेषु=भूतों में
उपास्ते=उपासता है	सर्वेषु=सब
सः=वह	आत्मसु=प्राणियों में
सर्वेषु=सब	वै खलु=निश्चयकरके
लोकेषु=लोकों में	अन्नम्=भोग को
सर्वेषु=सब	अत्ति=भोगता है

नोट ।

प्रादेशमात्र से मतलब उस पुरुष से है जिसका शिर स्वर्ग, पैर पृथ्वी, नेत्र सूर्य-चन्द्र, धड़ आकाश, श्वास वायु, मुख अग्नि है, अर्थात् (प्रकर्षेण दिश्यन्ते इति प्रादेशा द्युलोकादयः ते एव परिमाणाः यस्य तत् प्रादेशमात्रम्) ॥

अभिविमानसे मतलब उस पुरुषसे है जिसका सम्बन्ध शरीरवासी समष्टिचेतन आत्मा से है यानी जो कर्मियों को उनके कर्मानुसार उनके नियत किये हुये लोकों को ले जाता है, अथवा व्यापक आत्मा से है, या उस चेतन आत्मा से है जो एक से अनेक होकर विराजमान है, ये दोनों शब्द वैश्वानरके विशेषण हैं ॥

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजाने उन छओं ऋषियों से कहा कि हे ऋषियो ! तुम सब इस वैश्वानर आत्मा के एक एक अंग की उपासना करते हो, तिसका फल यह है कि तुम अन्न और प्रियपुत्रादि की बाहुलता को प्राप्त हो, अगर कोई इस वैश्वानर आत्मा की उपासना यह समुझ कर करता है कि वह ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त सबमें व्यापक है, और स्वर्ग, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारागणादि में स्थित है, वही जीवोंके कर्मफल का दाता है, वही समष्टिचेतन आत्मा है, उससे पृथक् कुछ नहीं

है, वही एकसे अनेक होकर विराजमान है तो ऐसा उपासक सब लोकों में सब प्राणियों में समस्त भूतों में पूर्ण भोगों को भोगता है, वैश्वानर के एक एक अंगकी उपासना करने से न्यूनफल को दिखाकर अनिष्टफल भी उसी अंग का दिखाया है ताकि ऐसा समुझकर उपासक अज्ञान के साथ वैश्वानर के एक अंग की उपासना न करे, बल्कि वैश्वानर के पूर्ण अङ्गों की उपासना ज्ञानकरके करे, और ऐसा करने से संपूर्ण फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वै, एतस्य, आत्मनः, वैश्वानरस्य, मूर्धा, एव, सुतेजाः, चक्षुः, विश्वरूपः, प्राणः, पृथग्वर्त्मा, संदेहः, बहुलः, बस्तिः, एव, रयिः, पृथिवी, एव, पादौ, उरः, एव, वेदिः, लोमानि, बर्हिः, हृदयम्, गार्हपत्यः, मनः, अन्वाहार्यपचनः, आस्यम्, आहवनीयः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्य	उस	मूर्धा	शिर
एतस्य	इस	हवै	निश्चय करके
वैश्वानरस्य	वैश्वानर	सुतेजाः	शोभन प्रकाशमान् द्यौर्लोक है
आत्मनः	आत्मा का		

चक्षुः=नेत्र
विश्वरूपः=सूर्य है
प्राणः=प्राण
पृथग्वर्त्मा=वायु है
संदेहः=देह का मध्य भाग
बहुलः=आकाश है
बस्तिः=मूत्रसंग्रह स्थान
एव=निश्चय करके
रयिः=जल है
पादौ=पैर
पृथ्वी=पृथ्वी है
उरः=वक्षस्स्थल
वेदिः=वेदी है
लोमानि=रोम
बर्हिः=कुश हैं
हृदयम्=हृदय
गार्हपत्यः=गार्हपत्य अग्नि है
मनः=मन
अन्वाहार्यपचनः=अन्वाहार्य अग्नि है
आस्यम्=मुख
एव=निश्चय करके
आहवनीयः=आहवनीय (अग्नि) है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा ऋषियों से कहता है कि हे ऋषियो ! वैश्वानर आत्मा का शिर द्यौलोक है, प्राण वायु है, देह का मध्यभाग आकाश है, मूत्रसंग्रहस्थान जल है, पैर पृथ्वी है, नेत्र सूर्य है, वक्षस्स्थल वेदी है, रोम कुश हैं, हृदय गार्हपत्य अग्नि है, मन अन्वाहार्य अग्नि है, मुख आहवनीय अग्नि है । हे सौम्य ! गार्हपत्य वह अग्नि है जो अग्निहोत्रकर्ता के घर में सदा स्थापित रहती है, अन्वाहार्य अग्नि वह है जिसको अग्निहोत्रकर्ता गार्हपत्य अग्नि से निकाल कर हवन करते समय अपने दक्षिण ओर रखता है, आहवनीय अग्नि वह है जो अन्वाहार्य से निकालकर हवनकर्ता अपने सन्मुख रखता है, और जिसमें मंत्र पढ़कर आहुतियों को डालता है, गार्हपत्य

अग्नि की समता हृदय से इस कारण कही है कि जैसे सब अग्नियों में मुख्य अग्नि गार्हपत्य है, वैसे ही शरीर के सब स्थानों में हृदय मुख्य है, जैसे गार्हपत्य अग्नि से दक्षिणाग्नि की उत्पत्ति है वैसेही मनकी उत्पत्ति हृदय से होती है, क्योंकि खाये हुये अन्न का सब रस प्रथम हृदय में जाता है फिर उसका सूक्ष्म अंश मन की वृद्धिको करता है और जैसे आहवनीय अग्नि में आहुतियां छोड़ी जाती हैं इस मतलब से कि उसका फल देवताओं को मिले इसी प्रकार अन्नादिक भोग्य वस्तु की आहुति मुखरूप अग्नि में दीजाती है ताकि उसका फल नेत्रादिक शरीरस्थदेवताओं को मिले ॥ २ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः॥

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳस यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, भक्तम्, प्रथमम्, आगच्छेत्, तत्, होमीयम्, सः, याम्, प्रथमाम्, आहुतिम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, प्राणाय, स्वाहा, इति, प्राणः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	पाकशाला में	आगच्छेत्	आवे
यत्	जो	तत्	वही
भक्तम्	भोजन करने के लिये अन्न	होमीयम्	हवन करने योग्य

+ भवेत्=होता है	स्वाहा=स्वाहा
सः=वह भोजनकर्ता	इति=ऐसा
याम्=जिस	+ उक्त्वा=कहकर
प्रथमाम्=पहिली	+ मुखे=मुखमें
आहुतिम्=आहुतिको	जुहुयात्=हवन करे
जुहुयात्=हवन करना चाहे	इति=ऐसा
ताम्=उसको	+ कृते=करने से
प्राणाय=प्राणाय	प्राणः=प्राण
	तृप्यति=संतुष्ट होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऋषियों से राजा कहता है कि भोजन समय जो अन्न पहिले आवे वही हवन करने योग्य है, और पहिले ग्रास को जिसकी वह आहुति करना चाहता है, "प्राणाय स्वाहा" यह कहकर ग्रास को मुखमें डाले ऐसा करने से प्राण सन्तुष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

प्राणे, तृप्यति, चक्षुः, तृप्यति, चक्षुषि, तृप्यति,

आदित्यः, तृप्यति, आदित्ये, तृप्यति, द्यौः, तृप्यति, दिवि, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, द्यौः, च, आदित्यः, च, अधितिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्राणे	प्राण के
तृप्यति	तृप्त होनेपर
चक्षुः	नेत्र
तृप्यति	तृप्त होता है
चक्षुषि	नेत्र के
तृप्यति	तृप्त होनेपर
आदित्यः	सूर्य
तृप्यति	तृप्त होता है
आदित्ये	सूर्य के
तृप्यति	तृप्त होनेपर
द्यौः	द्यौलोक
तृप्यति	तृप्त होता है
दिवि	द्यौलोक के
तृप्यन्त्याम्	तृप्त होनेपर
यत्	जो
किञ्च	कुछ
द्यौः	द्यौलोक
च	और
आदित्यः	सूर्यलोक विषे
अधितिष्ठतः	अधिष्ठित है
तत्	वह सब
तृप्यति	तृप्त होजाता है
च	और
तत्	उसके
तृप्यति	तृप्त होनेपर
तस्य	उस हवनकर्ता की
अनुतृप्तिम्	तृप्ति
प्रजया	संतान करके
पशुभिः	पशुओं करके
तेजसा	वाणी करके
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेज करके
इति	ऊपर कहेहुये प्रकार
भवति	होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! प्राण के तृप्त होने पर नेत्र तृप्त होता है, नेत्र के तृप्त होने पर सूर्य तृप्त होता है, सूर्य के तृप्त होने पर द्यौलोक तृप्त होता है, द्यौलोक के तृप्त होने पर जो कुछ सूर्य और द्यौलोक के मध्यविषे स्थित है वह सब तृप्त होजाता है, उन सब के तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति सन्तान, पशु, उत्तम वाणी और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, द्वितीयाम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, व्यानायस्वाहा, इति, व्यानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	इति	इस प्रकार
याम्	जिस	जुहुयात्	हवन करे
द्वितीयाम्	दूसरी	व्यानाय स्वाहा	व्यानाय स्वाहा
+आहुतिम्	आहुति को	+तर्हि	तो
जुहुयात्	हवन करना चाहै	व्यानः	व्यानवायु
ताम्	उसको	तृप्यति	तृप्त होजाताहै

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! इसके पश्चात् हवनकर्ता दूसरी

आहुति को "व्यानाय स्वाहा" यह कह कर मुख में हवन करे, ऐसा करने से व्यानवायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥ इति विंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

व्याने, तृप्यति, श्रोत्रम्, तृप्यति, श्रोत्रे, तृप्यति, चन्द्रमाः, तृप्यति, चन्द्रमसि, तृप्यति, दिशः, तृप्यन्ति, दिक्षु, तृप्यन्तीषु, यत्, किंच, दिशः, च, चन्द्रमाः, च, अधितिष्ठन्ति, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
व्याने	=व्यान वायु के	तृप्यति	=तृप्त होता है
तृप्यति	=तृप्त होने पर	चन्द्रमसि	=चन्द्रमा के
श्रोत्रम्	=श्रोत्र इन्द्रिय	तृप्यति	=तृप्तहोने पर
तृप्यति	=तृप्त होती है	दिशः	=दिशायें
श्रोत्रे	=श्रोत्र के	तृप्यन्ति	=तृप्त होती हैं
तृप्यति	=तृप्त होने पर	दिक्षु	=दिशाओं के
चन्द्रमाः	=चन्द्रमा	तृप्यन्तीषु	=तृप्त होने पर

यत्=जो	तृप्यति=तृप्त होने पर
किञ्च=कुछ	तस्य=उस हवनकर्ता की
दिशः=दिशाओं	अनुतृप्तिम्=तृप्ति
च=और	प्रजया=संतान करके
चन्द्रमाः=चन्द्रमा विषे	पशुभिः=पशुवों करके
अधिति-ष्ठन्ति=अधिष्ठित हैं	अन्नाद्येन=अन्न करके
तत्=वह	तेजसा=तेज करके
+ सर्वम्=सब	च=और
तृप्यति=तृप्त होता है	ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
तत्=उसके	
इति=इस प्रकार	+ भवति=होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! व्यानवायु के तृप्त होनेपर श्रोत्र इन्द्रिय तृप्त होती है, श्रोत्र इन्द्रिय के तृप्त होनेपर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशायें तृप्त होती हैं, दिशाओं के तृप्त होने पर जो कुछ दिशाओं और चन्द्रमा के मध्य में स्थित है, वह सब तृप्त होता है, उसके तृप्त होने पर उस हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, शरीर, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥ इति त्रिंशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकत्रिंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, तृतीयाम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, अपानाय, स्वाहा, इति, अपानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	अपानाय स्वाहा	अपानाय स्वाहा
याम्	जिस	इति	ऐसा
तृतीयाम्	तीसरी	उक्त्वा	कहकर
+आहुतिम्	आहुतिको	जुहुयात्	हवन करे
जुहुयात्	हवन करना चाहे	+तर्हि	तो
ताम्	उसको यानी तीसरे ग्रासको	अपानः	अपान वायु
		तृप्यति	तृप्त होता है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! तीसरी आहुति "अपानाय स्वाहा" यह पढ़कर मुखमें हवन करे, ऐसा करने से अपानवायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अपाने, तृप्यति, वाक्, तृप्यति, वाचि, तृप्यन्त्याम्, अग्निः, तृप्यति, अग्नौ, तृप्यति, पृथिवी, तृप्यति, पृथिव्याम्, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, पृथिवी, च, अग्निः, च, अधि,तिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अपाने	अपान के	च	और
तृप्यति	तृप्त होने पर	अग्निः	अग्नि बिषे
वाक्	वाक्इन्द्रिय	अधितिष्ठतः	स्थित है
तृप्यति	तृप्त होती है	तत्	वह सब
वाचि	वाणी के	तृप्यति	तृप्त होता है
तृप्यन्त्याम्	तृप्तहोने पर	तस्मिन्	उसके
अग्निः	अग्नि	तृप्यति	तृप्तहोने पर
तृप्यति	तृप्त होता है	तस्य	उसहवनकर्ता की
अग्नौ	अग्नि के	इति	यह
तृप्यति	तृप्त होने पर	अनुतृप्तिम्	तृप्ति
पृथिवी	पृथ्वी	प्रजया	संतान
तृप्यति	तृप्त होती है	पशुभिः	पशु
पृथिव्याम्	पृथ्वी के	तेजसा	तेज
तृप्यन्त्याम्	तृप्त होने पर	च	और
यत्	जो	ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेजकरके
किञ्च	कुछ	+भवति	होती है
पृथिवी	पृथ्वी		

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! अपानवायु के तृप्त होनेपर वाक्इन्द्रिय तृप्त होती है, वाक्के तृप्त होनेपर अग्निदेव तृप्त होता है, अग्नि के तृप्त होने पर पृथ्वी तृप्त होती है, पृथ्वीके तृप्त होनेपर जो कुछ पृथ्वी और अग्नि बिषे स्थित है वह सब तृप्त होता है, उसके तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानायस्वाहेति समानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, चतुर्थीम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, समानाय, स्वाहा, इति, समानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	समानाय स्वाहा	समानाय स्वाहा
याम्	जिस	इति	ऐसा
चतुर्थीम्	चौथी	उक्त्वा	कहकर
+आहुतिम्	आहुतिको	जुहुयात्	हवन करे
जुहुयात्	हवन करना चाहे	+ तर्हि	तो
		समानः	समानवायु
ताम्	उसको	तृप्यति	तृप्त होता है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! तत्पश्चात् चौथी आहुति को "समानाय स्वाहा" ऐसा कहकर मुख में डाले तो समानवायु संतुष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

समाने, तृप्यति, मनः, तृप्यति, मनसि, तृप्यति, पर्जन्यः, तृप्यति, पर्जन्ये, तृप्यति, विद्युत्, तृप्यति, विद्युति, तृप्यन्त्याम्, यत्, किञ्च, विद्युत्, च, पर्जन्यः, च, अधितिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
समाने	=समानवायु के	पर्जन्यः	=मेघ
तृप्यति	=तृप्त होने पर	तृप्यति	=तृप्त होता है
मनः	=मन इन्द्रिय	पर्जन्ये	=मेघ के
तृप्यति	=तृप्त होती है	तृप्यति	=तृप्त होने पर
मनसि	=मन के	विद्युत्	=बिजुली
तृप्यति	=तृप्त होने पर	तृप्यति	=तृप्त होती है

विद्युति=बिजुली के
तृप्यन्त्याम्=तृप्त होने पर
यत्=जो
किञ्च=कुछ
विद्युत्=बिजुली
च=और
पर्जन्यः=पर्जन्य विषे
अधितिष्ठतः=स्थित है
तत्=वह सब
इति=इस प्रकार
तृप्यति=तृप्त होता है
+तस्मिन्=उसके
तृप्यति=तृप्त होने पर
तस्य=उस हवन-
कर्ता की
अनुतृप्तिम्=तृप्ति
प्रजया=संतान
पशुभिः=पशु
अन्नाद्येन=अन्न
तेजसा=तेज
च=और
ब्रह्मवर्चसेन=ब्रह्मतेज करके
+भवति=होती है

भावार्थ ।

राजा कहता है कि हे ऋषियो ! समान वायु के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है, मन के तृप्त होने पर मेघ तृप्त होताहै, मेघ के तृप्त होने पर बिजुली तृप्त होती है, बिजुली के तृप्त होने पर जो कुछ बिजुली और मेघ के मध्य में स्थितहै वह सब तृप्त होताहै, उसके तृप्त होने पर हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याम्, पञ्चमीम्, जुहुयात्, ताम्, जुहुयात्, उदानाय, स्वाहा, इति, उदानः, तृप्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके पीछे	उदानाय स्वाहा	उदानाय स्वाहा
याम्	जिस	इति	ऐसा
पञ्चमीम्	पांचवीं	+उक्त्वा	कहकर
+आहुतिम्	आहुति को	जुहुयात्	हवन करे
जुहुयात्	हवन करना चाहे	+तर्हि	तो
ताम्	उसको	उदानः	उदान वायु
		तृप्यति	तृप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! पांचवीं आहुति यानी ग्रास को " उदानायस्वाहा " यह कहकर मुख में डाले ऐसा करने से उदानवायु तृप्त होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥इति त्रयोविंशः खण्डः॥

पदच्छेदः ।

उदाने, तृप्यति, त्वक्, तृप्यति, त्वचि, तृप्य-

न्त्याम्, वायुः, तृप्यति, वायौ, तृप्यति, आकाशः, तृप्यति, आकाशे, तृप्यति, यत्, किञ्च, वायुः, च, आकाशः, च, अधि, तिष्ठतः, तत्, तृप्यति, तस्य, अनुतृप्तिम्, तृप्यति, प्रजया, पशुभिः, अन्नाद्येन, तेजसा, ब्रह्मवर्चसेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उदाने	उदानवायुके	आकाशः	आकाश विषे
तृप्यति	तृप्तहोने पर	अधितिष्ठतः	स्थित है
त्वक्	त्वक्इन्द्रिय	तत्	वह सब
तृप्यति	तृप्त होती है	इति	इस प्रकार
त्वचि	त्वक् इन्द्रिय के	तृप्यति	तृप्त होता है
तृप्यन्त्याम्	तृप्तहोनेपर	च	और
वायुः	वायु	तस्मिन्	उसके
तृप्यति	तृप्त होताहै	तृप्यति	तृप्त होनेपर
वायौ	वायु के	तस्य	उस हवनकर्ता की
तृप्यति	तृप्तहोनेपर	अनुतृप्तिम्	तृप्ति
आकाशः	आकाश	प्रजया	सन्तान
तृप्यति	तृप्त होता है	पशुभिः	पशु
आकाशे	आकाश के	अन्नाद्येन	अन्न
तृप्यति	तृप्त होनेपर	तेजसा	तेज
यत्	जो	ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेजकरके
किञ्च	कुछ	+भवति	होती है
वायुः	वायु		
च	और		

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! उदानवायु के तृप्त होनेपर त्वक् इन्द्रिय तृप्त होती है, त्वक्के तृप्त होनेपर वायु तृप्त होता है, वायु के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है, आकाश के तृप्त होनेपर जो कुछ आकाश और वायु के मध्य में स्थित है वह सब तृप्त होता है, उसके तृप्त होनेपर हवनकर्ता की तृप्ति संतान, पशु, अन्न, तेज और ब्रह्मतेज करके होती है ॥ २ ॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक् तत्स्यात् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, इदम्, अविद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति, यथा, अङ्गारान्, अपोह्य, भस्मनि, जुहुयात्, तादृक्, तत्, स्यात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	तत्	सो
यः	जो अग्निहोत्र कर्ता	तादृक्	वैसा
इदम्	इस वैश्वानर आत्मा को	स्यात्	होता है
अविद्वान्	नजानताहुआ	यथा	जैसे कोई
अग्निहोत्रम्	अग्निहोत्र कर्म	अङ्गारान्	जलती हुई अग्नि को
जुहोति	करता है	अपोह्य	छोड़कर
		भस्मनि	राख में
		जुहुयात्	हवन करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! वह जो इस वैश्वानर आत्माको न जानताहुआ अग्निहोत्र कर्म करता है सो ऐसा होता है जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर राख में आहुति देता है, तात्पर्य इस मंत्र का यह है कि प्राण आदि जो पुरुष के शरीर के अन्दर स्थित हैं उनके लिये आहुति देना श्रेष्ठ है, बाह्य अग्निमें आहुति देनेसे-अगर कोई पुरुष प्राणादि शरीरस्थ अग्नि को आहुति ज्ञानपूर्वक देता है और बाह्य अग्नि में नहीं देता है तो वह पाप से युक्त नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति, तस्य, सर्वेषु, लोकेषु, सर्वेषु, भूतेषु, सर्वेषु, आत्मसु, हुतम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	परन्तु	अग्निहोत्रम्	अग्निहोत्रको
यः	जो	जुहोति	करता है
एवम्	इस प्रकार	तस्य	उसकी
एतत्	इस वैश्वानर को	हुतम्	हवन की हुई आहुति
विद्वान्	जानता हुआ	सर्वेषु	सब

लोकेषु=लोकों में	सर्वेषु=सब
सर्वेषु=सब	आत्मसु=जीवों में
भूतेषु=भूतों में	भवति=प्राप्त होती है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! जो पुरुष वैश्वानर आत्मा को जानकर अग्निहोत्र कर्म करता है, उसकी हवन की हुई आहुति सब लोकों में, सब भूतों में और सब जीवों में प्राप्त होती है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳ हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, इषीकातूलम्, अग्नौ, प्रोतम्, प्रदूयेत, एवम्, ह, अस्य, सर्वे, पाप्मानः, प्रदूयन्ते, यः, एतत्, एवम्, विद्वान्, अग्निहोत्रम्, जुहोति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो कोई		अस्य=उसके	
एवम्=इस प्रकार		सर्वे=सब	
एतत्=इस वैश्वानर विद्या को		पाप्मानः=पाप	
		एवम्=इस प्रकार	
विद्वान्=जानता हुआ		प्रदूयन्ते=जल जाते हैं	
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र कर्म को		यथा=जिस प्रकार	
		तत्=वह	
जुहोति=करता है		इषीकातूलम्=मूंज का फूल	

अग्नौ=अग्नि में	प्रदूयेत=भस्म होजाता
प्रोतम्=फेंकाहुआ	है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! जो कोई इस प्रकार इस वैश्वानरविद्या को जानता हुआ अग्निहोत्र कर्म करता है उसके सब पाप उसतरह से भस्म होजाते हैं जिस तरह मूंजका भुआ अग्नि में डाला हुआ भस्म होजाता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चाण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳस्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, उ, ह, एवंविद्, यदि, अपि, चाण्डालाय, उच्छिष्टम्, प्रयच्छेत्, आत्मनि, ह, एव, अस्य, तत्, वैश्वानरे, हुतम्, स्यात्, इति, तत्, एषः, श्लोकः ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
एवंविद्=इसप्रकार वैश्वानरविद्या का जानने वाला	प्रयच्छेत्=देदेवे
यद्यपि=कदाचित्	उ=तो
चण्डालाय=चण्डालकेलिये	तस्मात्=इस ज्ञान के कारण
उच्छिष्टम्=अपना जूठा अन्न	वैश्वानरे=वैश्वानर
	आत्मनि=आत्मा में
	अस्य=उसका दिया हुआ

तत्=वह अन्न
ह=निस्संदेह
हुतम्=हवन किया हुआ
स्यात्=होता है

इति=इस ऊपर कहे-हुये के बाद में
एषः=यह
तत्=आगे का
श्लोकः=मंत्र
ह=प्रमाण है

भावार्थ ।

हे ऋषियो ! अगर वैश्वानरविद्याका जाननेवाला अपना जूठा अन्नभी कभी चाण्डालको देदेवे तो ज्ञानके कारण यानी वैश्वानरविद्या के जानने के कारण वह दियाहुआ अन्न उस चाण्डाल के वैश्वानर में आहुति दीहुई के तुल्य होता है इसके सत्यता के निमित्त आगेवाला मंत्र प्रमाण है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत ॥ ५ ॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यथा, इह, क्षुधिताः, बालाः, मातरम्, परि, उप, आसते, एवम्, सर्वाणि, भूतानि, अग्निहोत्रम्, उप, आसते, इति, अग्निहोत्रम्, उप, आसते, इति ॥

अन्वयः पदार्थ

इह=इस संसार में
क्षुधिताः=भूखे

अन्वयः पदार्थ

बालाः=बालक
यथा=जैसे

मातरम्=माता के पास
पर्युपासते=जाते हैं
एवम्=वैसेही
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
इति=इस
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र कर्म के
उपासते=पास जाते हैं
इति=ऐसाजानकरके
अग्निहोत्रम्=अग्निहोत्र कर्म को
उपासते=उपासते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! राजा कहता है कि हे ऋषियो ! इस संसार में जैसे भूखे बालक अपनी माता के पास क्षुधानिवृत्त्यर्थ जाते हैं वैसेही सब प्राणी फल प्राप्त्यर्थ इस अग्निहोत्रकर्म के पास जाते हैं यानी सेवन करते हैं ' इति अग्निहोत्रमुपासते ' यह दो बार आवर्तन अध्याय समाप्ति के अर्थ है ॥ ५ ॥

इति पञ्चमोध्यायः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतकेतुः, ह, आरुणेयः, आस, तम्, ह, पिता, उवाच, श्वेतकेतो, वस, ब्रह्मचर्यम्, न, वै, सौम्य, अस्मत्कुलीनः, अननूच्य, ब्रह्मबन्धुः, इव, भवति, इति॥

अन्वयः	पदार्थ
आरुणेयः	आरुणि का पुत्र
श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु
आस	था
पिता	उसका पिता
तम्	उससे
ह	स्पष्ट
इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो
वै	श्रद्धा के साथ
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य को
ह	भली प्रकार

अन्वयः	पदार्थ
वस	धारण कर यानीगुरुगृह जाकर विद्या पढ़
सौम्य	हे प्रियपुत्र
अस्मत्कुलीनः	मेरे वंश में पैदा हुआ कोई
अननूच्य	विद्याहीन
ब्रह्मबन्धुः	नाममात्र ब्राह्मण
इव	ऐसा
+वै	निश्चय करके
न	नहीं
भवति	हुआ है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ॐकार, पञ्चाग्नि, और वैश्वानर की उपासना कहकर अब ज्ञान का व्याख्यान आख्यायिका द्वारा कियाजाता है, अरुणका पौत्र और आरुणि यानी उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु होता भया, यह पुत्र सबमें छोटा था, इस कारण उसके माता पिता उसको बहुत प्यार करते थे, एक दिन उद्दालकपिता ने देखा कि श्वेतकेतु सयाना होगया, पर कुछ विद्याभ्यास नहीं किया, इस कारण दुःखित होता हुआ कहने लगा कि हे श्वेतकेतो, पुत्र ! तू ब्रह्मचर्य धारण कर गुरुगृह जाकर विद्याध्ययन

कर, हे प्रियपुत्र ! मेरे वंशमें कोई ऐसा नहीं हुआ है कि जिसने विद्याध्ययन न किया हो, और केवल नाममात्र ब्राह्मण कहलाया हो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सौम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

सः, ह, द्वादशवर्षः, उपेत्य, चतुर्विंशतिवर्षः, सर्वान्, वेदान्, अधीत्य, महामनाः, अनूचानमानी, स्तब्धः, एयाय, तम्, ह, पिता, उवाच, श्वेतकेतो, यत्, नु, सौम्य, इदम्, महामनाः, अनूचानमानी, स्तब्धः, असि, उत, तम्, आदेशम्, अप्राक्ष्यः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	चतुर्विंशतिवर्षः	चौबीसवर्ष की आयु तक रहकर
द्वादशवर्षः	बारह वर्ष का होता हुआ	सर्वान्	सब
+आचार्यम्	आचार्य के पास	वेदान्	वेदों को
उपेत्य	जाकर	ह	भली प्रकार

* इस मंत्रका अन्वय अगले मंत्र से है ॥

अधीत्य=पढ़कर	श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो
स्तब्धः=प्रमत्तस्वभाव वाला	सौम्य=हे प्रियपुत्र
+च=और	यत्=जो
अनूचानमानी=अपने को सब से अधिक विद्वान् माननेवाला	त्वम्=तू
महामनाः=महाअहंकारी होता हुआ	महामनाः=महाअहंकारी
+पितृगृहम्=पिता के घर	अनूचानमानी=सबसे अधिक अपने को विद्वान् मानने वाला
एयाय=आवता भया	स्तब्धः=नम्रताहीन
+च=और	असि=है
तम्=उससे	उत=क्या
+पिता=उसके पिता ने	नु=कभी
इति=ऐसा	त्वम्=तूने
+पप्रच्छ=प्रश्न किया	तम्=उस
	आदेशम्=विद्या को
	आचार्यम्=आचार्य से
	अप्राक्ष्यः=पूछा है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वह श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में आचार्य के पास जाकर, चौबीस वर्ष की अवस्था तक रहकर, सब वेदों को भली प्रकार पढ़कर, प्रमत्तस्वभाववाला और अपने को अधिक विद्वान् माननेवाला, महाअहंकारी होता हुआ अपने पिता के घर को वापस आया तब उसके पिताने

उसको महाअहंकारी नम्रताहीन देखकर कहा कि क्या तू ने अपने आचार्य से उस विद्या को सीखा है ? ॥ २ ॥

मूलम् ।

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

येन, अश्रुतम्, श्रुतम्, भवति, अमतम्, मतम्, अविज्ञातम्, विज्ञातम्, इति, कथम्, नु, भगवः, सः, आदेशः, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
येन	जिस करके
अश्रुतम्	नहीं सुना हुआ
श्रुतम्	सुना हुआ
भवति	होता है
अमतम्	नहीं समझा हुआ
मतम्	समझा हुआ
+ भवति	होता है
अविज्ञातम्	नहीं जाना हुआ
विज्ञातम्	जाना हुआ
+ भवति	होता है
इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
इति	ऐसा
उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्
कथम् नु	कैसा
सः	वह
आदेशः	उपदेश यानी विद्या
+ अस्ति	है

भावार्थ ।

जिस करके नहीं सुनी हुई, नहीं समझी हुई और नहीं जानी

हुई वस्तु सुनी हुई, समझी हुई और जानी हुई की तरह प्रतीत होती है, यह सुनकर श्वेतकेतु को मालूम हुआ कि पिता मुझसे विद्या में बढ़कर है, और उसमें जब ऐसी वृत्ति उत्पन्न हुई तब उसमें नम्रता कुछ कुछ आई, और उसने फिर कहा कि हे भगवन्! वह कौनसा ऐसी विद्या का उपदेश है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, मृत्पिण्डेन, सर्वम्, मृन्मयम्, विज्ञातम्, स्यात्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, मृत्तिका, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र	विकारः	घटादिविकार
यथा	जिस प्रकार	नामधेयम्	नाममात्र
एकेन	एक	वाचा	वाणी करके
मृत्पिण्डेन	मृत्पिण्ड से	आरम्भणम्	कथन किया गया है
सर्वम्	सब	सत्यम्	वास्तव से
मृन्मयम्	मिट्टी के बने हुये बरतन	+ सर्वम्	सब
विज्ञातम्	जाने हुये	मृत्तिका	मिट्टी
स्यात्	होते हैं	एव	ही
इति	उसी प्रकार	+ अस्ति	है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर उद्दालक ऋषि ने कहा कि हे पुत्र ! जैसे एक मृत्तिका के पिण्ड से बनी हुई घटादि चीज़ें मृत्तिकारूप ही होती हैं, पर उनका नाम वाणी करके पृथक् पृथक् होता है, यानी जब कारण कार्य में अनुगत है तब वास्तव में नामरूप छोड़कर जो कारण है वही कार्य है, जो कार्य है वही कारण है, जैसे एक मिट्टी की बनी हुई चीज़ें घट शराव हंडी आदि हैं, और मिट्टी उनमें अनुगत है, इस कारण वे सब मिट्टीरूपही हैं, मिट्टी से पृथक् उनकी कोई सत्ता नहीं है, अगर मिट्टी निकालकर देखा जाय तो कहीं उनका पता नहीं लगता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, लोहमणिना, सर्वम्, लोहमयम्, विज्ञातम्, स्यात्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, लोहम्, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन	लोहमयम्	सुवर्णकी बनी हुई चीज़ें
यथा	जैसे	विज्ञातम्	जानी जाती
एकेन	एक	स्यात्	हैं
लोहमणिना	सुवर्ण से	इति	उसी प्रकार
सर्वम्	सब		

विकारः=अँगूठी आदि सुवर्ण का विकार	आरम्भणम्=आरम्भकिया हुआ है
वाचा=वाणी करके	सत्यम्=वास्तव से
नामधेयम्=नाममात्र	+ तत्सर्वम्=वह सब
	लोहम्=सुवर्ण
	एवास्ति=ही है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! एक सुवर्ण से बनी हुई चीज़ें अँगूठी आदिक विकार सुवर्णरूपही हैं, उनके पृथक् पृथक् नाम वाणी करके ज्ञात होते हैं, वास्तव से अँगूठी आदि जो कार्य हैं वे सब कारणरूप सुवर्ण हैं, क्योंकि सुवर्ण अँगूठी आदि में अनुगत है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सौम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, एकेन, नखनिकृन्तनेन, सर्वम्, कार्ष्णायसम्, विज्ञातम्, स्यात्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, कृष्णायसम्, इति, एव, सत्यम्, एवम्, सौम्य, सः, आदेशः, भवति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन		यथा=जैसे	

एकेन=एक	विकारः=विकार छुरी आदि
नखनिकृन्तनेन=नहन्नी से	नामधेयम्=नाममात्र
सर्वम्=सब	वाचा=वाणी करके
कार्ष्णायसम्=लोहेकी चीज़ों का	आरम्भणम्=कथन किया हुआ है
विज्ञातम्=ज्ञान	सत्यम्=वास्तव से
स्यात्=होता है	एवम्=इस प्रकार
इति=उसी प्रकार	इति=ऐसा
सौम्य=हे प्रियदर्शन	सः=वह
इति=यह	आदेशः=उपदेश
कृष्णायसम्=लोहे का	भवति=है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! जैसे एक नहन्नी को देखकर सब लोहे की चीज़ों का ज्ञान होता है यद्यपि उनके नाम भिन्न भिन्न होते हैं, वास्तव में वह सब लोहरूपही हैं, यानी लोहे से पृथक् उनकी सत्ता कुछ नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन्कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवा꣡ꣳस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

न, वै, नूनम्, भगवन्तः, ते, एतत्, अवेदिषुः, यत्,

हि, एतत्, अवेदिष्यन्, कथम्, मे, न, अवक्ष्यन्, इति, भगवान्, तु, एव, मे, तत्, ब्रवीतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
इति	ऐसा
+श्रुत्वा	सुनकर
+श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
उवाच	कहा कि
ते	वे
भगवन्तः	पूजनीय
+सद्गुरवः	मेरे गुरु
नूनम् वै	निश्चय करके
एतत्	इस विद्या को
न	नहीं
अवेदिषुः	जानते होंगे
हि	कदाचित्
यत्	जो
+ ते	वे
एतत्	इस विद्या को
अवेदिष्यन्	जानते होते तो

अन्वयः	पदार्थ
कथम्	क्यों
मे	मेरेलिये
न	न
अवक्ष्यन्	कहते
भगवान्	आप
एव	ही
तत्	उसको
मे	मेरेलिये
ब्रवीतु	कहें
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
उद्दालकः	उद्दालक ने
उवाच	कहा कि
सौम्य	हे सौम्य
तथा	तथास्तु

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने अपने पिता से कहा कि हे पूज्य पिता ! मेरे गुरु इस विद्या को नहीं जानते होंगे, यदि इस विद्याको जानते होते तो मुझसे अवश्य कहते, अब

आप कृपा करके मुझको इस विद्या में सुशिक्षित करें, उद्दालक ने कहा कि हे सौम्य ! तथास्तु मैं तेरी इच्छानुसार ऐसाही करूंगा ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सत्, एव, सौम्य, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, अद्वितीयम्, तत्, ह, एके, आहुः, असत्, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, अद्वितीयम्, तस्मात्, असतः, सत्, जायेत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य=	हे प्रियदर्शन	सत्=	सत ब्रह्मरूप
इदम्=	यह जगत्	एव ह=	ही निस्सन्देह
अग्रे=	अपनी उत्पत्ति से पहिले यानी नामरूप धारण करने से पहिले	आसीत्=	था
		एके=	कोई आचार्य
		आहुः=	कहते हैं कि
		अग्रे=	पहिले
		अद्वितीयम्=	द्वितीयहीन
अद्वितीयम्=	द्वितीयरहित	एकम्=	एक
एकम्=	एक	असत्=	असत्

एव=ही	असतः=असत् से
आसीत्=था	तत् सत्=वह सत् जगत्
+ च=और	जायेत=उत्पन्न होता
तस्मात्=उस	भया
एव=ही	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह नामरूपात्मक जगत् जो इन्द्रियों का विषय होरहा है, वह अपनी उत्पत्ति के पहिले एक सत्रूपही था, जैसा कारण होता है वैसाही कार्य होता है, जहां कारण अति सूक्ष्म होताहै, यानी इन्द्रियों का विषय नहीं होताहै, वहां कार्य द्वारा वह कारण जानाजाता है, मन्त्र में जो एकम्, अद्वितीयम्, एव, शब्द हैं वे सत् के विशेषण हैं, यानी वे बताते हैं कि वह सत् अस्तिमात्र, अतिसूक्ष्म, निर्विशेष, सर्वगत, एक, निरंजन, निरवयव, निराकार, विज्ञानघन है जो उपनिषदों के महावाक्यार्थ के ज्ञान से साक्षात् अनुभव कियाजाता है ॥ १ ॥

इस पर एक दृष्टान्त देकर बोध कराते हैं--एक पुरुष एक गांव से दूसरे गांव को जाता था, राहमें देखा कि एक कुलाल (कुम्हार) मृत्तिका एकत्र कररहा है, जब वह सायंकाल अपने गांवको वापस आने लगा तो देखा कि कुम्हार के आस पास अनेक प्रकार के बरतन आदि बने रक्खे हैं, बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर कुम्हार से पूछा कि यह सब क्याहैं, और वह मृत्पिण्ड जो मैंने देखाथा क्या होगया, कुलाल ने उत्तर दिया कि जो कुछ अपने सामने बरतन आदि देखते हो वे सब उसी मृत्पिण्ड के बने हैं जिसको तुमने पहिले देखा था, जो वह मृत्पिण्ड था, वही ये हैं, इसमें और उस पिण्ड में कोई भेद नहीं है, उस पुरुषको बोध होगया और आश्चर्य उसका दूर होगया, और वह शान्त होता हुआ अपने घर गया, हे सौम्य ! इसी

प्रकार नामरूपसंयुक्त यह जगत् सत्रूप ब्रह्मही है, इसमें उसमें रञ्चितमात्र भेद नहीं है ।

वैनाशिक आचार्य कहते हैं कि इस नाम रूपात्मक जगत् के पहिले एक अद्वितीय असत् ही था, उस असत् से यह सत् जगत् उत्पन्न हुआ है, यह उनका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि असत् से सत् उत्पन्न नहीं हो सकता है, ऐसा होना युक्ति श्रुति विरुद्ध है ।

वैशेषिक मतवाले कहते हैं कि यह जगत् पञ्चतत्त्व यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी करके बना है, वह अपनी उत्पत्ति के पहिले परमाणुरूप से सत् ब्रह्म के आश्रय था, उस परमाणु से यह जगत् उत्पन्न हुआ है । यह उनका कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि ऐसा कहने से एक सत् प्रतीत होताहै, और दूसरा परिमाणु प्रतीत होताहै, परन्तु मन्त्र में द्वैत को अलग करके सत्का विशेषण एकम्, अद्वितीयम् दिया है, इसलिये वैशेषिक मतवालों का अर्थ भी त्यागने योग्य है ॥

मूलम् ।

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳस्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति । सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

कुतः, तु, खलु, सोम्य, एवम्, स्यात्, इति, ह, उवाच, कथम्, असतः, सत्, जायेत, इति, सत्, तु, एव, सोम्य, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, अद्वितीयम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	+ह	=स्पष्ट
एवम्	=ऐसा	उवाच	=कहा कि
कुतः	=कैसा	इति	=यह
खलु	=निश्चय करके	तु	=तो
स्यात्	=होसकता है	सौम्य	=हे प्रियदर्शन
तु	=यानी	एव	=निश्चय करके
असतः	=असत् से	अग्रे	=पहिले
कथम्	=कैसे	अद्वितीयम्	=अद्वितीय
इति	=यह	एकम्	=एक
सत्	=सत् नाम रूपात्मक जगत्	सत्	=सत्
जायेत	=उत्पन्न होसक्ता है	एव	=ही
उद्दालकः	=उद्दालक ने	इति	=करके
		आसीत्	=था

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु से कहा कि हे प्रियपुत्र ! असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सक्ती, इसलिये नाम रूपात्मक जगत् को देखकर यही अनुभव होता है कि इसकी उत्पत्ति एक अद्वितीय सत् से ही है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ऐक्षत, बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति, तत्, तेजः, असृजत, तत्, तेजः, ऐक्षत, बहु, स्याम्, प्रजायेय, इति, तत्, अपः, असृजत, तस्मात्, यत्र, क्व, च, शोचति, स्वेदते, वा, पुरुषः, तेजसः, एव, तत्, अधि, आपः, जायन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	वह सत् परमात्मा	तत्	वह
इति	ऐसा	तेजः	अग्नि
ऐक्षत	इच्छा करता भया कि	इति	ऐसी
अहम्	मैं	ऐक्षत	इच्छा करता भया कि
बहु	बहुत रूप से	अहम्	मैं
स्याम्	होजाऊं	बहु	बहुरूप
+ च	और	स्याम्	होजाऊं
प्रजायेय	प्रजा को उत्पन्न करूं	+ च	और
तत्	इस इच्छा के पीछे	प्रजायेय	प्रजा को उत्पन्न करूं
तेजः	अग्नि को	तत्	तिसके पीछे
असृजत	उत्पन्न करता भया	अपः	जलको
+ च	और	असृजत	उत्पन्न करता भया
		तस्मात्	इसीकारण
		यत्र	जहां कहीं

च=और	+ च=और
क्व=जब कभी	तत्=यह
पुरुषः=पुरुष	अधिसिध्यति=सिद्ध करता है कि
शोचति=शोक करता है	तेजसः=अग्नि से
+ वा=तब	आपः=जल
स्वेदते=पसीना निकलने लगता है	जायन्ते=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह सत् परमात्मा ऐसी इच्छा करता भया कि मैं एक हूं, बहुत रूप होजाऊं, और असंख्य प्रजा को उत्पन्न करूं, ऐसी इच्छा करके अग्नि को उत्पन्न करता भया, फिर वह अग्नि ऐसी इच्छा करता भया कि मैं एकसे अनेक होजाऊं, और अनेक प्रजा को उत्पन्न करूं, तिस इच्छा के पश्चात् वह अग्नि जल को उत्पन्न करता भया, इसलिये जहां कहीं और जब कभी कोई पुरुष शोक करता है तब उसके शरीर से पसीना निकलने लगता है उसीसे यह सिद्ध होता है कि अग्नि सेही जल की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

ताः, आपः, ऐक्षन्त, बह्व्यः, स्याम, प्रजायेमहि,

इति, ताः, अन्नम्, असृजन्त, तस्मात्, यत्र, क्व, च, वर्षति, तत्, एव, भूयिष्ठम्, अन्नम्, भवति, अद्भ्यः, एव, तत्, अधि, अन्नाद्यम्, जायते ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
ताः=उस	क्व=जब कभी
आपः=जल ने	यत्र=कहीं
ऐक्षन्त=इच्छा की कि	वर्षति=वर्षा होती है
बह्व्यः=मैं बहुत	+ तत्=तब
स्याम्=हो जाऊं	एव=निश्चय करके
+ च=और	भूयिष्ठम्=विशेष
प्रजायेमहि=प्रजा को उत्पन्न करूं	अन्नम्=अन्न
इति=ऐसा शोचने पर	भवति=होता है
ताः=उस जल ने	ततएव=सोई
अन्नम्=अन्न को	अधिसिध्यति=सिद्ध करता है कि
असृजन्त=पैदा किया	अद्भ्यः=जल से
तस्मात्=इसकारण	अन्नाद्यम्=अन्नादिक
	जायते=उत्पन्न होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उस सत् परमात्मा ने अपने विषे जलतत्त्वको धारण करके इच्छा की कि मैं बहुत प्रकार का होजाऊं, और अनेक प्रकार की सृष्टि को रचूं, ऐसी इच्छा करतेही उसने जलरूप करके अन्नको पैदा किया, अथवा अन्नके कारणभूत पृथ्वीको पैदा किया, इसलिये जब कभी और जहां कहीं वर्षा होती है वहां अन्न की

बाहुल्यता होती है, जिससे सिद्ध होता है कि जल से ही भक्षण करने योग्य अन्न उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तेषाम्, खलु, एषाम्, भूतानाम्, त्रीणि, एव, बीजानि, भवन्ति, आण्डजम्, जीवजम्, उद्भिज्जम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एषाम्	इन चराचर	तेषाम्	उन उत्तर दक्षिण मार्ग से भ्रष्ट जीवों की उत्पत्ति
भूतानाम्	भूतों की	आण्डजम्	अण्डज
+ उत्पत्तौ	उत्पत्ति में	जीवजम्	जरायुज
खलु	निश्चय करके	उद्भिज्जम्	उद्भिज्ज
त्रीणि	तीन	इति	करके
एव	ही	+ भवन्ति	होती हैं
बीजानि	कारण हैं यानी		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो जीव उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग से भ्रष्ट हुये हैं, उनकी उत्पत्ति के तीन कारण हैं, यानी तीन जरिये हैं या

तो वे अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे पक्षी सर्पादि, या जेर से उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य पशु आदि, या पृथ्वी को फोड़कर उत्पन्न होते हैं जैसे वृक्ष अन्नादि, किसी किसी आचार्य ने चार कारण कहे हैं, यहां इस मंत्र में चौथे कारण स्वेदज को अण्डज में शामिल कर दिया है, इसलिये सब जीवों की उत्पत्ति में तीनही कारण हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सा, इयम्, देवता, ऐक्षत, हन्त, अहम्, इमाः, तिस्रः, देवताः, अनेन, जीवेन, आत्मना, अनु, प्रविश्य, नामरूपे, व्याकरवाणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सा	वह	तिस्रः	तीनों यानी अग्नि जल पृथ्वी
इयम्	यह	देवताः	देवता
देवता	सत्स्वरूप ब्रह्म	अनेन	इस
ऐक्षत	इच्छा करता हुआ कि	जीवेन	जीव
अहम्	मैं	आत्मना	आत्मा के साथ
+ च	और	अनुप्रविश्य	मिलकर
इमाः	ये		

नामरूपे=नाम रूप को | व्याकरवाणि=प्रकट करूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! फिर वह सत्रूप परमात्मा ऐसा विचारता भया कि मैं इन तीनों देवताओं यानी अग्नि, जल, पृथ्वी में चैतन्य जीवात्मा होकर प्रवेश करूं और नामरूप को प्रकट करूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तासाम्, त्रिवृतम्, त्रिवृतम्, एकैकाम्, करवाणि, इति, सा, इयम्, देवता, इमाः, तिस्रः, देवताः, अनेन, एव, जीवेन, आत्मना, अनु, प्रविश्य, नामरूपे, व्याकरोत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तासाम्	उन तीन तत्त्वों में से	इयम्	यह
एकैकाम्	एक २ को	देवता	देवता (परब्रह्म)
त्रिवृतम्	तीन	इमाः	उन
त्रिवृतम्	तीन विभाग	तिस्रः	तीनों
करवाणि	करूं	देवताः	देवताओं में यानी अग्नि जल पृथ्वी में
इति	ऐसी इच्छा करके	अनेन	इस अपने प्रतिबिम्बरूप
सा	वह		

जीवेन=जीव
आत्मना=आत्मा के साथ
अनुप्रविश्य=प्रवेश करके
नामरूपे=नाम रूप को
व्याकरोत्=प्रकट करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सत् परमात्मा सृष्टि रचने के निमित्त ऐसी इच्छा करता भया कि एक एक तत्त्व के तीन तीन विभाग करूं, यानी त्रिवृत्करण करके एक तत्त्व का आधा और दो तत्त्वों का चौथाई चौथाई मिलाकर सृष्टि रचूं, ऐसा विचारकर उन देवताओं यानी अग्नि, जल, पृथ्वी के ऊपर कहे हुये भाग में अपने प्रतिबिम्बरूप चैतन्य जीवात्मा के साथ प्रवेश करके नाम रूप को प्रकट करता भया, और जैसे वेदान्त ग्रन्थों में सृष्टि की उत्पत्ति पञ्चीकरण से है इसी तरह इस उपनिषद् में सृष्टि की उत्पत्ति त्रिवृत्करण करके कही गई है, क्योंकि विना तत्त्वों के न्यून अधिक किये हुये सृष्टि की उत्पत्ति हो नहीं सक्ती है, और तत्त्वों की साम्य अवस्था में नामरूप प्रकट हो नहीं सक्ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तासाम्, त्रिवृतम्, त्रिवृतम्, एकैकाम्, अकरोत्, यथा, नु, खलु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः, त्रिवृत्, त्रिवृत्, एकैका, भवति, तत्, मे, विजानीहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह	और	त्रिवृत्	तीन
तासाम्	उन तीनों तत्त्वों में से	त्रिवृत्	तीन मिल
एकैकाम्	एक २ को	इति	करके
त्रिवृतम्	तीन	एकैका	एक २
त्रिवृतम्	तीन भाग	भवति	होते हैं
अकरोत्	करता भया	तत्	उसको
यथा	जिस प्रकार	सौम्य	हे सौम्य
इमाः	यह	मे	मुझसे
तिस्रः	तीनों	नु खलु	निश्चय करके
देवताः	देवता	विजानीहि	जान तू

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रथम सत् परमात्मा उन तीन तत्त्वों में से एक एक को तीन तीन भाग करता भया, और फिर जिस प्रकार तीन तीन मिल करके एक एक होते हैं उसको मैं तुझसे कहता हूं ॥ ४ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, अग्नेः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, अग्नेः, अग्नित्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यत्=जो	त्रयाणाम्=तीनों रूपों को
अग्नेः=अग्नि का	अपागात्=अलग कर दिया
रोहितम्=लाल	+तर्हि=तो
रूपम्=रूप है	+अग्नेः=अग्नि का
तत्=वह	अग्नित्वम्=अग्नित्व
तेजसः=तेज का	विकारः=विकार
रूपम्=रूप है यानी अपना रूप है	नामधेयम्=नाममात्र
यत्=जो	वाचा=वाणी करके
शुक्लम्=सफ़ेद रूप है	आरम्भणम्=कथन किया हुआ है
तत्=वह	तस्मात्=इसलिये
अपाम्=जल का है	त्रीणि=तीनों
यत्=जो	रूपाणि=रूप
कृष्णम्=श्यामरूप है	इति=ऊपर कहे हुये
तत्=वह	एव=निश्चय करके
अन्नस्य=अन्नकाहै यानी पृथ्वी का है	सत्यम्=सत्य हैं
अग्नेः=अग्नि से	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रज्वलित अग्नि में जो लालरूप है वह तेज का है यानी अपना है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर प्रकाशित अग्नि से तीनों रूप यानी लाल, सफ़ेद, श्याम अलग करके देखें तो अग्नि के अग्नित्व का कहीं पता नहीं लगेगा, केवल शब्दमात्र अग्नि रह जायगी, इसलिये लाल, श्वेत, श्यामरूप अग्नि में सत्य हैं, इससे पृथक् कुछ नहीं है जो अग्नि कहाजाय ॥ १ ॥

मूलम् ।

यदादित्यस्य रोहितꣳ रूपं तेजसः तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, आदित्यस्य, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, आदित्यात्, आदित्यत्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=	जो	तत्=	वह
आदित्यस्य=	सूर्य का	तेजसः=	तेज यानी अग्नि का है
रोहितम्=	लाल	यत्=	जो
रूपम्=	रूप है		

शुक्लम्=सफ़ेद है
तत्=वह
अपाम्=जल का है
यत्=जो
कृष्णम्=काला है
तत्=वह
अन्नस्य=अन्न यानी पृथ्वी का है
+यदि=जो
आदित्यात्=सूर्य से
+त्रिरूपाणि=तीनों रूपों को
अपागात्=अलग करदें
+तर्हि=तो
+आदित्यस्य=सूर्य का
आदित्यत्वम्=सूर्यत्व
विकारः=विकार
नामधेयम्=नाममात्र
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथन किया जाता है
तस्मात्=इसलिये
त्रीणि=ये तीनों
रूपाणि=रूप
इति=ऊपर कहे हुये
एव=निश्चय करके
सत्यम्=सत्य हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो सूर्य में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर इन तीनों रूपों को अलग करके देखा जाय तो सूर्य के सूर्यत्व का कहीं पता नहीं, केवल सूर्य नाममात्र शब्द का विषय रह जायगा, इस कारण तीनों रूप सत्य हैं, इनसे पृथक् सूर्य का कहीं पता नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ।

यच्चन्द्रमसो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, चन्द्रमसः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, तत्, अपाम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, चन्द्रात्, चन्द्रत्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्	जो	+ त्रीणि	तीनों रूपों को
चन्द्रमसः	चन्द्रमा का	अपागात्	अलग करदें
रोहितम्	लाल	+ तर्हि	तो
रूपम्	रूप है	+ चन्द्रस्य	चन्द्रमा का
तत्	वह	चन्द्रत्वम्	चन्द्रत्व
तेजसः	तेजका है	विकारः	विकार
यत्	जो	नामधेयम्	नाम
शुक्लम्	श्वेत है	वाचा	वाणी करके
तत्	वह	आरम्भणम्	कथनमात्र है
अपाम्	जलका है	तस्मात्	इसलिये
यत्	जो	+ एतानि	ये
कृष्णम्	श्याम है	त्रीणि	तीनों
तत्	वह	रूपाणि	रूप
अन्नस्य	अन्नकाहेयानी पृथ्वी का है	इति	ऊपर कहे हुए
+ यदि	अगर	एव	निश्चय करके
चन्द्रात्	चन्द्रमा से	सत्यम्	सत्य हैं

भावार्थ ।

जो चन्द्रमा में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर इन तीनों रूपों को अलग करके चन्द्रमा देखाजाय तो केवल नाममात्र शब्द का विषय पाया जायगा, इसलिये ऊपर कहे हुये तीनों रूप सत्य हैं, इनसे पृथक् चन्द्रमा की कोई सत्ता नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

यद्विद्युतो रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, विद्युतः, रोहितम्, रूपम्, तेजसः, तत्, रूपम्, यत्, शुक्लम्, यत्, कृष्णम्, तत्, अन्नस्य, अपागात्, विद्युतः, विद्युत्त्वम्, वाचा, आरम्भणम्, विकारः, नामधेयम्, त्रीणि, रूपाणि, इति, एव, सत्यम् ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यत्=जो	+यत्=जो
विद्युतः=बिजुली का	शुक्लम्=सफ़ेद है
रोहितम्=लाल	तत्=वह
रूपम्=रूप है	अपाम्=जलका है
तत्=वह	यत्=जो
तेजसः=अग्नि का है	कृष्णम्=श्याम है

तत्=वह
अन्नस्य=अन्न यानी
पृथ्वी का है
विद्युतः=बिजुली से
त्रीणि=तीनोंरूपों को
अपागात्=अलग करदेवें
+तर्हि=तो
विद्युतः=बिजुली का
विद्युत्त्वम्=विद्युत्त्व
विकारः=विकार
नामधेयम्=नाम
वाचा=वाणी करके
आरम्भणम्=कथनमात्र
+शिष्यते=रहता है
तस्मात्=इसलिये
+एतानि=यही
त्रीणि=तीनों
रूपाणि=रूप
इति=ऊपरकहेहुए
एव=निश्चयकरके
सत्यम्=सत्य हैं

भावार्थ ।

जो बिजुली में लालरूप है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जल का है, जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर इन रूपों को अलग करके बिजुली देखी जाय तो वह केवल नाममात्र शब्द का विषय पाई जायगी, इसलिये ऊपर कहे हुये तीनों रूप सत्य हैं, इनसे पृथक् बिजुली की कोई सत्ता नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञात-मुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

एतत्, ह, स्म, वै, तत्, विद्वांसः, आहुः, पूर्वे, महा-

शालाः, महाश्रोत्रियाः, न, नः, अद्य, कश्चन, अश्रुतम्, अमतम्, अविज्ञातम्, उत्, आहरिष्यति, इति, हि, एभ्यः, विदाञ्चकुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतत्	इसको यानी त्रिवृत्करण को	एतत्	उसको
विद्वांसः	जानते हुये	अश्रुतम्	नहीं सुना हो
पूर्वे	पूर्वकाल के	अमतम्	नहीं समझा हो
महाशालाः	बड़े गृहस्थ	अविज्ञातम्	नहीं जाना हो
+च	और	+यम्	जिसको
महाश्रोत्रियाः	बड़े श्रोत्रिय आचार्य	अद्य	अब
ह	स्पष्ट	उदाहरिष्यति	लोग कहेंगे
आहुःस्म	कहते भये कि	+च	और
नः	हमारे कुल में	ते	वे आचार्य
कश्चन	कोई भी	हि	भली प्रकार
इति	ऐसा	एभ्यः	इन्हींतीनोंरूपों से
न	नहीं	वै	निश्चय करके
बभूव	हुआ है	+सर्वम्	सबको
+यः	जो	विदाञ्चक्रुः	जानते भये

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रिय-पुत्र ! पूर्वकाल के बड़े गृहस्थ और बड़े श्रोत्रिय आचार्य सत्-

चैतन्य को जानकर और त्रिवृत्करण को जानकर ऐसा कहते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा नहीं हुआ है जिसने उसको न सुना हो, न समझा हो, न जाना हो और न अनुभव किया हो हे सौम्य ! हमारे लिये अब कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो सुनने योग्य, समझने योग्य और जानने योग्य बाकी रही हो, वे हमारे पूर्वजलोग त्रिवृत्करणके रूपोंको जानकर सब कुछ जानते भये अब जोकोई हैं उन्हों ने भी उन्हीं पूर्वज आचार्यों करके ही सब वस्तुको जाना है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाᳬरूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यद्‌ु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उ, रोहितम्, इव, अभूत्, इति, तेजसः, तत्, रूपम्, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यत्, उ, शुक्लम्, इव, अभूत्, इति, अपाम्, रूपम्, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यत्, उ, कृष्णम्, इव, अभूत्, इति, अन्नस्य, रूपम्, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्=जो		इति=निश्चय करके	
रोहितम्=लाल		तेजसः=अग्नि का है	
इव=सा		इति=ऐसा	
रूपम्=रूप		ते=वे आचार्य	
अभूत्=होता भया		विदाञ्चक्रुः=जानते भये	
तत्=वह		उ=और	

यत्=जो
शुक्लम्=श्वेत
रूपम्=रूप
इव=सा
अभूत्=होता भया
तत्=वह
इति=निश्चय करके
अपाम्=जल का है
इति=ऐसा
विदाश्चक्रुः=जानते भये
उ=और
यत्=जो
कृष्णम्=श्याम
रूपम्=रूप
इव=सा
अभूत्=होता भया
तत्=वह
इति=निश्चय करके
अन्नस्य=अन्न यानी पृथ्वी का है
इति=ऐसा
ते=वे आचार्य
उ=निस्सन्देह
विदाश्चक्रुः=जानते भये

भावार्थ ।

हे प्रियपुत्र ! हमारे कुलके विद्वान् वृद्धों ने एकत्र होकरके पदार्थ देखने के पश्चात् विचार करके निश्चय किया कि इसमें जो लालरूप दीखता है वह अग्नि का है, जो श्वेतरूप है वह जलका है, और जो श्यामरूप है वह पृथ्वी का है, अगर इन तीनों रूपों को अलग करके पदार्थ देखाजाय तो उसका कहीं पता नहीं, ये तीनों तत्त्व यानी अग्नि, जल, पृथ्वी अभिन्ननिमित्त उपादानकारण करके सत् चैतन्य के कार्य होने से तद्रूपही हैं, इसलिये सत्चैतन्य परमात्मा से पृथक् किसी वस्तु की सत्ता नहीं है, उसको जानकर सब पदार्थ वही रूप जाना जाताहै ॥ ६ ॥

मूलम् ।

यद्वविज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाᳬं

समास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा खलु नु सौम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ७ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यत्, उ, अविज्ञातम्, इव, अभूत्, इति, एतासाम्, एव, देवतानाम्, समासः, इति, तत्, विदाञ्चक्रुः, यथा, खलु, नु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः, पुरुषम्, प्राप्य, त्रिवृत्, त्रिवृत्, एकैका, भवति, तत्, मे, विजानीहि, इति॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उ	और	समासः	समुदाय है
यत्	जो	इति	इसप्रकार
अविज्ञातम्	अतिसूक्ष्म यानी बुद्धि का अविषय	ते	वे वृद्धआचार्य
इव	ऐसा	विदाञ्चक्रुः	जानतेभये
अभूत्	होताभया	सौम्य	हे प्रियपुत्र
तत्	वह	यथा	जिसप्रकार
एतासाम्	इन	खलु नु	निश्चय करके
एव	ही	इमाः	ये
देवतानाम्	देवताओंका यानी अग्नि जल पृथ्वी का	तिस्रः	तीनों
		देवताः	देवता अग्नि जल पृथ्वी
		पुरुषम्	चेतनदेवको
		प्राप्य	प्राप्त होकर
		त्रिवृत्	तीन

त्रिवृत्=तीन विभाग	तत्=उसको
इति=होकरके	मे=मुझसे
एकैका=एक एक	इति=निम्नप्रकार
भवति=होते हैं	विजानीहि=तू जान

भावार्थ ।

हे श्वेतकेतो ! जो कुछ कि अतिसूक्ष्म होनेके कारण हमारे जेष्ठ श्रेष्ठ पितामह ने नहीं समझा उसके निमित्त जान लिया कि वह इन्हीं तीनों देवताओं यानी अग्नि, जल, पृथ्वी के मेल से है, यानी उनसे पृथक् इसकी कोई सत्ता नहीं है, और जिसप्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी से हस्त पादवाला शरीर उत्पन्न होकर चैतन्यदेव को प्राप्त हुआ है, उस मिले हुये त्रिवृत्करण विभागों के हर एक भागको अब मुझसे तू जान ॥ ७ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, अशितम्, त्रेधा, विधीयते, तस्य, यः, स्थविष्ठः, धातुः, तत्, पुरीषम्, भवति, यः, मध्यमः, तत्, मांसम्, यः, अणिष्ठः, तत्, मनः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अशितम्=भोजन किया हुआ		पुरीषम्=पुरीष	
अन्नम्=अन्न		भवति=है	
त्रेधा=तीन भाग में		यः=जो	
विधीयते=विभाग किया जाता है		मध्यमः=मध्यम है	
तस्य=तिस अन्नका		तत्=वह	
यः=जो		मांसम्=मांस है	
स्थविष्ठः=स्थूल		+च=और	
धातुः=भाग है		अणिष्ठः=सूक्ष्मभाग है	
तत्=वह		तत्=वह	
		मनः=मन	
		भवति=है	

भावार्थ ।

हे पुत्र ! जो जीवों करके अन्न भोजन किया जाता है, उसके तीन विभाग होते हैं, तिसमें से जो स्थूलभाग है उसका पुरीष बनता है, जो मध्यमभाग है उसका मांस बनता है, और जो सूक्ष्मभाग है उसका मन होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं यो-ऽणिष्ठः स प्राणः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

आपः, पीताः, त्रेधा, विधीयन्ते, तासाम्, यः,

स्थविष्ठः, धातुः, तत्, मूत्रम्, भवति, यः, मध्यमः, तत्, लोहितम्, यः, अणिष्ठः, सः, प्राणः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पीताः	=पिया हुआ	भवति	=है
आपः	=जल	यः	=जो
त्रेधा	=तीन भागमें	मध्यमः	=मध्यम है
विधीयन्ते	=विभाग होता है	तत्	=वह
तासाम्	=उनमें से	लोहितम्	=रक्त है
यः	=जो	यः	=जो
स्थविष्ठः	=स्थूल	अणिष्ठः	=सूक्ष्म है
धातुः	=भाग है	सः	=वह
तत्	=वह	प्राणः	=प्राण
मूत्रम्	=मूत्र	भवति	=है

भावार्थ ।

हे पुत्र ! जीवों करके पियेहुये जल के तीन भाग होते हैं, उसमें जो स्थूलभाग है उसका मूत्र बनता है, जो मध्यमभाग है उसका रक्त बनता है, और जो सूक्ष्मभाग है उसका प्राण होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तेजः, अशितम्, त्रेधा, विधीयते, तस्य, यः, स्थविष्ठः, धातुः, तत्, अस्थि, भवति, यः, मध्यमः, सः, मज्जा, यः, अणिष्ठः, सा, वाक् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अशितम्	=खाया हुआ	अस्थि	=हड्डी
तेजः	=तेज यानी घृत तेल आदि	भवति	=है
त्रेधा	=तीन भाग में	यः	=जो
विधीयते	=विभाग किया होता है	मध्यमः	=मध्यमभाग है
तस्य	=उसका	सः	=वह
यः	=जो	मज्जा	=मज्जा है
स्थविष्ठः	=स्थूल	यः	=जो
धातुः	=भाग है	अणिष्ठः	=सूक्ष्मभाग है
तत्	=वह	सा	=वह
		वाक्	=वाक् इन्द्रिय
		+ भवति	=है

भावार्थ ।

हे पुत्र ! खाये हुये उद्दीपन घृत तेलादि वस्तु के भी तीन भाग होते हैं, उसके स्थूलभाग से हड्डी बनती है, मध्यमभागसे मज्जा बनती है, और सूक्ष्मभाग से वाक् इन्द्रिय होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अन्नमयꣳहि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ४ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	भूयः	=फिर
अन्नमयम्	=अन्नमय	इति	=इसको
हि	=निश्चयकरके	एव	=ही
मनः	=मन है	माम्	=मुझसे
आपोमयः	=जलमय	विज्ञापयतु	=कहें
प्राणः	=प्राण है	इति	=यह
तेजोमयी	=अग्निमय	+श्रुत्वा	=सुनकर
वाक्	=वाणी है	सौम्य	=हे प्रियपुत्र
इति	=यह	तथा	=बहुत अच्छा
+श्रुत्वा	=सुनकर	+एवम्	=ऐसा
श्वेतकेतुः	=श्वेतकेतु ने	+उद्दालकः	=उद्दालक ने
उवाच	=कहा कि	ह	=स्पष्ट
भगवान्	=आप	उवाच	=कहा

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! अन्न का सूक्ष्मअंश मन है, जल का प्राण है, अग्नि का वाणी है, यह उपदेश अतिप्रिय लगने व अच्छीतरह न समझने के कारण श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषिसे कहता है कि हे प्रभो ! आप इसीको फिर सविस्तार कहें उद्दालक ऋषि

ने कहा कि बहुत अच्छा सुनो कहता हूं ॥ ५ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

दध्नः सौम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

दध्नः, सौम्य, मथ्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, तत्, सर्पिः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन	ऊर्ध्वः	ऊपर
मथ्यमानस्य	मथते हुये	समुदीषति	निकल आता है
दध्नः	दही का	+ च	और
यः	जो	तत्	वही
अणिमा	सूक्ष्मभाग है	सर्पिः	घी
सः	वह	भवति	होता है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! दही के मथने से जो उसका सूक्ष्म अंश ऊपर निकल आता है सोई घी कहलाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सौम्य, अन्नस्य, अश्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, उर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, तत्, मनः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र	सः	वह
एवम्	इसी प्रकार	ऊर्ध्वः	ऊपर
एव	निश्चय करके	समुदीषति	उठता है
अश्यमानस्य	खाये हुये	+ च	और
अन्नस्य	अन्न का	तत्	वह
यत्	जो	खलु	ही
अणिमा	सूक्ष्म अंश है	मनः	मन
		भवति	होता है

भावार्थ ।

हे प्रियपुत्र ! इसी प्रकार खाये हुये अन्न का जो सूक्ष्म अंश ऊपर उठ आता है वही मन होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अपाꣳ सौम्य पीयमानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अपाम्, सौम्य, पीयमानाम्, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत्, ईषति, सः, प्राणः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	ऊर्ध्वः	=ऊपर को
पीयमानाम्	=पान किये हुये	समुदीषति	=प्राप्त होता है
अपाम्	=जल का	+च	=और
यः	=जो	सः	=वही
अणिमा	=सूक्ष्मभाग है	प्राणः	=प्राण
सः	=वह	भवति	=होता है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! पिये हुये जलका जो सूक्ष्म भाग ऊर्ध्व को जाता है वही प्राण होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तेजसः सौम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तेजसः, सौम्य, अश्यमानस्य, यः, अणिमा, सः, ऊर्ध्वः, सम्, उत, ईषति, सा, वाक्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	अणिमा	=सूक्ष्मभाग
अश्यमानस्य	=खाये हुये	+अस्ति	=है
तेजसः	=तेज यानी घृत तैलादि का	सः	=वह
		ऊर्ध्वः	=ऊपर को
यः	=जो	समुदीषति	=प्राप्त होता है

+च=और
सा=वही
वाक्=वाणी
भवति=होती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! खाये हुये घृत तेलादिकों का जो सूक्ष्म अंश ऊपर को प्राप्त होता है उसीकी वाणी होती है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अन्नमयꣳहि सौम्य मन आपोमयः प्राणास्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ५ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे प्रियदर्शन	इति=यह
हि=निश्चय करके	+श्रुत्वा=सुनकर
अन्नमयम्=अन्नमय	+श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
मनः=मन है	उवाच=कहा कि
आपोमयः=जलमय	भगवान्=हे पिता आप
प्राणः=प्राण है	भूयः=फिर
तेजोमयी=अग्निमय	इति=इसको
वाक्=वाणी है	एव=ही

माम्=मुझसे	तथा=तथास्तु
विज्ञापयतु=कहें	+पिता=उद्दालकपिता
इति=ऐसा	ह=स्पष्ट
+श्रुत्वा=सुनकर	उवाच=कहता भया

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! अन्न का सूक्ष्म अंश मन है, जल का प्राण है, अग्नि की वाणी है, ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे प्रभो ! आप इसी को फिर सविस्तार कहें उद्दालक ने कहा कि अच्छा सुनो कहता हूं ॥ ५ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

षोडशकलः सौम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपः पिबापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

षोडशकलः, सौम्य, पुरुषः, पञ्चदश, अहानि, मा, आशीः, कामम्, अपः, पिब, आपोमयः, प्राणः, न, पिबतः, विच्छेत्स्यते, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सौम्य=हे प्रियपुत्र	अतः=इस लिये
षोडशकलः=सोलह कला युक्त	पञ्चदश=पन्द्रह
पुरुषः=पुरुष है,	अहानि=दिन तक
	मा=मत

आशीः=भोजन कर	पिबतः=जल पीते हुये पुरुष का
अपः=जल को	प्राणः=प्राण
कामम्=यथेच्छित	न=नहीं
पिब=पीता रह	विच्छेत्स्यते=पृथक् होता है
आपोमयः=जलमय	
प्राणः=प्राण है	

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे पुत्र ! एक दिवस भोजन किये हुये अन्नका जो सूक्ष्म अंश है सोई मनकी एक कलाशक्ति है, जब यह पुरुष षोडश दिन भोजन करता है तब सोलह अंश से युक्त हुआ मन षोडश कलावाला कहलाता है, तिस मनसे युक्त हुआ पुरुष सब कामके करने में समर्थ होता है, इस बातके निश्चय करने के लिये कि विना अन्न के खायेहुये मन शक्तिहीन होजाता है और मन के शक्तिहीन होने से पुरुष भी शक्तिहीन होजाता है, हे प्रियपुत्र ! तुम पन्द्रह दिन तक भोजन मत करो, केवल जल प्राणरक्षार्थ पिया करो, क्योंकि प्राण जलका सूक्ष्म अंश है, जबतक पुरुष जल पिया करता है, तब तक उसका प्राण उससे पृथक् नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स ह पञ्चदशाहानि नाशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सौम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, पञ्चदश, अहानि, न, आशाथ, ह, एनम्, उप, ससाद, किम्, ब्रवीमि, भोः, इति, ऋचः, सौम्य,

यजूंषि, सामानि, इति, सः, ह, उवाच, न, वै, मा, प्रतिभान्ति, भोः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह श्वेतकेतु
पञ्चदश	पन्द्रह
अहानि	दिन तक
न	नहीं
आशाथ	भोजन करता भया
ततः	तत्पश्चात्
एनम्	उस अपने पिता
+उद्दालकम्	उद्दालक के पास
उपससाद	जाता भया
+च	और
इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
भोः	हे पिता
किम्	क्या मैं
ब्रवीमि	कहूं
+इति	ऐसा

अन्वयः	पदार्थ
+श्रुत्वा	सुन कर
+पिता	पिता ने
उवाच	कहा कि
सौम्य	हे प्रियपुत्र
ऋचः	ऋग्वेद
यजूंषि	यजुर्वेद
सामानि	साम वेद के मंत्रों को
ब्रूहि	पढ़
इति	ऐसा
+श्रुत्वा	सुन कर
सः	उस श्वेतकेतुने
उवाच	कहा कि
भोः	हे पिता
वै	निश्चय करके
मा	मुझको
तानि	वे मंत्र
न	नहीं
प्रतिभान्ति	स्मरण आते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अपने पिता की आज्ञानुसार श्वेतकेतुने पन्द्रहदिन

तक भोजन नहीं किया और फिर अपने पिता के पास जाकर कहा कि अब मैं क्या कहूं ऐसा सुनकर उसके पिता ने कहा कि हे पुत्र ! तू ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मंत्रों को पढ़, उसने उत्तर दिया कि हे पिता ! भोजन न करने से मन की दुर्बलता के कारण वे मंत्र मुझको नहीं याद आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तꣳ होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवꣳ सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यथा, सौम्य, महतः, अभ्याहितस्य, एकः, अङ्गारः, खद्योतमात्रः, परिशिष्टः, स्यात्, तेन, ततः, अपि, न, बहु, दहेत्, एवम्, सौम्य, ते षोडशानाम्, कलानाम्, एका, कला, अतिशिष्टा, स्यात्, तया, एतर्हि, वेदान्, न, अनुभवसि, अशान, अथ, मे, विज्ञास्यसि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ पिता=उद्दालक पिता		उवाच=कहता भया कि	
तम्=उस श्वेतकेतु से		सौम्य=हे प्रियपुत्र	
इति=ऐसा		यथा=जिस प्रकार	
ह=स्पष्ट		महतः=बड़ी	

अभ्याहितस्य=प्रज्वलित	कला=कला
अग्नेः=अग्नि	परिशिष्टा=शेष
एकः=एक	स्यात्=रह गई है
अङ्गारः=चिनगारी	तया=उस एककलासे
खद्योतमात्रः=जुगुनूमात्र	एतर्हि=इस समय
परिशिष्टः=शेष	वेदान्=वेदों को
स्यात्=रहजावे	न=नहीं
ततः=तो	अनुभवसि=अनुभव कर सक्ता है तू
तेन=तिस करके	अथ=अब
बहु=बहुत सा ईंधन	+त्वम्=तू
न=नहीं	अन्नम्=अन्नको
दहेत्=जलसक्ता है	अशान=खा
सौम्य=हे सौम्य	+ततः=तत्पश्चात्
एवम्=इसी प्रकार	मे=मेरे
ते=तुम्हारे मनकी	+वचनम्=उपदेश को
षोडशानाम्=सोलह	विज्ञास्यसि=ठीक २ समुझेगा
कलानाम्=कलाओं में से	
एका=एक	

भावार्थ।

हे सौम्य ! उद्दालकऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र! जिस प्रकार ईंधन करके प्रज्वलित अग्नि की समाप्ति होने पर एक चिनगारी जुगनू की तरह शेष रहजाती है और वह चिनगारी बहुत से ईंधन के जलाने में असमर्थ होती है इसी

प्रकार हे पुत्र ! तुम्हारे मन की पन्द्रह कला अन्न के न खाने से नष्ट होगई हैं, केवल एक कला रहगई है, सो उस करके वेदोंका अनुभव तू नहीं कर सक्ता है, अब थोड़ा थोड़ा अन्न क्रमशः प्रतिदिन खाया कर, फिर मेरे उपदेश को ठीक ठीक समुझेगा ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स हाशाथहैनमुपससाद तꣳ ह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्वꣳ ह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, आशाथ, ह, एनम्, उपससाद, तम्, ह, यत्, किञ्च, पप्रच्छ, सर्वम्, ह, प्रतिपेदे ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्	तम्	उस श्वेतकेतु से
सः	वह श्वेतकेतु	यत्	जो
ह	भलीप्रकार	किञ्च	कुछ वेदादि विषयक
+ अन्नम्	अन्न को	पप्रच्छ	पूछा गया
आशाथ	खाता भया	तत्सर्वम्	उस सबको
+ च	और	ह	स्पष्ट
एनम्	अपने पिताके समीप	प्रतिपेदे	उसने कह सुनाया
उपससाद	प्राप्त हुआ		
तदा	तब		

भावार्थ ।

हे सौम्य! वह श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि की आज्ञा-

नुसार क्रमशः पन्द्रहदिन तक थोड़ा थोड़ा अन्न खाता रहा, और फिर अपने पिता के पास गया, तब जो कुछ उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से वेदादिविषयक प्रश्न किये उन सब का उसने ठीक ठीक उत्तर दिया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तꣳ होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्रज्वालयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥ *

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यथा, सौम्य, महतः, अभ्याहितस्य एकम्, अङ्गारम्, खद्योतमात्रम्, परिशिष्टम्, तम्, तृणैः, उपसमाधाय, प्रज्वालयेत्, तेन, ततः, अपि, बहु, दहेत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+पिता	=उद्दालक ऋषि ने	महतः	=बड़ी
तम्	=उस श्वेतकेतु से	अभ्याहितस्य	=प्रज्वलित
ह	=स्पष्ट	+अग्नेः	=अग्नि के
उवाच	=कहा कि	तम्	=उस
सौम्य	=हे प्रियपुत्र	एकम्	=एक
यथा	=जिस प्रकार	खद्योतमात्रम्	=जुगनूमात्र

* इस मन्त्रका सम्बन्ध अगले मन्त्र से है ।

अङ्गारम्=चिनगारी को	तेन=उस चिनगारी करके
तृणैः=तिनकों से	ततः=उससे
उपसमाधाय = आच्छादन करके	बहु=अधिक ईंधन
प्रज्वालयेत्=प्रज्वलित करे	अपि=भी
+ तर्हि=तो	दहेत्=जलजाती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जिस प्रकार बड़ी प्रज्वलित अग्नि की शेष एक चिनगारी जुगनूमात्र रहजाती है और घास पाकर प्रज्वलित हुई अपने से बड़े ईंधन को जला देती है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

एवꣳ सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, सौम्य, ते, षोडशानाम्, कलानाम्, एका, कला, अतिशिष्टा, अभूत्, सा, अन्नेन, उपसमाहिता, प्राज्वालीत्, तया, एतर्हि, वेदान्, अनुभवसि, अन्नमयम्, हि, सौम्य, मनः, आपोमयः, प्राणः, तेजोमयी, वाक्, इति, तत्, ह, अस्य, विजज्ञौ, इति, विजज्ञौ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	अनुभवसि	=तू अब अनुभव करता है
एवम्	=इसी प्रकार	हि	=क्योंकि
ते	=तेरे मनकी	सौम्य	=हे प्रियपुत्र
षोडशानाम्	=सोलह	अन्नमयम्	=अन्नमय
कलानाम्	=कलाओं में से	हि	=निश्चय करके
एका	=एक	मनः	=मन है
कला	=कला	आपोमयः	=जलमय
अतिशिष्टा	=शेष	प्राणः	=प्राण है
अभूत्	=रहगई थी	तेजोमयी	=अग्निमय
सा	=वह	वाक्	=वाणी है
+ एव	=ही	इति	=इस प्रकार
अन्नेन	=अन्न करके	तत्	=उस अपने पिता के उपदेश को
उपसमाहिता	=बढ़ी हुई	सः	=वह श्वेतकेतु
प्राज्वालीत्	=प्रज्वलित है	विजज्ञौ	=मानता भया
तया	=उसी करके	इति	=ऐसा
एतर्हि	=इन	विजज्ञौ	=मानता भया
वेदान्	=वेदों को		

भावार्थ ।

उसी प्रकार हे प्रियपुत्र ! तेरे मन की सोलह कलाओं में से एक कला जो शेष रह गई थी वही अन्नकरके बढ़ी हुई प्रकाशमान होगई है, उसी करके तू सब वेदों को अब अनुभव करता है, यानी उनको पढ़ता है, और समझता है, क्योंकि हे पुत्र ! मन

अन्नका सूक्ष्म अंश है, प्राण जल का सूक्ष्म अंश है, और वाणी अग्नि का सूक्ष्म अंश है, इस प्रकार श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालकऋषिका उपदेश मानता भया ॥

उद्दालकऋषि चन्द्रमाका दृष्टान्त देकर अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाते हैं कि हे सौम्य ! जैसे चन्द्रमा कृष्णपक्ष में एक एक कला प्रतिदिन घटने से पन्द्रहवें दिन एक कलावाला रहजाता है, और वह वस्तु के प्रकाश करने में असमर्थ होता है, पर जब शुक्ल पक्ष आता है तब उसकी प्रतिदिन एक एक कला बढ़ती है, और पूर्णिमाकी रात्रि में वह चन्द्रमा षोडशकलायुक्त होकर सब पदार्थों के भलीप्रकार प्रकाशने में समर्थ होता है, इसीतरह हे पुत्र ! जब तूने पन्द्रह दिनतक अन्न नहीं खाया, तब तेरे मन की केवल एक कला शेष रहगई थी, और वह वेदादिकों के ग्रहण करने में असमर्थ होती भई, पर जब तू थोड़ा थोड़ा अन्न पन्द्रह दिन तक खाता रहा, तब तेरा मन सोलह कलाओं से युक्त होकर वेदादिकों के पढ़ने व समझने में समर्थ होता भया, इस अपने पिता के उपदेश को कि मनका अन्नमयत्व, प्राणका जलमयत्व और वाणी का अग्निमयत्व जो पिता ने कहा है सो ठीक है ॥ ६ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनᳫं स्वपितीत्याचक्षते स्वᳫं ह्यपीतो भवति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उद्दालकः, ह, आरुणिः, श्वेतकेतुम्, पुत्रम्, उवाच, स्वप्नान्तम्, मे, सौम्य, विजानीहि, इति, यत्र, एतत्, पुरुषः, स्वपिति, नाम, सता, सौम्य, तदा, सम्पन्नः, भवति, स्वम्, अपीतः, भवति, तस्मात्, एनम्, स्वपिति, इति, आचक्षते, स्वम्, हि, अपीतः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आरुणिः	=अरुण का पुत्र	सः	=वह
उद्दालकः	=उद्दालक ऋषि	+ यदा	=जब
पुत्रम्	=अपने पुत्र	इति	=ऐसा
श्वेतकेतुम्	=श्वेतकेतु से	नाम	=होता है
इति	=इस प्रकार	तदा	=तब
ह	=निश्चयपूर्वक	सौम्य	=हे प्रियदर्शन
उवाच	=कहता भया कि	सता	=सत्परमात्मा से
सौम्य	=हे प्रियपुत्र	सम्पन्नः	=संयुक्त
स्वप्नान्तम्	=स्वप्न के अन्त बिषे सुषुप्तिको	भवति	=होताहै यानी
मे	=मुझसे	स्वम्	=अपनेस्वरूपमें
विजानीहि	=जान तू	अपीतः	=लय
यत्र	=जिसमें	भवति	=होजाता है
एतत्	=यह	तस्मात्	=इसी कारण
पुरुषः	=पुरुष	एनम्	=यह
स्वपिति	=सोता है	स्वपिति	=सोता है
+ च	=और	इति	=ऐसा लोग

आचक्षते=कहते हैं	स्वम्=अपने स्वरूपको
हि=क्योंकि	अपीतः=प्राप्त
+सः=वह जीवात्मा	भवति=होजाता है

भावार्थ ।

अरुण का पुत्र उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! स्वप्न के पश्चात् सुषुप्ति आती है, इसमें यह पुरुष यानी जीवात्मा विश्राम करता है, और तब वह अपने सच्चिदानन्द परमात्मा को यानी अपने वास्तविक रूप को, प्राप्त हो जाता है और तभी उसको लोग कहते हैं कि यह सोता है क्योंकि जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित होजाता है, माया और उसके साथ चेतन और उसमें चेतन का आभास तीनों मिलकर ईश्वर-संज्ञा कहलाता है, अन्तःकरणविशिष्ट चेतन और उसमें चेतन का आभास जीवसंज्ञा कहलाता है, यदि जीव की उपाधि अन्तः-करण से पृथक् कर दीजाय, और ईश्वर की उपाधि माया अ-लग कर दीजाय तो जीव का चेतनभाग और ईश्वर का चेतन-भाग दोनों एकही होते हैं, यानी जो चेतन जीवका है वही चेतन ईश्वर का है, जैसे चेतन व्यापक है वैसे माया भी व्यापक है, क्योंकि चेतन व्यापक माया में व्याप्त है, और अन्तःकरण मलिन माया यानी अविद्या का कार्य है, और जो चैतन्य आत्मा सुषुप्ति यानी कारण शरीर में स्थित है, वही स्वप्न में यानी सूक्ष्म शरीर में स्थित है, जब जीव जाग्रत् व स्वप्न अवस्था के व्यवहारों से पृथक् होजाता है तब विश्रामनिमित्त सुषुप्ति अवस्था को लौट जाता है, और वहां मनादिक कर्मों के संस्कारों को लेकर लय होजाता है, इसलिये जीव का चैतन्यभाग अपने वास्तविक चैतन्य यानी ब्रह्म में प्राप्त होजाता है, और तब वह आनन्दभुक् कहलाता है, और उस अवस्था में यह न कर्ता है न भोक्ता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपाश्रयते प्राणबन्धनꣳ हि सोम्य मन इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, शकुनिः, सूत्रेण, प्रबद्धः, दिशम्, दिशम्, पतित्वा, अन्यत्र, आयतनम्, अलब्ध्वा, बन्धनम्, एव, उपश्रयते, एवम्, एव, खलु, सोम्य, तत्, मनः, दिशम्, दिशम्, पतित्वा, अन्यत्र, आयतनम्, अलब्ध्वा, प्राणम्, एव, उपाश्रयते, प्राणबन्धनम्, हि, सोम्य, मनः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सोम्य	हे प्रियदर्शन
यथा	जिस प्रकार
सूत्रेण	सूत से
प्रबद्धः	बँधा हुआ
शकुनिः	पक्षी
दिशम् दिशम्	चारों तरफ़
पतित्वा	घूम फिर करके
अन्यत्र	दूसरी जगह
आयतनम्	बैठने के लिये स्थान को
अलब्ध्वा	न पाकर
बन्धनम्	बँधे हुये का
एव	ही
उपाश्रयते	आश्रय लेता है
एवम्	इसी प्रकार
सोम्य	हे प्रियपुत्र

तत्=वह
मनः=मन
एव=भी
दिशम् दिशम्=चारों तरफ़
पतित्वा=घूम फिर करके
अन्यत्र=दूसरी जगह
आयतनम्=विश्राम यानी निमित्त स्थान को
अलब्ध्वा=न पाकर
प्राणम्=प्राण यानी ब्रह्म का
एव=ही
उपाश्रयते=आश्रय लेता है
हि=क्योंकि
मनः=मन यानी जीव का
खलु=निश्चय करके
इति=यह
प्राणबन्धनम्=प्राण यानी ब्रह्म ही ठहरने की जगह है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! जिस तरह सूतसे बांधाहुआ पक्षी चारों तरफ़ इधर उधर घूमकर मनुष्य के हाथ में स्थित अड्डेपर आकर विश्रामके लिये आश्रय लेताहै, उसीतरह हे कमललोचन ! वह मन यानी मनविशिष्ट चेतन अपना जीवात्मा चारों तरफ़ घूम घुमाकर और दूसरी जगह न ठहरकर प्राण यानी प्राणउपहित चेतन अथवा ब्रह्म का सुषुप्ति में आश्रय लेता है, क्योंकि मन यानी जीवात्मा के ठहरने की जगह निश्चय करके प्राणउपहित ब्रह्म ही है, तात्पर्य इस मन्त्र का यह है कि जीवात्मा जाग्रत् अवस्था में नेत्र में स्थित होकर संसार के सब प्रपञ्चों को रचता है, और उनका द्रष्टा भी होता है, उसी तरह स्वप्न अवस्था में कण्ठविषे स्थित होकर अपने शरीर के अन्दरही सब प्रपञ्चों को रचता है, और उनका द्रष्टा होता है, और इसी प्रकार जब व्यवहार करते करते थक जाताहै तब सब प्रपञ्चों से अलग होकर सुषुप्ति में

अपने अधिष्ठान ब्रह्म के साथ विश्राम करने लगताहै, फिर उस दशा में प्रपञ्च का कहीं पता नहीं लगता है, केवल उसका संस्कार रहजाता है, वही संस्कार फिर जीव को बाहर लाकर पूर्ववत् बाह्याभ्यन्तर व्यवहारों में लगा देताहै, हे पुत्र ! मनुष्य जैसे बुलबुल चिड़िया को पालते हैं, और उसके पेडू में एक सूत बांध देते हैं और उसको एक लोहे के अड्डेपर बिठाल देते हैं, वह इधर उधर कूद फांदकर उसी अड्डे पर आ बैठताहै, और विश्राम लेताहै, उसी तरह हे प्यारे पुत्र ! इस जीवात्मा का अड्डा सुषुप्ति अवस्था में ब्रह्म है, जोकि मनुष्य के अन्तःकरण विषे स्थित है, उस अड्डेपर जीव स्वप्न और जाग्रत् के व्यवहारों से थकित होकर जा बैठता है, और थोड़े काल तक पक्षीवत् आराम पाता है, वासनारूपी सूत जीवका बन्धन है, अगर यह वासना कटजाय तो जीव ब्रह्म को प्राप्त होकर वहीं लय होजावे ॥ २ ॥

मूलम् ।

अशनापिपासे मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सौम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अशनापिपासे, मे, सौम्य, विजानीहि, इति, यत्र, एतत्, पुरुषः, अशिशिषति, नाम, आपः, एव, तत्, अशितम्, नयन्ते, तत्, यथा, गोनायः, अश्वनायः, पुरुषनायः, इति, एवम्, तत्, अपः, आचक्षते, अश-

नाय, इति, तत्र, एतत्, शुङ्गम्, उत्पतितम्, सौम्य, विजानीहि, न, इदम्, अमूलम्, भविष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र
इति	इसी प्रकार
अशनापिपासे	भूख प्यास की विद्या को
मे	मुझ से
विजानीहि	तू जान
यत्र	जब
नाम	प्रसिद्ध
एतत्	यह
पुरुषः	पुरुष
अशिशिषति	खानेकी इच्छा करता है
तत्	तब
अशितम्	खायेहुये अन्नको
आपः	जल
एव	निश्चय करके
नयन्ते	अन्दर ले जाकर हजम कर देताहै
तत्र	तब
तत्	उस
अपः	जलको
अशनाय	अशनाय
इति	नाम करके
आचक्षते	कहते हैं
यथा	जैसे
गोनायः	गौको लेजाने वाला गोनाय
अश्वनायः	घोड़े को लेजानेवाला अश्वनाय
पुरुषनायः	पुरुषको लेजानेवाला पुरुषनाय
आचक्षते	कहेजाते हैं
इति	इसी
एवम्	प्रकार
सौम्य	हे प्रियदर्शन
उत्पतितम्	उत्पन्न हुये
एतत्	इस
शुङ्गम्	अंकुररूपी शरीर को

+ त्वम्=तू	अमूलम्=जड़रहित
विजानीहि=जान कि	न=नहीं
इति=ऐसा	भविष्यति=है
इदम्=यह	

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे सौम्य, श्वेतकेतो ! अब तू भूख प्यास की विद्याको, यानी भूख लगने का क्या कारण है, और उसके पचने का क्या कारण है, मुझसे जान, जब पहिले का खाया हुआ अन्न जल करके पचजाता है, तब फिर यह पुरुष खाने की इच्छा करता है, और तभी खाये हुये अन्नको जल करके जिसको वह पीछे से पीता है, उसको अन्दर लेजाता है, यानी हजम कर देताहै, और इसी कारण उस जल का नाम अशनाय पड़ता है, जैसे गौको लेजानेवाले का नाम गोनाय, घोड़े को लेजानेवाले को अश्वनाय, और पुरुषों को लेजानेवाले का नाम पुरुषनाय होता है, चूंकि जल अन्न करके पुरुष के शरीर की पुष्टि होती है, इसलिये जल और अन्न इस शरीर के कारण हैं, क्योंकि बिना कारण के कार्य हो नहीं सकता है जैसे अंकुर को देखकर उसके कारण बीज के सूक्ष्म अंशका अनुभव होता है वैसेही पुरुष के शरीर को देखकर उसके कारण जल और पृथ्वी का अनुभव होता है, पृथ्वी और जल का कारण परमात्मा है, और चूंकि कार्य कारण-रूपही होता है, इसलिये अन्न जल सत् चैतन्यरूपही है, और अन्न जल का कार्य जो शरीर है वह भी सत् चैतन्यरूपही है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तस्य क मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सौम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सौम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन

सन्मूलमन्विच्छ सन्मूला सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, क्व, मूलम्, स्यात्, अन्यत्र, अन्नात्, एवम्, एव, खलु, सौम्य, अन्नेन, शुङ्गेन, अपः, मूलम्, अन्विच्छ, अद्भिः, सौम्य, शुङ्गेन, तेजः, मूलम्, अन्विच्छ, तेजसा, सौम्य, शुङ्गेन, सत्, मूलम्, अन्विच्छ, सन्मूलाः, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियपुत्र	+ च	और
अन्नात्	अन्न से	अद्भिः	जलरूप
अन्यत्र	पृथक्	शुङ्गेन	अंकुर द्वारा
तस्य	उस शरीर का	तेजः	अग्नि को
क्व	कौन दूसरा	जलस्य	जल का
मूलम्	कारण	मूलम्	कारण
स्यात्	होसक्ता है	अन्विच्छ	जानो
सौम्य	हे प्रियदर्शन	+च	और
अन्नेन	अन्नरूप	सौम्य	हे प्रियपुत्र
शुङ्गेन	अंकुर द्वारा	तेजसा	अग्निरूपी
अपः	जलको	शुङ्गेन	अंकुर द्वारा
एव	ही	सत्	सत् ब्रह्मको अग्नि का
मूलम्	अन्न का कारण	एव	ही
अन्विच्छ	जानो		

मूलम्=कारण
अन्विच्छ=जानो
सौम्य=हे प्रियात्मा
सन्मूलाः=सत् ब्रह्म है मूल जिसका
सदायतनाः=सत् ब्रह्म है निवासस्थान जिसका
सत्प्रतिष्ठाः=सत ब्रह्मही है समाप्ति-स्थान जिसका
एवम्=ऐसी
इमाः=इस
प्रजाः=सृष्टि को
अन्विच्छ=जानो

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रिय-पुत्र ! अन्न से पृथक् शरीर का दूसरा कारण कौन होसक्ता है, यानी और कोई दूसरा कारण नहीं है, अन्नही कारण है, जब यह पुरुष भोजन करता है तब उस भोजन किये हुये अन्नको पिया हुआ जल उदरविषे ले जाकर द्रवीभूत करता है, और तब जठराग्नि करके पचाया हुआ अन्न रसादि के परिणाम को क्रम से प्राप्त होताहै, फिर उस रससे रुधिर होताहै. और रुधिर से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र (वीर्य) होता है, और इसी प्रकार स्त्री करके भोजन किया हुआ अन्न रसादि के परिणाम को पाय अंतमें शोणित होता है, और तब अन्न के कार्य शुक्र शोणित के एकत्र होने से गर्भ विषे देह उत्पन्न होता है, और उस गर्भ विषे भी अन्नके रस करके ही वर्धमान होता है, और नित्य भोजन करने सेही शरीर की स्थिति रहती है, एतदर्थ रस अन्न का परिणाम होने से इस देहरूप अंकुर का कारण अन्नही है, और जब अन्न इसको नहीं मिलता है तब इसका अभाव होजाता है, इसी प्रकार अन्नरूप अंकुर का कारण जलही जानो, और जलरूप अंकुर का कारण अग्नि को जानो, और अग्निरूप अंकुर का कारण सत् ब्रह्मको

जानो, हे प्रियपुत्र ! जब तुम विचार करके इस जगत् की सृष्टि को देखोगे तब तुमको निश्चय होजायगा कि इस सृष्टि का सत् ब्रह्मही मूल है, सत् ब्रह्मही निवासस्थान है, और सत् ब्रह्म ही समाप्तिस्थान है, ब्रह्म से पृथक् जो कुछ इसका नाम रूप है वह केवल कहनेमात्र ही है, यानी ब्रह्म से पृथक् इसकी कोई सत्ता नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलम् भविष्यतीति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, पुरुषः, पिपासति, नाम, तेजः, एव, तत्, पीतम्, नयते, तत्, यथा, गोनायः, अश्वनायः, पुरुषनायः, इति, एवम्, तत्, तेजः, आचष्टे, उदन्य, इति, तत्र, एतत्, एव, शुङ्गम्, उत्पतितम्, सौम्य, विजानीहि, न, इदम्, अमूलम्, भविष्यति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	तत्पश्चात्	पिपासति	जल पीने की इच्छा करता है
यत्र	जब	तत्	तब
नाम	प्रसिद्ध	तेजः	अग्नि
एतत्पुरुषः	यह पुरुष		

एव=निश्चय करके
पीतम्=पियेहुये जलको
नयते=शरीरके अन्दर शोषण करता है
+ च=और
+ तदा=तब
तत्=उसको
यथा=जैसे
गोनायः=गौ को लेजानेवालेका नामगोनाय
अश्वनायः=घोड़ेको लेजानेवालेका नाम अश्वनाय
+ च=और
पुरुषनायः=पुरुषोंको लेजानेवालेका नाम पुरुषनाय है
इत्येवम्=वैसेही
तत्तेजः=उस अग्निको
उदन्य=उदन्य
इति=नाम करके
आचष्टे=कहते हैं
सौम्य=हे प्रियपुत्र
तत्र=तिस बिषे
इति=ऐसा
विजानीहि=निश्चय करो कि
एतत्=यह
उत्पतितम्=उत्पन्न हुआ
शुङ्गम्=शरीररूपी अंकुर
अमूलम्=कारणरहित
एव=निश्चय करके
न=न
भविष्यति=होगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब पुरुष जलको पीताहै तब आभ्यन्तरीय अग्नि उसको शोषण कर

लेता है, और फिर उसको रक्त और वीर्य बनाकर सारे शरीर में फैला देताहै, जिस करके यह अग्नि ऐसा करने को समर्थ हुआ है उसी सत् ब्रह्म को इसका कारण जानो दूसरा कोई कारण नहीं है जब यह अग्नि जल को शोषण कर इसकी शक्ति को सारे शरीर में प्रवेश करता है तब उसका नाम उदन्य होता है जैसे गौको लेजानेवाले को गोनाय, घोड़े को ले जानेवाले को अश्वनाय, और पुरुषों को लेजानेवाले को पुरुषनाय कहते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सौम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, क्व, मूलम्, स्यात्, अन्यत्र, अद्भयः, अद्भिः, सौम्य, शुङ्गेन, तेजः, मूलम्, अन्विच्छ, तेजसा, सौम्य, शुङ्गेन, सत्, मूलम्, अन्विच्छ, सन्मूलाः, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सदायतनाः, सत्प्रतिष्ठाः, यथा, नु, खलु, सौम्य, इमाः, तिस्रः, देवताः ,पुरुषम्, प्राप्य, त्रिवृत्, त्रिवृत्, एकैका, भवति, तत, उक्तम्, पुरस्तात्, एव, भवति, अस्य, सौम्य, पुरुषस्य, प्रयतः, वाक्,

मनसि, सम्पद्यते, मनः, प्राणे, प्राणः, तेजसि, तेजः, परस्याम्, देवतायाम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ हे भगवन्	हे भगवन्
तस्य	उस शरीर का
मूलम्	कारण है
क्व	कौन
इति	यह
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ उद्दालकः	उद्दालऋषिने
उवाच	कहा कि
सौम्य	हे प्रियदर्शन
अद्भ्यः	जल से
अन्यत्र	पृथक् दूसरा
कथम्	कैसे
स्यात्	होसक्ता है
सौम्य	हे प्रियपुत्र
अद्भिः	जलरूप
शुङ्गेन	अंकुर करके
तेजः	अग्नि को
खलु	निस्संदेह
मूलम्	जल का कारण
अन्विच्छ	निश्चय करो
सौम्य	हे पुत्र

अन्वयः	पदार्थ
तेजसा	अग्निरूप
शुङ्गेन	अंकुर करके
सत्	सत्‌ब्रह्म को
मूलम्	कारण
अन्विच्छ	जानो
सौम्य	हे प्रियात्मा
सन्मूलाः	सत्‌ब्रह्म ही है मूल जिसका
सदायतनाः	सत्‌रूप ब्रह्म ही है निवास स्थान जिस का
+ च	और
सत्प्रतिष्ठाः	सत्‌ब्रह्म ही है समाप्तिस्थान जिसका
एवम्	ऐसी
इमाः	इस
सर्वाः	सब
प्रजाः	प्रजा को
अवधारय	निश्चय करो

च=और
यथा=जिस प्रकार
इमाः=यह
तिस्रः=तीनों
देवताः=देवता यानी पृथ्वी जल अग्नि
पुरुषम्=पुरुष को
प्राप्य=प्राप्त होकर
एकैका=एक २ के
त्रिवृत्=तीन २ विभाग
त्रिवृत्=त्रिवृत्करण
भवति=होते हैं
तत्=सो
नु=तो
पुरस्तात्=पहिले
एव=ही
उक्तम्=कहा गया है
सौम्य=हे प्रियपुत्र
अस्य=इस
प्रयतः=मरते हुये
पुरुषस्य=पुरुष की
वाक्=वाणी
मनसि=मन में
प्राप्नोति=प्राप्त होती है
मनः=मन
प्राणे=प्राण में
प्राणः=प्राण
तेजसि=अग्नि में
तेजः=अग्नि
परस्याम्=पर
देवतायाम्=ब्रह्म देवविषे
संपद्यते=प्राप्त होती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि से पूछता है कि हे भगवन् ! शरीर का मूलकारण कौन है, यह सुनकर उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! इसका कारण जल है, जल के सिवाय और क्या होसक्ता है, जलरूप अंकुर को देखकर इसका कारण अग्नि को निश्चय करो, हे प्रियपुत्र ! इस प्रत्यक्ष सृष्टि का मूल कारण सत् ब्रह्मही है, और इसके रहने का स्थान भी ब्रह्मही है, और यह ब्रह्मही में लय होती है, ब्रह्मके सिवाय और

कोई अधिष्ठान सत्ता इसकी नहीं है जिसप्रकार यह तीनों यानी अग्नि, जल, पृथ्वी से पुरुष का शरीर त्रिवृत्करणद्वारा होता है सो मैं पहिले ही कहचुका हूं अब यहां पर उसके कहने की आवश्यकता नहीं है हां इतना कहना अवश्य है कि पुरुष जब शरीर को त्यागता है तब वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में प्रवेश करताहै और अग्नि परब्रह्मदेव विषे लय होजाता है हे सौम्य ! यह सृष्टि जो तुम देखते हो निराकार परमात्मा से पृथक् नहीं है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ७ ॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	तत्	=वही
सः	=वह	सत्यम्	=सत्य है
अणिमा	=अतिसूक्ष्म है	+यत्	=जो
सः	=सोई	एतदात्म्यम्	=यह सत् रूप आत्मा है
एषः	=यह	तत्	=वही
आत्मा	=आत्मा है		

इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत् है
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो
तत्=सोई
त्वम्=तू
असि=है
इति=इस प्रकार
+श्रुत्वा=सुनकर
+श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
+ उवाच=कहा कि
भगवान्=आप
भूयः=फिर
एव=भी
मा=मुझ को
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=यह
+श्रुत्वा=सुनकर
+उद्दालकः=उद्दालक ने
ह=स्पष्ट
इति=ऐसा
उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र
तथा=बहुत अच्छा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने चन्द्रमुख श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म सबका अधिष्ठान कहा गया है सोई यह तेरा आत्मा है, यही आत्मा सब जगत् का सत्रूप है, और सोई हे श्वेतकेतो ! परब्रह्म तू है, यह सुनकर श्वेतकेतु को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ, और अपने पितासे प्रार्थना की कि हे भगवन् ! और कुछ इस ब्रह्मविद्या के बारे में दृष्टान्तपूर्वक मुझे उपदेश करें, मैं आपकी अमृतरूपी वाणी से भलीप्रकार तृप्त नहीं हुआ हूं ॥ ७ ॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

यथा सौम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नाना-

त्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान्समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ॥ १ ॥ *

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, मधु, मधुकृतः, निस्तिष्ठन्ति, नानात्ययानाम्, वृक्षाणाम्, रसान्, समवहारम्, एकताम्, रसम्, गमयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन	एकताम्	एक
यथा	जैसे	रसम्	रस
मधुकृतः	मधुमक्खियां	गमयन्ति	बनाती हैं
नानात्ययानाम्	बहुत प्रकार के	+च	और
वृक्षाणाम्	वृक्षों के	+पुनः	फिर
रसान्	रसों को	मधु	सहत
समवहारम्	जमाकरके	निस्तिष्ठन्ति	बनाती हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जैसे मधुमक्षिकायें अनेक वृक्षके फूलों के रस को एकत्र करती हैं और फिर उसको मधुत्वभावको प्राप्त करके मधु बनाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु

* इस मंत्र का सम्बन्ध अगले मंत्र से है ।

सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

ते, यथा, तत्र, न, विवेकम्, लभन्ते, अमुष्य, अहम्, वृक्षस्य, रसः, अस्मि, अमुष्य, अहम्, वृक्षस्य, रसः, अस्मि, इति, एवम्, एव, खलु, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सति, सम्पद्य, न, विदुः, सति, सम्पद्यामहे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ च	और	रसः	रस
सौम्य	हे प्रियपुत्र	अस्मि	हूं
यथा	जिस प्रकार	अहम्	मैं
तत्र	उस सहत के छत्ते में	अमुष्य	अमुक
ते	वे रस	वृक्षस्य	वृक्ष का
इति	इस	रसः	रस
एवम्	प्रकार	अस्मि	हूं
विवेकम्	ज्ञान को	एवम्एव	उसही प्रकार
खलु	निश्चय करके	इमाः	ये
न	नहीं	सर्वाः	सब
लभन्ते	प्राप्त होते हैं कि	प्रजाः	प्रजा
अहम्	मैं	सति	सत्ब्रह्मविषे
अमुष्य	अमुक	सम्पद्य	प्राप्त होकर
वृक्षस्य	वृक्ष का	इति	ऐसा
		न	नहीं

विदुः=जानती हैं कि
+वयम्=हम सब
सति=ब्रह्मबिषे
संपद्यामहे=प्राप्त हुई हैं

भावार्थ ।

और हे प्रियपुत्र ! जिस प्रकार वे रस सहत के छत्ते में जाकर उनको यह विवेक नहीं रहता है कि मैं अमुक वृक्ष का रस हूं, उसी प्रकार ये सब जीव सुषुप्तिकाल अथवा मरणकाल अथवा प्रलयकाल बिषे सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर उनको यह ज्ञान नहीं रहता है कि हम सब ब्रह्म पहिले थे और अब ब्रह्म को प्राप्त हैं, कारण इस सबका यह है कि अहंकारजन्य वासना कि हम ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, वैश्य हैं, शूद्र हैं, सिंहादि हैं, ऐसे संस्कार को लेकर जीव सुषुप्त्यादि काल में प्रवेश करते हैं, मैं ब्रह्म हूं, मैं सत् चित् आनन्दरूप हूं ऐसा अनुभव करके नहीं प्रवेश करते हैं, और यही कारण है कि उनको पूर्वकी वासना वहां से बाहर खींच लाकर उनके कर्मादिकों में लगा देती है, और तब वे अपने कर्म पूर्ववत् करने लगते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

ते, इह, व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा, वृकः, वा, वराहः, वा, कीटः, वा, पतङ्गः, वा, दंशः, वा, मशकः, वा, यत्, यत्, भवन्ति, तत्, आभवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते=	मैं ब्रह्मरूप हूं इस ज्ञान से रहित वे जीवात्मा	वा=	अथवा
इह=	इस संसार में	पतङ्गः=	पतिङ्गा
व्याघ्रः=	व्याघ्र	वा=	अथवा
वा=	अथवा	दंशः=	डांस
सिंहः=	सिंह	वा=	अथवा
वा=	अथवा	मशकः=	मस्से
वृकः=	भेड़िया	वा=	आदिक
वा=	अथवा	यत् यत्=	जो जो
वराहः=	सूकर	भवन्ति=	उत्पन्न हुये हैं
वा=	अथवा	तत्=	वही
कीटः=	कीड़ा	तत्=	वही
		+ पुनः=	फिर
		+ अपि=	भी
		आभवन्ति=	होते हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जबतक मैं सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म हूं यह ज्ञान नहीं होता है तबतक संसार बिषे सुषुप्त्यादि अवस्था में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सुअर, कीड़ा, पतंगा, मस्सा, डांस, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि शरीर धरता हुआ और अपने कर्तापने के संस्कार अपने बिषे लेता हुआ जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है, और फिर जाग्रत् अवस्था में बाहर निकल आता है, तत्पश्चात् अपने पूर्ववासना के संस्कार से प्रेरित हुआ अपने अपने कर्मों में लगजाता है पर जो पुरुष जाग्रत् बिषे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से मिलकर श्रुति के महावाक्यार्थ

के ज्ञान को पाकर तिसको सम्यक् प्रकार मनन, निदिध्यासन कर निस्संशय हो अपने आप सत्चैतन्यरूप आत्मा को साक्षात् करता है, और मन, बुद्धि आदि उपाधि और तिनके धर्म कर्मादिकों से अलग होकर अपने को सब का द्रष्टा (साक्षी) अनुभव करता है तब वह विद्वान् पुरुष सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर सद्रूपही होजाता है, और फिर जीवभाव बिषे नहीं आता, क्योंकि जाग्रत् में ही सत् चैतन्य अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार जानके तिस बिषे "सोहमस्मि" भावको प्राप्त होगया है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ४ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		एषः=यह	
सः=वह		आत्मा=आत्मा है	
अणिमा=अतिसूक्ष्म		+ च=और	
+आख्यातः=कहा गया है		तत्=वही	
सः=वही		सत्यम्=सत्य है	

इति=इस प्रकार	+ उवाच=कहा कि
एतदात्म्यम्=यह सत् है आत्मा जिसका ऐसा	+ पितः=हे पिता
इदम्=यह	भूयः=और
सर्वम्=सब जगत् है	अपि=भी
श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो	भगवान्=आप
+ च=और	मा=मुझको
तत्=सोई	विज्ञापयतु=उपदेश करें
त्वम्=तू	इति श्रुत्वा=यह सुनकर
असि=है	+ उद्दालकः=उद्दालक ने
इति=यह	ह=स्पष्ट
+ श्रुत्वा=सुनकर	उवाच=कहा कि
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने	सौम्य=हे पुत्र
	तथा=बहुत अच्छा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहागया है और जिसमें सबकी स्थिति है वही यह आत्मा है, वही यह सत्य ब्रह्म है, और सोई तू है, यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! जैसे कोई मनुष्य अपने घर में सोकर उठता है और दूसरे गांव को जाता है तब उसको मालूम रहता है कि मैं अपने मकान से यहां आया हूं, इसी प्रकार जब जीव जाग्रत् अवस्था से सुषुप्ति में जाते हैं और वहां सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर लौट आते हैं तब उनको क्यों ज्ञान नहीं रहता है कि हम सत्ब्रह्म को प्राप्त होकर आये हैं,

हे प्रभो ! इसके बारे में आप मुझको विशेष उपदेश करें, पिता ने कहा कि अच्छा ऐसाही होगा ॥ ४ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

इमाः सौम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥ *

पदच्छेदः ।

इमाः, सौम्य, नद्यः, पुरस्तात्, प्राच्यः, स्यन्दन्ते, पश्चात्, प्रतीच्यः, ताः, समुद्रात्, समुद्रम्, एव, अपियन्ति, सः, समुद्रः, एव, भवति, ताः, यथा, तत्र, न, विदुः, इयम्, अहम्, अस्मि, इयम्, अहम्, अस्मि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन
इमाः	ये
प्राच्यः	पूर्वदिशा की बहने वाली
नद्यः	नदियां
पुरस्तात्	पूर्वदिशाको
स्यन्दन्ते	बहती हैं
+च	और
प्रतीच्यः	पश्चिम दिशा की बहनेवाली
नद्यः	नदियां
पश्चात्	पश्चिम दिशा को
स्यन्दन्ते	बहती हैं

* इसका अन्वय अगले मंत्र से है ॥

+ च=और
ताः=वे सब
समुद्रात्=समुद्र से निकल कर
समुद्रम्=समुद्र में
एव=ही
अपियन्ति=जाती हैं
+ च=और
+ पुनः=फिर
समुद्रः=समुद्ररूप
एव=ही
भवति=होजाती हैं

+ च=और
यथा=जिस प्रकार
ताः=वे सब नदियां
इति=ऐसा
न=नहीं
विदुः=जानती हैं कि
अहम्=मैं
इयम्=यह
अस्मि=हूं
अहम्=मैं
इयम्=यह
अस्मि=हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्रसे उदाहरण देकर कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जैसे पूर्व तरफ़ की जानेवाली नदियां पूर्व दिशा को जाती हैं, और पश्चिम तरफ़ की जानेवाली नदियां पश्चिम दिशाको जाती हैं, और जो जल समुद्र से उठकर बद्दल द्वारा पर्वतों पर बरसता है, वही नदी की सूरत में समुद्र में पहुँच कर समुद्ररूप होजाता है, और जैसे यह गंगा, यमुना आदिक नदियां समुद्र में पहुँचकर लीन होजाती हैं और अपने को भूल जाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा

पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सौम्य, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, सतः, आगम्य, न, विदुः, सतः, आगच्छामहे, इति, ते, इह, व्याघ्रः, वा, सिंहः, वा, वृकः, वा, वराहः, वा, कीटः, वा, पतङ्गः, वा, दंशः, वा, मशकः, वा, यत्, यत्, भवन्ति, तत्, आभवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	=हे प्रियदर्शन	आगच्छामहे	=प्राप्त हुये हैं
एवम्	=उसी	इह	=इस संसार में
एव	=प्रकार	ते	=वे
खलु	=निश्चय करके	व्याघ्रः	=व्याघ्र
इमाः	=ये	वा	=अथवा
सर्वाः	=सब	सिंहः	=सिंह
प्रजाः	=प्रजायें	वा	=अथवा
सतः	=सत् को	वृकः	=भेड़िया
आगम्य	=प्राप्त हो करके	वा	=अथवा
इति	=यह	वराहः	=सूकर
न	=नहीं	वा	=अथवा
विदुः	=जानती हैं कि	कीटः	=कीड़ा
+ वयम्	=हम सब	वा	=अथवा
सतः	=सत् ब्रह्मको		

पतङ्गः=पतिङ्गा	यत्=जो
वा=अथवा	यत्=जो
दंशः=डांस	भवन्ति=हुये हैं
वा=अथवा	तत्=वही वही
मशकः=मस्सा	+ पुनः=फिर
वा=आदिक	आभवन्ति=होते हैं

भावार्थ ।

उसी प्रकार हे पुत्र ! सब जीव व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सूकर, कीड़ा, पतङ्गा, मस्सा आदिक जब सुषुप्ति में सत्‌ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, तब उनको यह ज्ञान नहीं होता है कि हम सत्‌ब्रह्म को प्राप्त हैं, और जब सुषुप्ति से जाग्रत् में आते हैं, तब भी उनको यह ज्ञान नहीं रहताहै कि हम सत्‌ब्रह्म को प्राप्त होकर आये हैं, जिस हालत में वे जाते हैं उसी हालत में लौट आते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ

यः=जो
सः=वह
अणिमा=अतिसूक्ष्म
आख्यातः=कहा गया है
सः=वही
एषः=यह
आत्मा=आत्मा है
+ च=और
तत्=वही
सत्यम्=सत्य है
इति=इस प्रकार
एतदात्म्यम्=यह सत् है आत्माजिस का ऐसा
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत् है
+च=और
तत्=वही

अन्वयः पदार्थ

त्वम्=तू
असि=है
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
उवाच=कहा कि
पितः=हे पिता
भूयः=और
अपि=भी
भगवान्=आप
मा=मुझको
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=यह
+श्रुत्वा=सुनकर
+उद्दालकः=उद्दालक ने
उवाच=कहा कि
सौम्य=हे पुत्र
तथा=अच्छा कहता हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहागया है सोई यह आत्मा है, वही सत्य है, और सोई तू है यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! आप और भी दृष्टान्तपूर्वक मुझे उपदेश करें

उद्दालक ऋषि ने कहा बहुत अच्छा कहता हूं, सुनो ॥ ३ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

अस्य सौम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अस्य, सौम्य, महतः, वृक्षस्य, यः, मूले, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, यः, मध्ये, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, यः, अग्रे, अभ्याहन्यात्, जीवन्, स्रवेत्, सः, एषः, जीवेन, आत्मना, अनुप्रभूतः, पेपीयमानः, मोदमानः, तिष्ठति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन	+तु	परन्तु
अस्य	इस	जीवन्	जीता
महतः	बड़े	+स्यात्	रहेगा
वृक्षस्य	वृक्षके	यः	जो कोई
मूले	मूल में	मध्ये	मध्य में
यः	जो कोई	अभ्याहन्यात्	कुलाढ़ी का प्रहार करे तो
अभ्याहन्यात्	कुलाढ़ी का प्रहार करे तो	स्रवेत्	रस चूतारहेगा
स्रवेत्	रस टपकेगा	+तु	परन्तु

जीवन्=जीता हुआ
+तिष्ठेत्=स्थित रहेगा
यः=जो कोई
अग्रे=चोटी पर
अभ्याहन्यात्=प्रहारकरे तो
स्रवेत्=रसटपकेगा
+परम्=परन्तु
जीवन्=जीता
+स्यात्=रहेगा
+हि=क्योंकि
पेपीयमानः=रसकोजड़द्वारा पीता हुआ
+च=और
मोदमानः=आनन्द युक्त होता हुआ
सः=वह
एषः=यह सारा वृक्ष
जीवेन=अपने जीव
आत्मना=आत्मा करके
अनुभूतः=व्याप्त होता हुआ
तिष्ठति=स्थित रहता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! अगर कोई पुरुष सन्मुख के हरे भरे वृक्षकी मूलमें कुल्हाड़ी एक बार प्रहार करे तो इसमें से थोड़ा रस निकल आवेगा, परन्तु वृक्ष सूखेगा नहीं, उसी तरह से मध्य में या चोटी पर मारे तो उस घाव से रस टपकेगा परन्तु वृक्ष सूखेगा नहीं, क्योंकि इस वृक्ष भर में जीवात्मा व्यापक है, और वही पृथ्वी जल आदि के सार को अपनी मूल द्वारा खींच कर अपने सम्पूर्ण शरीर में फैला देता है, और घाव को पूराकर देता है, और आनन्द भोगता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अस्य यदेकाꣳ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां

जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ॥ २ ॥ *

पदच्छेदः ।

अस्य, यत्, एकाम्, शाखाम्, जीवः, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, द्वितीयाम्, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, तृतीयाम्, जहाति, अथ, सा, शुष्यति, सर्वम्, जहाति, सर्वः, शुष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस वृक्ष की
एकाम्	एक
शाखाम्	शाखा को
यत्	जब
जीवः	जीव
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह
शुष्यति	सूख जाती है
+यत्	जब
द्वितीयाम्	दूसरी को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह भी
शुष्यति	सूख जाती है
+यत्	जब
तृतीयाम्	तीसरी को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सा	वह भी
शुष्यति	सूखजाती है
+यत्	जब
सर्वम्	सब वृक्ष को
जहाति	छोड़ देता है
अथ	तब
सर्वः	सब
शुष्यति	सूखजाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जब

* इसका अन्वय अगले मंत्रसे है ॥

जीव एक शाखा को त्याग देता है, तब वह सूख जाती है, जब दूसरी वा तीसरी को त्याग देता है तब वह भी सूख जाती है, और जब सम्पूर्ण वृक्षको त्याग देता है, तब सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता है, यह जीवात्मा, वाक्, मन, प्राण और इन्द्रियों में व्याप्त है, और जब ये इन्द्रियां उससे अलग होजाती हैं, तब वह भी उनसे अलग होजाता है, जबतक प्राण का जीवात्मा से सम्बन्ध रहता है, तभी तक यह खाता पीता है, और जो कुछ खाता पीता है, वह रस होकर तमाम वृक्ष में फैल जाता है, और वही वृक्ष बिषे जीवात्मा की स्थिति को दिखलाता है, अन्न और जल करके जीवात्मा शरीर बिषे स्थित रहता है, और जब तक जीवात्मा शरीर बिषे स्थित है, तब तक वह भोक्ता है, और जब किसी कारण से वृक्ष के किसी भाग में विघ्न पहुँचता है, तब वहां से जीवात्मा चल देता है, तब वह शाखा या वृक्ष का भाग सूख जाता है, क्योंकि रस का रहना वृक्ष में जीवात्मा के रहने पर स्थित है, इससे यह सिद्ध होता है कि वृक्षों में भी चैतन्य की स्थिति है ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, खलु, सोम्य, विद्धि, इति, ह, उवाच, जीवापेतम्, वाव, किल, इदम्, म्रियते, न, जीवः,

म्रियते, इति, सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन
एवमेव	उसही प्रकार
इदम्	यह शरीर
जीवापेतम्	जीवरहित
वाव	अवश्य
म्रियते	मरजाता है
किल	पर
जीवः	जीव
खलु	निश्चय करके
न	नहीं
म्रियते	मरता है
इति	ऐसा
विद्धि	जानो
+च	और
यः	जो
सः	वह
अणिमा	अतिसूक्ष्म
आख्यातः	कहागया है
सः	वही

अन्वयः	पदार्थ
एषः	यह
आत्मा	आत्मा है
तत्	वही
सत्यम्	सत्य है
तत्	सोई
त्वम्	तू
असि	है
+च	और
एतदात्म्यम्	जो अतिसूक्ष्म सत् व्यापक आत्मा है
इति	सोई
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत् है
इति	इस प्रकार
+श्रुत्वा	सुनकर
+श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि

भगवन्=हे भगवन्
भूयः=और
+अपि=भी
भगवान्=आप
मा=मुझ को
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=ऐसा
+श्रुत्वा=सुन
+उद्दालकः=उद्दालक ऋषि ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
सौम्य=हे प्रियपुत्र
तथा=ऐसा ही
+भविष्यति=होगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे श्वेतकेतो ! जब जीव वृक्ष में से निकल जाता है, तब वह मरजाता है, पर जीव नहीं मरता है, यही अवस्था मनुष्य के शरीर की भी है, जो अतिसूक्ष्म है, वही आत्मा है, वही सत्य है, वही यह जगत् है, और वही तू है, यह जो आत्मा है वह कभी नहीं मरता है, क्योंकि जब कोई काम करते करते सोजाता है, और फिर उठता है तब उसको स्मरण होता है कि मैंने अमुक काम अधूरा छोड़ दिया है, और जब प्राणी पैदा होते हैं, तब पैदा होतेही माता का दूध पीने लगते हैं, और भय भी उनको होता है, जिससे सिद्ध होता है कि पूर्वजन्म में वह जीव थे, और अपने पूर्व किये हुये कर्मों को स्मरण करके वैसेही करने लगते हैं, और जो वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म किया जाता है वह भी दूसरे जन्म के फलभोगार्थ ही किया जाता है, इस सब से यही सिद्ध होता है कि जीव भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में बराबर बना रहता है, इसका नाश नहीं होता है, जो कुछ यह दृश्यमान नाम रूपवाला जाग्रत् दिखलाई देता है, वह उसी निराकार

परमात्मा से ही निकला है, यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पिता ! आप कृपा करके फिर भी इसीको कहें, उद्दालक ने कहा कि बहुत अच्छा कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किंचन भगव इति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

न्यग्रोधफलम्, अतः, आहर, इति, इदम्, भगवः, इति, भिन्द्धि, इति, भिन्नम्, भगवः, इति, किम्, अत्र, पश्यसि, इति, अण्व्यः, इव, इमाः, धानाः, भगवः, इति, आसाम्, अङ्ग, एकाम्, भिन्द्धि, इति, भिन्ना, भगवः, इति, किम्, अत्र, पश्यसि, इति, न, किंचन, भगवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन
अतः	इस सामने के
न्यग्रोध-फलम्	वट वृक्ष से एक फल को
आहर	ला
भगवः	हे भगवन्
इदम्	यह है
इति	इसको

भिन्द्धि=तोड़
इति=यह
भिन्नम्=तोड़दियागया
अत्र=इसमें
किम्=क्या
पश्यसि=देखता है
भगवः=हे भगवन्
अण्व्यः=अति छोटे २
इव=से
धानाः=बीजों को
अङ्ग=हे पुत्र
आसाम्=इनमें से
इति=किसी
एकाम्=एकको
भिन्द्धि=तोड़
भगवः=हे भगवन्
इति=यह
भिन्ना=तोड़दियागया
अत्र=इस बीज में
किम्=क्या
पश्यसि=देखता है
भगवः=हे भगवन्
किञ्चन=कुछ
न=नहीं *

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो यह सामने वटवृक्ष है, उसमें से एक फल तोड़ लेआ, उसने वैसाही किया, एक फल लेआया, तब पिताने कहा कि इसको तोड़ो, उसने वैसाही किया, उसको तोड़ा, फिर पिताने कहा कि इसके अन्दर क्या है, उसने कहा कि महाराज इसमें छोटे छोटे बीज हैं, फिर पिताने कहा कि हे पुत्र ! इनमें से एक को तोड़ो, उसने एक बीज को तोड़ा, पिता ने कहा कि इसके अन्दर क्या देखता है, उसने कहा कि इसके अन्दर कुछ भी नहीं दिखाई देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तꣳहोवाच यं वै सौम्यैतमणिमानं न निभाल-

* इस मंत्र में छ इति छोड़ दिये गये हैं, उनसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता है।

यस एतस्य वै सौम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोध-स्तिष्ठति श्रद्धस्व सौम्येति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, ह, उवाच, यम्, वै, सौम्य, एतम्, अणिमानम्, न, निभालयसे, एतस्य, वै, सौम्य, एषः, अणिम्नः, एवम्, महान्यग्रोधः, तिष्ठति, श्रद्धस्व, सौम्य, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उद्दालकः	=उद्दालकऋषि	एतस्य वै	=तिसी
+तम्	=उसश्वेतकेतुसे	अणिम्नः	=अति सूक्ष्म अंशबीजका
ह	=स्पष्ट	सौम्य	=हे प्रियदर्शन
इति	=ऐसा	एषः	=यह
उवाच	=कहता भयाकि	एवम्	=ऐसा
सौम्य	=हे प्रियपुत्र	महान्यग्रोधः	=बड़ा वटवृक्ष
यम्	=जिस	तिष्ठति	=खड़ा है
एतम्	=इस	इति	=इसप्रकार
अणिमानम्	=अतिसूक्ष्म अंशको	सौम्य	=हे प्रिय
वै	=निस्संदेह	+ त्वम्	=तू
न	=नहीं	श्रद्धस्व	=विश्वास कर
निभालयसे	=देखता है तू		

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जिस वटबीज को तोड़ करके तूने देखा और उसके अन्दर कुछ नहीं पाया

उसी में से यह इतना बड़ा वृक्ष, जो तेरे सामने खड़ा है, निकला है देख कैसा शाखाओं, टहनियों, फलफूलों से लदा है इसी प्रकार हे सौम्य ! यह संसार भी निराकार सत्ब्रह्म से निकलकर वटवृक्षवत् विस्तृत होरहा है, हे पुत्र ! जब तू मेरे वाक्य में श्रद्धा करैगा तब तू समझैगा कि बीज के दो दालों के नीचे जो अतिसूक्ष्म अंकुर होता है, उसी में निराकार शक्ति वृक्षके बढ़ने, फलफूल देने के संस्कार को लिये हुये स्थित रहती है, और फिर उसी में से काल पाकर ऐसा विशाल वृक्ष होजाता है, इसीप्रकार मेरे उपदेश में श्रद्धा रखने से तुझको अनुभव होजायगा कि अनिर्वचनीय सत् असत् से विलक्षण जगत् उसी सत् परमात्मा से निकला है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	अणिमा	=अतिसूक्ष्म
सः	=वह	आख्यातः	=कहागया है

सः=वही
एषः=यह
आत्मा=आत्मा है
तत्=वही
सत्यम्=सत्य है
+श्वेतकेतो=हे श्वेतकेतो
तत्=सोई
त्वम्=तू
असि=है
+ च=और
एतदात्म्यम्=जो अतिसूक्ष्म सत् आत्मा है
इति=सोई
इदम्=यह
सर्वम्=सब जगत् है
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुनकर
+श्वेतुकेतुः=श्वेतकेतुने
उवाच=कहाकि
+ पितः=हे पिता
भूयः=फिर
+अपि=भी
भगवान्=आप
मा=मुझको
ह=भलीप्रकार
विज्ञापयतु=उपदेश करें
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+पिता=पिताने
उवाच=कहाकि
सौम्य=हे प्रियपुत्र
तथाएव=ऐसाही
+ अस्तु=होगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहागया है, वही यह आत्मा है, वही सत्ब्रह्म है, वही सब का आधार है, और सोई तू है, यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पिता ! और भी दृष्टान्तपूर्वक इसीको मेरे प्रति उपदेश कीजिये, उद्दालक ने कहा कि बहुत अच्छा ऐसाही होगा ॥ ३ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

लवणमेतदुदकेवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳ होवाच यद्दोषा लवणमुदके-वाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

लवणम्, एतत्, उदके, अवधाय, अथ, मा, प्रातः, उपसीदथाः, इति, सः, ह, तथा, चकार, तम्, ह, उ-वाच, यत्, दोषा, लवणम्, उदके, अवाधाः, अङ्ग, तत्, आहर, इति, तत्, ह, अवमृश्य, न, विवेद ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ उद्दालकः	उद्दालकऋषि ने
उवाच	कहा कि
अथ	अब
त्वम्	तू
एतत्	इस
लवणम्	लवणपिण्डको
उदके	जलमें
अवधाय	डालकर
+ श्वः	कल्ह प्रातः-काल
मा	मेरे पास
उपसीदथाः	आना
इति	ऐसा
+ उक्तः	कहा गया
सः	वह श्वेतकेतु
ह	निस्संदेह
तथा	वैसा
एव	ही
चकार	करता भया
+ तदा	तब
+ उद्दालकः	उद्दालक ऋषि
तम्	उस श्वेतकेतुसे
उवाच	कहा कि

अङ्ग=हे प्रियवत्स	इति=ऐसा
दोषा=रात्रिमें	+ श्रुत्वा=सुनकर
यत्=जो	तत्=उस लवणको
लवणम्=लवण	अवमृश्य=खोजताभया
उदके=जल में	+ तु=पर
अवाधाः=छोड़दिया था	न=नहीं
तत्=उसको	विवेद=पाया
आहर=निकाल ला	

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे सौम्य ! इस लवणपिण्डको ले और पानी में डालकर कल प्रातःकाल मेरे पास आ, श्वेतकेतु ने वैसाही किया, और जब दूसरे दिन प्रातःकाल अपने पिता के पास गया, तब पिताने कहा कि उस लवणपिण्डको ला, जिसको तूने कल सायंकालको पानी में छोड़ दिया था, वह श्वेतकेतु गया, पानी में हाथ डालकर बहुत टटोला, पर लवण का पानी में कहीं पता न लगा ॥ १ ॥

मूलम् ।

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तꣳ होवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

यथा, विलीनम्, एव, अङ्ग, अस्य, अन्तात्, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, मध्यात्, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, अन्तात्, आचाम, इति, कथम्, इति, लवणम्, इति, अभिप्रास्य, एतत्, अथ, मा, उपसीदथाः, इति, तत्, ह, तथा, चकार, तत्, शश्वत्, संवर्तते, तम्, ह, उवाच, अत्र, वाव, किल, सत्, सोम्य, न, निभालयसे, अत्र, एव, किल, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अङ्ग	हे पुत्र	+ उवाच	कहा कि
यथा	जिसप्रकार	लवणम्	लवण
विलीनम्	जललीन	इति	सा है
लवणम्	लवण को	मध्यात्	जलके मध्यभाग को
एव	निश्चयकरके	आचाम	चख और कह
+ ज्ञास्यसि	तू जानेगा	कथम्	कैसा है
इति	सो	+ पुत्रः	पुत्रने
+ शृणु	सुन	+ उवाच	कहा कि
अस्य	इस जलके	लवणम्	लवण
अन्तात्	ऊपरी भागको	इति	सा है
आचाम	चख और कह	अस्य	इसके
इति	यह	अन्तात्	अधोभाग को
कथम्	कैसा है	आचाम	चख और कह
+ पुत्रः	पुत्रने		

इति=यह
कथम्=कैसा है
+पुत्रः=पुत्रने
+उवाच=कहाकि
लवणम्=लवण
इति=सा
+अस्ति=है
+पिता=पिताने
+उवाच=कहाकि
अथ=अब
एतत् अभिप्रास्य = इस चारों तरफ़ से चखे हुये लवण को त्यागकर
मा=मेरे
उपसीदथाः=पास आ
इति=ऐसा
+श्रुत्वा=सुनकर
तत्=वह
ह=निस्संदेह
तथा=वैसा
एव=ही
चकार=करता भय।
+च=और (फिर)
इति=ऐसा

उवाच=बोला कि
+भगवः=हे भगवन्
तत्=वह लवण
तस्मिन्=इस जलमें
शश्वत्=अच्छी प्रकार नित्य
संवर्तते=विद्यमान है
इति=ऐसे
+उक्तवन्तम्=कहते हुये
तम्=उस श्वेतकेतुसे
पिता=उद्दालकपिता ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
सोम्य=हे प्रियपुत्र
इति=इसी प्रकार
तत्=वह सत्‌ब्रह्म
अत्र=इस शरीर में
वाव=ही
+तिष्ठति=स्थित है
किल=परन्तु
न=नहीं
निभालयसे=दीखता है
किल=पर
अत्रएव=उसीमें लय है

भावार्थ ।

जब श्वेतकेतु ने आकर अपने पिता से कहा कि लवणपिण्ड का कहीं पता नहीं है, तब पिता ने कहा कि पानी को ऊपर से चख, उसने वैसाही किया, और कहने लगा कि निमक ३, फिर पिता ने कहा कि मध्य में से चख, उसने वैसाही किया, और कहा कि निमक ३, फिर पिताने कहा कि नीचे से चख, उसने वैसाही किया, और कहाकि निमक ३, तब उद्दालक ने कहा कि मुख के जलको फेंककर मेरे पास आ, उसने वैसाही किया, और जब आया तब पिताने कहा कि हे पुत्र ! जैसे निमक इस सब जल में व्यापक है, उसी तरह इस जगत् में सत् ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, हे पुत्र ! जैसे पानी में लयहुआ निमक नेत्रादि इन्द्रियोंका विषय नहीं है, पर अनुभवद्वारा जाना जाता है, उसी तरह सत्ब्रह्म इन्द्रियों का विषय नहीं है, पर अनुभव से साक्षात् किया जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदᳪं सर्वं तत्सत्यᳪं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सौम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	जो	सर्वम्	सब जगत् है
सः	वह	इति	इस प्रकार
अणिमा	अतिसूक्ष्म	+श्रुत्वा	सुनकर
+आख्यातः	कहागया है	+श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
सः	वही	उवाच	कहा कि
एषः	यह	+भगवः	हे भगवन्
आत्मा	आत्मा है	भूयः	और भी
तत्	वही	भगवान्	आप
सत्यम्	सत्य है	मा	मुझको
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो	ह	भली प्रकार
तत्	सोई	विज्ञापयतु	उपदेश करें
त्वम्	तू	इति श्रुत्वा	यह सुन
असि	है	+उद्दालकः	उद्दालक ने
+च	और	+उवाच	कहा कि
एतदात्म्यम्	जो यह सत् व्यापक आत्मा है	सौम्य	हे प्रियवत्स
		तथा	ऐसा ही
		एव	ही
इति	सोई	+भविष्यति	होगा
इदम्	यह		

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जो अतिसूक्ष्म कहा गया है, वही यह आत्मा है, वही सत् ब्रह्म है, और सोई तू है, यह सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपाकर

और भी उपदेश करें, उद्दालकने कहा बहुत अच्छा सुनो कहता हूं ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यथा सौम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ् वोदङ् वाधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥ १ ॥ *

पदच्छेदः ।

यथा, सौम्य, पुरुषम्, गन्धारेभ्यः, अभिनद्धाक्षम्, आनीय, तम्, ततः, अतिजने, विसृजेत्, सः, यथा, तत्र, प्राङ्, वा, उदङ्, वा, अधराङ्, वा, प्रत्यङ्, वा, प्रध्मायीत, अभिनद्धाक्षः, आनीतः, अभिनद्धाक्षः, विसृष्टः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौम्य	हे प्रियदर्शन	पुरुषम्	पुरुष को
यथा	जिस प्रकार	गन्धारेभ्यः	गन्धार देश से
कश्चित्	कोई	आनीय	लाकर
+तस्करः	चोर	+तम्	उस
+कश्चित्	किसी	आनीतम्	लाये हुये को
अभिनद्धाक्षम्	नेत्रबंध	अतिजने	निर्जन वनमें
		विसृजेत्	छोड़ दे

* इसका सम्बन्ध अगले मंत्रसे है ।

ततः=तो
सः=वह पुरुष
तत्र=उस वन में
प्राङ्=पूर्वमुख होता हुआ
वा=अथवा
उदङ्=उत्तरमुखहोता हुआ
वा=अथवा
अधराङ्=अधोमुखहोता हुआ
वा=अथवा
प्रत्यङ्=पश्चिमाभिमुख होता हुआ
प्रध्मायीत=चिल्लावे कि
+अहम्=मैं
अभिनद्धाक्षः=बद्धनेत्र
आनीतः=लाया गया हूं
+च=और
अभिनद्धाक्षः=बद्धनेत्र
एव=ही
विसृष्टः=छोड़ा गया हूं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहते हैं कि हे सौम्य ! जैसे कोई चोर किसी पुरुष की आंखों में पट्टी बांधकर, और हाथ को रस्सी से बांधकर गन्धारदेश से लाकर किसी वन बिषे छोड़दे, और वहां पर वह किसी मनुष्य को न पाकर कभी पूर्व, कभी उत्तर, कभी पश्चिम, कभी दक्षिण को इधर उधर घूमता हुआ चिल्लावे यह कहता हुआ कि चोरों ने मुझको मेरी आंख में पट्टी बांधकर और गन्धार देश से लाकर ऐसी हालत में यहां पर छोड़ दिया है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद् ग्रामं

पृच्छन्पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंपद्येतैवमेवेहाचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, यथा, अभिनहनम्, प्रमुच्य, प्रब्रूयात्, एताम्, दिशम्, गन्धाराः, एताम्, दिशम्, व्रज, इति, सः, ग्रामात्, ग्रामम्, पृच्छन्, पण्डितः, मेधावी, गन्धारान्, एव, उपसम्पद्येत, एवम्, एव, इह, आचार्यवान्, पुरुषः, वेद, तस्य, तावत्, एव, चिरम्, यावत्, न, विमोक्ष्ये, अथ, सम्पत्स्ये, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे
तस्य	उस
विक्रोशतः	नेत्रबंद चिल्लाते हुये पुरुष की
अभिनहनम्	पट्टी को
प्रमुच्य	खोल करके
+ कश्चित्	कोई
+ दयालुः	दयालु पुरुष
प्रब्रूयात्	कहे कि
एताम्	इस
दिशम्	दिशा की ओर
गन्धाराः	गन्धार देश
+ सन्ति	हैं
एताम्	इस
दिशम्	दिशा को
व्रज	तू जा
इति	ऐसा
प्रमोचितः	छोड़ा गया
सः	वह पुरुष
+ यदि	अगर
पण्डितः	पण्डित
+ च	और
मेधावी	बुद्धिमान्
+ अस्ति	है

+ तर्हि=तो
ग्रामात्=ग्रामसे
ग्रामम्=ग्राम को
पृच्छन्=पूछता हुआ
गन्धारान्=गन्धार देशको
एव=अवश्य
उपसम्पद्येत=प्राप्त होजायगा
एवम्=तैसे
एव=ही
इह=इस लोक में
आचार्यवान्=विद्वान्
पुरुषः=पुरुष
वेद=जानता है कि
तस्य=उसका
तावत्एव=तबही तक
चिरम्=देर है
यावत्=जबतक
+ सः=वह
न=नहीं
विमोक्ष्ये=बंध से छूटताहै
अथ=बंध से छूटतेही
सम्पत्स्ये=सत् ब्रह्म को प्राप्तहोजायगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब कोई दयालु पुरुष ऐसे दुःखी पुरुष के आर्त शब्दको सुनकर उसके पास जाकर उसके आंखकी पट्टी को अलग करदे, और हाथ की रस्सी को खोलदे यह कहता हुआ कि गन्धारदेश यहां से उत्तर की तरफ़ है, इस रास्ते से वापस चलाजा, और जब उसकी आंख की पट्टी खुलगई, और हाथ की रस्सी दूर होगई, तब वह पुरुष दयालु पुरुष के उपदेशानुसार गांवसे गांवको पूछता हुआ और वहां से ठीक बतलाने पर और राहको ठीक समझलेने पर अपने गन्धारदेशको पहुँच जाता है, और दूसरी जगह नहीं जाताहै, उसीप्रकार अज्ञ पुरुष को कामरूपी चोरे परम धामरूपी गन्धारदेश से ज्ञानरूपी नेत्र में अविद्यारूपी पट्टी से बांधकर

संसाररूपी वन में लाकर छोड़ देता है, जिसमें अनेक दुःखरूपी स्त्री पुत्रादि जीव व्याघ्रादि की सूरत में रहते हैं, और जिन करके वह भयभीत हुआ हुआ इधर उधर चिल्लाता फिरता है, पर जब कभी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य मिलजाता है, और वह उसकी उस दशापर करुणा करके उसके विचाररूपी नेत्र से अविद्यारूपी पट्टी को खोल देता है, तब वह विषयवासना से छूटाहुआ सद्गुरु के उपदेशानुसार सीधा रास्ता पाकर और जानकर अपने गृहरूप आत्मा को जहांसे वह पकड़लाया गया था पहुँच जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सोम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
यः=जो	आख्यातः=कहागया है
सः=वह	+ सः=वही
अणिमा=अतिसूक्ष्म	एषः=यह

माम्=मुझको	मनः=मन
+ त्वम्=तू	प्राणे=प्राण में
जानासि=जानता है	प्राणः=प्राण
तु=तो	तेजसि=अग्नि में
तावत्=तभीतक	तेजः=अग्नि
जानाति=वह जानताहै	परस्याम्=पर
यावत्=जबतक	देवतायाम्=ब्रह्मदेव में
तस्य=उसकी	न=नहीं
वाक्=वाणी	सम्पद्यते=प्रवेश करते
मनसि=मन में	हैं

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जब कोई पुरुष बीमार होजाता है, और उसके मरने का समय निकट आजाता है, तब उसके संबन्धी उसके चारों तरफ़ घेरकर बैठ जाते हैं, और पिता कहता है कि हे पुत्र ! तुम मुझको पहिंचानते हो, उसी तरह पुत्र कहता है कि हे पिता ! तुम मुझको पहिंचानते हो, वह तभीतक उनको पहिंचानता है, जबतक उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में, अग्नि परब्रह्मदेव में लय नहीं होजाते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदास्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदा, अस्य, वाक्, मनसि, संपद्यते, मनः,

प्राणे, प्राणः, तेजसि, तेजः, परस्याम्, देवतायाम्, अथ, न, जानाति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=तत्पश्चात्	तेजः=अग्नि
यदा=जब	परस्याम्=पर
अस्य=उसकी	देवतायाम्=ब्रह्मदेव में
वाक्=वाणी	सम्पद्यते=प्राप्तहोजाताहै
मनसि=मन में	अथ=तब
मनः=मन	+ सः=वह पुरुष
प्राणे=प्राण में	+ तान्=उनको
प्राणः=प्राण	न=नहीं
तेजसि=अग्नि में	जानाति=जानता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रिय पुत्र ! पुरुष का मरना संसार में वैसेही है जैसे सुषुप्ति अवस्था में सत्ब्रह्म को प्राप्त होना है, इसीके दिखलाने के लिये श्रुति कहती है कि जब अग्नि सत्ब्रह्म में लय होजाती है तब वह पुरुष किसीको नहीं पहिंचानता है, उसी तरह से सुषुप्ति में सत्ब्रह्म को प्राप्त हुआ पुरुष कुछ नहीं जानता है, अज्ञानी पुरुष मरण को प्राप्त होकर अपने पूर्वले शरीर मनुष्य, सिंह, अश्व, देवतादि विषे पूर्व कर्मों के संस्कार के कारण प्रवेश करते हैं यानी जन्म लेते हैं, पर जो ज्ञानी पुरुष हैं, और जिन्होंने सम्पूर्ण कर्म की वासनाओं को काट दिया है, और ब्रह्मविद् आचार्य के उपदेश से अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्तहैं, वे फिर देह त्यागानन्तर जन्म को नहीं पावते हैं, हे प्रियपुत्र ! इसके समझने के लिये उदाहरण

को सुनो लवण के दो डली में से एक डली घृत साहित है, और दूसरी घृतरहित है, यदि दोनों डली पानी में छोड़ दीजावें तो घृत रहित डली पानी में गलकर पानीरूपही होजायगी, और घृत-सहित डली पानी में पड़ी हुई भी चिकनाई के कारण ज्यों की त्यों निकल आवेगी, इसी प्रकार अज्ञानी पुरुष कर्मों के संस्काररूपी चिकनाई से युक्त हुआ जलरूप सत्ब्रह्म को प्राप्त होकरके भी चिकनाई के कारण बाहर निकल आता है, पर ज्ञानरूपी अग्नि करके नाश कर दिया है चिकनाईरूप कर्म के संस्कार को जिसने वह जब जलरूप सत्ब्रह्म को प्राप्त होता है तब वह ब्रह्म में प्रवेश करके ब्रह्मभाव को प्राप्त हो ब्रह्मरूपही हो जाता है, इस कारण श्रुति कहती है कि जब ऐसे पुरुष की वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में, अग्नि परब्रह्म देव में लय होजाती है, तब वह पुरुष कुछ नहीं जानता है, केवल सच्चिदानन्दरूप होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, एषः, अणिमा, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, भूयः, एव, मा, भगवान्, विज्ञापयतु, इति, तथा, सोम्य, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः	=जो	इदम्	=यह
सः	=वह	सर्वम्	=सब जगत है
अणिमा	=अति सूक्ष्म	इति	=यह
+आख्यातः	=कहा गया है	+श्रुत्वा	=सुनकर
सः	=वही	+पुत्रः	=श्वेतकेतु ने
एषः	=यह	+उवाच	=कहा कि
आत्मा	=आत्मा है	भगवान्	=आप
तत्	=वही	भूयः	=फिर
सत्यम्	=सत्य है	+अपि	=भी
श्वेतकेतो	=हे श्वेतकेतो	मा	=मुझको
तत्	=वही	विज्ञापयतु	=उपदेश करें
त्वम्	=तू	इतिश्रुत्वा	=यह सुन
असि	=है	पिता उवाच	=पिताने कहाकि
+ च	=और	सोम्य	=हे प्रियपुत्र
एतदात्म्यम्	=जो सत्व्यापक आत्मा है	तथा	=ऐसा
		एव	=ही
इति	=सोई	+ अस्तु	=होगा

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि कहते हैं कि हे प्रियदर्शन ! जो अतिसूक्ष्म कहागया है वही यह आत्मा है, वही सत्य है, वही इस जगत् का आधार है, और वही सत्ब्रह्मरूप तू है, ऐसा सुनकर श्वेतकेतु ने कहा कि हे पूज्यतम ! आप फिर भी इसीको उपदेश करें, उद्दालक ऋषि ने कहा कि बहुत अच्छा कहता हूं ॥ ३ ॥

इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षी-त्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृता-भिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रति-गृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषम्, सोम्य, उत, हस्तगृहीतम्, आनयन्ति, अपहार्षीत्, स्तेयम्, अकार्षीत्, परशुम्, अस्मै, तपत, इति, सः, यदि, तस्य, कर्ता, भवति, ततः, एव, अनृतम्, आत्मानम्, कुरुते, सः, अनृताभिसन्धः, अनृतेन, आत्मानम्, अन्तर्धाय, परशुम्, तप्तम्, प्रति-गृह्णाति, सः, दह्यते, अथ, हन्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ
सोम्य	हे प्रियपुत्र
+ यदा	जब
+ राजदूताः	राजदूत
हस्तगृहीतम्	हस्तबद्ध हुये
पुरुषम्	संदिग्ध चोर को
आनयन्ति	लाते हैं
उत	और
+ ब्रुवन्ति	कहते हैं कि
एषः	इसने
अपहार्षीत्	धन का हरण किया है
स्तेयम्	चोरी
अकार्षीत्	की है
+ तदा	तब

+न्यायाधि-कारिणः = न्यायाधिकारीपुरुष
इति=ऐसी
+आज्ञापयन्ति = आज्ञा देते हैं कि
अस्मै=इस चोर की जांच के लिये
परशुम्=परशु नामक अस्त्र को
तपत=तपाओ
यदि=अगर
सः=वह
तस्य=उस चोरी का
कर्ता=करनेवाला
भवति=है
+ तर्हि=तो
तत्=उस छिपाने से
एव=ही
आत्मानम्=अपने को
अनृतम्=झूठा
कुरुते=बनाता है
+च=और
+ यदा=जब
सः=वह
अनृताभिसन्धः = झूठ बोलने वाला
अनृतेन=झूठ से
आत्मानम्=अपने को
अन्तर्धाय=आच्छादित कर
तप्तम् परशुम् =तप्तपरशुको
प्रतिगृह्णाति=पकड़ता है
तदा सः=तब वह
दह्यते=जल जाता है
अथ=तत्पश्चात्
हन्यते=मारडाला जाता है

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से उदाहरण देकर फिर समझाते हैं कि हे प्रियवत्स ! जब संदिग्ध चोरके हाथ बांध करके राजदूत कचहरी में लाते हैं, और न्यायाधिकारी पुरुष के सन्मुख खड़ा करते हैं, और कहते हैं कि इसने धनका हरण किया है यानी चोरी की है, और जब वह चोरी करने से इन्कार

करताहै, और झूठ बोलता है, तब उसके हाथ पर सत्य की जांच के लिये अग्नि से तप्त परशु (कुल्हाड़ी) को रख देते हैं, यदि उसका हाथ जल जाता है तो वह बध करदिया जाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, तस्य, अकर्ता, भवति, ततः, एव, सत्यम्, आत्मानम्, कुरुते, सः, सत्याभिसन्धः, सत्येन, आत्मानम्, अन्तर्धाय, परशुम्, तप्तम्, प्रतिगृह्णाति, सः, न, दह्यते, अथ, मुच्यते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	आत्मानम्	अपने को
यदि	अगर	सत्यम्	सत्य
तस्य	उस चोरी का	कुरुते	करता है
+ सः	वह	+ च	और
अकर्ता	नहीं करने वाला	+ यदा	जब
भवति	है तो	सः	वह
ततः	उस सत्यभाषण से	सत्याभिसन्धः	सत्य बोलने वाला
		एव	निश्चय करके

सत्येन=सत्य से	सः=वह
आत्मानम्=अपने को	न=नहीं
अन्तर्धाय=रक्षा करके	दह्यते=जलता है
तप्तम्=तप्त	अथ=और फिर
परशुम्=परशु को	मुच्यते=छोड़ दिया जाता है
प्रतिगृह्णाति=पकड़ लेताहै	
+ तु=तब	

भावार्थ ।

और हे श्वेतकेतो ! अगर उस पुरुषने चोरी नहीं की है, और सत्यभाषण करके अपने को सत्य से युक्त करता है, तब वह तप्तलोह को हाथ से पकड़ लेताहै और जब नहीं जलता है तब वह छोड़ दिया जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, तत्र, न, अदाह्येत, एतदात्म्यम्, इदम्, सर्वम्, तत्, सत्यम्, सः, आत्मा, तत्, त्वम्, असि, श्वेतकेतो, इति, तत्, ह, अस्य, विजज्ञौ, इति, विजज्ञौ, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ सौम्य	हे प्रियपुत्र
यथा	जिस तरह
+ सः	वह सत्यवादी
तत्र	उस परीक्षा में
न	नहीं
अदाह्येत	जलता है
+ इति एव	उसी तरह
+ ब्रह्मनिष्ठः	ब्रह्मनिष्ठ
+ सत्याभिसन्धः	सत्यवादी पुरुष
+ इह	संसार बिषे
+ दुःखैः	दुःखों करके
+ न	नहीं
+ दह्यते	तपायमान होता है
एतदात्म्यम्	और जो यह सत् व्यापक आत्मा है
इति	सोई
इदम्	यह
सर्वम्	सब जगत् है
+ च	और
सः	सोई
आत्मा	तेरा आत्मा है
तत्	वही
सत्यम्	सत्य है
श्वेतकेतो	हे श्वेतकेतो
तत्	वही
त्वम्	तू
असि	है
इति	इस प्रकार
अस्य	उस अपने पिता के
तत्	उस उपदेशको
ह	भली प्रकार
विजज्ञौ	समुझता भया
इति	इस प्रकार
विजज्ञौ	समुझता भया

भावार्थ ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र से कहते हैं कि हे प्रियपुत्र ! जैसे संदिग्ध चोर सत्य का आश्रय करके तपित कुल्हाड़ी को न्यायाध्यक्ष के सामने उठा लेता है, और नहीं जलता है, उसीतरह से वह पुरुष जिसने सत्य ब्रह्मको सम्पूर्ण जगत्में व्यापक जाना है,

और सबका आत्मा समझा है, वह किसी प्रकार से दुःख करके तपायमान नहीं होता है, और सोई ऐसा व्यापक ब्रह्म तू है, ऐसा उद्दालक ऋषि अपने पुत्र को समझाता भया, और वह श्वेतकेतु भलीप्रकार इस ब्रह्मविद्या को समझता भया ॥ ३ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳहोवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अधीहि, भगवः, इति, ह, उपससाद, सनत्कुमारम्, नारदः, तम्, ह, उवाच, यत्, वेत्थ, तेन, मा, उपसीद, ततः, ते, ऊर्ध्वम्, वक्ष्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नारदः	नारद ऋषि	भगवः	हे भगवन्
सनत्कुमारम्	सनत्कुमार ऋषि के पास	माम्	मुझको
उपससाद	गये	अधीहि	आप शिक्षा दें
+ च	और	इति	ऐसा
इति	इसप्रकार	श्रुत्वा	सुनकर
उवाच	कहतेभये कि	+ सः	वह सनत्कुमार ऋषि

ह=स्पष्ट	तेन=उससे
तम्=उस नारद ऋषि से	माम्=मुझको
ह=निश्चयकेसाथ	उपसीद=विज्ञात करो
उवाच=कहतेभये कि	ततःऊर्ध्वम्=तब फिर
+ त्वम्=तुम	ते=तुम्हारे लिये
यत्=जो कुछ	वक्ष्यामि=मैं उपदेश करूंगा
वेत्थ=जानते हो	

भावार्थ ।

अब नारद और सनत्कुमार ऋषियों का संवाद चला है, जब नारद ऋषि सनत्कुमार ऋषि के पास गये और प्रार्थना की कि हे भगवन् ! मुझको ब्रह्मविद्याबिषे शिक्षा दीजिये तब यह सुनकर सनत्कुमारने नारद ऋषि से कहा कि हे नारद ! जो जो विद्या आप जानते हैं उन सबको मुझसे कहें तत्पश्चात् मैं तुमको उपदेश करूंगा सनत्कुमार ऋषि के पास नारद ऋषि के जाने का कारण यह था कि नारद ऋषि सब विद्या जानते थे परन्तु उनके चित्त में शान्ति नहीं थी, इसलिये आत्मविद्याकी जिज्ञासा करके चित्त की शान्तिनिमित्त सनत्कुमार ऋषि के पास गये यह जानकर कि विना श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ आत्मानुभवी आचार्य के उपदेश पाये मुझको ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति नहीं होगी और न चित्त शान्त होगा और ऐसे आचार्य भगवान् सनत्कुमार हैं और वह मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी हैं जैसा वह उपदेश मुझको करैंगे वैसा और कोई न करेगा, क्योंकि ब्रह्मविद्या सदा अपने प्यारे कोही यथायोग्य उपदेश कीजाती है, और वही उपदेश फल-दायक होता है, जैसा कृष्ण भगवान् ने अर्जुनप्रति, कपिल भगवान् ने देवहूती प्रति और याज्ञवल्क्य भगवान् ने मैत्रेयी प्रति किया है ॥ १ ॥

मूलम् ।

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, ऋग्वेदम्, भगवः, अध्येमि, यजुर्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम्, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्, सर्पदेवजनविद्याम्, एतत्, भगवः, अध्येमि ॥

अन्वयः	पदार्थ
ह	प्रसिद्ध
सः	वह नारद
उवाच	बोले कि
भगवः	हे भगवन्
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद
सामवेदम्	सामवेद
+ च	और
चतुर्थम्	चौथे
आथर्वणम्	अथर्व वेदको
अध्येमि	मैं जानता हूं
पञ्चमम्	पांचवें
इतिहासपुराणम्	इतिहास पुराण
राशिम् दैवम्	गणित और फलितज्योतिष शास्त्र
निधिम्	निधिविद्या

वाकोवाक्यम्=तर्कशास्त्र
एकायनम्=नीतिशास्त्र
देवविद्याम्=निरुक्तशास्त्र
वेदानाम्=वेदों का
वेदम्=वेद यानी व्याकरणशास्त्र
पित्र्यम्=श्राद्धकल्प
ब्रह्मविद्याम्=शिक्षाकल्पादि
क्षत्रविद्याम्=धनुर्वेद
भूतविद्याम्=भूततंत्रशास्त्र
नक्षत्रविद्याम्=ज्योतिषशास्त्र
सर्पदेवजनविद्याम्=सर्पदेवजनविद्या
एतत्=इन सब विद्याओं को
भगवः=हे भगवन्
अध्येमि=जानता हूं

भावार्थ ।

सनत्कुमार के पूंछने पर नारद ऋषि कहतेहैं कि हे भगवन् ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, गणित और फलित ज्योतिषशास्त्र, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, श्राद्धकल्प, शिक्षाकल्प, छन्द आदि, धनुर्विद्या, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजनविद्या इन सबको मैं भलीप्रकार जानताहूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

सोहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतᳬं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तᳬं होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, अहम्, भगवः, मन्त्रवित्, एव, अस्मि, न, आत्मवित्, श्रुतम्, हि, एव, मे, भगवद्दृशेभ्यः, तरति, शोकम्, आत्मवित्, इति, सः, अहम्, भगवः, शोचामि, तम्, मा, भगवान्, शोकस्य, पारम्, तारयतु, इति, तम्, ह, उवाच, यत्, वै, किञ्च, एतत्, अध्यगीष्ठाः, नाम, एव, एतत् ॥

अन्वयः	पदार्थ
भगवः	हे भगवन्
+ यद्यपि	यद्यपि
सः	वह वेदादिकों का पढ़नेवाला
+च	और
मन्त्रवित्	मन्त्रों का जानने वाला
एव	भी
अस्मि	मैं हूं
+हि	तौभी
अहम्	मैं
शोचामि	शोकयुक्त हूं
हि	क्योंकि
आत्मवित्	ब्रह्मवित्
अहम्	मैं
न	नहीं
अस्मि	हूं

अन्वयः	पदार्थ
भगवद्दृशेभ्यः	आपसरीखे
ब्रह्मविद्भ्यः	ब्रह्मज्ञानियोंसे
मे	मुझे
श्रुतम्	श्रवण
+ आसीत्	होचुका है कि
आत्मवित्	आत्मज्ञानी
एव	निश्चय करके
शोकम्	दुःख को
तरति	पार करजाता है
भगवः	हे भवगन्
+ अतः	इस कारण
तम्	उस शोकग्रस्त
माम्	मुझको
भगवान्	आप

शोकस्य=शोक के	यत्=जो
पारम्=पार	+ किञ्च=कुछ
तारयतु=उतार देवें	एतत्=यह कही हुई
इति=ऐसा	विद्या को
+उक्तवन्तम्=कहते हुये	+ त्वम्=तुमने
तम्=उस नारद से	अध्यगीष्ठाः=अध्ययन
ह=स्पष्ट	किया है
सः=वह	एतत्=यह सब
+ महर्षिः=महाऋषि स-	वै=निश्चय करके
नत्कुमार	नाम=नाममात्र
उवाच=बोले कि	एव=ही है

भावार्थ ।

नारद ऋषि कहते हैं कि हे भगवन् ! मैंने यद्यपि वेदादिकों को पढ़ाहै, और मंत्रों को जाना है, और उनके अनुसार कर्म भी किया है, तौभी मैं शोक करके युक्त हूं, क्योंकि मैं ब्रह्मवित् नहीं हूं, आप सरीखे ब्रह्मज्ञानियों करके मैंने सुनाहै कि ब्रह्मज्ञानी अवश्य दुःख को पारकर जाते हैं, इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करताहूं कि आप ब्रह्मविद्या बिषे मुझे ऐसा उपदेश करें कि मैं शोकसागर से अजाखुरवत् पार होजाऊं, इसपर सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हे नारद ! जो कुछ कि तुमने अध्ययन किया है, और जिसको कह सुनाया है, वह सब केवल नाममात्र विद्या हैं, उनसे शान्ति कदापि नहीं होसक्ती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो

राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्वदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्वेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

नाम, वै, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, आथर्वणः चतुर्थः, इतिहासपुराणः, पञ्चमः, वेदानाम्, वेदः, पित्र्यः, राशिः, दैवः, निधिः, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजनविद्या, नाम, एव, एतत्, नाम, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ देवर्षे	हे देवऋषि नारद
ऋग्वेदः	ऋग्वेद
यजुर्वेदः	यजुर्वेद
सामवेदः	सामवेद
चतुर्थः	चौथा
आथर्वणः	अथर्ववेद
पञ्चमः	पांचवां
इतिहास-पुराणः	इतिहास पुराण
वेदानाम्	वेदों का
वेदः	वेद यानी व्याकरण
पित्र्यः	श्राद्धकल्प
राशिः	गणितविद्या
दैवः	फलितशास्त्र
निधिः	निधिविद्या
एकायनम्	नीतिशास्त्र
वाकोवाक्यम्	तर्कशास्त्र
देवविद्या	निरुक्तशास्त्र
ब्रह्मविद्या	शिक्षाकल्पछन्दादि
भूतविद्या	भूततंत्रशास्त्र
क्षत्रविद्या	धनुर्वेद

नक्षत्रविद्या=ज्योतिषशास्त्र
सर्पदेव-जनविद्या=सर्पदेवजन-विद्या
एतत्=यह सब विद्या
नाम=नाम हैं
इति=इसलिये
नाम=नाम की
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब नारद ऋषि ने अपनी अध्ययन की हुई विद्या भगवान् सनत्कुमार को कह सुनाई, तब भगवान् सनत्कुमार ने विचार किया कि नारदऋषि अनेक प्रकार की विद्या जानते हैं, इसकारण उन सबका संस्कार उनके अन्तः-करण बिषे स्थित है, जो संशय की जड़ है, यावत् उस सब का अभाव न होजायगा तावत् उनको आत्मसाक्षात्कार न होगा, और अन्य सब आचार्यों को त्याग कर श्रद्धापूर्वक मेरे पास आये हैं ताते मेरा धर्म है कि उनको आत्मोपदेश करके शोक-सागर से पार कर दूं, और ऐसा तभी होगा जब उनको स्थूल नामोपासना से लेकर अन्तरप्राणोपासना दिखाकर ऋषि के संशय को दूरकर सर्वका आश्रय जो महासूक्ष्म भूमाख्य सत्-चैतन्य आत्मा है, उसका उपदेश किया जायगा, ऐसा शोचकर सनत्कुमार ऋषि ने नारद ऋषिसे कहा कि जो कुछ विद्या आपने पढ़ी है, वह सब नामही है, और नाम ब्रह्मबुद्धि करके उपास्य है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नोगतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ५ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, नाम, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, नाम्नः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, नाम, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, नाम्नः, भूयः, इति, नाम्नः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह नामोपासक
यः	जो
नाम	नाम
ब्रह्म	ब्रह्म की
इति	इसप्रकार
उपास्ते	उपासना करता है
यः	जो कोई
नाम	नाम
ब्रह्म	ब्रह्म की
इति	इसप्रकार
उपास्ते	उपासना करता है तो
यावत्	जहांतक
नाम्नः	नामकी
गतम्	गति
+ अस्ति	है
तत्र	तहांतक
अस्य	इसका
यथाकामचारः	स्वेच्छागमन
भवति	होता है
भगवः	हे भगवन्
+ यदि	अगर
नाम्नः	नाम से
भूयः	श्रेष्ठ
+ कश्चित्	कोई और
अस्ति	है तो
भगवान्	आप
तत्	उसको
मे	मेरे प्रति
ब्रवीतु	उपदेश करें

नारद=हे नारद	+ अन्यः=और भी
नाम्नः=नाम से	भूयः=श्रेष्ठ
वाव=निश्चय करके	अस्ति=है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो नाम ब्रह्मकी उपासना करता है वह यावत् नाम का विषय है, तिस विषे जैसी कामना करता है सोई उसको प्राप्त होता है, हे सौम्य ! जब इस प्रकार सनत्कुमारने कहा तब नारदऋषि ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! यह नामही ब्रह्म है किंवा इस नामका भी और कोई दूसरा ब्रह्म है, इसप्रकार पूंछे जानेपर सनत्कुमार ऋषिने कहाकि नामकाभी कोई अधिक-तर ब्रह्म है, तब नारदऋषिने कहाकि हे भगवन् ! ऐसे श्रेष्ठ ब्रह्मका मुझको उपदेश करिये ॥ ५ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथिवीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञञ्च

यद्वै वाङ् नाभविष्यन्नधर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, वाव, नाम्नः, भूयसी, वाक्, वै, ऋग्वेदम्, विज्ञापयति, यजुर्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम्, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्, सर्पदेवजनविद्याम्, दिवम्, च, पृथिवीम्, च, वायुम्, च, आकाशम्, च, आपः, च, तेजः, च, देवान्, च, मनुष्यान्, च, पशून्, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतीन्, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, धर्मम्, च, अधर्मम्, च, सत्यम्, च, अनृतम्, च, साधु, च, असाधु, च, हृदयज्ञम्, च, अहृदयज्ञम्, च, यत्, वै, वाक्, न, अभविष्यत्, न, धर्मः, न, अधर्मः, व्यज्ञापयिष्यत्, न, सत्यम्, न, अनृतम्, न, साधु, न, असाधु, न, हृदयज्ञः, न, अहृदयज्ञः, वाक्, एव, एतत्, सर्वम्, विज्ञापयति, वाचम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाक्	वाणी
नाम्नः	नामसे
वाव	अवश्य
भूयसी	श्रेष्ठ है
+ हि	क्योंकि
वाक्	वाणी
वै	ही
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद

यजुर्वेदम्=यजुर्वेद
सामवेदम्=सामवेद
चतुर्थम्=चौथे
आथर्वणम्=अथर्ववेद
पञ्चमम्=पांचवें
इतिहासपुराणम्=इतिहास पुराण
वेदानाम्=विद्याओं की
वेदः=विद्या व्याकरण को
विज्ञापयति=बताती है
च=और
पित्र्यम्=श्राद्धकल्प
राशिम्=गणित
दैवम्=फलितविद्या
निधिम्=निधिविद्या
वाकोवाक्यम्=तर्कविद्या
एकायनम्=नीतिशास्त्र
देवविद्याम्=निरुक्तशास्त्र
ब्रह्मविद्याम्=शिक्षा कल्प छन्दादि
भूतविद्याम्=भूततंत्रशास्त्र
क्षत्रविद्याम्=धनुर्वेदविद्या
नक्षत्रविद्याम्=ज्योतिर्विद्या

सर्पदेवजनविद्याम्=सर्पदेवजन विद्या को
+ अपि=भी
विज्ञापयति=बताती है
च=और
दिवम्=स्वर्ग
च=और
पृथिवीम्=पृथिवी
च=और
वायुम्=वायु
च=और
आकाशम्=आकाश
च=और
आपः=जल
च=और
देवान्=देवतावों
च=और
मनुष्यान्=मनुष्यों
च=और
पशून्=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतीन्=तृणवनस्पति

श्वापदानि=हिंसक जन्तु
आकीटप-
तङ्गपिपी-
लकम् } = कीट पतङ्ग चींटीपर्यन्त
धर्मम्=धर्म
च=और
अधर्मम्=अधर्म
च=और
सत्यम्=सत्य
च=और
अनृतम्=असत्य
च=और
साधु=साधु
च=और
असाधु=असाधु
च=और
हृदयज्ञम्=प्रिय
च=और
अहृदयज्ञम्=अप्रिय
एतत्=इन
सर्वम्=सबको
वाक्=वाणी
एव=ही
विज्ञापयति=बतलाती है

यत्=जो
वाक्=वाणी
न=न
भविष्यति=होती तो
न=न
धर्मः=धर्म
न=न
अधर्मः=अधर्म
न=न
सत्यम्=सत्य
न=न
अनृतम्=असत्य
न=न
हृदयज्ञम्=प्रिय
न=न
अहृदयज्ञम्=अप्रिय
वै=निश्चय करके
व्यज्ञाप-
यिष्यत् } =जानाजाता
इति=इसलिये
वाचम्=वाणी को
+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वाणी नामसे अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वाणी ही करके लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणितविद्या, उत्पत्तिविद्या, नीतिविद्या, तर्कविद्या, नीतिशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, शिक्षा कल्पछन्दादि, भूततंत्रशास्त्र, धनुर्वेदविद्या, ज्योतिषविद्या, सर्प देव जन विद्या को पढ़ते और समझते हैं, और वाणीही करके स्वर्ग, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति, हिंसक जीव, कीट, पतंग, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु, असाधु, प्रिय और अप्रिय को मनुष्य जानता और समुझता है, यदि वाणी न होती तो न धर्म, न अधर्म, न सत्य, न असत्य, न प्रिय, न अप्रिय जाना जाता, इसलिये हे नारद ! तुम वाणी की उपासना ब्रह्मबुद्धि करके करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, वाचम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, वाचः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, वाचम्, ब्रह्म, उपास्ते, अस्ति, भगवः, वाचः, भूयः, इति, वाचः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
वाचम्	वाणी द्वारा
ब्रह्म	ब्रह्मको
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
वाचम्	वाणी
इति	करके
ब्रह्म	ब्रह्मको
उपास्ते	उपासताहै तो
यावत्	जहां तक
वाचः	वाणी का
गतम्	विषय है
तत्र	तहांतक
अस्य	उसका
यथाकाम-चारः	स्वेच्छानुसार गमन
भवति	होता है
+ इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारदजीने
+ उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्

अन्वयः	पदार्थ
वाचः	वाणी से
भूयः	श्रेष्ठ
+ कश्चित्	कोई
+ अन्यः	दूसरा
अस्ति	है
+ इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
सनत्कुमारः	सनत्कुमार ऋषि ने
प्रत्युवाच	उत्तर दियाकि हां
वाचः	वाणी से
वाव	भी
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
इति	तब
+ नारदः	नारद ने
+ आह	कहा कि
भगवान्	आप
तत्	उसको
मे	मेरे प्रति
ब्रवीतु	कहें

भावार्थ ।

जो वाणी करके ब्रह्मकी उपासना करता है, तो जहांतक वाणी का विषय है वहांतक उसका गमन उसकी इच्छानुसार होता है, जब ऐसा नारद ने सुना तब सनत्कुमार ऋषि से कहा कि हे भगवन् ! कोई और भी दूसरी वस्तु है जो वाणी से श्रेष्ठ हो, ऐसा सुन, सनत्कुमार ने कहा कि हां ऐसा है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपा करके मेरे प्रति उसका उपदेश करें ॥ २ ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वाव, वाचः, भूयः, यथा, वै, द्वे, वा, आमलके, द्वे, वा, कोले, द्वौ, वा, अक्षौ, मुष्टिः, अनुभवति, एवम्, वाचम्, च, नाम, च, मनः, अनुभवति, सः, यदा, मनसा, मनस्यति, मन्त्रान्, अधि, इयीय, इति, अथ, अधीते, कर्माणि, कुर्वीय, इति, अथ, कुरुते,

पुत्रान्, च, पशून्, च, इच्छेय, इति, अथ, इच्छते, इमम्, च, लोकम्, अमुम्, च, इच्छेय, इति, अथ, इच्छते, मनः, हि, आत्मा, मनः, हि, लोकः, मनः, हि, ब्रह्म, मनः, उपास्व, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
मनः=मन	मनः=मन
वाचः=वाणी से	वाचम्=वाणी
वाव=अवश्य	च=और
भूयः=श्रेष्ठ है	नाम=नामको
यथा=जिसप्रकार	+ स्वस्मिन्=अपनेमेंस्थित
वै=निश्चय करके	अनुभवति=अनुभवकरता है
द्वे=दो	यदा=जब
आमलके=आंवलों	सः=वह यानीपुरुष
वा=अथवा	मनसा=मन करके
द्वे=दो	इति=ऐसा
कोले=बेरों	मनस्यति=मनन करता है कि
वा=अथवा	+ अहम्=मैं
द्वौ=दो	मन्त्रान्=मन्त्रों को
अक्षौ=बहेरों को	अधीयीय=पढूं
+ पुरुषस्य=पुरुषकी	अथ=तब
मुष्टिम्=मुट्ठी में	अधीते=वह पढ़ता है
अनुभवति=मन अनुभव करता है	कर्माणि=कर्मों को
एवम्=इसी प्रकार	

कुर्वीय=करूं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
कुरुते=कर्म करता है
पुत्रान्=पुत्रों को
च=और
पशून्=पशुवों को
इच्छेय=इच्छापूर्वक प्राप्त होऊं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
इच्छते=पुत्रादिकों को पाता है
इमम्=इस लोक
च=और
अमुम्=परलोक को
इच्छेय=इच्छापूर्वक प्राप्त होऊं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=चिंतवन करके
अथ=फिर
+ सः=वह
इच्छते=प्राप्त होता है
हि=क्योंकि
मनः=मन
एव=ही
आत्मा=आत्मा है
मनः=मन
+ एव=ही
लोकः=लोक है
च=और
मनः=मन
हि=ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=इसप्रकार
मनः=मनकी
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! मन वाणी से अवश्य श्रेष्ठ है, जैसे दो आवलों अथवा दो बेरों अथवा दो बहेरों को मुट्ठी में रखकर उनका अनुभव मनद्वारा पुरुष करता है, इसीप्रकार वाणी और नाम को पुरुष अपने मनविषे अनुभव करता है, जब

पुरुष मन करके चाहता है कि मैं मंत्रों को पढ़ूं तब वह मंत्रों को पढ़ता और समझता है, जब चाहता है कि कर्मों को करूं तब कर्मों को करता है, जब चाहता है कि पुत्र और पशुवों को प्राप्त होऊं, तब मन करके उनको पावता है, जब इच्छा करता है कि इसलोक और परलोक को प्राप्त होऊं, तब उनको मन करके पावता है, यह मनही आत्मा है, मनही लोक है, यह मन ही ब्रह्म है, इसप्रकार मनको ब्रह्म जानकर उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, मनः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, मनसः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, मनः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, मनसः, भूयः, इति, मनसः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः=वह		इति=इस प्रकार	
यः=जो		उपास्ते=उपासता है	
मनः=मनरूप		यः=जो	
ब्रह्म=ब्रह्मको		मनः=मनरूप	

ब्रह्म=ब्रह्मको
उपास्ते=उपासता है तो
यावत्=जहां तक
मनसः=मन की
गतम्=गति है
तत्र=वहांतक
यथाकाम-चारः=उसकी इच्छानुसार गमन
अस्य=उसका
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारदने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
मनसः=मन से भी
+ कश्चित्=कोई
+ अन्यः=दूसरा
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ सनत्कुमारः=सनत्कुमारने
इति=ऐसा
+ प्रत्युवाच=उत्तर दियाकि हां
मनसः=मनसे भी
वाव=निस्सन्देह
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहाकि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरेप्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो कोई मनरूप ब्रह्मकी उपासना करता है तो जहांतक मनकी गति है वहां तक उसका गमन उसकी इच्छानुसार होता है, यह सुनकर नारद ने कहाकि हे भगवन् ! मन से भी कोई अधिक श्रेष्ठ है, इसके उत्तर में सनत्कुमारऋषि ने कहा कि हां है, तब नारदजी ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

संकल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

संकल्पः, वाव, मनसः, भूयान्, यदा, वै, संकल्पयते, अथ, मनस्यति, अथ, वाचम्, ईरयति, ताम्, उ, नाम्नि, ईरयति, नाम्नि, मन्त्राः, एकम्, भवन्ति, मन्त्रेषु, कर्माणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
संकल्पः	संकल्प	ईरयति	उच्चारण करता है
वाव	निस्सन्देह	ताम्	तिस वाणीको
मनसः	मनसे	उ	निश्चय करके
भूयान्	श्रेष्ठ है	नाम्नि	नामकी तरफ़
यदा	जब	ईरयति	प्रेरणाकरता है
पुरुषः	पुरुष	+च	और
वै	निश्चयकरके	नाम्नि	नाममें
संकल्पयते	संकल्पकरताहै	मन्त्राः	सबमन्त्र
अथ	तब	एकम् भवन्ति	लीन रहते हैं
मनस्यति	मनन करताहै	+ च	और
अथ	तिसके पीछे		
वाचम्	वाणी को		

मन्त्रेषु=मन्त्रों में	+ एकम् }	=लीन रहते हैं
कर्माणि=सम्पूर्ण कर्म	भवन्ति }	

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! संकल्प मन से श्रेष्ठ है, क्योंकि पुरुष पहिले संकल्प करता है, फिर मनन करता है, तिसके पीछे वाणी को उच्चारण करता है, तिस वाणी को किसी वस्तु के नामसे संयुक्त करता है, और नाममें मन्त्र गुप्तभाव से स्थित रहते हैं, और मन्त्रों में सब कर्म स्थित रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषाᳬ संक्लृप्त्यै वर्षᳬ संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नᳬ संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाᳬ संक्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणाᳬ संक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाᳬ संक्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वᳬ संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वा, एतानि, संकल्पैकायनानि, संकल्पात्मकानि, संकल्पे, प्रतिष्ठितानि, सम्, अक्लृपताम्, द्यावापृथिवी, सम्, अकल्पेताम्, वायुः, च, आकाशम्,

च, समकल्पन्त, आपः, च, तेजः, च, तेषाम्, संक्लृप्त्यै, वर्षम्, संकल्पते, वर्षस्य, संक्लृप्त्यै, अन्नम्, संकल्पते, अन्नस्य, संक्लृप्त्यै, प्राणाः, संकल्पन्ते, प्राणानाम्, संक्लृप्त्यै, मन्त्राः, संकल्पन्ते, मन्त्राणाम्, संक्लृप्त्यै, कर्माणि, संकल्पन्ते, कर्मणाम्, संक्लृप्त्यै, लोकः, संकल्पन्ते, लोकस्य, संक्लृप्त्यै, सर्वम्, संकल्पते, सः, एषः, संकल्पः, संकल्पम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
संकल्पैकायनानि	संकल्पही है स्थान जिनका
संकल्पात्मकानि	संकल्पही है स्वरूप जिनका
च	और
संकल्पे	संकल्प में जो
प्रतिष्ठितानि	स्थित हैं ऐसे
तानि	वे
एतानि	ये नाम आदि हैं
द्यावापृथिवी	द्यु और पृथ्वी
समक्लृपताम्	संकल्पकृत हैं
वायुः	वायु
च	और
आकाशम्	आकाश
संकल्पेताम्	संकल्पकृत हैं
आपः	जल
च	और
तेजः	अग्नि
समकल्पन्त	संकल्पकृत हैं
तेषाम्	तिनका
संक्लृप्त्यै	संकल्प करके
+ पुरुषः	पुरुष
वर्षम्	वर्षा को
संकल्पते	संकल्पकरताहै

वर्षस्य=वर्षा को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
अन्नम्=अन्नको
संकल्पते=संकल्प करता है
अन्नस्य=अन्नको
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
प्राणाः=प्राण
संकल्पन्ते=संकल्प किये जाते हैं
प्राणानाम्=प्राणों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
मन्त्राः=मन्त्र
संकल्पन्ते=संकल्प किये जाते हैं
मन्त्राणाम्=मन्त्रों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
कर्माणि=कर्म
संकल्पन्ते=संकल्प किये जातेहैं
कर्मणाम्=कर्मों को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
लोकः=लोक
संकल्पते=संकल्प किया जाता है
लोकस्य=लोक को
संक्लृप्त्यै=संकल्प करके
सर्वम्=सब जगत्
संकल्पते=संकल्प किया जाता है
सः=वह
एषः=यह सब
संकल्पः=संकल्प ही है
इति=इस कारण
नारद=हे नारद
संकल्पम्=संकल्प की
उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! संकल्पही है स्थान जिनका, संकल्पही है स्वरूप जिनका, संकल्पही में है स्थिति जिनकी, ऐसे वे ये नामादिक हैं, द्यौ और पृथ्वी संकल्पकृत हैं, वायु और आकाश संकल्पकृत हैं, जल और अग्नि संकल्पकृत हैं, तिनको संकल्प करके पुरुष वर्षा का संकल्प करता है, वर्षाको संकल्प करके अन्नको संकल्प

करताहै, अन्नको संकल्प करके प्राणको संकल्प करता है, प्राणों को संकल्प करके मंत्रों को संकल्प करता है, मंत्रों को संकल्प करके कर्मों को संकल्प करता है, कर्मों को संकल्प करके लोक को संकल्प करता है, लोक को संकल्प करके सब जगत् को संकल्प करता है, इस कारण यह सब जगत् संकल्परूपही है, हे नारद ! अब तुम संकल्प की उपासना करो ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै सलोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगावन्ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, संकल्पम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, क्लृप्तान्, वै, सः, लोकान्, ध्रुवान्, ध्रुवः, प्रतिष्ठितान्, प्रतिष्ठितः, अव्यथमानान्, अव्यथमानः, अभिसिध्यति, यावत्, संकल्पस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, संकल्पम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, संकल्पात्, भूयः, इति, संकल्पात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह	संकल्पम्	=संकल्परूप
यः	=जो	ब्रह्म	=ब्रह्मको

उपास्ते=उपासता है
यः=जो
संकल्पम्=संकल्परूप
ब्रह्म=ब्रह्मको
उपास्ते=उपासता है तो
सः=वह
वै=निश्चयकरके
ध्रुवः=निश्चल
प्रतिष्ठितः=प्रतिष्ठित
अव्यथमानः=भयरहित
+ सन्=होता हुआ
क्लृप्तान्=समर्थित
ध्रुवान्=अचल
प्रतिष्ठितान्=प्रतिष्ठित
अव्यथमानान्=भयरहित
लोकान्=लोकों को
अभिसिध्यति=प्राप्त होताहै
+ च=और
यावत्=जहांतक
संकल्पस्य=संकल्प का
गतम्=गमन है
तत्र=वहां तक
अस्य=इसउपासककी
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन

भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
संकल्पात्=संकल्प से
भूयः=श्रेष्ठ
+ कश्चित्=कोई
अन्यः=दूसरा भी
अस्ति=है
+ नारद=हे नारद
संकल्पात्=संकल्प से
वाव=भी
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
इति=ऐसा
+ उवाच=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरेप्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो संकल्पद्वारा ब्रह्म की उपासना करता है वह निस्सन्देह निश्चल प्रतिष्ठित भयरहित होता हुआ अचल प्रतिष्ठित भयरहित लोकों को प्राप्त होता है, और जहांतक संकल्प का गमन है वहांतक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है, ऐसा सुनकर सनत्कुमारऋषि से नारदऋषि ने कहा कि, हे भगवन् ! क्या संकल्प से कोई दूसरा श्रेष्ठ है, इसके उत्तर में सनत्कुमारऋषि ने कहा कि हां है तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ ३ ॥
इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

चित्तम्, वाव, संकल्पात्, भूयः, यदा, वै, चेतयते, अथ, संकल्पयते, अथ, मनस्यति, अथ, वाचम्, ईरयति, ताम्, उ, नाम्नि, ईरयति, नाम्नि, मन्त्राः, एकम्, भवन्ति, मन्त्रेषु, कर्माणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चित्तम्	चित्त	वाव	निस्सन्देह
संकल्पात्	संकल्प से	भूयः	श्रेष्ठ है

यदा=जब
+ पुरुषः=पुरुष
चेतयते=चिंतन करता है
अथ=तब
वै=ही
संकल्पयते=संकल्प करता है
अथ=फिर
मनस्यति=मनन करता है यानी विचार करता है
अथ=फिर
वाचम्=वाणी को
ईरयति=उच्चारण करता है
उ=और
ताम्=उस वाणी को
नाम्नि=नाम प्रति
ईरयति=प्रेरणा करता है
नाम्नि=नाम में
मन्त्राः=मन्त्र
एकम् भवन्ति=लीन रहते हैं
+ च=और
मन्त्रेषु=मन्त्रों में
कर्माणि=सब कर्म
+ एकम् भवन्ति=लीन रहते हैं

भावार्थ ।

सनत्कुमारऋषि कहते हैं कि हे नारद ! संकल्प से चित्त श्रेष्ठ है, क्योंकि चिंतन करने के पीछे पुरुष संकल्प करता है, और बादको मनन यानी विचार करता है, और तत्पश्चात् वाणी को उच्चारण करता है, और फिर वाणी को वस्तुओं के नामसे संयुक्त करता है, और वस्तुओं के नामों में मंत्र लीन रहते हैं, और मंत्रों में कर्म लीन रहते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि

चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्वेति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वा, एतानि, चित्तैकायनानि, चित्तात्मानि, चित्ते, प्रतिष्ठितानि, तस्मात्, यदि, अपि, बहुवित्, अचित्तः, भवति, न, अयम्, अस्ति, इति, एव, एनम्, आहुः, यत्, अयम्, वेद, यत्, वै, अयम्, विद्वान्, न, इत्थम्, अचित्तः, स्यात्, इति, अथ, यदि, अल्पवित्, चित्तवान्, भवति, तस्मै, एव, उत, शुश्रूषन्ते, चित्तम्, हि, एव, एषाम्, एकायनम्, चित्तम्, आत्मा, चित्तम्, प्रतिष्ठा, चित्तम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तानि	वे	चित्तैकायनानि	चित्तही है स्थान जिनका
एतानि	ये नामादिक हैं	चित्तात्मानि	चित्तही है स्वरूप जिनका
तस्मात्	इस लिये	+ च	और
यद्यपि	यद्यपि	चित्ते	चित्तमेंही है
+ पुरुषः	पुरुष	प्रतिष्ठितानि	स्थिति जिन की
बहुवित्	बहुतविद्वान् यानी वेद का ज्ञाता है	+ एवम्	ऐसे
परम्	पर		

अचित्तः=चित्तरहित
भवति=है तो
अयम्=यह विद्वान्
न=नहीं
अस्ति=है
इति=ऐसा
एनम्=उसको
+पुरुषाः=लोग
आहुः=कहते हैं
+च=और
यत्=जो कुछ
अयम्=वह
वेद=जानता है
+तत्=वह सब
+वृथा=वृथा
ह वा=ही है
यद्वै=यदि
अयम्=वह पुरुष
विद्वान्=विद्वान्
+स्यात्=होता तो
इत्थम्=ऐसा
अचित्तः=चित्तरहित
न=नहीं
स्यात्=होता

अथ=और
यदि=अगर
अल्पवित्=थोड़ा जानने-
वाला है
+परम्=पर
चित्तवान्=चित्तसम्पन्न
भवति=है
उत=तो
तस्मै=उसको
एव=ही
+जनाः=लोग
शुश्रूषन्ते=पूजते हैं
हि=क्योंकि
चित्तम्=चित्त
एव=ही
एषाम्=इन सबों का
एकायनम्=केन्द्रस्थान है
चित्तम्=चित्त
+एव=ही
आत्मा=आत्मा है
चित्तम्=चित्तही
प्रतिष्ठा=प्रतिष्ठा है
इति=इस प्रकार
+नारद=हे नारद

चित्तम्=चित्तकी | उपास्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! चित्तही है स्थान जिनका, चित्तही है स्वरूप जिनका, और चित्तमेंही है स्थिति जिनकी ऐसे, वे ये नामादिक हैं, यानी नामादिक सब चित्तविषेही स्थित हैं, इसलिये अगर कोई पुरुष बहुत विद्वान् यानी वेदादिकों का ज्ञाता है, पर चित्तरहित है यानी चित्त उसका ठीक नहीं है, तो वास्तव में वह विद्वान् नहीं है, और जो कुछ वह जानता है वह सब वृथाही है, क्योंकि अगर वह पुरुष विद्वान् होता तो ऐसा चित्तरहित न होता, और अगर कोई पुरुष थोड़ा भी विद्वान् है, पर चित्त-सम्पन्न है, यानी उसका चित्त ठीक है, तो लोग उसकोही पूजते हैं, क्योंकि चित्तही सब वस्तुओं का केन्द्रस्थान है, चित्तही आत्मा है, चित्तही प्रतिष्ठा है, हे नारद ! ऐसे चित्त की उपासना ब्रह्मबुद्धि से करो ॥ २ ॥

मूलम् ।

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चितान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीस्ति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, चित्तम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, चितान्, वै, सः, लोकान्, ध्रुवान्, ध्रुवः, प्रतिष्ठितान्,

प्रतिष्ठितः, अव्यथमानान्, अव्यथमानः, अभिसिद्ध्यति, यावत्, चित्तस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, चित्तम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, चित्तात्, भूयः, इति, चित्तात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	सः	वह
यः	जो	ध्रुवः	निश्चल
चित्तम्	चित्त	प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित
ब्रह्म	ब्रह्मको	अव्यथमानः	भयरहित होता हुआ
उपास्ते	उपासता है	चितान्	चिंतन किये हुए
यः	जो	ध्रुवान्	अचल
चित्तम्	चित्त	प्रतिष्ठितान्	प्रतिष्ठित
ब्रह्म	ब्रह्मको	अव्यथमानान्	पीड़ारहित
उपास्ते	उपासताहै तो	लोकान्	लोकों को
यावत्	जहांतक	वै	निस्संदेह
चित्तस्य	चित्त का	अभिसिद्ध्यति	प्राप्त होता है
गतम्	गमन है	इति	ऐसा
तत्र	तहांतक	+ श्रुत्वा	सुनकर
अस्य	उसका	+ नारदः	नारद ने
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन		
भवति	होता है		
+ च	और		

+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
चित्तात्=चित्तसे
+ अपि=भी
+ कश्चित्=कोई
+ अन्यः=दूसरा
भूयः=श्रेष्ठ है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+सनत्कुमारः=सनत्कुमारने
आह=कहा कि हां
चित्तात्=चित्तसे
वाव=निश्चय करके
+ कश्चित्=और भी
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
इति=ऐसा
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह जो चित्तद्वारा ब्रह्मकी उपासना करता है तो जहांतक चित्तका गमन होता है वहांतक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है और वह निश्चल प्रतिष्ठित भयरहित होता हुआ चिंतन कियेहुये अचल प्रतिष्ठित भयरहित लोकों को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर नारद बोले कि हे भगवन् ! क्या चित्तसे भी श्रेष्ठ कोई दूसरा है ? इसके उत्तर में सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हां चित्त से भी श्रेष्ठ है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपाकर उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्याय-

तीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानपादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ध्यानम्, वाव, चित्तात्, भूयः, ध्यायति, इव, पृथिवी, ध्यायति, इव, अन्तरिक्षम्, ध्यायति, इव, द्यौः ध्यायन्ति, इव, आपः, ध्यायन्ति, इव, पर्वताः, ध्यायन्ति, इव, देवमनुष्याः, तस्मात्, ये, इह, मनुष्याणाम्, महत्ताम्, प्राप्नुवन्ति, ध्यानपादांशाः, इव, एव, ते, भवन्ति, अथ, ये, अल्पाः, कलहिनः, पिशुनाः, उपवादिनः, ते, अथ, ये, प्रभवः, ध्यानपादांशाः, इव, एव, ते, भवन्ति, ध्यानम्, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
वाव	निश्चय करके
ध्यानम्	ध्यान
चित्तात्	चित्त से
भूयः	श्रेष्ठ है
पृथिवी	पृथ्वी
ध्यायति इव	ध्यान करती हुई सी
अन्तरिक्षः	आकाश
ध्यायति	ध्यान करता हुआ
इव	सा
द्यौः	द्युलोक
ध्यायति इव	ध्यान करता हुआसा

आपः=जल
ध्यायन्ति=ध्यान करते हुये
इव=से
पर्वताः=पर्वत
ध्यायन्ति=ध्यान करते हुये
इव=से
देवमनुष्याः=देवता और मनुष्य
ध्यायन्ति=ध्यान करते हुये
इव=से
प्रतीयन्ते=प्रतीत होते हैं
तस्मात्=इस लिये
ध्यानपादांशाः=ध्यानकी एक भी कला है जिनमें
इव=ऐसे
ये=जे पुरुष
भवन्ति=हैं
ते=वे
इह=इस संसारविषे
मनुष्याणाम्=मनुष्यों में
महत्ताम्=श्रेष्ठता को
प्राप्नुवन्ति=प्राप्त होते हैं
अथ=और
ते=वे
ये=जे
अल्पाः=ध्यानकला से रहित हैं
ते=वे
कलहिनः=द्वेषी
पिशुनाः=निन्दक
+ च=और
उपवादिनः=लड़ाके हैं
अथ=और
ध्यानपादांशाः=ध्यानकी एक कला है जिनमें
इव=ऐसे
ये=जे जन हैं
ते=वे
+ अपि=भी
प्रभवः=स्वामित्वभाव को प्राप्त हुये हैं

इति=इस कारण	+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
+नारद=हे नारद	उपास्स्व=उपासना करो
ध्यानम्=ध्यान को	

भावार्थ ।

सनत्कुमारऋषि कहते हैं कि हे नारद ! ध्यान चित्त से श्रेष्ठ है, देखो पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल, स्वर्ग, पर्वत, देवता, मनुष्य आदि सब ध्यान करते हुये से प्रतीत होते हैं, और जो वे ऐसे महत्त्व को प्राप्त हुये हैं सो ध्यानही द्वारा प्राप्त हुये हैं, जिन पुरुषों में ध्यान की एक कला भी है वे निस्संदेह इस संसार बिषे मनुष्यों में प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं, और जो ध्यान की कला से रहित हैं वे दुष्ट, द्वेषी, लड़ाके होते हैं, हे नारद ! यह ध्यानही है जिस करके पुरुष स्वामित्वभाव को प्राप्त होते हैं, इसलिये हे नारद ! तुम ध्यान की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, ध्यानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, ध्यानस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथा, कामचारः, भवति, यः, ध्यानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः,

ध्यानात्, भूयः, इति, ध्यानात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	+नारदः	नारद ने
यः	जो	+उवाच	कहा कि
ध्यानम्	ध्यानरूप	भगवः	हे भगवन्
ब्रह्म	ब्रह्म को	ध्यानात्	ध्यान से भी
उपास्ते	उपासता है	+कश्चित्	कोई
सः	वह	भूयः	श्रेष्ठ
यः	जो	अस्ति	है
ध्यानम्	ध्यानरूप	इति	ऐसा
ब्रह्म	ब्रह्म को	+श्रुत्वा	सुनकर
उपास्ते	उपासता है तो	सनत्कुमारः	सनत्कुमार ऋषि ने
यावत्	जहां तक	उवाच	कहा कि हां
ध्यानस्य	ध्यान की	ध्यानात्	ध्यान से भी
गतम्	गति है	वाव	निश्चय करके
तत्र	वहां तक	भूयः	श्रेष्ठ
अस्य	उस उपासक की	अस्ति	है
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन	+तदा	तब
भवति	होता है	+नारदः	नारद ने
इति	ऐसा	आह	कहा कि
+श्रुत्वा	सुनकर	भगवान्	आप
		तत्	उसको

मे=मेरे प्रति | ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

वह जो ध्यानस्वरूप ब्रह्म की उपासना है तो जहां तक ध्यान की गति है वहां तक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या ध्यान से भी कोई दूसरा श्रेष्ठ है, सनत्कुमार ने कहा कि हां है, तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥२॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणम् चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसंचेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

विज्ञानम्, वाव, ध्यानात्, भूयः, विज्ञानेन, वै,

ऋग्वेदम्, विजानाति, यजुर्वेदम्, सामवेदम्, आथर्वणम्, चतुर्थम्, इतिहासपुराणम्, पञ्चमम्, वेदानाम्, वेदम्, पित्र्यम्, राशिम्, दैवम्, निधिम्, वाकोवाक्यम्, एकायनम्, देवविद्याम्, ब्रह्मविद्याम्, भूतविद्याम्, क्षत्रविद्याम्, नक्षत्रविद्याम्, सर्पदेवजनविद्याम्, दिवम्, च, पृथिवीम्, च, वायुम्, च, आकाशम्, च, आपः, च, तेजः, च, देवान्, च, मनुष्यान्, च, पशून्, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतीन्, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, धर्मम्, च, अधर्मम्, च, सत्यम्, च, अनृतम्, च, साधु, च, असाधु, च, हृदयज्ञम्, च, अहृदयज्ञम्, च, अन्नम्, च, रसम्, च, इमम्, च, लोकम्, अमुम्, च, विज्ञानेन, एव, विजानाति, विज्ञानम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
विज्ञानम्	विज्ञान
वाव	निस्संदेह
ध्यानात्	ध्यान से
भूयः	श्रेष्ठ है
विज्ञानेन	विज्ञान से
वै	ही
ऋग्वेदम्	ऋग्वेद
यजुर्वेदम्	यजुर्वेद
सामवेदम्	सामवेद
चतुर्थम्	चौथे
आथर्वणम्	अथर्ववेद
पञ्चमम्	पांचवें
इतिहासपुराणम्	इतिहासपुराण
वेदानाम्	वेदों का
वेदम्	वेद यानी व्याकरण
पित्र्यम्	श्राद्धकल्प
राशिम्	गणित
दैवम्	फलितविद्या
निधिम्	निधिविद्या
वाकोवाक्यम्	तर्कविद्या
एकायनम्	नीतिविद्या
देवविद्याम्	निरुक्तविद्या

ब्रह्मविद्याम्=शिक्षा कल्प छन्द आदि
भूतविद्याम्=भूतविद्या
क्षत्रविद्याम्=धनुर्वेद
नक्षत्रविद्याम्=ज्योतिषशास्त्र
सर्पदेवजनविद्याम्=सर्पदेवमनुष्यविद्या को
+ पुरुषः=पुरुष
विजानाति=जानता है
च=और
दिवम्=देवलोक
च=और
पृथिवीम्=पृथ्वी
च=और
वायुम्=वायु
च=और
आकाशम्=आकाश
च=और
आपः=जल
च=और
तेजः=अग्नि
च=और
देवान्=देव
च=और

मनुष्यान्=मनुष्य
च=और
पशून्=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतीन्=तृणवनस्पति
श्वापदानि=हिंसक जीव
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी आदि
धर्मम्=धर्म
च=और
अधर्मम्=अधर्म
च=और
सत्यम्=सत्य
च=और
अनृतम्=असत्य
च=और
साधु=साधु
च=और
असाधु=असाधु
च=और
हृदयज्ञम्=प्रिय

च=और	अमुम्=परलोक को
अहृदयज्ञम्=अप्रिय	विज्ञानेन=विज्ञानसे
च=और	एव=ही
अन्नम्=अन्न	विजानाति=जानता है
च=और	इति=इस कारण
रसम्=रस	विज्ञानम्=विज्ञान की
च=और	+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि करके
इमम्=इस लोक	उपास्स्व=उपासना करो
च=और	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ध्यान से विज्ञान अतिश्रेष्ठ है, क्योंकि विज्ञान से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, फलितविद्या, निधिविद्या, तर्कविद्या, नीतिविद्या, निरुक्तविद्या, शिक्षाकल्पछन्दआदि, भूततंत्रविद्या, ज्योतिषविद्या, धनुर्वेद, सर्पदेवमनुष्यविद्या को पुरुष जानता है, और द्यौलोक, पृथ्वी, आकाश, जल, तेज, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसकजंतु, कीड़ेमकोड़े चींटी पर्यन्त, धर्म अधर्म, सत्य असत्य, साधु असाधु, प्रिय अप्रिय, अन्नरस, इस लोक और परलोकको भी पुरुष विज्ञानसे ही जानता है, इसलिये हे नारद ! विज्ञान की उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै लोकान् ज्ञानवतोऽभिसिद्ध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं

तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्यु-पास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, विज्ञान-वतः, वै, लोकान्, ज्ञानवतः, अभि, सिद्ध्यति, यावत्, विज्ञानस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, विज्ञानात्, भूयः, इति, विज्ञानात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
विज्ञानम्	विज्ञानस्वरूप
ब्रह्म	ब्रह्मको
उपास्ते	उपासता है
सः	वह
यः	जो
विज्ञानम्	विज्ञानस्वरूप
उपास्ते	उपासताहै तो
यावत्	जहां तक

अन्वयः	पदार्थ
विज्ञानस्य	विज्ञानकी
गतम्	गति है
तत्र	वहां तक
अस्य	इस उपासक की
यथाकाम-चारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होता है
+ च	और
सः	वह
वै	निश्चय करके

ज्ञानवतः=ज्ञानवान्
च=और
विज्ञानवतः=विज्ञानवान्
लोकान्=लोकों को
अभिसिध्यति=प्राप्त होताहै
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
विज्ञानात्=विज्ञानसे भी
कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है

+सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि
इति=ऐसा
+ उवाच=कहते भये कि
+ नारद=हे नारद
विज्ञानात्=विज्ञानसेभी
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारदऋषि
+ आह=बोले कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

वह जो विज्ञानस्वरूप ब्रह्मकी उपासना करता है, तो जहाँ तक विज्ञान की गति है वहाँ तक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होता है, और वह निश्चय करके विज्ञानवान् और ज्ञानवान् लोकों को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या विज्ञान से भी कोई श्रेष्ठ है, यह सुनकर सनत्कुमार ऋषि ने कहा कि हे नारद ! विज्ञान से भी श्रेष्ठ है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! आप कृपा कर उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ २ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयश्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

बलम्, वाव, विज्ञानात्, भूयः, अपि, ह, शतम्, विज्ञानवताम्, एकः, बलवान्, आकम्पयते, सः, यदा, बली, भवति, अथ, उत्थाता, भवति, उत्तिष्ठन्, परिचरिता, भवति, परिचरन्, उपसत्ता, भवत्ति, उपसीदन्, द्रष्टा, भवति, श्रोता, भवति, मन्ता, भवति, बोद्धा, भवति, कर्ता, भवति, विज्ञाता, भवति, बलेन, वै, पृथिवी, तिष्ठति, बलेन, अन्तरिक्षम्, बलेन, द्यौः, बलेन, पर्वताः, बलेन, देवमनुष्याः, बलेन, पशवः, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतयः, श्वापदानि, आकीट-

पतङ्गपिपीलकम्, बलेन, लोकः, तिष्ठति, बलम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
बलम्	बल
वाव	निश्चय करके
विज्ञानात्	विज्ञान से
भूयः	श्रेष्ठ है
हि	क्योंकि
ह	यहप्रत्यक्षहैकि
एकः	एक
बलवान्	बलवान्
शतम्	सौ
विज्ञानवताम्	विज्ञानियों को
आकम्पते	कँपादेता है
यदा	अगर
सः	वह पुरुष
बली	बलवान्
भवति	है
अथ	तो
+ सः	वह
उत्थाता	उच्चपद को
भवति	प्राप्त होताहै

अन्वयः	पदार्थ
उत्तिष्ठन्	उच्चपदकोप्राप्त होताहुआ
परिचरिता	सेवा करने वाला
भवति	होता है
परिचरन्	सेवा करता हुआ
उपसत्ता	गुरुके समीप बैठनेवाला
भवति	होताहैयानी आचार्य को प्रिय होताहै
उपसीदन्	समीपबैठता और प्रिय होता हुआ
द्रष्टा	देखने वाला यानीआचार्यको एकाग्रतासे देखने वाला
भवति	होता है
+ पुनः	फिर

श्रोता=गुरूपदेश सुननेवाला
भवति=होता है
+ ततः=तत्पश्चात्
मन्ता=मनन करने वाला
भवति=होता है
+ ततः=तत्पश्चात्
बोद्धा=समझनेवाला
भवति=होताहै
+ पुनः=फिर
कर्ता=अनुष्ठानकरने वाला
भवति=होता है
+ पुनः=फिर
विज्ञाता=विशेषरूप से जाननेवाला
भवति=होता है
बलेन=बल करके
एव=ही
पृथिवी=पृथ्वी
तिष्ठति=स्थित है
बलेन=बल करकेही
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोक

बलेन=बल करके ही
द्यौः=देवलोक
बलेन=बल करके ही
पर्वताः=पर्वत
बलेन=बल करके
देवमनुष्याः=देव मनुष्य
बलेन=बल करके ही
पशवः=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतयः=तृणवनस्पति
च=और
श्वापदानि=हिंसक जीव-जन्तु
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी पर्यन्त
तिष्ठन्ति=स्थितहैं
च=और
बलेन=बल करके ही
लोकः=लोक और लोक विषे पदार्थ

तिष्ठति=स्थित है	बलम्=बलको
इति=इसलिये	ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
नारद=हे नारद	उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि एक बलवान् सौ विज्ञानियों को कँपादेता है, और वही उच्चपद को प्राप्त होता है, उस पद को प्राप्त होता हुआ सेवा करने वाला होता है, सेवा करने के कारण गुरु को प्यारा होता है, गुरु के समीप बैठता हुआ और गुरु को प्रिय होता हुआ एकाग्र-चित्त से गुरु की तरफ़ देखनेवाला होता है, और फिर गुरु के कहे हुये उपदेश को सुननेवाला होता है, फिर मनन करता है, फिर समझता है और फिर अनुष्ठान को करता है, और बाद को विशेष ज्ञानवान् होता है, हे नारद ! सुनो, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक बल करकेही स्थित हैं, और पर्वत, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक जीवजन्तु, कीड़े, पतिंगे, चींटी-पर्यन्त सब बल करकेही स्थित हैं, और यह लोक और लोक बिषे सब पदार्थ बल करकेही स्थित हैं, इस लिये हे नारद ! बल की उपासना तुम ब्रह्मबुद्धि करके करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, बलम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, बलस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, बलम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, बलात्, भूयः, इति, बलात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
यः	जो	भवति	होता है
बलम्	बलको	इति	ऐसा
ब्रह्म	ब्रह्म	+ श्रुत्वा	सुनकर
इति	करके	+ नारदः	नारद ने
उपास्ते	उपासताहै	+ उवाच	कहा कि
यः	जो	भगवः	हे भगवन्
बलम्	बलको	बलात्	बल से भी
ब्रह्म	ब्रह्म	+ कश्चित्	कोई
इति	करके	भूयः	श्रेष्ठ
उपास्ते	उपासता है तो	अस्ति	है
यावत्	जहां तक	+ सनत्कुमारः	सनत्कुमार ने
बलस्य	बल की	+ उवाच	कहा कि
गतम्	गति है	बलात्	बल से
तत्र	तहां तक	वाव	निस्संदेह
अस्य	उस उपासक की		

भूयः=श्रेष्ठ	भगवान्=आप
अस्ति=है	तत्=उसको
+ तदा=तब	मे=मेरेप्रति
+ नारदः=नारद ने	ब्रवीतु=कहें
+ आह=कहा कि	

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो बलको ब्रह्म करके उपासता है तो जहां तक बलकी गति है वहांतक उस उपासक की इच्छानुसार गमन होताहै ऐसा सुनकर नारद ऋषि ने कहा कि हे भगवन् ! क्या बलसे भी श्रेष्ठ कोई दूसरा है, सनत्कुमार ने कहा कि हां बल से भी श्रेष्ठ है, तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यन्नस्याऽऽयै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, वाव, बलात्, भूयः, तस्मात्, यदि, अपि, दशरात्रीः, न, अश्नीयात्, यदि, उ, ह, जीवेत्, अथवा, अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता, अविज्ञाता, भवति, अन्नस्य, आयै,

द्रष्टा, भवति, श्रोता, भवति, मन्ता, भवति, बोद्धा, भवति, कर्ता, भवति, विज्ञाता, भवति, अन्नम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अन्नम्	अन्न	अमन्ता	न मनन करने वाला
वाव	निश्चय करके	अबोद्धा	न समुझने वाला
बलात्	बल से	अकर्ता	न कार्य करने वाला
भूयः	श्रेष्ठ है	अविज्ञाता	न विशेष ज्ञान वाला
तस्मात्	इस लिये	भवति	होता है
यदि	अगर	परम्	पर
अपि	कोई	अथ	अगर
+पुरुषः	पुरुष	अन्नस्य	अन्न को
दश	दश	आयै	भोजन करता है तो
रात्रीः	रात्रितक	द्रष्टा	देखनेवाला
न	न	भवति	होता है
अश्नीयात्	भोजन करे	श्रोता	सुननेवाला
+तर्हि	तो	भवति	होता है
यदि	यद्यपि	मन्ता	मनन करने वाला
सः	वह		
ह	निस्संदेह		
जीवेत्	जीवता भी रहे		
अथवा	तौ भी		
अद्रष्टा	न देखनेवाला		
अश्रोता	न सुननेवाला		

भवति=होता है
बोद्धा=समझनेवाला
भवति=होता है
कर्ता=कार्य का करने वाला
भवति=होता है
उ=और
विज्ञाता=विशेष ज्ञान वाला
भवति=होता है
इति=इसलिये
+नारद=हे नारद
अन्नम्=अन्न को
+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! बल से अन्न अतिश्रेष्ठ है, अगर कोई पुरुष दश रात्रितक भोजन न करे तो यद्यपि वह जीता रहे तौ भी वह न देखनेवाला, न सुननेवाला, न मनन करनेवाला, न समझने वाला और न कार्य करनेवाला होता है, पर अगर अन्न को खाता रहे तो देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, समझनेवाला, कार्य का करनेवाला, विशेष ज्ञान का जाननेवाला होता है, इस लिये हे नारद ! अन्न की ब्रह्मबुद्धि से उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, अन्नम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अन्नवतः,

वै, सः, लोकान्, पानवतः, अभिसिद्ध्यति, यावत्, अन्नस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, अन्नम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, अन्नात्, भूयः, इति, अन्नात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह	भवति=होता है
यः=जो	च=और
अन्नम्=अन्न को	सः=वह
ब्रह्म=ब्रह्म	वै=निश्चय करके
इति=करके	अन्नवतः=अन्नवाले
उपास्ते=उपासता है	+ च=और
यः=जो	पानवतः=जलवाले
अन्नम्=अन्न को	लोकान्=लोकों को
ब्रह्म=ब्रह्म	अभिसिद्ध्यति=प्राप्त होता है
इति=करके	
उपास्ते=उपासताहै तो	इति=ऐसा
यावत्=जहांतक	+श्रुत्वा=सुनकर
अन्नस्य=अन्न की	+नारदः=नारद ने
गतम्=गति है	+उवाच=कहा कि
तत्र=तहांतक	भगवः=हे भगवन्
अस्य=उपासक की	अन्नात्=अन्न से
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन	+ कश्चित्=कोई दूसरा
	भूयः=श्रेष्ठ

अस्ति=है	+ तदा=तब
+सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषिने	+नारदः=नारद ने
उवाच=कहा कि	+आह=कहा कि
अन्नात्=अन्न से	भगवान्=आप
वाव=निस्संदेह	तत्=उसको
भूयः=श्रेष्ठ	मे=मेरे प्रति
अस्ति=है	ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! जो वह अन्न को ब्रह्मबुद्धि से उपासता है तो जहांतक अन्न की गति है वहांतक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है, और जहां अन्न और जल की बाहुल्यता है वहां के लोकों को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या अन्न से और कोई वस्तु श्रेष्ठ है, सनत्कुमार ने कहा कि हां, अन्नसे भी श्रेष्ठ है, तब नारदने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

आपो वावान्नाद्भूयो यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्य-तीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भव-न्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद् देवमनुष्या यत्

पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापद-
न्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप
उपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आपः, वाव, अन्नात्, भूयः, यः, तस्मात्, यदा, सुवृष्टिः, न भवति, व्याधीयन्ते, प्राणाः, अन्नम्, कनीयः, भविष्यति, इति, अथ, यदा, सुवृष्टिः, भवति, आनन्दिनः, प्राणाः, भवन्ति, अन्नम्, बहु, भविष्यति, इति, आपः, एव, इमाः, मूर्ताः, या, इयम्, पृथिवी, यत्, अन्तरिक्षम्, यत्, द्यौः, यत्, पर्वताः, यत्, देव-मनुष्याः, यत्, पशवः, च, वयांसि, च, तृणवनस्पतयः, श्वापदानि, आकीटपतङ्गपिपीलकम्, आपः, एव, इमाः, मूर्ताः, अपः, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आपः	जल	+ तदा	तब
वाव	निश्चय करके	प्राणाः	सब प्राणी
अन्नात्	अन्न से	व्याधीयन्ते	दुःखित होते हैं
भूयः	श्रेष्ठ है	इति	ऐसा
तस्मात्	इसलिये	+ संचित्य	चिंतन करके कि
यदा	जब	अन्नम्	अन्न
सुवृष्टिः	अच्छी वर्षा	कनीयः	बहुत थोड़ा
न	नहीं	भविष्यति	होगा
भवति	होती है	अथ	और

यदा=जब
सुवृष्टिः=अच्छी वर्षा
भवति=होती है
+ तदा=तब
प्राणाः=सब प्राणी
आनन्दिनः=आनन्दित
भवन्ति=होते हैं
इति=ऐसा
+ संचिन्त्य=सोचकर कि
बहु=बहुत
अन्नम्=अन्न
भविष्यति=होगा
इति=इसलिये
इमाः=यह सब
मूर्ताः=मूर्तियां
एव=निश्चय करके
आपः=जलरूपही हैं
या=जो
इयम्=यह
पृथिवी=पृथ्वी
यत्=जो
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष
यत्=जो
द्यौः=द्युलोक
यत्=जो
पर्वताः=पर्वत
यत्=जो
देवमनुष्याः=देवता और मनुष्य
यत्=जो
पशवः=पशु
च=और
वयांसि=पक्षी
च=और
तृणवनस्पतयः=तृणवनस्पति
च=और
श्वापदानि=हिंसक जीव जन्तु
आकीटपतङ्गपिपीलकम्=कीड़े पतिंगे चींटी पर्यन्त
मूर्ताः=मूर्तियां हैं
इमाः=वे सब
आपः=जलरूप
एव=ही
+सन्ति=हैं
इति=इस लिये
+नारद=हे नारद
अपः=जल को

+ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से । उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! जल अन्न से श्रेष्ठ है, क्योंकि जब अच्छी वर्षा नहीं होती तब यह अनुमान करके कि अन्न बहुत कम होगा सब प्राणी दुःखित होते हैं, और जब अच्छी वर्षा होती है तब ऐसा सोचकर कि अन्न अच्छा पैदा होगा सब प्राणी आनन्दित होते हैं, इसलिये ये सब मूर्तियां जलरूप ही हैं, और हे नारद ! जो यह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक, पर्वत, देवता, मनुष्य, तृणवनस्पति, हिंसक जीवजन्तु, कीड़े पतंगे चींटी पर्यन्त मूर्तियां हैं वे सब जलरूपही हैं, इसलिये हे नारद ! तुम जल की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामा ँ स्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, अपः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आप्नोति, सर्वान्, कामान्, तृप्तिमान्, भवति, यावत्, अपाम्, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, अपः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, अद्भ्यः, भूयः, इति, अद्भ्यः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह
यः	जो
अपः	जलको
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपास्ते	उपासता है
यः	जो
अपः	जल को
ब्रह्म इति	ब्रह्म करके
उपास्ते	उपासताहै तो
यावत्	जहांतक
अपाम्	जलकी
गतम्	गति है
तत्र	तहांतक
अस्य	उस उपासक की
यथाकामचारः	इच्छानुसार गमन
भवति	होताहै
+ च	और
+ सः	वह
सर्वान्	सब
कामान्	कामनाओं को
आप्नोति	प्राप्त होताहै
+ च	और
तृप्तिमान्	तृप्त
भवति	होताहै
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकरके
+ नारदः	नारदने
+ उवाच	कहाकि
भगवः	हे भगवन्
अद्भ्यः	जलसेभी
+कश्चित्	कोई
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+सनत्कुमारः	सनत्कुमारने
+ उवाच	कहाकि
अद्भ्यः	जलसेभी
वाव	निस्संदेह
भूयः	श्रेष्ठ
अस्ति	है
तदा	तब
+नारदः	नारदने
+ आह	कहाकि

भगवान्=आप मे=मेरे प्रति
तत्=उसको ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो जलको ब्रह्म बुद्धिकरके उपासता है तो जहांतक जलकी गति है वहांतक उसकी इच्छानुसार उसका गमन होता है, और वह सब कामनाओं को प्राप्त होताहै, और तृप्त होताहै, ऐसा सुनकर नारदने कहा कि हे भगवन् ! जलसे भी कोई श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने उत्तर दिया कि हां जलसे भी श्रेष्ठ है, तब नारदने कहा कि आप उसको कृपा करके मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तेजः, वाव, अद्भ्यः, भूयः, तत्, वै, एतत्, वायुम्, आगृह्य, आकाशम्, अभितपति, तत्, आहुः, निशोचति, नितपति, वर्षिष्यति, वै, इति, तेजः, एव, तत्,

पूर्वम्, दर्शयित्वा, अथ, आपः, सृजते, तत्, एतत्, ऊर्ध्वाभिः, च, तिरश्चीभिः, च, विद्युद्भिः, आह्रादाः, चरन्ति, तस्मात्, आहुः, विद्योतते, स्तनयति, वर्षिष्यति, वै, इति, तेजः, एव, तत्पूर्वम्, दर्शयित्वा, अथ, आपः, सृजते, तेजः, उपास्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तेजः	अग्नि
वाव	निस्सन्देह
अद्भ्यः	जल से
भूयः	श्रेष्ठ है
तत्	सोई
एतत्	यह अग्नि
वै	निश्चय करके
वायुम्	वायु को
आगृह्य	निग्रह कर यानी अपने साथ लेकर
आकाशम्	आकाशको
अभितपति	भलीप्रकार संतप्त करता है
तदा	तब
जनाः	मनुष्य
आहुः	कहतेहैं कि

अन्वयः	पदार्थ
निशोचति	संसार गर्मी करकेदुःखित होरहा है
+ च	और
नितपति	संतप्त होरहाहै
इति	इसलिये
वै	निस्सन्देह
वर्षिष्यति	वर्षा होगी
अथ	फिर
तेजः	अग्नि
एव	ही
तत्पूर्वम्	उसपूर्वदृश्यको
दर्शयित्वा	दिखलाकर
अथ	फिर
सृजते	जलको उत्पन्न करती है
+ च	और
तत्	तबही

एतत्=यह
ऊर्ध्वाभिः=ऊपर जाने वाली
+ च=और
तिरश्चीभिः=तिरछी चलने वाली
विद्युद्भिः=बिजुलियों के
+ सह=साथ
आह्लादाः=मेघ गर्जन शब्द
चरन्ति=करतेहैं
तस्मात्=इस लिये
+ जनाः=मनुष्य
आहुः=कहतेहैं कि
अथ=अब
विद्योतते=बिजुली चमकती है
स्तनयति=मेघ गर्जताहै
इति=इस कारण
वै=निस्सन्देह
वर्षिष्यति=वर्षा होगी
तेजः=अग्नि
एव=ही
तत्पूर्वम्=उस पूर्व दृश्य को
दर्शयित्वा=देखाकर
अथ=फिर
अपः=जल को
सृजते=उत्पन्न करती है
इति=इसलिये
+ नारद=हे नारद
तेजः=अग्नि की
ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धि से
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! अग्नि निस्सन्देह जल से श्रेष्ठ है, सोई यह अग्नि वायु से मिलकर आकाश को भली प्रकार संतप्त करता है, और जब संसार गर्मी करके संतप्त होता है तब मनुष्य कहते हैं कि निस्सन्देह वर्षा होगी, और तब अग्नि उस पूर्व दृश्य को दिखा कर जलको उत्पन्न करता है, और तभी ऊपर अन्तरिक्ष में जाने

वाली बिजुलियों करके मेघ गर्जनशब्द को करता है, तब मनुष्य कहते हैं कि अब बिजुली चमकती है, मेघ गर्जता है, इस कारण अब वर्षा अवश्य होगी, अग्निही उस पूर्वदृश्य को दिखाकर जलको उत्पन्न करता है, इसलिये हे नारद ! अग्नि की ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिद्ध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, तेजः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, तेजस्वी, वै, सः, तेजस्वतः, लोकान्, भास्वतः, अपहततमस्कान्, अभि, सिद्ध्यति, यावत्, तेजसः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, तेजः, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, तेजसः, भूयः, इति, तेजसः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह	ब्रह्म=ब्रह्म
यः=जो	इति=करके
तेजः=अग्निकी	उपास्ते=उपासना करता है

यः=जो
तेजः=अग्निकी
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
उपास्ते=उपासना करताहै तो
यावत्=जहांतक
तेजसः=अग्निकी
गतम्=गतिहै
तत्र=तहांतक
अस्य=उस उपासक का
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन
भवति=होताहै
+ च=और
तेजस्वी=तेजवालाहोता हुआ
तेजस्वतः=तेजस्वी
भास्वतः=प्रकाशमय
अपहततमस्कान्=अंधकाररहित
लोकान्=लोकों को
अभिसिद्ध्यति=प्राप्त होताहै

इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारदने
+ उवाच=कहाकि
भगवः=हे भगवन्
तेजसः=अग्निसे
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+सनत्कुमारः=सनत्कुमारने
इति=ऐसा
+ प्रत्युवाच=उत्तर दियाकि
तेजसः=अग्निसे
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारदने
+ आह=कहाकि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरेप्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! जो अग्नि की उपासना ब्रह्मबुद्धि करके करता है तो जहांतक अग्नि की गति है वहांतक उसका इच्छानुसार गमन होता है, और तेजस्वी होताहुआ वह उपासक अन्धकार रहित प्रकाशमय लोकों को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर नारदने कहा कि हे भगवन् ! क्या अग्निसे भी कोई श्रेष्ठ है, सनत्कुमार ने कहा कि हां अग्निसे भी श्रेष्ठ है, तब नारदने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रति शृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आकाशः, वाव, तेजसः, भूयान्, आकाशे, वै, सूर्याचन्द्रमसौ, उभौ, विद्युत्, नक्षत्राणि, अग्निः, आकाशेन, आह्वयति, आकाशेन, शृणोति, आकाशेन, प्रति, शृणोति, आकाशे, रमते, आकाशे, न, रमते, आकाशे, जायते, आकाशम्, अभिजायते, आकाशम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
आकाशः	=आकाश	तेजसः	=अग्निसे
वाव	=निश्चयकरके	भूयान्	=श्रेष्ठ है

आकाशे=आकाश में
वै=ही
उभौ=दोनों
सूर्याचन्द्रमसौ=सूर्य चन्द्रमा
विद्युत्=बिजुली
नक्षत्राणि=नक्षत्र
अग्निः=अग्नि
+ विद्यन्ते=विद्यमान हैं
आकाशेन=आकाश करके ही
आह्वयति=एक दूसरे को पुकारता है
आकाशेन=आकाश के द्वाराही
शृणोति=एक दूसरे की सुनता है
आकाशेन=आकाश करके ही
प्रतिशृणोति=जवाब देता है
आकाशे=आकाश में
रमते=रमण करता है
आकाशे=आकाश में ही
न=नहीं
रमते=रमण करता है
आकाशे=आकाश में
जायते=सब पदार्थ उत्पन्न होताहै
आकाशम्=आकाशमेंही
अभिजायते=पुष्ट होताहै
इति=इसलिये
+ नारद=हे नारद
आकाशम्=आकाश की
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! अग्निसे आकाश श्रेष्ठ है, आकाश में ही सूर्य, चन्द्रमा, बिजुली, तारागण और अग्नि रहते हैं, आकाशही करके जीव एक दूसरे को पुकारता है, आकाशही करके एक दूसरे की सुनता है, और जवाब देता है, आकाश में ही पुरुष रमण करता है, आकाश में ही पुरुष नहीं रमण करता है, आकाश में ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और पुष्ट होते हैं, इस

लिये हे नारद ! आकाश की उपासना ब्रह्मबुद्धि करके करो॥१॥

मूलम् ।

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति द्वादशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, आकाशम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आकाशवतः, वै, सः, लोकान्, प्रकाशवतः, असंबाधान्, उरुगायवतः, अभिसिध्यति, यावत्, आकाशस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, आकाशम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, आकाशात्, भूयः, इति, आकाशात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	=वह	यः	=जो
यः	=जो	आकाशम्	=आकाश को
आकाशम्	=आकाश को	ब्रह्म	=ब्रह्म
ब्रह्म	=ब्रह्म	इति	=करके
इति	=करके	उपास्ते	=उपासता है तो
उपास्ते	=उपासता है	यावत्	=जहांतक

आकाशस्य=आकाश की
गतम्=गति है
तत्र=तहांतक
अस्य=उसका
यथाकामचारः=इच्छानुसार गमन
भवति=होताहै
+ च=और
सः=वह
आकाशवतः=विस्तीर्ण
प्रकाशवतः=प्रकाशमय
असंबाधान्=पीड़ारहित
उरुगायवतः=देवसम्बन्धी
लोकान्=लोकों को
अभिसिद्ध्यति=प्राप्त होताहै
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारदने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
आकाशात्=आकाशसे भी
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि ने
+ उवाच=कहा कि
आकाशात्=आकाश से
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरेप्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो आकाश को ब्रह्म करके उपासता है तो जहां तक आकाश की गति है वहां तक उसका इच्छानुसार गमन होता है, और विस्तीर्ण प्रकाशमान पीड़ारहित देवसम्बन्धी लोकों को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि

हे भगवन् ! क्या आकाश से भी कोई श्रेष्ठ है, सनत्कुमार ने कहा कि हाँ आकाश से भी श्रेष्ठ है, तब नारद ने कहा कि आप कृपाकर उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्नस्मरन्तो नैव ते कंचन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून् स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

स्मरः, वाव, आकाशात्, भूयः, तस्मात्, यदि, अपि, बहवः, आसीरन्, न, स्मरन्तः, न, एव, ते, कंचन, शृणुयुः, न, मन्वीरन्, न, विजानीरन्, यदा, वाव, ते, स्मरेयुः, अथ, शृणुयुः, अथ, मन्वीरन्, अथ, विजानीरन्, स्मरेण, वै, पुत्रान्, विजानाति, स्मरेण, पशून्, स्मरम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
स्मरः	स्मृति	यदि	अगर
वाव	निश्चय करके	+ क्वचित्	किसीस्थानमें
आकाशात्	आकाश से	बहवः	बहुत मनुष्य
भूयः	श्रेष्ठ है	आसीरन्	बैठे हैं
तस्मात्	इस लिये	अपि	पर

न=न
स्मरन्तः=स्मरण करें
एव=तो
ते=वे
कंचन=कुछ
न=न
शृणुयुः=सुनेंगे
न=न
मन्वीरन्=मनन करेंगे
न=न
विजानीरन्=समझेंगे
तु=परन्तु
यदा=जब
ते=वे
स्मरेयुः=स्मरण करें
अथ=तब
वाव=ही
शृणुयुः=सुनेंगे
अथ=तब
एव=ही
मन्वीरन्=मनन करेंगे
अथ=तब
एव=ही
विजानीरन्=समझेंगे
\+ च=और
स्मरेण=स्मरणशक्ति से
एव=ही
वै=निस्सन्देह
पुरुषः=पुरुष
पुत्रान्=पुत्रों को
विजानाति=जानता है
स्मरेण=स्मरण करके
ही
पशून्=पशुओं को
विजानाति=जानता है
इति=इसलिये
\+ नारद=हे नारद
स्मरम्=स्मरण की
उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! आकाश से स्मृति श्रेष्ठ है, क्योंकि किसी स्थान में बहुत मनुष्य बैठे हों पर स्मरणशक्तिरहित हों यानी स्मरण न करते हों तो वे न कुछ सुनेंगे न समझेंगे, न मनन करेंगे,

यदि वे स्मरणशक्ति से युक्त हैं तो वे सुनेंगे, मनन करेंगे, समझेंगे, और स्मरणशक्ति करकेही पुरुष पुत्रों को और पशुओं को जानता है, इसलिये हे नारद ! स्मृति को ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, स्मरम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, यावत्, स्मरस्य, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, स्मरम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, स्मरात्, भूयः, इति, स्मरात्, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	यः	जो
यः	जो	स्मरम्	स्मृति को
स्मरम्	स्मृति को	ब्रह्म	ब्रह्म
ब्रह्म	ब्रह्म	इति	करके
इति	करके	उपास्ते	उपासता है तो
उपास्ते	उपासता है	यावत्	जहां तक

स्मरस्य=स्मृति की
गतम्=गति है
तत्र=तहां तक
अस्य=उसका
यथाकाम- } = स्वेच्छानुसार
चारः } गमन
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
स्मरात्=स्मृति से
+ कश्चित्=कोई
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+सनत्कु- } =सनत्कुमारने
मारः }
इति=ऐसा
+प्रत्युवाच=उत्तरदिया कि
स्मरात्=स्मृति से
वाव=निस्सन्देह
भूयः=श्रेष्ठ
अस्ति=है
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
इति=इस प्रकार
+ आह=कहा कि
भगवान्=आप
तत्=उसको
मे=मेरे प्रति
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो स्मृति को ब्रह्मबुद्धि करके उपासता है तो जहांतक स्मृति का विषय है वहां तक उसका इच्छानुसार गमन होता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! क्या स्मृति से भी कोई श्रेष्ठ है, सनत्कुमार ऋषिने कहा कि हां, स्मृति से भी श्रेष्ठ है, तब नारदजी ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति उपदेश करें ॥ २ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

आशा, वाव, स्मरात्, भूयसी, आशेद्धः, वै, स्मरः, मन्त्रान्, अधीते, कर्माणि, कुरुते, पुत्रान्, च, पशून्, च, इच्छते, इमम्, च, लोकम्, अमुम्, च, इच्छते, आशाम्, उपास्स्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
आशा	आशा
वाव	निस्संदेह
स्मरात्	स्मृति से
भूयसी	श्रेष्ठ है
हि	क्योंकि
आशेद्धः	आशा करके जगा हुआ
स्मरः	स्मृतियुक्त पुरुष
मन्त्रान्	मन्त्रों को
अधीते	अध्ययन करता है
ततः	तत्पश्चात्
कर्माणि	कर्मों को
कुरुते	करता है
च	और
पुत्रान	पुत्रों को
च	और
पशून	पशुओं को
इच्छते	इच्छा करता है
च	फिर
इमम्	इस लोक
च	और
अमुम्	परलोक को

इच्छते=इच्छा करताहै	आशाम्=आशा को
इति=इसलिये	ब्रह्मबुद्ध्या=ब्रह्मबुद्धिकरके
+नारद=हे नारद	उपास्स्व=उपासना करो

भावार्थ ।

हे नारद ! आशा स्मृति से श्रेष्ठ है, क्योंकि आशा यानी उम्मेद करके जगा हुआ पुरुष स्मृतियुक्त होता है, फिर मन्त्रों का ध्यान करता है, ध्यान के अनुसार कर्मों को करता है, और पुत्र और पशुओंके पाने की इच्छा करताहै, फिर इस लोक और परलोक के पाने की इच्छा करता है, इसलिये हे नारद ! आशा को ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, आशाम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, आशया, अस्य, सर्वे, कामाः, सम्, ऋध्यन्ति, अमोघाः, ह, अस्य, आशिषः, भवन्ति, यावत्, आशायाः, गतम्, तत्र, अस्य, यथाकामचारः, भवति, यः, आशाम्, ब्रह्म, इति, उपास्ते, अस्ति, भगवः, आशायाः,

भूयः, इति, आशायाः, वाव, भूयः, अस्ति, इति, तत्, मे, भगवान्, ब्रवीतु, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	सर्वे	सब
यः	जो	कामाः	कामनायें
आशाम्	आशाको	आशया	आशा करके
ब्रह्म	ब्रह्म	समृध्यन्ति	पूरी होती हैं
इति	करके	च	और
उपास्ते	उपासता है	अस्य	उसके
यः	जो	आशिषः	आशीर्वाद
आशाम्	आशाको	ह	निस्सन्देह
ब्रह्म	ब्रह्म	अमोघाः	सफल
इति	करके	भवन्ति	होते हैं
उपास्ते	उपासताहै तो	इति	ऐसा
यावत्	जहां तक	+ श्रुत्वा	सुनकर
आशायाः	आशा की	+ नारदः	नारदने
गतम्	गति है	+ उवाच	कहा कि
तत्र	तहांतक	भगवः	हे भगवन्
अस्य	उसका	आशायाः	आशा से
यथाकामचारः	स्वेच्छानुसार गमन	+ कश्चित्	कोई
भवति	होता है	भूयः	श्रेष्ठ
+ च	और	अस्ति	है
अस्य	उसकी	सनत्कुमारः	सनत्कुमार ने
		इति	ऐसा

प्रत्युवाच=जवाब दियाकि	+ नारदः=नारद ने
आशायाः=आशा से	+ आह=कहा कि
वाव=निस्सन्देह	भगवान्=आप
भूयः=श्रेष्ठ	तत्=उसको
अस्ति=है	मे=मेरेप्रति
+ तदा=तब	ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

हे नारद ! वह जो कोई आशा को ब्रह्मबुद्धि करके उपासता है तो जहां तक आशा की गति है वहां तक उसका स्वेच्छानुसार गमन होता है, और आशा करके उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं, और उसके आशीर्वाद सफल होते हैं, ऐसा सुनकर नारदने कहा कि हे भगवन् ! क्या आशा से भी कोई अधिकतर है, सनत्कुमार ने कहा कि हां आशा से भी अधिकतर है, तब नारद ने कहा कि आप कृपा करके उसको मेरे प्रति कहें ॥ २ ॥

इति चतुर्दशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

प्राणो वा आशाया भूयोन्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वᳬसमर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणो आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, वै, आशायाः, भूयान्, यथा, वै, अराः, नाभौ,

समर्पिताः, एवम्, अस्मिन्, प्राणे, सर्वम्, समर्पितम्, प्राणः, प्राणेन, याति, प्राणः, प्राणम्, ददाति, प्राणाय, ददाति, प्राणः, ह, पिता, प्राणः, माता, प्राणः, भ्राता, प्राणः, स्वसा, प्राणः, आचार्यः, प्राणः, ब्राह्मणः ॥

अन्वयः पदार्थ

प्राणः=प्राण
वै=निश्चय करके
आशायाः=आशा से
भूयान्=श्रेष्ठ है
यथा=जैसे
नाभौ=पहिये की नाभि विषे
अराः=अरे
समर्पिताः=लगे रहते हैं
एवम्=उसी तरह
वै=निस्संदेह
अस्मिन्=इस प्राण में
सर्वम्=सब कुछ
समर्पितम्=संबद्ध है
प्राणः=प्राण
प्राणेन=प्राण करके ही
याति=व्यौहार करता है
प्राणः=प्राण

अन्वयः पदार्थ

प्राणम्=प्राण को यानी जीवन को
ददाति=देता है
प्राणः=प्राण
प्राणाय=प्राण के लिये
ददाति=देता है
प्राणः=प्राण
ह=ही
पिता=पिता है
प्राणः=प्राण ही
माता=माता है
प्राणः=प्राण ही
भ्राता=भाई है
प्राणः=प्राण ही
स्वसा=भगिनी है
प्राणः=प्राणही
आचार्यः=आचार्य है
+ च=और

प्राणः=प्राण ही | ब्राह्मणः=ब्राह्मण है

भावार्थ ।

हे नारद ! आशा से प्राण बढ़कर है, जैसे रथचक्र में नाभि होती है और उसमें अरे और नेमि लगे रहते हैं, उनके द्वारा रथचक्र का व्यौहारहोता है, और नाभि के गिरजाने से सारा व्यौहार नष्ट होजाता है, रथ भी गिरजाता है, उसी तरह प्राण नाभि के तुल्य है, इन्द्रियादि अरोंके तुल्य हैं, और शरीर रथ के तुल्य है, जब प्राण शरीर से निकल जाता है तो इन्द्रियां और शरीर नष्ट भ्रष्ट होजातेहैं, अत एव ये सब प्राणही के आश्रय हैं, प्राण स्वतंत्र है, इन्द्रियां परतंत्र हैं, और प्राण विषे गमनादि क्रिया प्राणही करके होतीहै, प्राण प्राणही को देताहै, और प्राणही करके लेता है, प्राणही पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य, और ब्राह्मण है, जब तक प्राण शरीर विषे स्थित है, तभी तक यह संबन्ध है, प्राण निकला, संबन्ध टूटा, क्योंकि मृतकशरीर को न कोई पिता, न माता, न भ्राता, न भगिनी, न आचार्य, न ब्राह्मणादि के नामसे कहते हैं, और न कोई उसके रखने की इच्छा करता है, इसलिये सब वस्तु प्राणही है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदि, पितरम्, वा, मातरम्, वा, भ्रातरम्,

वा, स्वसारम्, वा, आचार्यम्, वा, ब्राह्मणम्, वा, किञ्चित्, भृशम्, इव, प्रति, आह, धिक्, त्वा, अस्तु, इति, एव, एनम्, आहुः, पितृहा, वै, त्वम्, असि, मातृहा, वै, त्वम्, असि, भ्रातृहा, वै, त्वम्, असि, स्वसृहा, वै, त्वम्, असि, आचार्यहा, वै, त्वम्, असि, ब्राह्मणहा, वै, त्वम्, असि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदि	अगर
सः	वह
पितरम्	पिता को
वा	अथवा
मातरम्	माता को
वा	अथवा
स्वसारम्	भगिनी को
वा	अथवा
भ्रातरम्	भ्राता को
वा	अथवा
आचार्यम्	आचार्य को
वा	अथवा
ब्राह्मणम्	ब्राह्मण को
किञ्चित्	कोई
भृशम्	अनुचित बात
प्रत्याह	कहता है तो
पार्श्वस्थाः	समीपस्थ पुरुष

अन्वयः	पदार्थ
एनम्	उसको
इति	ऐसा
आहुः	कहते हैं कि
त्वा	तुझ को
धिक्	धिक्कार
अस्तु	हो
त्वम्	तू
वै	निस्सन्देह
पितृहा	पिताका मारनेवाला
असि	है
त्वम्	तू
वै	निस्सन्देह
मातृहा	माता का मारनेवाला
असि	है
त्वम्	तू
वै	निस्सन्देह

भ्रातृहा=भ्राताका मारनेवाला
असि=है
त्वम्=तू
वै=निस्सन्देह
स्वसृहा=भगिनीकामारनेवाला
असि=है
त्वम्=तू
वै=निस्सन्देह
आचार्यहा=आचार्य का मारनेवाला
असि=है
त्वम्=तू
वै=निस्सन्देह
ब्राह्मणहा=ब्राह्मणका मारनेवाला
असि=है

भावार्थ ।

हे नारद ! अगर कोई पिता अथवा माता अथवा भ्राता अथवा आचार्य अथवा ब्राह्मण को दुर्वाक्य कहता है तो समीपस्थ पुरुष उससे कहते हैं कि तूने बड़ा निन्दित काम किया है, तुझको धिक्कार है, तू इन दुर्वाक्यों करके पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य और ब्राह्मण का हनन करनेवाला है, यानी ऐसा जो इन बिषे उपकार करनेवाला प्राण है उसको तू अपने वाक्यों करके दुःख देता है, इसलिये तू पापकर्मका करनेवाला है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषं दहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, अपि, एनान्, उत्क्रान्तप्राणान्,

शूलेन, समासं, व्यतिषम्, दहेत्, न, एव, एनम्, ब्रूयुः, पितृहा, असि, इति, न, मातृहा, असि, इति, न, भ्रातृहा, असि, इति, न, स्वसृहा, असि, इति, न, आचार्यहा, असि, इति, न, ब्राह्मणहा, असि, इति ॥

अन्वयः पदार्थ

अथ=और
यद्यपि=अगर
उत्क्रान्तप्राणान्=निकल गये हैं प्राण जिनके
एनान्=ऐसे इन पिता आदिकों को
शूलेन=शूल से
समासम्=एकत्रित करके
व्यतिषम्=अच्छी प्रकार
दहेत्=जला देवै
+ तथापि=तौभी
पितृहा=पिताका मारनेवाला
असि=है
इति=ऐसा
एनम्=उसको
न=नहीं
ब्रूयुः=कहते हैं
मातृहा=माता का मारनेवाला

अन्वयः पदार्थ

असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
भ्रातृहा=भाई का मारनेवाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
स्वसृहा=भगिनीका मारनेवाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
आचार्यहा=आचार्य का मारनेवाला
असि=है
इति=ऐसा
न=नहीं कहते हैं
ब्राह्मणहा=ब्राह्मण का मारनेवाला

असि=है	न=नहीं
इति=ऐसा	+ ब्रूयुः=कहते हैं

भावार्थ ।

हे नारद ! जब शरीर से प्राण निकल जाता है तब उसके संबन्धी उसको दाह करदेते हैं, और उसके कपाल को तोड़ देते हैं, तब उसको कोई पापी या बुरा नहीं कहते हैं, क्योंकि उसके अन्दर प्राण स्थित नहीं है, इससे यही सिद्ध होता है कि प्राण ही को दुःख होता है, शरीर को नहीं, ऐसा जान कर किसी प्राणधारी को किसी प्रकार का दुःख नहीं देना चाहिये ॥ ३ ॥

मूलम् ।

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, हि, एव, एतानि, सर्वाणि, भवति, सः, वै, एषः, एवम्, पश्यन्, एवम्, मन्वानः, एवम्, विजानन्, अतिवादी, भवति, तम्, चेत्, ब्रूयुः, अतिवादी, असि, इति, अतिवादी, अस्मि, इति, ब्रूयात्, न, अपह्नुवीत ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्राणः	प्राण	एतानि	इन
हि	ही	सर्वाणि	सब में
एव	निश्चय करके	भवति	स्थित है

एवम्=इस प्रकार
सः=वह
एषः=यह उपासक
वै=निश्चय करके
+ पश्यन्=देखता हुआ
एवम्=इस प्रकार
मन्वानः=मनन करता हुआ
एवम्=इस प्रकार
विजानीरन्=समझता हुआ
अतिवादी=अतिवादी
भवति=होता है
च=और
चेत्=अगर
तम्=उससे
+जनाः=लोग
ब्रूयुः=कहें कि
त्वम्=तू
अतिवादी=अतिवादी
असि=है तो
सः=वह
इति=ऐसा
ब्रूयात्=कहे कि
अहम्=मैं
अतिवादी=अतिवादी
अस्मि=हूं
+च=और
न=न
अपह्नुवीत=छिपावे

भावार्थ ।

हे नारद ! जो नाम से लेकर आशा पर्यन्त एक दूसरे के उत्तरोत्तर अधिक बढ़कर जानता हुआ प्राण के महत्त्व को भली प्रकार जाननेवाला होता है वह अतिवादी कहाजाता है, प्राण के महत्त्व से सबका माहात्म्य नीचा है, ऐसा देखता हुआ मनन करता हुआ और समुझता हुआ निश्चय करता है कि संसार बिषे जो कुछ है वह सब प्राणही में है, और यदि लोग उससे कहें कि तू अतिवादी है तो वह कहे कि हां मैं अतिवादी हूं, और छिपावे नहीं, क्योंकि उसको ख्याल रखना चाहिये कि सब जगत् का प्राणरूप आत्मा मैं ही हूं ॥ ४ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥

मूलम् ।

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति षोडशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एषः, तु, वै, अतिवदति, यः, सत्येन, अतिवदति, सः, अहम्, भगवः, सत्येन, अतिवदानि, इति, सत्यम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सत्यम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तु	परन्तु	अहम्	मैं
यः	जो	सत्येन	ब्रह्म ज्ञान करके ही
एषः	यह	अतिवदानि	अतिवादी होना चाहता हूं
अतिवदति	अतिवादी होता है	इति	ऐसा
सः	वह	+ श्रुत्वा	सुनकर
सत्येन	सत्ब्रह्म करके	+ सनत्कुमारः	सनत्कुमारने
एव	ही	+ उवाच	कहा कि
अतिवदति	अतिवादी होता है		
भगवः	हे भगवन्		

तु=प्रथम
सत्यम्=सत्यको
विजिज्ञा-सितव्यम्=जानना चाहिये
+ तदा=तब
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
सत्यम्=सत् ब्रह्मको
विजिज्ञासे=जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सनत्कुमार ऋषिने नारद ऋषि को प्राणविद्या का उपदेश किया तब नारद प्राण को सब नामादिकों से श्रेष्ठ पाकर और उसीको ब्रह्म समझकर तूष्णीं होता भया, तब सनत्कुमार ऋषि ने समझा कि जिस कल्याण निमित्त नारद मेरे पास आया उसको न पाकर तूष्णीं होगया, यानी प्रश्न करने से उपराम होगया, और मिथ्या ब्रह्मज्ञान से संतुष्ट होता भया, यह कृतार्थ जभी होगा जब सत्य को प्राप्त होगा, इस लिये विना पूछे ही इसको परंतत्त्व का उपदेश करना चाहिये, ऐसा विचार कर सनत्कुमारकहते भये कि हे नारद ! अतिवादी वह होता है जो सत्यभाषण आदि साधनसम्पन्न होता हुआ परमार्थ सत्यवस्तु को सम्यक् प्रकार जाननेवाला होता है, इसलिये हे नारद ! तू अतिवादी बन, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं अतिवादी बनना चाहता हूं, आप मुझको अतिवादी बनावें, तब सनत्कुमार भगवान् ने कहा कि हे नारद ! प्रथम तुझको जानना चाहिये कि सत्य परमार्थ वस्तु क्या है, उसके ज्ञान करके ही पुरुष अतिवादी होता है, तब नारद ने कहा कि मैं विशेष करके सत्य जानना चाहता हूं, आप मुझको बतावें ॥ १ ॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन् सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, विजानाति, अथ, सत्यम्, वदति, न, अविजानन्, सत्यम्, वदति, विजानन्, एव, सत्यम्, वदति, विज्ञानम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, विज्ञानम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब कोई	विजानन्	सत्य को जाननेवाला
वै	निश्चय करके	एव	ही
विजानाति	सत्य को जानता है	सत्यम्	सत्य को
अथ	तब	वदति	कहता है
सत्यम्	सत्य को ही	तु	परन्तु
वदति	कहता है	विज्ञानम्	विज्ञान
अविजानन्	सत्य को न जानता हुआ	विजिज्ञासितव्यम्	जानने योग्य है
सत्यम्	सत्य ब्रह्म को	इति	ऐसा
न	नहीं	+श्रुत्वा	सुनकर
वदति	कहसक्ता है	+नारदः	नारद ने

+उवाच=कहा कि भगवः=हे भगवन् विज्ञानम्=विज्ञान को	विजिज्ञासे=मैं जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! सत्य को वही कह सक्ता है जो सत्य को जानता है, जो सत्य को नहीं जानता है वह परमार्थ सत्य को नहीं कहसक्ता है, परमार्थ सत्य को मुमुक्षु केवल विज्ञान द्वाराही जानसक्ता है, सो विज्ञान जानने योग्य है, हे नारद ! जैसे नामरूपात्मक घटरूप उपाधिका सत्य एक मृत्तिका ही है, और जो सत्यरूप मृत्तिका से बने हुये घट सरावादिक हैं वे केवल वाचारम्भणमात्रही हैं, सत्यरूप मृत्तिका से अलग करके देखो तो कहीं उनका पता नहीं है, प्राण को जो सत्य कहा है वह नामादिकों की अपेक्षा से सत्य कहा है, क्योंकि प्राण भी और विकारों की तरह उत्पत्ति और नाशवान् है, यह घटता बढ़ता है, चलता है, ठहरता है, यानी निकल जाता है, इसका जो अधिष्ठान है, जिसकी सत्ता लेकर ये अनेक प्रकारके व्यवहार करने में समर्थ होता है, वह वास्तव में सत्य है, सोई विज्ञान करके उपनिषदों द्वारा जानने योग्य है, हे नारद ! जो उपनिषदों के विचार से यथार्थ ज्ञान होता है, वही विज्ञान कहलाता है, वही तुम्हारे जानने योग्य है, तब नारद ने कहा कि हे प्रभो ! ऐसे विज्ञान को मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति

मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, मनुते, अथ, विजानाति, न, अमत्वा, विजानाति, मत्वा, एव, विजानाति, मतिः, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, मतिम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब कोई
वै	निश्चय करके
मनुते	मनन करता है
अथ	तब
विजानाति	सत्यासत्य को जानता है
अमत्वा	न मनन करके
+ कश्चित्	कोई
न	नहीं
विजानाति	जानता है
मत्वा	मनन करके
एव	ही
विजानाति	विज्ञानवाला होता है
इति	इस लिये
मतिः	मननशक्ति
एव	निश्चय करके
विजिज्ञासितव्या	जानने योग्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
+ नारदः	नारद ने
उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्
मतिम्	मननशक्ति को
विजिज्ञासे	जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु मनन करता है तब विज्ञान को

प्राप्त होता है, विना मनन किये हुये विज्ञान को प्राप्त नहीं होता है, जो जिज्ञासु आचार्य से सुनता है तिसको विचार करके तर्क करके और युक्तियों से दृढ़ करके मनन करता है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं मनन के जानने की इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धात्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इत्येकोनविंशतितमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, श्रद्दधाति, अथ, मनुते, न, अश्रद्दधन्, मनुते, श्रद्दधत्, एव, मनुते, श्रद्धा, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, श्रद्धाम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब
वै	निश्चय करके
श्रद्दधाति	श्रद्धा करता है
तदा	तब
तु	ही
मनुते	मनन करता है
अश्रद्दधन्	श्रद्धा रहित पुरुष
न	नहीं
मनुते	मनन करसक्ता है
श्रद्दधत्	श्रद्धा करता हुआ
एव	ही
मनुते	मनन करताहै
इति	इसलिये

श्रद्धा=श्रद्धा
एव=निश्चय करके
विजिज्ञासितव्या=जाननेयोग्यहै
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ नारदः=नारद ने
+ उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
श्रद्धाम्=श्रद्धा को
विजिज्ञासे=जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु अपने गुरु के वाक्यों में श्रद्धा करता है तबही उसको मननशक्ति प्राप्त होती है, और जो वेदोक्त है उसीको गुरु उपदेश करता है, जो जिज्ञासु गुरु के वाक्यों में विश्वास नहीं करता है, वह मननशक्ति को नहीं प्राप्त होता है, इसलिये श्रद्धा को जानना योग्य है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं श्रद्धा को जानना चाहता हूं ॥ १ ॥
इत्येकोनविंशतितमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इति विंशतितमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, निः, तिष्ठति, अथ, श्रद्दधाति, न, अनिस्तिष्ठन्, श्रद्दधाति, निस्तिष्ठन्, एव, श्रद्दधाति, निष्ठा,

तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, निष्ठाम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	श्रद्दधाति	श्रद्धासम्पन्न होता है
वै	निश्चय के साथ	इति	इसलिये
निस्तिष्ठति	गुरुकी सेवादिमें तत्पर होता है	निष्ठा	गुरुसेवा यानी गुरु में निष्ठा
अथ	तब	एव	निश्चय करके
तु	ही	विजिज्ञासितव्या	जानने योग्य है
श्रद्दधाति	श्रद्धासम्पन्न होता है	इति	ऐसा
अनिस्तिष्ठन्	गुरुकी सेवा न करता हुआ पुरुष	+ श्रुत्वा	सुनकर
न	नहीं	+ नारदः	नारद ने
श्रद्दधाति	श्रद्धालु होता है	+ उवाच	कहा कि
निस्तिष्ठन्	सेवामें तत्पर होता हुआ पुरुष	भगवः	हे भगवन्
		निष्ठाम्	निष्ठाको
		विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे नारद ! पहिले निष्ठा के अर्थ को सुनो, गुरुकी सेवा और गुरु के कहे हुये वाक्यों में, ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक, मनन,

विचार करके दृढ़ अभ्यास करना निष्ठा है, जब ऐसी निष्ठा जिज्ञासु गुरु में करता है, तब उसको पारमार्थिक श्रद्धा प्राप्त होती है, इसलिये हे नारद ! निष्ठा जानने योग्य है, ऐसा सुनकर नारदने कहा कि हे भगवन् ! मैं निष्ठा जानने की इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ इति विंशतितमः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, करोति, अथ, निः, तिष्ठति, न, अकृत्वा, निः, तिष्ठति, कृत्वा, एव, निः, तिष्ठति, कृतिः, तु, एव, विजिज्ञासितव्या, इति, कृतिम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	तु	ही
वै	निश्चयके साथ	निस्तिष्ठति	निष्ठावाला होता है
करोति	एकाग्रता से संयमकरता है	अकृत्वा	संयम न करने से
अथ	तब		

न=नहीं	इति=ऐसा
निस्तिष्ठति=निष्ठावाला होता है	श्रुत्वा=सुनकर
कृत्वा=संयम करके	नारदः=नारदने
एव=ही	उवाच=कहा कि
निस्तिष्ठति=निष्ठासम्पन्न होता है	भगवः=हे भगवन्
इति=इसलिये	कृतिम्=कृति यानी इन्द्रियोंका रोकना और चित्तको एकाग्र करना
कृतिः=संयमरूपीक्रिया	
एव=निश्चयकरके	
विजिज्ञासितव्या=जानने योग्यहै	विजिज्ञासे=जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे नारद ! जब जिज्ञासु इन्द्रियों को विषयों से रोकता है, और चित्त को एकाग्र करता है तब वह निष्ठावाला होता है, अगर वह कृति को नहीं करता और निष्ठा करता है तो उसकी निष्ठा पारमार्थिक नहीं होसक्ती, इसलिये कृति जानने योग्य है, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं कृति को जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, सुखम्, लभते, अथ, करोति, न, असुखम्, लब्ध्वा, करोति, सुखम्, एव, लब्ध्वा, करोति, सुखम्, तु, एव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सुखम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब पुरुष
वै	निश्चय करके
सुखम्	सुख को
लभते	प्राप्त होता है
अथ	तब
तु	ही
करोति	क्रियाको करता है
असुखम्	सुखको न
लब्ध्वा	प्राप्त होकर
न करोति	क्रियाको नहीं करता है
सुखम्	सुखको
लब्ध्वा	पाकरके
एव	ही
करोति	क्रियाको करता है
इति	इसलिये
सुखम्	सुख
एव	ही
विजिज्ञासितव्यम्	जानना योग्य है
इति	ऐसा
+श्रुत्वा	सुनकर
+नारदः	नारदने
+उवाच	कहा कि
भगवः	हे भगवन्
सुखम्	सुखको
विजिज्ञासे	मैं जानना चाहता हूं

भावार्थ ।

हे नारद ! कृति तभी होती है जब सुख का लाभ होता है, यानी जब जिज्ञासु निरतिशय सुख प्राप्ति की इच्छा करता है

तब कृति को यानी इन्द्रियों का निग्रह और चित्त की एकाग्रता को करता है, इसलिये परमार्थ सत्य सुख जानने योग्य है, तिस सत्य विज्ञान का कारण मनन है, मनन का कारण विश्वास है, क्योंकि जब गुरु के वाक्य में विश्वास होता है तभी मनन होता है, फिर श्रद्धा का कारण निष्ठा है, निष्ठा का कारण कृति यानी इन्द्रियों का संयम और चित्तकी एकाग्रता है, कृति आदि से सत्यकी प्राप्ति होती है, और सत्य की प्राप्ति से निरतिशय सुख होता है, निरतिशय सुख तब होता है जब वह ऊपर कहे हुये साधनों से अपने आपको प्रकाशता है, ऐसा सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! मैं सुख को जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

इति द्वाविंशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यः, वै, भूमा, तत्, सुखम्, न, अल्पे, सुखम्, अस्ति, भूमा, एव, सुखम्, भूमा, तु, एव, विजिज्ञासितव्यः, इति, भूमानम्, भगवः, विजिज्ञासे, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः=जो		भूमा=भूमा है	
वै=निश्चय करके		तत्=वही	

सुखम्=सुखरूप है
अल्पे=अल्पवस्तु
सुखम्=सुखरूप
न=नहीं
अस्ति=है
इति=इसलिये
भूमा=भूमा
एव=निश्चय करके
विजिज्ञासितव्यः=जानने योग्य है
+कुतः=क्योंकि
भूमा=भूमा
एव=ही
सुखम्=सुखरूप है
इति=ऐसा
+श्रुत्वा=सुनकर
+नारदः=नारद ने
+उवाच=कहा कि
भगवः=हे भगवन्
भूमानम्=भूमा को
विजिज्ञासे=मैं जानना चाहता हूं

भावार्थ।

सनत्कुमार ऋषि कहते हैं कि हे नारद ! जो भूमा है वही सुखरूप है, निरतिशय सुख परिपूर्णता में होता है, अल्पज्ञता में नहीं, भूमा यानी ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, अतिमहान् है, सब कामनाओं से परिपूर्ण है, अतएव अचल है, अल्पज्ञता में तृष्णा होती है, तृष्णा से दुःख होता है, तुम अल्पज्ञता को त्याग कर सर्वज्ञता का आश्रय करो, और भूमाख्य आत्म विषे स्थित होने का पुरुषार्थ करो, तब नारद ने कहा कि हे भगवन् ! जो सब से अधिक निरतिशय भूमाख्य सुख है, उसको मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ इति त्रयोविंशःखण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्वि-

जानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्य-
न्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ
यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति
स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यत्र, न, अन्यत्, पश्यति, न, अन्यत्, शृणोति, न, अन्यत्, विजानाति, सः, भूमा, अथ, यत्र, अन्यत्, पश्यति, अन्यत्, शृणोति, अन्यत्, विजानाति, तत्, अल्पम्, यः, वै, भूमा, तत्, अमृतम्, अथ, यत्, अल्पम्, तत्, मर्त्यम्, सः, भगवः, कस्मिन्, प्रतिष्ठिते, इति, स्वे, महिम्नि, यदि, वा, न, महिम्नि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यत्र	जिस भूमा ब्रह्म में
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
पश्यति	देखता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
शृणोति	सुनता है
अन्यत्	अन्य वस्तु को
न	नहीं
विजानाति	जानता है

अन्वयः	पदार्थ
सः	वही वस्तु
भूमा	भूमा है
अथ	और
यत्र	जिसमें
अन्यत्	अन्य वस्तुको
पश्यति	देखता है
अन्यत्	अन्य वस्तुको
शृणोति	सुनता है
अन्यत्	अन्य वस्तुको
विजानाति	जानता है

तत्=वह वस्तु	कस्मिन्=किसमें
अल्पम्=अल्प है	प्रतिष्ठिते=प्रतिष्ठित है
यः=जो	इति=ऐसा
वै=निश्चय करके	+ श्रुत्वा=सुनकरके
भूमा=भूमा है	+ सनत्कुमारः=सनत्कुमार ने
तत्=वही	
अमृतम्=अमृत है	+ उवाच=कहा कि
अथ=और	स्वे=अपने
यत्=जो	महिम्नि=महिमा में
अल्पम्=अल्प है	वा=अथवा
तत्=वही	यदि=जो अपनी
मर्त्यम्=मृत्यु योग्य है	महिम्नि=महिमा में
भगवः=हे भगवन्	न=नहीं
सः=वह भूमा	+ प्रतिष्ठिते=प्रतिष्ठित है

भावार्थ ।

हे नारद ! उस एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व विषे उपासक न अन्य वस्तुको देखता है, न अन्य वस्तुको सुनता है, न अन्य वस्तुको जानता है, ऐसा यह भूमा है, यानी महाप्रभाववाला प्रमाणरहित व्यापक ब्रह्म है, और जिसमें उपासक अन्य वस्तु को देखता है, अन्य वस्तुको सुनता है, अन्य वस्तुको जानता है, वह अल्प है, भूमा नहीं है, और जो अल्प है, वही मरणयोग्य है, यह सुनकर नारद ने कहा कि हे भगवन् ! भूमा किसमें प्रतिष्ठित है तब सनत्कुमार ऋषि ने उत्तर दिया कि वह अपनी निज महिमामेंही प्रतिष्ठित है, भूमाख्य आत्मज्ञानस्वरूप है, न वह ज्ञानक्रिया का कर्ता है, और न वह ज्ञान का विषय है, इस लिये महिमा से पृथक् भी है ॥ १ ॥

मूलम् ।

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति॥२॥
इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

गो, अश्वम्, इह, महिमा, इति, आचक्षते, हस्तिहिरण्यम्, दासभार्यम्, क्षेत्राणि, आयतनानि, इति, न, अहम्, एवम्, ब्रवीमि, ब्रवीमि, इति, ह, उवाच, अन्यः, हि, अन्यस्मिन्, प्रतिष्ठिते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
इह	इस संसार में
गोअश्वम्	गाय घोड़ा
हस्ति-हिरण्यम्	हस्ति सुवर्ण
दासभार्यम्	दास स्त्री
क्षेत्राणि	क्षेत्र
आयतनानि	गृह आदिकों को
महिमा	महिमा
इति	करके
आचक्षते	कहते हैं
इति	ऐसी
एवम्	महिमा को
अहम्	मैं
न	नहीं
ब्रवीमि	कहता हूं
हि	क्योंकि
+ एषः	यह महिमा
अन्यः	अन्य
अन्यस्मिन्	अन्य बिषे
प्रतिष्ठिते	प्रतिष्ठित है
अहम्	मैं
तु	तो
+ वक्ष्य-माणम्	आगे कहे हुये प्रकार
इति	करके

+तस्य=उस भूमाख्य ब्रह्मकी	इति=इस प्रकार
+महिमानम्=महिमा को	ह=स्पष्ट
ब्रवीमि=कहताहूं	सनत्कुमारः=सनत्कुमार ऋषि
	उवाच=कहते भये

भावार्थ ।

हे नारद ! गौ, घोड़ा, हस्ती, सुवर्ण, दास, स्त्री, ग्राम, राज्य आदि जो महिमा करके प्रसिद्ध हैं वह दूसरे के आश्रय हैं, ऐसी महिमाको मैं भूमाकी महिमा नहीं कहता हूं, क्योंकि परमार्थ दृष्टि से भूमा पूर्ण होने के कारण कहीं नहीं रहता है, जो अन्यके आश्रय रहता है वह अल्प परिच्छिन्न विकारी नाशवान् होताहै, भूमा ऐसा नहीं है, सर्वाधिष्ठान भूमा विषे सारा ब्रह्माण्ड भास रहा है, सोई वाचारम्भणमात्र अल्प नाशवान् है ॥ २ ॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशःखण्डः ॥

मूलम् ।

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोहमुत्तरतोहमेवेदꣳसर्वमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एव, अधस्तात्, सः, उपरिष्टात्, सः, पश्चात्,

सः, पुरस्तात्, सः, दक्षिणतः, सः, उत्तरतः, सः, एव, इदम्, सर्वम्, इति, अथ, अतः, अहंकारादेशः, एव, अहम्, एव, अधस्तात्, अहम्, उपरिष्टात्, अहम्, पश्चात्, अहम्, पुरस्तात्, अहम्, दक्षिणतः, अहम्, उत्तरतः, अहम्, एव, इदम्, सर्वम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः एव	वही ब्रह्म	अथ	अब आगे
अधस्तात्	नीचे स्थित है	अहंकारादेशः	अहंकारयुक्त उपदेश
सः	वही	एवम्	इस प्रकार
उपरिष्टात्	ऊपर स्थित है	+ भवति	होता है कि
सः	वही	अहम् एव	मैंही
पश्चात्	पश्चिम में स्थित है	अधस्तात्	नीचे स्थित हूं
सः	वही	अहम् एव	मैंही
पुरस्तात्	पूर्वमें स्थित है	उपरिष्टात्	ऊपर स्थित हूं
सः	वही	अहम्	मैं ही
दक्षिणतः	दक्षिण में स्थित है	पश्चात्	पश्चिम हूं
सः	वही	अहम्	मैंही
उत्तरतः	उत्तरमेंस्थितहै	पुरस्तात्	पूर्व हूं
सः	वही	अहम्	मैंही
इदम्	यह	दक्षिणतः	दक्षिण हूं
सर्वम्	सब है	अहम्	मैंही
अतः	इसलिये	उत्तरतः	उत्तर हूं

इति=इस कारण	सर्वम्=सब
इदम्=यह	अहम् एव=मैंही हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद ! नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण सब भूमाही रूप है, उससे पृथक् कुछ नहीं है, और न कोई ऐसी वस्तु है जिसमें भूमा स्थित न हो, अर्थात् यह जो नामरूपात्मक जगत् दिखाई देता है सो सब अद्वैतभूमाही है, ऐसा उपदेश करके सनत्कुमार विचार करते भये कि इस मेरे परोक्ष उपदेश को श्रवण करके शायद नारद को शंका उत्पन्न हो कि इस जीवतत्त्व से इतर कोई भूमानामवाला और तत्त्व है, जो सर्व रूपसे सर्व ओर स्थित होगा इस शंकाके निवारणार्थ सनत्कुमार अहंपूर्वक उपदेश करते हैं ताकि उसकी और किसी मुमुक्षु की बुद्धि विषे द्वैत की भ्रान्ति न हो, हे नारद ! मैंही नीचे हूं, मैंही ऊपर हूं, मैंही उत्तर हूं, मैंही दक्षिण हूं, मैंही पूर्व हूं, मैंही पश्चिम हूं, मैंही मध्यहूं, मैंही दाहिने हूं, मैंही बायें हूं, जो कुछ शब्द का विषय है सो सब मैंही हूं, मुझ से इतर कुछ नहीं है, मैंही ब्रह्म हूं, मैंही भूमा हूं, यानी सब शरीरों विषे जो जीवात्मा है वही भूमा है, वही ब्रह्म है, वही यह सब जगत् है, उससे पृथक् कोई दूसरा ब्रह्म नहीं है, सोई मैं हूं, हे नारद ! इसप्रकार तुम अपने आपको अनुभव करो ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेद ँ सर्वमिति स वा एष एवं

पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषा ꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥ इति पञ्चविंशःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, आत्मादेशः, एव, आत्मा, एव, अधस्तात्, आत्मा, उपरिष्टात्, आत्मा, पश्चात्, आत्मा, पुरस्तात्, आत्मा, दक्षिणतः, आत्मा, उत्तरतः, आत्मा, एव, इदम्, सर्वम्, इति, सः, वा, एषः, एवम्, पश्यन्, एवम्, मन्वानः, एवम्, विजानन्, आत्मरतिः, आत्मक्रीडः, आत्ममिथुनः, आत्मानन्दः, सः, स्वराट्, भवति, तस्य, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति, अथ, ये, अन्यथा, अतः, विदुः, अन्यराजानः, ते, क्षय्यलोकाः, भवन्ति, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, अकामचारः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अतः	इसके पश्चात्	एव	ऐसा है
अथ	अब	आत्मा एव	आत्माही
आत्मादेशः	आत्माकाउपदेश	अधस्तात्	नीचे है
		आत्मा एव	आत्माही

उपरिष्टात्=ऊपर है
आत्मा=आत्माही
पश्चात्=पीछे है
आत्मा=आत्माही
पुरस्तात्=आगे है
आत्मा=आत्माही
दक्षिणतः=दक्षिण है
आत्मा=आत्माही
उत्तरतः=उत्तर है
इति=इस प्रकार
इदम्=यह
सर्वम्=सब
आत्मा एव=आत्माही है
सः एव एषः = वही यह आत्मदर्शी
एवम्=इस प्रकार
पश्यन्=देखता हुआ
एवम्=इस प्रकार
मन्वानः=मनन करता हुआ
एवं=इसप्रकार
जानन्=जानता हुआ
एवम्=इस प्रकार
आत्मरतिः=आत्मा में रति करता हुआ
आत्मक्रीडः=आत्मामें क्रीडा करता हुआ
आत्म-मिथुनः = आत्मासे युक्त होता हुआ
आत्मानन्दः= आत्मा में आनन्द करता हुआ
स्वराट्=सुखका राजा
भवति=होताहै
तस्य=उसका
कामचारः=इच्छानुसार गमन
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों के विषे
भवति=होता है
अथ=और
ये=जो
अतः=उससे
अन्यथा=विपरीत
विदुः=जानते हैं
ते=वे
अन्य राजानः = पराधीन होते हुये

क्षय्यलोकाः=नाशवान् लोकवाले	अकामचारः=इच्छा विरुद्ध गमन
भवन्ति=होते हैं	सर्वेषु=सब
+ च=और	लोकेषु=लोकों के विषे
तेषाम्=उनका	भवति=होता है

भावार्थ ।

सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद ! जो आत्मानुभव-शून्य बहिर्मुख बुद्धिवाले अविवेकी होते हैं उनको अहंकार का विषय देह आदि अनात्मा भासता है, आत्मा नहीं भासता है, जैसा कि मैं तुम्हारे प्रति उपदेश कर चुकाहूं, यदि तुमको देहादिक अनात्मा की शंका मेरे उपदेश से हुई हो तो फिर मेरे उपदेश को सुनो, और शंकाको दूर करो, संशय रञ्चकमात्र न रक्खो " संशयात्मा विनश्यति " यह सुनकर नारद ने कहा कि हे प्रभो ! मेरेप्रति सविस्तार आत्माका उपदेश करो, तिस पर सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद ! जो सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित एक अद्वितीय परमशुद्ध निर्विशेष सत् चैतन्य परमानन्दस्वरूप आत्मा है, वही नीचे ऊपर, पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, दहिने बायें, अज, अविनाशी, अखंड, आकाशवत् परिपूर्ण स्थित है, उससे पृथक् कुछ नहीं है, इस प्रकार जो अपने को देखता है, श्रवण करता है, मनन करता है, और विचारता है, वही आत्मा विषे रमण करता है, वही आत्मा के साथ क्रीड़ा करताहै, जैसे पति का चित्त अपनी प्रिय प्यारी भार्या में लगा रहता है, और फिर उसके साथ क्रीड़ा और रति करके क्षणिकविषयानन्द को प्राप्त होताहै, वैसेही जब आत्मवेत्ता का मन एकाग्र होकर अपने आत्मा के साथ क्रीड़ा और

रति सविकल्प अथवा निर्विकल्प समाधि एकांतस्थानविषे करता है, तो अखंडानंदको प्राप्त होकर अवाच्य मग्न होता हुआ तृप्त होजाता है, और जो ऐसे विचार से रहितहैं, वे पराधीन होतेहुये नाशवान् लोकोंको प्राप्त होतेहैं, और उनका आवागमन उनकी इच्छाविरुद्ध अनेक दुःख से परिपूर्ण योनियों में होता है ॥ २ ॥

इति पञ्चविंशः खण्डः ॥

अथ सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, वा, एतस्य, एवम्, पश्यतः, एवम्, मन्वानस्य, एवम्, विजानतः, आत्मतः, प्राणः, आत्मतः, आशा, आत्मतः, स्मरः, आत्मतः, आकाशः, आत्मतः, तेजः, आत्मतः, आपः, आत्मतः, आविर्भावतिरोभावौ, आत्मतः, अन्नम्, आत्मतः, बलम्, आत्मतः, विज्ञानम्, आत्मतः, ध्यानम्, आत्मतः,

चित्तम्, आत्मतः, संकल्पः, आत्मतः, मनः, आत्मतः, वाक्, आत्मतः, नाम, आत्मतः, मन्त्राः, आत्मतः, कर्माणि, आत्मतः, एव, इदम्, सर्वम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम्	इसप्रकार
पश्यतः	ब्रह्मकोसाक्षात् करते हुये
+ च	और
एवम्	इस प्रकार ब्रह्मको
विजानतः	जानते हुये
इति	ऐसे
तस्य	तिस
एतस्य	इस विद्वान्के
इवा	ही
आत्मतः	आत्मासे
प्राणः	प्राण
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आशा	आशा
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
स्मरः	स्मृति
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आकाशः	आकाश
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
तेजः	तेज
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आपः	जल
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
आविर्भावतिरोभावौ	आविर्भाव और तिरोभाव
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
अन्नम्	अन्न
+ तस्य	तिसके ही
आत्मतः	आत्मा से
बलम्	बल
+ तस्य	तिसके ही

आत्मतः=आत्मासे
विज्ञानम्=विज्ञान
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
ध्यानम्=ध्यान
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मासे
चित्तम्=चित्त
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
संकल्पः=संकल्प
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
मनः=मन
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
वाक्=वाणी
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
नाम=नाम
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
मन्त्राः=मन्त्र
+ तस्य=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
कर्माणि=कर्म
+तस्य एव=तिसके ही
आत्मतः=आत्मा से
इदम्=यह
सर्वम्=सब नामरूपात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है

भावार्थ ।

सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि हे नारद ! जो आत्मवेत्ता विद्वान् अपने आपको ही देखता है, अपने को ही जानता है, अपने में ही अपने को निश्चय करता है, अपने में ही रमण करता है, अपने में ही क्रीड़ा करता है, अपने में ही आनंदित रहता है, उसीके आत्मा से प्राण उत्पन्न हुआ है, उसके आत्मा से आशा और उसीके आत्मा से स्मृति उत्पन्न हुई है, उसीके आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है, उसीके आत्मा से तेज उत्पन्न हुआ है; उसीके आत्मा से जल, और उसीके आत्मा से

आविर्भाव और तिरोभाव यानी उत्पत्ति और लय होते हैं, उसीके आत्मा से अन्न होता है, उसीके आत्मा से बल होता है, उसीके आत्मा से विज्ञान और ध्यान होता है, उसीके आत्मा से चित्त होता है, उसीके आत्मा से संकल्प होता है, उसी के आत्मा से मन होता है, उसीके आत्मा से वाणी, उसी के आत्मा से नाम होता है, उसीके आत्मा से संपूर्ण कर्म होता है, हे नारद ! कहां तक कहा जाय उसी विद्वान् के ही आत्मा से यह सब नाम रूपात्मक जगत् उत्पन्न होता है, उसीके आत्मा में ही लय होता है, क्योंकि जिस आत्मपद को वह विद्वान् प्राप्त हुआ है, सोई सारे जगत् का मूलकारण सर्वात्मा है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताᳫं सर्वᳫं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, न, पश्यः, मृत्युम्, पश्यति, न, रोगम्, न, उत, दुःखताम्, सर्वम्, ह, पश्यः, पश्यति, सर्वम्, आप्नोति, सर्वशः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=	तिस विद्वान् के बिषे	+प्रमाणम्=	प्रमाण है
एषः=	यह आगे वाला	पश्यः=	उस भूमा ब्रह्म का देखनेवाला
श्लोकः=	मंत्र	मृत्युम्=	मरण जन्म भयको

न=नहीं	+पश्यति=देखता है
पश्यति=देखता है	पश्यः=वह ब्रह्मदर्शी
रोगम्=रोगों को	सर्वम्=ब्रह्मको
न=नहीं	ह=ही
पश्यति=देखता है	+पश्यति=देखता है
उत=और	इति=इस कारण
दुःखताम्=तीनों प्रकार के दुःखोंको	सर्वशः=सब प्रकार से
न=नहीं	सर्वम्=ब्रह्मको ही
	आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद ! जो विद्वान् अपने आत्मा विषे स्थित है, वह मृत्युके भय से, रोगों से, तीन प्रकार के दुःखों से रहित होता है, वह ब्रह्मदर्शी अंत में ब्रह्मको ही प्राप्त होता है, इस बारे में आगेवाला मंत्र प्रमाण है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, एकधा, भवति, त्रिधा, भवति, पञ्चधा, सप्तधा, नवधा, च, एव, पुनः, च, एकादशः, स्मृतः, शतम्, च, दश, च, एकः, च, सहस्राणि, च, विंशतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह परमात्मा	नवधा	नौ रूपवाला
+प्रथमम्	पहिले	भवति	होता है
एकधा	अद्वितीय	च	और
भवति	होता है	+पुनः	फिर
+च	और	एव	निश्चय करके
+पुनः	फिर	एकादशः	ग्यारह रूप वाला
त्रिधा	तीन रूपवाला	स्मृतः	कहा जाता है
भवति	होता है	च	और
+च	और	+पुनः	फिर
+पुनः	फिर	शतम् दश एकः	एकसौ ग्यारह रूपवाला
पञ्चधा	पांचरूप वाला	च	और
भवति	होता है	+पुनः	फिर
च	और	सहस्राणि विंशतिः	एक सहस्र बीस रूप वाला
+पुनः	फिर	+भवति	होता है
सप्तधा	सात रूपवाला		
भवति	होता है		
+पुनः	फिर		

भावार्थ ।

सनत्कुमार कहते हैं हे नारद ! सत् चैतन्य आत्मा सृष्टि से प्रथम एक अद्वैत ही था फिर वही तीन भेद यानी तेज, जल, पृथिवी को प्राप्त होता भया, फिर वही पांच प्रकार का यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी होता भया; फिर सोई आत्मा

सात प्रकार का यानी महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी होता भया, फिर वही आत्मा नौ प्रकार का यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ओषधी, अन्न, वीर्य, और पुरुषरूप से होता भया, इस प्रकार एक से अनेक होकर सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होगया, जैसे एक मृत्तिका कार्यकालविषे घट शरावादि अनन्त भेदभाव करके सुशोभित होती है, तैसे फिर वही परमात्मा प्रलयकालविषे सब को अपने में लीन करके एक अद्वैत सत् चैतन्य घनरूप को प्राप्त होता है, हे नारद ! ऐसा अद्वितीय परिमाणरहित तुम्हारा रूप और महत्त्व है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

आहारशुद्धौ, सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ, ध्रुवा, स्मृतिः, स्मृतिलम्भे, सर्वग्रन्थीनाम्, विप्रमोक्षः, तस्मै, मृदितकषायाय, तमसः, पारम्, दर्शयति, भगवान्, सनत्कुमारः, तम्, स्कन्दः, इति, आचक्षते, तम्, स्कन्दः, इति, आचक्षते ॥

अन्वयः	पदार्थ
आहारशुद्धौ	भोजनादि के शुद्ध होनेपर
सत्त्वशुद्धिः	अंतःकरण शुद्ध
+भवति	होता है
सत्त्वशुद्धौ	अंतःकरण के शुद्ध होनेपर
स्मृतिः	स्मृति
ध्रुवा	अचल
+भवति	होती है
+च	और
स्मृतिलम्भे	स्मृतिकीप्राप्ति होने पर
सर्वग्रन्थीनाम्	हृदय की सब ग्रंथियों का
विप्रमोक्षः	भली प्रकार नाश होता है
मृदितकषायाय	दूरहोगये हैं दोष जिसके हृदयसे ऐसे
तस्मै	उसनारदको
भगवान्	षड्गुणैश्वर्यसंपन्न
सनत्कुमारः	सनत्कुमार
तमसः	अज्ञानरूप अंधकार से
पारम्	परमार्थतत्त्व को
दर्शयति	दिखाते भये
इति	इसलिये
तम्	उससनत्कुमार ऋषि को
स्कन्दः	स्कन्दनाम से
आचक्षते	लोग कहते हैं
इति	इसलिये
तम्	उससनत्कुमार ऋषि को
स्कन्दः	स्कन्द नाम से
आचक्षते	लोग कहतेहैं

भावार्थ ।

भगवान् सनत्कुमार कहते हैं कि हे नारद ! जब शुद्ध भोजन करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब उसमें अपने

आत्मा का प्रतिबिंब वैसेही दिखाई देता है जैसे शुद्ध आदर्श यानी दर्पण में अपना मुख साफ दिखाई देता है, और शुद्ध भोजन तब मिलता है जब धन, धर्म और न्याय से उपार्जित किया जाता है, और फिर लाया हुआ अन्न चाल पछोर बीन कर शुद्धस्थानविषे पवित्रताके साथ पकाया जाता है, और उस पके हुये अन्न से बलिवैश्वदेवादि भूतयज्ञ किया जाता है, और अतिथि को भोजन दिया जाता है, तिसके पीछे बचे हुये अन्न के भोजन के खाने से अन्तःकरण शुद्ध होता है, तिसमें शुभ अशुभ कर्तृत्व अकर्तृत्वआदिकों का विवेक होता है, तब तिस विवेक करके अशुभ व्यापार से मन उपराम हो शुभ व्यापार में प्रवृत्त होता है, और तभी सब इन्द्रियां विषयों से उपराम होकर अन्तर्मुख होती हैं, अर्थात् पुरुष को विषयों में राग द्वेष नहीं होता है, और इसलिये काम क्रोधादि दोषों का अभाव होता है, और तिनके अभाव से विद्वान् किसी पदार्थ में भी आसक्त न होकर बद्ध नहीं होता है, "लिप्यते न स पापेभ्यः पद्मपत्रमिवाम्भसा" इस प्रकार शुद्धचित्तवृत्ति होने का कारण शुद्ध आहार है जब भगवान् सनत्कुमार ने देखा कि नारदजी का अंतःकरण अतिशुद्ध है तब उनको अपने उपदेश का सहारा देकर भूमाख्य विद्यारूप दृढ़ नौका पर सवार कराकर आप श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य कैवर्तक बनकर अविद्यात्मक अथाह अपार शोकसागर से पार कर दिया ॥ ४ ॥ इति सप्तमाध्यायः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म

दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, इदम्, अस्मिन्, ब्रह्मपुरे, दहरम्, पुण्डरीकम्, वेश्म, दहरः, अस्मिन्, अन्तः, आकाशः, तस्मिन्, यत्, अन्तः, तत्, अन्वेष्टव्यम्, तत्, वाव, विजिज्ञासितव्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	=अब	आकाशः	=आकाश है
यत्	=जो	तस्मिन् अन्तः	=तिसके अन्दर
अस्मिन्	=इस	यत्	=जो
ब्रह्मपुरे	=ब्रह्मपुरमें यानी शरीर विषे	दहरः	=ब्रह्म स्थित है
इदम्	=यह	तत्	=वह
दहरम्	=सूक्ष्म	अन्वेष्टव्यम्	=अन्वेषण करने के योग्य है
पुण्डरीकम्	=कमलाकार	तत् वाक्	=वही
वेश्म	=महल है	इति	=ऐसा
+ च	=और	विजिज्ञासितव्यम्	=जाननेयोग्य है
+ यत्	=जो		
अस्मिन्	=इसमें		
अन्तः	=अन्तरवर्ती		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सातवें प्रपाठक में भूमा विद्या कही गई है, अब

इस आठवें प्रपाठक में चित्तवृत्तिनिरोधार्थ दहराकाश विद्या का आरम्भ किया जाता है, इस शरीरविषे ब्रह्म का पुर कहा जाता है, तिसके अन्दर हृदयाकाश है, तिस हृदयाकाश में एक सूक्ष्म कमलाकार मन्दिर है, उसमें जो अन्तरवर्ती वस्तु है वह अन्वेषण करने योग्य है, और जानने योग्य है, यहां सगुण ब्रह्म की उपासना का व्याख्यान है, निगुर्ण ब्रह्म का नहीं, जो अति शुद्धबुद्धि श्वेत कमलवत् है, उसमें जो चैतन्य और चैतन्य का प्रतिबिंब है, वही सगुण ब्रह्म है, उसी की उपासना मन्दबुद्धि जिज्ञासुओं करके करने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, ब्रूयुः, यत्, इदम्, अस्मिन्, ब्रह्मपुरे, दहरम्, पुण्डरीकम्, वेश्म, दहरः, अस्मिन्, अंतः, आकाशः, किम्, तत्, अत्र, विद्यते, यत्, अन्वेष्टव्यम्, यत्, वाव, विजिज्ञासितव्यम्, इति, सः, ब्रूयात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चेत्	=अगर कोई	अस्मिन् ब्रह्मपुरे	=इस ब्रह्मपुरमें
तम्	=उस उपदेष्टा से	यत्	=जो
ब्रूयुः	=पूछे कि	इदम्	=यह

दहरम्=अल्प
पुण्डरीकम्=कमल सदृश
वेश्म=गृह है
+ च=और
यत्=जो
अस्मिन्=इस कमलाकार गृह में
दहरः=सूक्ष्म
अन्तः=अन्तरवर्ती
आकाशः=आकाश है
अत्र=उस दहराकाश में

किम्=कौनसी
तत्=वह वस्तु
विद्यते=वर्तमान है
+ यत्=जो
अन्वेष्टव्यम्=अन्वेषणकरने योग्य है
यत्=जो
वाव=निश्चय करके
विजिज्ञासितव्यम्=जानने योग्य है
इति=ऐसा तब
सः=वह उपदेष्टा
ब्रूयात्=कहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह जो स्थूल शरीर है, इसको ब्रह्मपुर कहते हैं, क्योंकि इसमें ब्रह्म का निवास है, तिस शरीर के अंदर एक सूक्ष्म कमलाकार गृह है, उस गृह के बिषे अंतराकाश है, और फिर उसके अंतर एक वस्तु स्थित ह, वह खोजने और जानने योग्य है, यहां सगुणब्रह्म की उपासना का व्याख्यान है, निर्गुण ब्रह्म का नहीं, निर्गुण ब्रह्म का जानना मंदबुद्धि जिज्ञासुओं करके नहीं होसक्ता है, इनको अपने कल्याणार्थ गुणविशिष्ट ब्रह्म की उपासना करना योग्य है ॥ २ ॥

मूलम् ।

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समा-

हिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

यावान्, वा, अयम्, आकाशः, तावान्, एषः, अन्तर्हृदयः, आकाशः, उभे, अस्मिन्, द्यावापृथिवी, अन्तः, एव, समाहिते, उभौ, अग्निः, च, वायुः, च, सूर्याचन्द्रमसौ, उभौ, विद्युन्नक्षत्राणि, यत्, च, अस्य, इह, अस्ति, यत्, च, न, अस्ति, सर्वम्, तत्, अस्मिन्, समाहितम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
यावान्	जितना
वा	निश्चय करके
अयम्	यह बाह्य
आकाशः	आकाश है
तावान्	उतना ही
एषः	यह
अन्तर्हृदयः	हृदयके अंदर
आकाशः	आकाशहै
अन्तः अस्मिन्	उसी के अन्दर
उभे	दोनों
द्यावापृथिवी	देवलोक और मृत्युलोक
एव	निश्चय करके
समाहिते	स्थित हैं
च	और
उभौ	दोनों
अग्निः	अग्नि
च	और
वायुः	वायु
उभौ	दोनों
सूर्याचन्द्रमसौ	सूर्य और चंद्र
च	और
+उभौ	दोनों

विद्युन्नक्षत्राणि = बिजली और नक्षत्रगण	यत् = जो कुछ
अस्य + अन्तः = हृदयाकाश-बिषे	न = नहीं
+ स्थितानि = स्थित हैं	अस्ति = है यानी होने वाला है
च = और	तत् = वह
यत् = जो कुछ	सर्वम् = सब
इह = इस लोक में	अस्मिन् = इस आकाश-रूपी ब्रह्मबिषे
अस्ति = है	समाहितम् = स्थित है
च = और	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अंतःकरण के आकाश की अवधि नहीं है, इसी के अंदर सारा बाहर का आकाश, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र गणादि सब स्थित हैं, जो कुछ दिखाई देता है, जो कुछ अनुभव में आता है, जो कुछ मौजूद है और जो कुछ होनेवाला है, सब इसी के अंदर स्थित है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तं चेद् ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳसर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरावाप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोतिशिष्यत इति॥४॥

पदच्छेदः ।

तम्, चेत्, ब्रूयुः, अस्मिन्, चेत्, इदम्, ब्रह्मपुरे, सर्वम्, समाहितम्, सर्वाणि, च, भूतानि, सर्वे, च,

कामाः, यदा, एतत्, जरा, अवाप्नोति, प्रध्वंसते, वा, किम्, ततः, अतिशिष्यते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चेत्	अगर	कामाः	कामनायें भी स्थित हैं तो
तम्	उस उपदेष्टासे	यदा	जब
+शिष्यः	शिष्य	जरा	वृद्धावस्था
ब्रूयुः	पूछै कि	एतत्	इस शरीर को
चेत्	यदि	आप्नोति	प्राप्त होती है
अस्मिन्	इस	+तदा	तब
ब्रह्मपुरे	ब्रह्मपुर में	+इदम्	यह
इदम्	यह	+शरीरम्	शरीर
सर्वम्	सब	वा	अवश्य
समाहितम्	स्थित है	प्रध्वंसते	नष्ट होजाता है
च	और	इति	तब
सर्वाणि	सब	ततः	तिसके पीछे
भूतानि	प्राणी	किम्	क्या
च	और	अतिशिष्यते	अवशेष रहता है
सर्वे	संपूर्ण		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यदि संशययुक्त शिष्य आचार्य से ऐसा पूछै कि हे भगवन् ! जब इस शरीर में जो कुछ इन्द्रियों का विषय है, या होनेवाला है, या मन करके गृहीत है, और जब इसके अन्तः-

करण में सब प्राणी और सब कामनायें समावेशित हैं, तो जिस समय यह शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त होकर नष्ट होजाता है तब इसमें क्या अवशेष रह जाता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सो पिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ब्रूयात्, न, अस्य, जरया, एतत्, जीर्यति, न, वधेन, अस्य, हन्यते, एतत्, सत्यम्, ब्रह्मपुरम्, अस्मिन्, कामाः, समाहिताः, एषः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघत्सः, अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसंकल्पः, यथा, हि, एव, इह, प्रजाः, अन्वाविशन्ति, यथा, अनुशासनम्, यम्, यम्, अन्तम्, अभिकामाः, भवन्ति, यम्, जनपदम्, यम्, क्षेत्रभागम्, तम्, तम्, एव, उपजीवन्ति ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
सः=वह उपदेष्टा	ब्रूयात्=कहे कि
तम्=उस शिष्य से	अस्य=इस शरीर के

जरया=जीर्ण होने से
न=न
एतत्=यह ब्रह्म
जीर्यति=जीर्ण होता है
न=न
अस्य=इसके
वधेन=वध होने से
+ तत्=वह ब्रह्म
हन्यते=हत होता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह
ब्रह्मपुरम्=ब्रह्म
सत्यम्=अविनाशी है
अस्मिन्=इस ब्रह्मपुर में
कामाः=सब कामनायें
समाहिताः=स्थित हैं
एषः=यह
आत्मा=आत्मा
अपहतपाप्मा=विशुद्ध है
विजरः=जरावस्था रहित है
विमृत्युः=मृत्युरहित है
विशोकः=शोकरहित है
विजिघत्सः=भूखरहित है
अपिपासः=प्यासरहित है
सत्यकामः=सच्ची कामना वाला है
सत्यसंकल्पः=सत्य संकल्प वाला है
यथा=जैसे
इह=इस संसार में
प्रजाः=प्रजा
एव=निश्चय करके
यथाअनुशासनम्=राजा की आज्ञानुकूल
अन्वाविशन्ति=बर्तती हैं
च=और
यम् यम्=जिस जिस
अन्तम्=जगह को
+च=और
यम्=जिस
जनपदम्=देश को
+च=और
यम्=जिस
क्षेत्रभागम्=क्षेत्रभाग को
अभिकामाः=चाहनेवाली

+भवन्ति=होती हैं तम् तम्=उस उसको एव=अवश्य	उपजीवन्ति=	प्राप्त होकर- अपनीजीवि- का करती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यदि शिष्य अपने गुरु से ऐसा पूछै कि हे भगवन् ! जब ब्रह्म जो इस शरीर बिषे रहता है तो शरीर के नाश होने पर वह भी नष्ट होजाता होगा ? इसके उत्तर में आचार्य उससे ऐसा कहे कि हे प्रियशिष्य ! शरीर के जीर्ण होने पर आत्मा जो उसके अन्दर आकाशवत् स्थित है जीर्ण नहीं होता है, न उसके नाश से उसका नाश होता है, नाश साकार वस्तु का होता है, निराकार का नहीं, इस शरीर के अंतःकरण विषे जो ब्रह्म स्थित है, वही सारे ब्रह्माण्ड भरमें व्यापक है, वही अभय, निरंजन, अमर, अजर है, वही सब कामनाओं से भरा है, उसीमें से हर एक प्रकार की कामना निकलती हैं, वही यह जीवात्मा कहलाता है, वही शुद्ध है, वही मृत्यु से रहित है, वही जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भूख, प्यास से रहित है, वही सत्यसंकल्पवाला है, यानी जो कुछ वह चाहता है वही करडालता है, उसको रोकनेवाला कोई नहीं है, और जैसे इस लोकमें राजाकी आज्ञानुकूल प्रजा चलती है, और जैसे जिस जिस देश या जगह या क्षेत्र को राजा प्रजा को भेजता है, उस उस देशादिकों को वे जाती हैं, और अपने जीवन का निर्वाह करती हैं, वैसेही सब प्राणी भी ब्रह्मकी आज्ञानुसार वर्तते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमननुविद्य

व्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान्कामाꣳस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान्कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥६॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, इह, कर्मजितः, लोकः, क्षीयते, एवम्, एव, अमुत्र, पुण्यजितः, लोकः, क्षीयते, तत्, ये, इह, आत्मानम्, अननुविद्य, व्रजन्ति, एतान्, च, सत्यान्, कामान्, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, अकामचारः, भवति, अथ, ये, इह, आत्मानम्, अनुविद्य, व्रजन्ति, एतान्, च, सत्यान्, कामान्, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे	अमुत्र	परलोक में भी
इह	इस संसार में	पुण्यजितः लोकः	पुण्य करके प्राप्त हुई भोग्य सामग्री
कर्मजितः	सेवा करके प्राप्त हुआ	क्षीयते	नष्ट होजाती है
लोकः	भोग्यवस्तु	तत्	इसलिये
क्षीयते	भोगने के पीछे नष्ट होजाती है	ये	जो
तत् एवम् एव	उसी प्रकार	इह	इस लोक में
		आत्मानम्	अपने आत्मा को
		च	और

एतान्=उन
सत्यान्=सत्य
कामान्=कामनाओं को
अननुविद्य=न जान करके
व्रजन्ति=जाते हैं यानी शरीरत्यागते हैं
तेषाम्=उन अविद्वानों का
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों में
अकामचारः=स्वच्छंद गमन नहीं
भवति=होता है
च=और

ये=जो
इह=इसी लोक में
आत्मानम्=अपने आत्मा को
च=और
एतान्=उन
सत्यान्=सत्य
कामान्=कामनाओं को
अनुविद्य=जानकर
व्रजन्ति=शरीरत्यागते हैं
तेषाम्=उनका
कामचारः=स्वेच्छागमन
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों विषे
भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे इस लोक में भोग्यसामग्री सेवा करके प्राप्त की हुई नष्ट होजाती है, वैसेही परलोक में भी पुण्य करके प्राप्त की हुई भोग्यसामग्री नाशको प्राप्त होती है, और इसी कारण जो पुरुष इस लोक में अपने आत्माको और उन सत्यकामनाओं को न जानकर शरीर त्यागते हैं, वे अपनी इच्छानुसार सब लोकों में गमन नहीं करसक्ते हैं, पर जो अपने आत्माको और उन सत्यकामनाओं को जानकर शरीर त्यागते हैं वे सब लोकों में स्वेच्छा से स्वतंत्र होकर विचरते हैं ॥ ६ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सः, यदि, पितृलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, पितरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, पितृलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
यदि	अगर
सः	वह योगी
पितृलोककामः	पितृलोगों का दर्शनाभिलाषी
भवति	होता है तो
अस्य	उसके
पितरः	पितर
संकल्पात्	उसके संकल्पसे
एव	ही
समुत्तिष्ठन्ति	उसके सामनेउपस्थित होजाते हैं
+ च	और
तेन	तिन
पितृलोकेन	पितृलोगों करके
संपन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	वह अपनेमहत्त्वको प्राप्त होताहै यानी पूज्य होताहै

भावार्थ ।

यदि वह योगी समाधिदशा में पितृलोगों के देखने की इच्छा करता है तो संकल्प करतेही पितृलोग उसके सामने आजाते हैं, और उन पितरों से मिलकर अपने महत्त्वको अनुभव करता है, यानी पूज्य होजाता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, मातृलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, मातरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, मातृलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	मातरः	मातायें
यदि	अगर	समुत्तिष्ठन्ति	उसके सामने उपस्थित होजाती हैं
+सः	वह योगी	+च	और
मातृलोककामः	मातृदर्शनाभिलाषी	तेन	उन
भवति	होता है तो	मातृलोकेन	मातृलोगों से
संकल्पात्	संकल्प से	संपन्नः	संपन्न होता हुआ
एव	ही		
अस्य	उसकी		

महीयते=वह अपनी महिमा का अनुभव करता है यानी पूज्य होता है

भावार्थ ।

अगर वह समाधिदशा में अपनी मातृलोगों का दर्शनाभिलाषी होता है तो संकल्प करतेही सब मातृलोग उसके सामने उपस्थित होजाती हैं, तिनसे मिलकर वह अपनी महिमा का अनुभव करता है यानी बड़ा पूज्य होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, भ्रातृलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, भ्रातरः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, भ्रातृलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	एव	ही
यदि	अगर	अस्य	उसके
+सः	वह योगी	भ्रातरः	भ्रातृलोग
भ्रातृलोककामः	भ्रातृदर्शनाभिलाषी	समुत्तिष्ठन्ति	उसकेसामने उपस्थित हो जाते हैं
भवति	होता है तो	+ च	और
संकल्पात्	संकल्प से		

तेन=तिन	महीयते=अपनी महिमा को प्राप्त होजाता है यानी पूज्य होता है
भ्रातृलोकेन=भ्रातृलोगों से	
संपन्नः=मिलता हुआ	

भावार्थ ।

अगर वह योगी अपनी समाधि की अवस्था में अपने भाइयों के दर्शन की इच्छा करता है तो उसके सब भाई उसके सामने उपस्थित होजाते हैं, और उनसे मिलकर वह बड़े आनन्द को प्राप्त होता है और पूज्य भी होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, स्वसृलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, स्वसारः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, स्वसृलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः पदार्थ	अन्वयः पदार्थ
अथ=और	भवति=होता है तो
यदि=अगर	अस्य=उसके
+ सः=वह योगी	संकल्पात्=संकल्पमात्र से
स्वसृलोककामः=स्वसृदर्शनाभिलाषी	एव=ही
	स्वसारः=सब बहिनें

समुत्तिष्ठन्ति = उपस्थित होजाती हैं
तेन = तिन
स्वसृलोकेन = बहिनों से
संपन्नः = मिलकर
महीयते = अपनी महिमाको अनुभव करता है यानी सब का पूज्य होता है

भावार्थ ।

अगर वह योगी बहिनलोक की इच्छा करता है तो उसके संकल्पमात्र से ही सब बहिनें उसको दर्शन देती हैं, और वह उनसे मिलकर बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, सखिलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, सखायः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, सखिलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	भवति	होता है तो
यदि	यदि	संकल्पात् एव	संकल्प सेही
+ सः	वह योगी	अस्य	उसके
सखिलोककामः	मित्रलोककी इच्छावाला	सखायः	सब मित्र

समुत्ति-ष्ठन्ति = उसके सामने उपस्थित होजाते हैं
तेन=तिन
सखिलोकेन=मित्रों से
संपन्नः=मिलकर
महीयते=महिमा को प्राप्त होताहै यानी आनन्दकरताहै

भावार्थ ।

अगर वह योगी मित्रलोक की इच्छा करता है तो उसके इच्छा करतेही उसके सामने उसके मित्र आनकर उपस्थित होजाते हैं, तिन मित्रों से मिलकर वह पूजनीय बनजाता है॥५॥

मूलम् ।

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, गन्धमाल्यलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, गन्धमाल्ये, समुत्तिष्ठतः, तेन, गन्धमाल्यलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	गन्धमाल्यलोककामः	गन्धमाल्यलोककीकामनावाला
यदि	अगर		
+ सः	वह योगी		

भवति=होताहै तो
अस्य=उसके
संकल्पात्=संकल्प से
एव=ही
गन्धमाल्ये=सुगन्धि और प्रियमालायें
समुत्तिष्ठतः=उसकेसामने उपस्थित हो जाती हैं
तेन=तिन
गन्धमाल्यलोकेन=सुगन्धि और मालाओं से
संपन्नः=संपन्न होता हुआ
महीयते=अपनी महिमा को प्राप्त होताहै यानी पूज्य होता है

भावार्थ ।

यदि वह योगी गन्ध और मालाओं की कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसेही उसके सामने अनेक प्रकार की गन्ध और मालायें उपस्थित होजाती हैं, और उन गन्धों और मालाओं से संपन्न होताहुआ वह अपनी महिमा को प्राप्त होता है यानी वह अतिआनन्दित होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, अन्नपानलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, अन्नपाने, समुत्तिष्ठतः, तेन, अन्नपानलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः — पदार्थ

अथ=और

यदि=अगर

+ सः=वह योगी

अन्नपानलोककामः=अन्न और पान लोक की कामनावाला

भवति=होता है तो

अस्य=उसके

संकल्पात्=संकल्प से

एव=ही

अन्नपाने=अन्न और जल

समुत्तिष्ठतः=उसके सामने उपस्थित हो-जाते हैं

तेन=तिन

अन्नपानलोकेन=अन्नपात से

संपन्नः=संपन्न होता हुआ

महीयते=अपनी महिमाको प्राप्त होताहैयानी पूज्य होता है

भावार्थ ।

अगर वह योगी अन्नपानलोकों की कामनावाला होता है तो उसके संकल्पमात्र से ही अन्नपान उसके सामने उपस्थित होजाते हैं, और फिर वह उस अन्न जल से संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ।

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, गीतवादित्रलोककामः, भवति, संक-

ल्पात्, एव, अस्य, गीतवादित्रे, समुत्तिष्ठतः, तेन, गीतवादित्रलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	समुत्तिष्ठतः	उसके सामने उपस्थित हो-जाते हैं
यदि	अगर	तेन	तिन
+ सः	वह योगी	गीतवादित्रलोकेन	गीतबाजों से
गीतवादित्रलोककामः	गीत बाजा वाले लोककी कामनावाला	संपन्नः	संपन्न होता हुआ
भवति	होता है तो	महीयते	बड़े आनंदको प्राप्त होता है
अस्य	उसके		
संकल्पात्	संकल्प से		
एव	ही		
गीतवादित्रे	गीत और बाजे		

भावार्थ ।

अगर वह योगी गीत बाजेवाले लोकों की कामना करने वाला होता है तो वे गीत और बाजे उसके सामने उसके संकल्प से ही उपस्थित होजाते हैं, और वह उन गीत बाजों से संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदि, स्त्रीलोककामः, भवति, संकल्पात्, एव, अस्य, स्त्रियः, समुत्तिष्ठन्ति, तेन, स्त्रीलोकेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	स्त्रियः	स्त्रियां
यदि	अगर	समुत्तिष्ठन्ति	उपस्थित हो-जाती हैं
+ सः	वह योगी	तेन	तिन
स्त्रीलोक-कामः	स्त्रीलोक की कामनावाला	स्त्रीलोकेन	स्त्रियों करके
+ भवति	होता है तो	संपन्नः	संपन्न होता हुआ
अस्य	उसके	महीयते	आनन्द को प्राप्त होता है
संकल्पात्	संकल्प से		
एव	ही		

भावार्थ ।

यदि वह योगी स्त्रीलोककी कामनावाला होता है तब उसके संकल्पमात्रसेही सब स्त्रियां उसके सामने उपस्थित होजाती हैं और वह उन करके संपन्न होता हुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते ॥ १० ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

यम्, यम्, अन्तम्, अभिकामः, भवति, यम्, कामम्, कामयते, सः, अस्य, संकल्पात्, एव, समुत्तिष्ठति, तेन, संपन्नः, महीयते ॥

अन्वयः	पदार्थ
+ यम् यम्	जिस जिस
अन्तम्	देशकी
अभिकामः	कामनावाला
भवति	होता है
+ अथवा	या
यम् यम्	जिस जिस
कामम्	कामना को
सः	वह योगी
कामयते	चाहता है
अस्य	उसके
संकल्पात्	संकल्प से
एव	ही
समुत्तिष्ठति	उसके सामने वहकाम उपस्थित होजाता है
तेन	तिस काम करके
संपन्नः	संपन्न होता हुआ
महीयते	बड़े आनन्द को प्राप्तहोताहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! योगी जिस जिस देशकी कामना करता है या इसके अलावा और जिस जिस वस्तु की इच्छा करता है वह सब उसके संकल्पमात्र सेही उसके सामने आनकर मौजूद हो जाते हैं और वह उन सब से संपन्न होताहुआ बड़े आनन्द को प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥

मूलम् ।

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाꣳ सत्यानाꣳ सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ते, इमे, सत्याः, कामाः, अनृतापिधानाः, तेषाम्, सत्यानाम्, सताम्, अपिधानम्, यः, यः, हि, अस्य, इतः, प्रैति, न, तम्, इह, दर्शनाय, लभते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ते	वे	अस्य	इसके यानी इस योगी के
इमे	ये	यः यः	जो जो संबन्धी
कामाः	कामनायें	इतः	इस मृत्युलोक से
सत्याः	सत्य हैं	प्रैति	जाता है
+ परन्तु	पर	+ सः	वह
अनृतापिधानाः	अविद्यासे ढकी हैं	इह	इस लोकमें
तेषाम्	उन	तम्	उस पुरुषको
सताम्	हृदयस्थित	दर्शनाय	दर्शन के लिये
सत्यानाम्	सत्य कामनाओं का	+ पुनः	फिर
अपिधानम्	ढकना	न	नहीं
अनृतम्	अविद्या है	लभते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इस योगी के हृदय में जो जो कामनायें हैं वह सब सत्य हैं, पर कभी कभी पूर्णताको प्राप्त नहीं होती हैं, कारण इसका यह है कि वे सत्यकामनायें अविद्यारूपी ढक्कन से ढकी हैं, और इसीलिये जो जो उसके प्रियसंबन्धी मरजाते हैं, और उनको वह देखना चाहता है पर उनका मिलाप उनसे नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजारहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ये, च, अस्य, इह, जीवाः, ये, च, प्रेताः, यत्, च, अन्यत्, इच्छन्, न, लभते, सर्वम्, तत्, अत्र, गत्वा, विन्दते, अत्र, हि, अस्य, एते, सत्याः, कामाः, अनृतापिधानाः, तत्, यथा, अपि, हिरण्यनिधिम्, निहितम्, अक्षेत्रज्ञाः, उपरि, उपरि, संचरन्तः, न, विन्देयुः, एवम्, एव, इमाः, सर्वाः, प्रजाः, अहरहः, गच्छन्त्यः, एतम्, ब्रह्मलोकम्, न, विन्दन्ति, अनृतेन, हि, प्रत्यूढाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	और	अत्र	हृदयस्थ ब्रह्म बिषे
ये	जो	गत्वा	जाकर
अस्य	इस विद्वान् के	विन्दति	पाता है
जीवाः	सम्बन्धी इष्ट मित्र जीते हैं	हि	क्योंकि
च	और	अस्य	इसके
ये	जो	एते	ये
प्रेताः	मरगये हैं	सत्याः	सत्य
च	और	कामाः	कामनायें
यत्	जो कुछ	अनृतापिधानाः	अविद्यारूपी ढक्कन से ढकी हैं
अन्यत्	इन दोनों के अतिरिक्त अन्य पदार्थ हैं	तत्	इसलिये
+ तान्	उनको	यथा	जैसे
इच्छन्	इच्छा करता हुआ भी	अक्षेत्रज्ञाः	अपने खेत को न जानने वाले पुरुष
इह	इस संसार में	उपरि उपरि	ऊपर ऊपर
न	नहीं	संचरन्तः	जोतना बोनादि व्यापार करते हुये
लभते	पाता है	निहितम्	गड़े हुये
तत्	तिन		
सर्वम्	सबको		
+ योगी	योगी		

हिरण्य-निधिम् = सुवर्णकोष को
न = नहीं
विन्देयुः = पाते हैं
एवमेव = वैसेही
इमाः = ये
सर्वाः = सब
प्रजाः = प्रजायें
अहरहः = प्रतिदिन
गच्छन्त्यः = ब्रह्मलोक को प्राप्त होती हुई
अपि = भी
एतम् = इस
ब्रह्मलोकम् = ब्रह्मलोक को
न = नहीं
विन्दन्ति = प्राप्त होती हैं
हि = क्योंकि
+ इमाः = ये
सर्वाः = सब प्राणी
अनृतेन = अविद्या से
प्रत्यूढाः = ढके हुये हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो जो इष्ट मित्र पुत्रादिक इस विद्वान् के जीते हैं और जो मरगये हैं, और जो जो वस्तु इनके अतिरिक्त और हैं और जिनको वह इस संसार में नहीं पाता है उन सबको हृदयाकाशमें जहां ब्रह्मलोक स्थित है वहां पहुँचकर पाता है, यानी जितनी उसकी सत्यकामनायें हैं वे सब उसके हृदयविषे स्थित रहतीहैं पर अविद्या से ढकी रहतीहैं इस कारण वे उसकी कामनायें पूर्ण नहीं होती हैं जैसे क्षेत्रविद्या को न जानता हुआ पुरुष खेत के ऊपर ऊपर हल चलाता है और बीज बोता है पर उसके अन्दर जहां सुवर्णका कोष गड़ा है न जान करके उसको नहीं पाता है उसी तरह सब प्राणी सुषुप्ति की अवस्था में ब्रह्मरूपी सुवर्णकोष को प्राप्त होकरभी उसका ज्ञान उनको नहीं होता है कारण यह है कि वह ब्रह्म हृदयाकाश में अविद्या से ढका है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृदयमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, एषः, आत्मा, हृदि, तस्य, एतत्, एव, निरुक्तम्, हृदि, अयम्, इति, तस्मात्, हृदयम्, अहरहः, वै, एवंवित्, स्वर्गम्, लोकम्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह	हृदि	हृदय में रहता है
एषः	यह	तस्मात्	इसलिये
वै	निश्चय करके	हृदयम्	वह हृदय
आत्मा	परमात्मा	+ कथ्यते	कहाजाता है
हृदि	हृदय कमल बिषे स्थित है	एवंवित्	ऐसा विद्वान्
तस्य	उस हृदय का	अहरहः	प्रतिदिन
एतत्	यह	वै	अवश्य
एव	ही	स्वर्गम्	स्वर्गयानी ब्रह्म
निरुक्तम्	अर्थ है	लोकम्	लोक को
इति	चूंकि	एति	प्राप्त होता है
अयम्	वह परमात्मा		

भावार्थ ।

वह सत्य परमात्मा सबके हृदयकमल में स्थित है, इसलिये

उसको हृदय कहते हैं, ऐसा जानकर विद्वान् दिन दिन सुषुप्ति अवस्था बिषे ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, एषः, संप्रसादः, अस्मात्, शरीरात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उपसंपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तस्य, ह, वै, एतस्य, ब्रह्मणः, नाम, सत्यम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यः	जो
एषः	यह
संप्रसादः	जीव है
+ सः	वह
ह	ही
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीर से
समुत्थाय	निकल करके
परम्	परम
ज्योतिः	ज्योति को
उपसंपद्य	पहुँचकर
स्वेन	अपने
रूपेण	रूप करके
अभिनिष्पद्यते	चारोंतरफ़ विचरता है
+ हे शिष्याः	हे शिष्यो
एषः	यही

आत्मा=परमात्मा है	एतस्य=इस ब्रह्मका
एतत्=यही	नाम=नाम
अमृतम्=अमृत है	सत्यम्=सत्य है
अभयम्=अभय है	इति इति इति=ऐसा
एतत्=यही	ह=स्पष्ट
ब्रह्म=ब्रह्म है	आचार्यः=आचार्य
वै=निश्चय करके	उवाच=कहता भया
तस्य=उस	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब जीवात्मा इस स्थूल शरीर से निकल कर परम ज्योति में मिलता है तब वही परमात्मा कहलाने लगता है, यही अमृतरूप है, यही अभय है, यही ब्रह्म है, इसी ब्रह्मका नाम सत्य है, ऐसा आचार्य अपने शिष्यों के प्रति कहताभया ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि स ती यमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तानि, ह, वै, एतानि, त्रीणि, अक्षराणि, स, ती, यम्, इति, तत्, यत्, सत्, तत्, अमृतम्, अथ, यत्,

ति, तत्, मर्त्यम्, अथ, यत्, यम्, तेन, उभे, यच्छति, यत्, अनेन, उभे, यच्छति, तस्मात्, यम्, अहरहः, वै, एवं, वित्, स्वर्गम्, लोकम्, एति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ ब्रह्मणः	ब्रह्म के	मर्त्यम्	मर्त्य है
तानि	वे	अथ	और
एतानि	ये	यत्	जो
त्रीणि	तीन	तत्	वह
अक्षराणि	अक्षर	यम्	यकार अक्षर है
स तीं यम्	स, ती, यम्,	तेन	उसी
इति	करके	एतेन	इस करके
ह	प्रसिद्ध हैं	उभे	दोनों अक्षर
स	(स) अमृत है	यच्छति	वशमें होते हैं
त	(त) मर्त्य है	तस्मात्	इसलिये
यम्	(यम्) वशकरना है	यम्	यम् कहलाता है
यत्	जो	एवम्	इस प्रकार
सत्	सकार अक्षर है	+ यः	जो
तत्	वही	विद्	जाननेवाला है
अमृतम्	अमृत है	+ सः	वह
अथ	और	अहरहः	प्रतिदिन
यत्	जो	वैवै	निश्चय करके
ति	तकार अक्षर है	स्वर्गम्	स्वर्ग
तत्	वही	लोकम्	लोकको
		एति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्म का दूसरा नाम सत्य है, इस पद में तीन अक्षर स, त, य, हैं, । स अक्षर का अर्थ अमृत यानी अविनाशी के है, जिससे मतलब जीवात्मा का होता है, त का अर्थ मरने के योग्यके है, जिससे मतलब प्रकृति से है, जीवात्मा की अपेक्षा प्रकृति विकृति होने के कारण नाशिनी समुझी जाती है, य का अर्थ नियम में रखनेका है, यानी जो प्रकृति और जीवात्मा दोनों को वश में रक्खे उसे सत्य कहते हैं, वही ब्रह्म है, जो पुरुष इस प्रकार सत्य पद का अर्थ जानता है वह प्रतिदिन ब्रह्म को सुषुप्ति अवस्था में प्राप्त होता है, और आनन्द उठाता है, यही उसके लिये स्वर्ग है ॥ ५ ॥ इति तृतीयः खण्ड : ॥

अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳसेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳसर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, आत्मा, सः, सेतुः, विधृतिः, एषाम्, लोकानाम्, असंभेदाय, न, एतम्, सेतुम्, अहोरात्रे, तरतः, न, जरा, न, मृत्युः, न, शोकः, न, सुकृतम्, न, दुष्कृतम्, सर्वे, पाप्मानः, अतः, निवर्तन्ते, अपहतपाप्मा, हि, एषः, ब्रह्मलोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यः	जो
आत्मा	आत्मा है
सः	वही
एषाम्	इन
लोकानाम्	लोकों के
असंभेदाय	सदा स्थिति के लिये
सेतुः	सेतु है
+सः	वही
विधृतिः	आश्रय है
एतम्	इस
सेतुम्	सेतु को
न अहोरात्रे	न दिन न रात
न जरा	न जरा
न मृत्युः	न मृत्यु
न शोकः	न शोक
न सुकृतम्	न सुकृति
न दुष्कृतम्	न दुष्कृति
तरतः	पार कर सक्ती है यानी हानि को नहीं पहुँचा सक्ती है
हि	क्योंकि
एषः	यह
ब्रह्मलोकः	ब्रह्मलोक
अपहत-पाप्मा	पापरहित है
अतः	इसलिये
तेन	इस करके
सर्वे	सब
पाप्मानः	पाप
निवर्तन्ते	निवृत्त हो-जाते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! लोगों के पार उतारने में यह जीवात्मा सेतु की तरह है, यही सब का आश्रय है, इसी करके लोक भवसागर को पार कर जाते हैं, पर इस सेतु को न दिन, न रात, न जरा, न

मृत्यु, न शोक, न धर्म, न अधर्म छू सक्ता है, यानी हानि नहीं पहुँचा सक्ता है, न इसके ऊपर कोई आक्रमण कर सक्ता है, यह सेतु निडर नाशरहित निरन्तर अपनी महिमा में स्थित है, यही पूजने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वान्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, वै, एतम्, सेतुम्, तीर्त्वा, अन्धः, सन्, अनन्धः, भवति, विद्धः, सन्, अविद्धः, भवति, उपतापी, सन्, अनुपतापी, भवति, तस्मात्, वै, एतम्, सेतुम्, तीर्त्वा, अपि, नक्तम्, अहः, एव, अभिनिष्पद्यते, सकृत्, विभातः, हि, एव, एषः, ब्रह्मलोकः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मात् एव	इसही कारण	अनन्धः	नेत्रवाला
एतम्	इस	भवति	होजाता है
सेतुम्	सेतुरूपब्रह्मको	विद्धः	दुःखी
तीर्त्वा	पार करके	सन्	होता हुआ
अन्धः	अन्धा	अविद्धः	अदुःखी
सन्	होता हुआ	भवति	होजाता है
		उपतापी	रोगी

सन्=होता हुआ
अनुपतापी=अरोगी
भवति=होजाता है
+च=और
तस्मात् एव=इसी कारण
एतम्=इस
सेतुम्=सेतुको
तीर्त्वा=पार करके
नक्तम्=रात्रि
अपि=भी
अहः=दिन
एव=निस्संदेह
अभिनिष्पद्यते=होजाती है
हि=क्योंकि
एषः=यह
ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक
सकृत्=निरन्तर
विभातः एव=प्रकाशस्वरूप ही है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह हृदयाकाश ब्रह्मलोक सेतुवत् इस स्थूल शरीर विषे स्थित है, यह शुद्ध है, पापरहित है, इस सेतु को पाकर अन्धा नेत्रवाला होजाता है, दुःखी सुखी होजाता है, रोगी अरोगी होजाता है, इसी सेतु को पाकर रात्रि भी दिन हो जाती है, यानी मुमुक्षु के अन्तःकरण में जो अन्धकार भरा रहता है वह सब नष्ट होकर उसका हृदय प्रकाश करने लगता है, क्योंकि ब्रह्म जो उसके अन्तर स्थित है वह प्रकाशस्वरूप है, उसके प्रकाश करके सब प्रकाशित होजाते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामिवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳫं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, एव, एतम्, ब्रह्मलोकम्, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दन्ति, तेषाम्, इव, एषः, ब्रह्मलोकः, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	इस लिये	ब्रह्मलोकः	ब्रह्मलोक
ये	जो विद्वान	+भवति	होता है
एतम्	इस	तेषाम्	उनका
ब्रह्मलोकम्	ब्रह्मलोक को	इव	ही
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य करके	कामचारः	इच्छानुसार गमन
अनुविन्दन्ति	प्राप्त करते हैं	सर्वेषु	सब
तेषाम्	उनको ही	लोकेषु	लोकों में
एषः	यह	भवति एव	होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो विद्वान् हृदयस्थ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है उसका गमन उसकी इच्छानुसार सब लोकों में होता है, ऐसे इस ब्रह्मको विद्वान् ब्रह्मचर्य करकेही प्राप्त होता है, और कोई उपाय उसकी प्राप्तिके लिये नहीं है ॥ ३ ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, यज्ञः, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, यः, ज्ञाता, तम्, विन्दते, अथ, यत्, इष्टम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, इष्ट्वा, आत्मानम्, अनुविन्दते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरांत
यत्	जो
यज्ञः इति	यज्ञ के नामसे
आचक्षते	कहा जाता है
तत् एव	सोई
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य है
हि	क्योंकि
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्यसाधन करके ही
यः	जो
ज्ञाता	विद्वान्
भवति	होता है
+ सः	वही
तम्	उस ब्रह्मलोक को
विन्दते	प्राप्त होता है
अथ	और
यत्	जो
इष्टम् इति	इष्ट के नाम से
आचक्षते	कहा जाता है
तत् एव	वह भी
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्यही है
हि	क्योंकि
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्यसाधन सेही
इष्ट्वा	ब्रह्मको पूज करके
आत्मानम्	परम आत्मा को
अनुविन्दते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो ब्रह्मचर्य है वही यज्ञ है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करकेही

पुरुष विद्वान् होता है, और विद्वान्ही हृदयस्थ ब्रह्मका ज्ञाता होता है, ब्रह्मचर्य का अर्थ यहां आत्मविद्या है, यही इष्ट शब्द का भी अर्थ है, विना आत्मविद्या के ब्रह्मलोक को जो अपने हृदयाकाशविषे स्थित है कोई नहीं प्राप्त होता है, यही गुरुसे जानने योग्य है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, सत्त्रायणम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, सतः, आत्मनः, त्राणम्, विन्दते, अथ, यत्, मौनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, ब्रह्मचर्येण, हि, एव, आत्मानम्, अनुविद्य, मनुते ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
यत्	जिसको
सत्त्रायणम्	सत्त्रायण नामक यज्ञ
इति	करके
आचक्षते	विद्वान् लोग कहते हैं
तत् एव	सोई
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य है
हि	क्योंकि
ब्रह्मचर्येण एव	ब्रह्मचर्य करके ही
सतः	सर्वदा
आत्मनः	जीवात्मा की

त्राणम्=रक्षा	ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य है
विन्दते=करता है	हि=क्योंकि
अथ=और	ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचर्य करके
यत्=जिसको	एव=ही
मौनम्=मौन	आत्मानम्=अपने आत्मा को
इति=करके	अनुविद्य=भली प्रकार जानकर
आचक्षते=विद्वान् लोग कहते हैं	मनुते=फिर मनन करता है
तत्=सो भी	
एव=निश्चय करके	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो सत्रायण नामक यज्ञ है सोई निश्चय करके ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करके ही मुमुक्षु अपने जीवात्मा की सदा रक्षा करता है, और जिसको विद्वान् लोग मौन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्यही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य करके ही मुमुक्षु जीवात्मा को जानकर फिर परमात्मा का अनुभव करता है, विना आत्मज्ञान के जीव अपनी रक्षा नहीं करसक्ता है, और न अपने को परमात्मा से अभिन्न जानकर विचारवान् होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वैण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितोदिवि तदैरं मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपरा-

जिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरण्मयम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्, अनाशकायनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, एषः, हि, आत्मा, न, नश्यति, यम्, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दते, अथ, यत, अरण्यायनम्, इति, आचक्षते, ब्रह्मचर्यम्, एव, तत्, तत्, अरः, च, ह, वै, ण्यः, च, अर्णवौ, ब्रह्मलोके, तृतीयस्याम्, इतः, दिवि, तत्, ऐरम्, मदीयम्, सरः, तत्, अश्वत्थः, सोमसवनः, तत्, अपराजिता, पूः, ब्रह्मणः, प्रभुविमितम्, हिरण्मयम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	=और	+ सः	=वह विद्वान्
यत्	=जिसको	ब्रह्मचर्येण	=ब्रह्मचर्य करके
अनाशकायनम्	=अनाशकायन व्रत	अनुविन्दते	=प्राप्त करता है
इति	=करके	+ सः	=सो
आचक्षते	=कहते हैं	आत्मा	=आत्मा
तत्	=वही	न	=नहीं
एषः	=यह	नश्यति	=नष्ट होता है
एव	=निश्चय करके	अथ	=और
ब्रह्मचर्यम्	=ब्रह्मचर्य है	यत्	=जिसको
हि	=क्योंकि	अरण्यायनम्	=अरण्यायन व्रत
यम्	=जिस आत्माको	इति	=करके

आचक्षते=कहते हैं	एरम् मदीयम् = एरममदीय
तत् एव=सोभी	सरः=तालाब है
ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य है	तत्=वहां
+ हि=क्योंकि	अश्वत्थः=अश्वत्थवृक्ष है
+ तत्=वह	+ च=और
+ एव=ही	सोमसवनः=अमृतका भ-रना है
ह=स्पष्ट	तत्=वहां
अरः=अर	अपराजिता=ब्रह्मकी अप-राजिता
च=और	पूः=पुरी है
ण्यः=ण्य नाम करके	+ च=और
ब्रह्मलोके=ब्रह्मलोक में	ब्रह्मणः=ब्रह्मका
अर्णवौ=दो समुद्र हैं	प्रभुविमितम्=बनाया हुआ
च=और	हिरण्मयम्=ज्योतिर्मय स्थान है
इतः=यहां से	
तृतीयस्याम्=तृतीय	
दिवि=द्युलोक में	
तत्=वह	

भावार्थ ।

और जिसको विद्वान् लोग अनाशकायन नाम करके यज्ञ कहते हैं वही ब्रह्मचर्य है, क्योंकि जो जीवात्मा ब्रह्मचर्य साधन करके प्राप्त होता है वह नष्ट नहीं होता है, और जिसको विद्वान् लोग अरण्यायन नामक यज्ञ करके कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्यही है, क्योंकि ब्रह्मकी प्राप्ति के लिये अर अर्थात् कर्मकाण्ड और ण्य अर्थात् ज्ञानकाण्ड ये दो समुद्र हैं मृत्युलोक से तीसरा स्थान स्वर्ग है, वहां एरममदीय नामक हर्ष का देनेवाला एक सरोवर है

और वहीं पर अमृत रस को चुआता हुआ एक अश्वत्थ वृक्ष है, और वहीं पर अपराजिता ब्रह्म की पुरी है, और वहीं परमात्मा का ज्योतिर्मय स्थान है यहां पर अलंकारयुक्त उपदेश है, दो समुद्र से मतलब कर्मकाण्ड, और ज्ञानकाण्ड से है, स्वर्ग से मतलब उपासनाकण्ड से है, स्वर्ग के पास १ सरोवर यानी ताल है, और चूंकि ताल व सरोवर नाशवान् होता है, इसलिये यह कर्मकाण्ड का फल कहागया है. उसी के पास एक अश्वत्थ का वृक्ष है, और चूंकि यह गति और वृद्धि से रहित होता है, और सदा एकरस रहता है, इसलिये इसको ज्ञान का फल कहा है, इसी में से अमृत झरा करता है, उस अमृत को ज्ञानी ब्रह्मपुरी में जो उस के पास है पहुँच कर पान किया करते हैं. यह ब्रह्मपुरी तेजोमय है, इस स्थान की प्राप्ति केवल ब्रह्मचर्य द्वारा ही होती है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तद्य एवैतावरं च एयं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥ इति पञ्चमःखण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ये, एव, एतौ, अरम्, च, एयम्, च, अर्णवौ, ब्रह्मलोके, ब्रह्मचर्येण, अनुविन्दन्ति, तेषाम्, एव, एषः, ब्रह्मलोकः, तेषाम्, सर्वेषु, लोकेषु, कामचारः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	इसलिये	ब्रह्मलोके	ब्रह्मलोक में

एतौ=इनदोनों
अरम्=अर
च=और
ण्यम्=ण्यनामक
अर्णवौ=समुद्रों को
ये=जो
एव=भलीप्रकार
ब्रह्मचर्येण=ब्रह्मचर्यकरके
अनुविन्दन्ति=जानते हैं
तेषाम्=उन ज्ञानियों का
एव=ही
एषः=यह
ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक है
च=और
तेषाम्=उन ज्ञानियों का
सर्वेषु=सब
लोकेषु=लोकों में
कामचारः=यथेच्छागमन
भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इस कारण जो कोई ब्रह्मचर्य साधनसंपन्न विद्वान् पुरुष ब्रह्म की प्राप्ति के लिये अर अर्थात् कर्मकाण्ड ण्य अर्थात् ज्ञानकाण्ड जो महासमुद्र के नाम से कहे गये हैं प्राप्त करते हैं, उन्हीं ब्रह्मचर्य साधनसंपन्न पुरुषों को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, और उन्हीं का स्वेच्छानुसार गमन सब लोकों में होता है, और जो लोग स्त्री आदि विषयभोग में फँसे हैं, और ब्रह्मचर्य के माहात्म्य को नहीं जानते हैं, और न उसका पालन करते हैं, वे ब्रह्म को कदापि प्राप्त नहीं होते हैं, और न उनका स्वेच्छागमन किसी लोक या योनियों में होता है ॥ ४ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ या एता हृदयस्य नाडयस्ताः पिङ्गल-

स्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, याः, एताः, हृदयस्य, नाड्यः, ताः, पिङ्गलस्य, अणिम्नः, तिष्ठन्ति, शुक्लस्य, नीलस्य, पीतस्य, लोहितस्य, इति, असौ, वै, आदित्यः, पिङ्गलः, एषः, शुक्लः, एषः, नीलः, एषः, पीतः, एषः, लोहितः ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
याः	जो
एताः	ये
हृदयस्य	हृदयसे चारों तरफ़ निकली हुई
नाड्यः	नाड़ियां हैं
ताः	वे
पिङ्गलस्य	पीतवर्ण
अणिम्नः	सूर्य के सूक्ष्म
+रसेन	रस करके
+पूर्णाः	पूर्ण
तिष्ठन्ति	रहती हैं
+तथा	तैसेही
शुक्लस्य	श्वेतवर्ण
नीलस्य	नीलवर्ण
पीतस्य	पीतवर्ण
लोहितस्य	लालवर्ण
अणिम्नः	सूर्य के सूक्ष्म
+रसेन	रसकरके
+पूर्णाः	पूर्ण रहती हैं
इति	इसीलिये
वै	निश्चय करके
असौ	यह
आदित्यः	सूर्य
पिङ्गलः	कपिलवर्ण है
एषः	यह सूर्य
शुक्लः	श्वेत है
एषः	यह सूर्य
नीलः	नीला है

एषः=यह सूर्य	एषः=यह सूर्य
पीतः=पीला है	लोहितः=लाल है

भावार्थ ।

इस खण्ड में योग के माहात्म्य को कहते हैं जब जीवात्मा स्थूलशरीर को त्यागता है तब त्यागते वक्त उसको अतिक्लेश होता है, पर कोई मार्ग इस स्थूल शरीर में ऐसा भी है जिससे निकलते हुये जीवात्मा को सुख होता है, यह मार्ग ब्रह्मरन्ध्र है, जो विद्वान् ब्रह्मचर्यादि साधनसंपन्न जितेन्द्रिय बाह्यविषयत्यागी अन्तर्मुखदृष्टि हृदयपुण्डरीकगत ब्रह्म की उपासना करनेवाला होता है वह मरते समय उस मार्ग से जाता है. इसलिये जो ये हृदयस्थ कमलाकार ब्रह्म की उपासना के स्थान नाड़ियां हैं, और जो हृदय के मांसपिण्ड से निकल कर सूर्यमण्डलस्थ किरण की नाईं संपूर्ण शरीर में विस्तृत हैं वे पिङ्गलवर्णवाले सूर्य के रससे पूर्ण हैं, और उसी तरह श्वेत, कृष्ण, पीत, रक्त वर्णवाले सूर्य के सूक्ष्म रस से भी परिपूर्ण हैं, ये नाड़ियों के वर्ण सूर्य के सम्बन्ध करके होते हैं, क्योंकि सूर्य स्वतः पिङ्गल, शुक्ल, कृष्ण, पीत, रक्तवर्णवाला है, उसके किरण शरीर में प्रवेश होने के कारण हृदय की नाड़ियां भी वैसेही वर्णवाली होजाती हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, महापथः, आततः, उभौ, ग्रामौ, गच्छति, इमम्, च, अमुम्, च, एवम्, एव, एताः, आदित्यस्य, रश्मयः, उभौ, लोकौ, गच्छति, इमम्, च, अमुम्, च, अमुष्मात्, आदित्यात्, प्रतायन्ते, ताः, आसु, नाडीषु, सृप्ताः, आभ्यः, नाडीभ्यः, प्रतायन्ते, ते, अमुष्मिन्, आदित्ये, सृप्ताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	तिस बिषे	उभौ	दोनों
+दृष्टान्तः	दृष्टान्त देते हैं कि	लोकौ	लोकोंको यानी
यथा	जैसे	इमम्	इस पुरुष के शरीर विषे
आततः	दूर जानेवाला	च	और
महापथः	बड़ा मार्ग	अमुम्	दूरस्थ सूर्य के मण्डल बिषे
इमम्	समीप	च	भी
च	और	+गच्छन्ति	प्रवेश होती हैं
अमुम्	दूर के	+च	और
उभौ	दो	+यथा	जैसे
ग्रामौ	गावों को	अमुष्मात् आदित्यात्	उस दूरस्थ सूर्यसे किरणें निकलकर
गच्छति	जाता है	प्रतायन्ते	चारोंतरफ़फैल जाती हैं
एवम् एव	इसी प्रकार		
आदित्यस्य	सूर्य की		
एताः	ये		
रश्मयः	किरणें		

+तथा=उसी तरह
ताः=वे
आसु=इन
नाडीषु=नाड़ियों में
सृप्ताः=प्रविष्ट होकर
च=और फिर
आभ्यः=इन्हीं
नाडीभ्यः=नाड़ियों से
प्रतायन्ते=शरीरमें चारों तरफ़ फैल जाती हैं
+च=और
+पुनः=फिर
ते=वेही किरणें
अमुष्मिन्=उसी दूरस्थ
आदित्ये=सूर्य में
सृप्ताः=प्रवेश
+भवन्ति=कर जाती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य! दूरस्थ आदित्यका सम्बन्ध इन हृदयस्थ नाड़ियों से कैसे है इसको दिखलाते हैं जैसे बहुत दूर जानेवाला बड़ा मार्ग समीप और दूर दो गांव में होकर जाता है इसी प्रकार सूर्य की ये किरणें सूर्यलोक विषे, और इस पुरुष के शरीर विषे प्रविष्ट होती हैं इस कारण सूर्य की किरण सूर्य से निकल कर चारोंतरफ़ विस्तीर्ण होकर इस पुरुष की नाड़ियों में भी प्रविष्ट होती हैं, और फिर वेही किरणें इन नाड़ियों से निकल कर सूर्य में प्रवेश कर जाती हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा संपन्नो भवति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्र, एतत्, सुप्तः, समस्तः, संप्रसन्नः, स्वप्नम्,

न, विजानाति, आसु, तदा, नाडीषु, सृप्तः, भवति, तम्, न, कश्चन, पाप्मा, स्पृशति, तेजसा, हि, तदा, संपन्नः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	तत्पश्चात्	नाडीषु	नाड़ियों में
यत्र	जिस समय	सृप्तः	प्रविष्ट
एतत्	यह जीव	भवति	होता है
समस्तः	अच्छीतरह	+ च	और
सुप्तः	सुषुप्तिअवस्था को	+ तदा	तब
+ भवति	प्राप्त होता है	तम्	उस जीवको
+ तत्र	तिस विषे	कश्चन	कोई भी
संप्रसन्नः	आनन्द भोगता हुआ	पाप्मा	पाप
स्वप्नम्	स्वप्न को	न	नहीं
न	नहीं	स्पृशति	स्पर्श करता है
विजानाति	अनुभव करता है	हि	क्योंकि
+ च	और	तदा	उस समय
तदा	तभी	+ सः	वह जीव
आसु	इन	तेजसा	अपने तेजसे
		संपन्नः	संपन्न
		भवति	रहता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा होनेपर जब यह जीवात्मा अच्छीतरह सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तब यह आनन्द भोगता हुआ

स्वप्नको नहीं देखता है, और जब इन नाड़ियों में से निकल कर पुरीतत् नामक नाड़ी में प्रविष्ट होता है तो उस समय यह जीव अपने संपूर्ण तेजसे संपन्न रहता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, अबलिमानम्, नीतः, भवति, तम्, अभितः, आसीनाः, आहुः, जानासि, माम्, जानासि, माम्, इति, सः, यावत्, अस्मात्, शरीरात्, अनुत्क्रान्तः, भवति, तावत्, जानाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	इसके उपरान्त मरण समय	तम्	उस मुमूर्षु पुरुष के
यत्र	जब	अभितः	चारों तरफ़
एतत्	यह जीव	आसीनाः	बैठे हुये
अबलिमानम्	रोगादिक से दुर्बलता को	+ ज्ञातयः	ज्ञाति बान्धव
नीतः	प्राप्त	इति	इसप्रकार
भवति	होता है	आहुः	कहते हैं कि
+ तदा	तब	माम्	मुझको
		जानासि	तू जानता है

माम्=मुझको	शरीरात्=शरीर से
जानासि=तू जानता है	अनुत्क्रान्तः=उत्क्रमण नहीं
+ तदा=तब	भवति=करजाता है
यावत्=जबतक	तावत्=तबतक
सः=वह मुमुर्षुपुरुष	जानाति=पुत्रादिकों को
अस्मात्=इस	जानता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब कोई पुरुष मरते समय रोगादिकसे ग्रसित हुआ दुर्बलताको प्राप्त होता है तब उसके चारों तरफ़ उसके सम्बन्धी लोग बैठकर पूछते हैं कि क्या तू मुझको जानता है, क्या तू मुझको जानता है तव जबतक उसका जीवात्मा उसके शरीर से निकल नहीं जाता है तबतक वह कहता है हां मैं जानता हूं, हां मैं जानता हूं ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव र-
श्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वाहोद्वा मीयते स
यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु
लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो विदुषाम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, अस्मात्, शरीरात्, उत्क्रामति, अथ, एतैः, एव, रश्मिभिः, ऊर्ध्वम्, आक्रमते, सः, ॐ, इति, वा, ह, उत्, वा, मीयते, सः, यावत्, क्षिप्येत्, मनः, तावत्, आदित्यम्, गच्छति, एतत्, वै, खलु, लोकद्वारम्, विदुषाम्, प्रपदनम्, निरोधः, अविदुषाम्॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	तदनन्तर
यत्र	जब
एतत्	यह साधारण जीवात्मा
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीरसे
उत्क्रामति	निकलता है
अथ	तब
एतैः एव	इन्हीं
रश्मिभिः	हृदयस्थ किरणों द्वारा
ऊर्ध्वम्	ऊपर को
आक्रमते	जाता है
+परन्तु	परन्तु
+यदा	जब
सः	वह
+ विद्वान्	विद्वान्
ॐ ॐ	ॐ ॐ
इति	ऐसा
हवा	निश्चय करके
+ ध्यायन्	ध्यान करता हुआ
मीयते	जाता है
+तदा	तब
यावत्	जितनी देर में
मनः	मन
आदित्यं क्षिप्येत्	सूर्य के पास पहुँचता है
तावत्	उतनीही देरमें
सः	वह विद्वान्
उत् वा	सूर्य के पार
गच्छति	चला जाता है
एतत्	यही सूर्य
खलु वै	निश्चय करके
लोकद्वारम्	ब्रह्मलोक का द्वार है
+एतत्	यही
विदुषाम्	विद्वानों के
प्रपदनम्	जानेका मार्ग है
+ च	और
अविदुषाम्	अविद्वानों के जाने की
निरोधः	रुकावट है

भावार्थ।

हे सौम्य ! जब साधारण मनुष्यों का जीवात्मा इस शरीर

को त्याग कर ऊपर को निकल जाता है, तब सूर्यकी किरणें जो हृदय की नाड़ियों में स्थित हैं, उन्हीं के द्वारा वह ऊपर को जाता है, परन्तु जब विद्वान् ॐ ॐ ऐसा कहता हुआ और उसके लक्ष्य परमात्मा का ध्यान करता हुआ ऊपर को जाता है, तब जितनी देर में मन सूर्य के पास पहुँचता है, उतनीही देरमें वह विद्वान् सूर्य को पार करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होताहै, हे सौम्य ! यही सूर्य निश्चय करके ब्रह्मलोक का द्वार है, यही ब्रह्मलोक के जाने के लिये विद्वानों का मार्ग है, और अविद्वानों के लिये रुकावट है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तदेष श्लोकः । शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ६ ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, शतम्, च, एका, च, हृदयस्य, नाड्यः, तासाम्, मूर्धानम्, अभिनिःसृता, एका, तया, ऊर्ध्वम्, आयन्, अमृतत्वम्, एति, विष्वङ्, अन्याः, उत्क्रमणे, भवन्ति, उत्क्रमणे, भवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्=ऊपर कहे हुये विषय में		शतं च एका=एक सौ एक	
एषः=यह आगेवाला		हृदयस्य=हृदय की	
श्लोकः=मंत्र प्रमाण है		नाड्यः=नाड़ियां हैं	
		तासाम्=तिनमें से	

एका=एकनाड़ी
मूर्धानम्=मस्तक को
अभिनिःसृता=हृदयसे चली गई है
तया=मस्तकगामिनी नाड़ी से
ऊर्ध्वम्=ब्रह्मलोक को
आयन्=जाता हुआ योगी
अमृतत्वम्=मोक्षको
एति=प्राप्त होता है
च=और
विष्वङ्=मस्तक को छोड़ कर इधर उधर फैली हुई
अन्याः=और नाड़ियां
उत्क्रमणे=प्राण निकलने के निमित्तही
भवन्ति=होती हैं
उत्क्रमणे=प्राण निकलने के निमित्तही
भवन्ति=होती हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो कुछ ऊपर कहागया है उसके विषय में आगे वाला मन्त्र प्रमाण है, सुनो, मैं कहताहूं । हे सौम्य ! हृदय में एक सौ एक नाड़ियां प्रधान हैं, तिनमें से एक नाड़ी मस्तक तक चलीगई है, तिस नाड़ीद्वारा योगी ब्रह्मलोक को जाकर मोक्षको प्राप्त होता है, इस नाड़ी के अतिरिक्त और बहुतसी नाड़ियां इधर उधर फैली हैं, उन नाड़ियों के द्वारा साधारण पुरुषों का प्राण निकलता है, और वे भिन्न भिन्न गतिको प्राप्त होती हैं ॥६॥

इति षष्ठः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

मूलम् ।

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको

विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाᳬंश्च लोकानाप्नोति सर्वाᳬंश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघित्सः, अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसंकल्पः, सः, अन्वेष्टव्यः, सः, विजिज्ञासितव्यः, सः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, ह, प्रजापतिः, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
यः	जो
आत्मा	आत्मा
अपहतपाप्मा	निष्पाप है
विजरः	जरा रहित है
विमृत्युः	अमर है
विशोकः	शोकरहित है
विजिघित्सः	क्षुधाकी इच्छा से रहित है
अपिपासः	तृषाकी इच्छा से रहित है

अन्वयः	पदार्थ
सत्यकामः	सत्यकाम है
सत्यसंकल्पः	सत्यसंकल्प है
सः	वही आत्मा
अन्वेष्टव्यः	शास्त्र और गुरु के उपदेश करके खोजने योग्य है
सः	वही आत्मा
विजिज्ञासितव्यः	विशेष करके जानने योग्य है

यः=जो	च=और
तम्=उस	सर्वान्=संपूर्ण
आत्मानम्=आत्मा को	कामान्=कामनाओं को
अनुविद्य=शास्त्र द्वारा जानकर	आप्नोति=प्राप्त होता है
विजानाति=साक्षात् करता है	इति=इस प्रकार
सः=वह	ह=स्पष्ट
सर्वान्=संपूर्ण	इति=ऐसा
लोकान्=लोकों को	प्रजापतिः=ब्रह्मा अपने शिष्यों से
	उवाच=कहता था

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो आत्मा निष्पाप है, जरारहित है, शोकरहित है, क्षुधारहित है, तृषारहित है, अमर है, सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है, वही शास्त्र और आचार्यद्वारा खोजने योग्य है, वही साक्षात्कार करने योग्य है, जो योगी ऐसे आत्मा को साक्षात्करता है वह सम्पूर्ण लोकों को, और सम्पूर्ण कामों को प्राप्त होता है, इसप्रकार किसी समय प्रजापति ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ शिष्यों से उपदेश कर रहे थे ॥ १ ॥

मूलम् ।

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, उभये, देवासुराः, अनुबुबुधिरे, ते, ह, ऊचुः, हन्त, तम्, आत्मानम्, अन्विच्छामः, यम्, आत्मानम्, अन्विष्य, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, इति, इन्द्रः, ह, एव, देवानाम्, अभिप्रवव्राज, विरोचनः, असुराणाम्, तौ, ह, असंविदानौ, एव, समित्पाणी, प्रजापतिसकाशम्, आजग्मतुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ह	इतिहास सूचक है कि	ह	स्पष्ट
तत्	प्रजापति के कहे हुये उस वचन को	ऊचुः	कहते भये कि
उभये	दोनों यानी	हन्त	चलो
देवासुराः	देवता और असुरों ने	तम्	उस
ह	भली प्रकार करके	आत्मानम्	आत्मा को
अनुबुबुधिरे	जानने की कोशिश की	ह	अच्छी तरह
+ पुनः	तत्पश्चात्	अन्विच्छामः	ढूंढ़ें
ते	देवता और असुर	यम्	जिस
+ मिथः	आपुस में	आत्मानम्	आत्मा को
		अन्विष्य	ढूंढ़ कर
		+ विद्वान्	विद्वान्
		सर्वान्	सब
		लोकान्	लोकों को
		च	और
		सर्वान्	सब

कामान्=कामनाओंको	तौ=दोनों
एव=अवश्य	असंविदानौ=विद्याके विषय में
आप्नोति=प्राप्त होता है	अभिप्रवव्राज=परस्पर ईर्ष्या करतेहुये चले
इति=इसके बाद	च=और
देवानाम्=देवोंका	समित्पाणी=समिधा हाथ में लिये
+ राजा=राजा	प्रजापति-सकाशम्=प्रजापति के पास
इन्द्रः=इन्द्र	आजग्मतुः=आये
+ च=और	
असुराणाम्=असुरोंका	
+ राजा=राजा	
विरोचनः=विरोचन	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! किसी समय ब्रह्मा देवताओं और असुरों को आत्माविषयक उपदेश करता था, पर उन दोनों में से किसी को आत्माका बोध न हुआ, अपने अपने घर उठकर चलेगये, बहुत कालके पीछे जब ब्रह्मा के पहिले उपदेशका स्मरण हो आया, तब वे दोनों अपनी अपनी सभा में लोगों से कहनेलगे कि अगर आपलोगों की इच्छा हो तो हम आत्माका अन्वेषण करें जिसको जानकर लोग समस्त लोकोंको, समस्त कामनाओं को प्राप्त होते हैं, जब सबकी राय हुई कि ऐसा करना चाहिये तब देवताओं में इन्द्र, और असुरों में विरोचन प्रजापति के स्थानको ब्रह्मविद्याप्राप्त्यर्थ प्रस्थान किया, और आपुस में ईर्ष्या करते हुये और समिधा को हाथ में लिये हुये प्रजापति के समीप गये ॥ २ ॥

मूलम् ।

तौ ह द्वात्रिꣳशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, ब्रह्मचर्यम्, ऊषतुः, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, इच्छन्तौ, अवास्तम्, इति, तौ, ह, ऊचतुः, यः, आत्मा, अपहतपाप्मा, विजरः, विमृत्युः, विशोकः, विजिघित्सः, अपिपासः, सत्यकामः, सत्यसंकल्पः, सः, अन्वेष्टव्यः, सः, विजिज्ञासितव्यः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, भगवतः, वचः, वेदयन्ते, तम्, इच्छन्तौ, अवास्तम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तौ	वे दोनों इन्द्र और विरोचन	द्वात्रिंशतम्	बत्तीस
ह	निश्चय करके	वर्षाणि	वर्षतक
		ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्यव्रतको

ऊषतुः= { ब्रह्माके पास सेवन करते भये
ह=तब
प्रजापतिः=ब्रह्मा
उवाच=उनसे कहता भया कि
+ युवाम्=तुम दोनों
किम्=किस वस्तुकी
इच्छन्तौ=इच्छा करते हुये
अवास्तम्=मेरे निकटवास करते भये
+ इति=ऐसे
+ प्रश्नोत्तरम् } =पूछे जाने पर
तौ=वे दोनों यानी इन्द्र, विरोचन
ह=स्पष्ट
ऊचतुः=कहते भये कि
यः=जो
आत्मा=आत्मा
अपहतपाप्मा } =निष्पाप है

विजरः=जरारहित है
विमृत्युः=अमर है
विशोकः=शोकरहित है
विजिघित्सः=क्षुधाकी इच्छा से रहित है
अपिपासः=तृषाकी इच्छा से रहित है
सत्यकामः=सत्यकाम है
सत्यसंकल्पः=सत्यसंकल्प है
सः=वह
अन्वेष्टव्यः= { शास्त्र और गुरूपदेश से खोजनेयोग्य है
च=और
सः=वही
विजिज्ञासितव्यः } = विशेष करके जाननेयोग्यहै
इति=इसप्रकार
तम्=उस
आत्मानम्=आत्माको
अनुविद्य=जानकर
यः=जो
विजानाति=साक्षात्करताहै

सः=वह	+ शिष्टाः=यथार्थवक्ता विद्वान्
सर्वान्=सब	वेदयन्ते=बताते हैं
लोकान्=लोकोंको	इति=इसलिये
च=और	तम्=उसी की
सर्वान्=सब	इच्छन्तौ=इच्छा करने वाले हम दोनों
कामान्=कामनाओं को	अवास्तम्=आपके पास आकर रहे
आप्नोति=प्राप्त होता है	
इति=इसप्रकार	
भगवतः=आपके	
वचः=वचन को	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वे दोनों यानी इन्द्र और विरोचन जब प्रजापति के पास पहुँचे, तब ३२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत को करते भये, उन दोनों से प्रजापति ने पूछा कि किस प्रयोजन की इच्छा से तुम दोनों ने इतने काल तक मेरे निकट निवास किया तब उन दोनों ने जवाब दिया कि जिन विद्वानों ने आपके उपदेश को सुना है वे कहते हैं कि आत्मा निष्पाप है, जरारहित है, अमर है, शोक-रहित है, क्षुधा और तृषा की इच्छा से रहित है, सत्यकाम है, सत्यसंकल्प है, इसलिये वह खोजने और जानने योग्य है, और इसी कारण जो आत्मा को जानकर साक्षात्करता है वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होता है, हमलोग भी उस आत्मा के जानने की इच्छा करके आप के पास आये हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो

दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मे-
त्यथ योयं भगवोप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे
कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत
इति होवाच ॥ ४ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, यः, एषः, अक्षिणि, पुरुषः, दृश्यते, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, अथ, यः, अयम्, भगवः, अप्सु, परिख्यायते, यः, च, अयम्, आदर्शे, कतमः, एषः, इति, एषः, उ, एव, एषु, सर्वेषु, अन्तेषु, परिख्यायते, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
तौ	उन दोनों से
प्रजापतिः	ब्रह्मा
इति	इस प्रकार
उवाच	कहताभया कि
यः	जो
एषः	यह
अक्षिणि	नेत्रविषे
पुरुषः	पुरुष
दृश्यते	दिखाई देताहै
एषः ह	यही
आत्मा	आत्मा है
ह	फिर

अन्वयः	पदार्थ
उवाच	ब्रह्मा कहता भया कि
एतत्	यही आत्मा
अमृतम्	अमृत है
एतत्	यही
अभयम्	निर्भय है
ब्रह्म	सर्वत्रव्यापकहै
इति	इस प्रकारउपदेशहोनेपर
अथ	वे दोनों प्रश्न करते भये कि
भगवः	हे भगवन्

यः=जो	+ श्रुत्वा=सुनकर
अयम्=यह	+ प्रजापतिः=ब्रह्मा
अप्सु=जल में	ह=साफ़ साफ़
परिख्यायते=देखा जाता है	इति=ऐसा
च=और	उवाच=कहताभयाकि
यः=जो	एषः उ एव=यही आत्मा निश्चयकरकेहै
अयम्=यह	+ यः=जो
आदर्शे=दर्पण में	सर्वेषु=सब के
परिख्यायते=देखा जाता है	अंतेषु=अंतर
कतमः=इनमेंसेकौनसा	परिख्यायते=दिखाई देता है
एषः=यह आत्मा है	
इति=इस प्रकार	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रजापतिने उन दोनों यानी इन्द्र और विरोचन से ऐसा कहा कि जो पुरुष नेत्र विषे दिखाई देता है वही आत्मा है, वही अमृत है, वही निर्भय है, वही सर्वत्र व्यापक है, ऐसा सुनकर दोनों ने पूछा कि हे भगवन् ! जो प्रतिबिम्ब जल में दिखाई देता है, और जो दर्पण में दिखाई देता है उसमें से कौन सा आत्मा है, ब्रह्माने उत्तर दिया कि जो सब के अंदर दिखाई देता है वही आत्मा है ॥ ४ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥

मूलम् ।

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेवेक्षांचक्राते

तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रतिरूपमिति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

उदशरावे, आत्मानम्, अवेक्ष्य, यदा, आत्मनः, न, विजानीथः, तत्, मे, प्रब्रूतम्, इति, तौ, ह, उदशरावे, अवेक्षांचक्राते, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, पश्यथः, इति तौ, ह, ऊचतुः, सर्वम्, एव, इदम्, आवाम्, भगवः, आत्मानम्, पश्यावः, आलोमभ्यः, आनखेभ्यः, प्रतिरूपम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यदा	जब	मे	मुझे
उदशरावे	जलसे भरेहुये मिट्टीके बर्तनमें	प्रब्रूतम्	कहो
आत्मनः	अपने	इति	इस प्रकार कहे जानेपर
आत्मानम्	आत्मा को यानी अपने शरीरके प्रतिबिम्बको	तौ	वे दोनों
अवेक्ष्य	तुम देखकर	उदशरावे	जलसे भरेहुये मिट्टीकेबर्तनमें
न	न	अवेक्षांचक्राते	अपने को देखते भये
विजानीथः	जानो	ह	तब
तत्	तब	प्रजापतिः	ब्रह्मा
		तौ	उन दोनों से

उवाच=कहता भया कि	आनखेभ्यः=नख सहित
किम्=क्या	आलोमभ्यः=लोम सहित
पश्यथः=देखते हो	सर्वम्=संपूर्ण
इति=तब	इदम्=इस शरीर के
तौ=वे दोनों	प्रतिरूपम्=प्रतिरूप
ह=स्पष्ट	आत्मा=आत्मा को
ऊचतुः=कहते भये कि	एव=निश्चय करके
भगवः=हे भगवन्	ह=स्पष्ट
आवाम्=हम दोनों	पश्यावः=देखते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रजापति ने इन्द्र और विरोचन से कहा कि तुम दोनों मिट्टी के बर्तन में जो जलसे भरा हो उसमें अपने आत्मा को देखो, और बतावो कि वह क्या है, और अगर न जान सको तो मुझसे कहो, जब ऐसा उनसे कहा गया तब वे दोनों जल से भरे हुये मिट्टी के बर्तन में अपने को देखा, ब्रह्माने उनसे पूछा कि तुम क्या देखते हो, तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम दोनों नखसे सिख तक संपूर्ण इस अपने शरीर के प्रतिबिम्ब-रूप आत्मा को देखते हैं ॥ १ ॥

मूलम् ।

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, साधु, अलंकृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, भूत्वा, उदशरावे, अवेक्षेथाम्, इति, तौ, ह, साधु, अलंकृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, भूत्वा, उदशरावे, अवेक्षांचक्राते, तौ, ह, प्रजापतिः, उवाच, किम्, पश्यथः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
प्रजापतिः	ब्रह्मा
तौ	उन दोनों से
ह	साफ़ साफ़
उवाच	कहताभया कि
+ युवाम्	तुम दोनों
साधु	अच्छी तरह
अलंकृतौ	अलंकृत हो
सुवसनौ	सुंदर वस्त्र पहन
ह	और
परिष्कृतौ	स्वच्छ
भूत्वा	होकर
उदशरावे	जलसे भरे बर्तन में
अवेक्षेथाम्	अपनेको देखो
इति	ऐसा सुनकरके
तौ	वे दोनों
साधु	अच्छी तरह
अलंकृतौ	अलंकृत हो
सुवसनौ	सुंदर वस्त्र पहिन
परिष्कृतौ	स्वच्छ
भूत्वा	होकर
उदशरावे	जलसे भरे बर्तन में
अवेक्षांचक्राते	देखते भये
ह	तब
प्रजापतिः	ब्रह्मा
तौ	उनसे
इति	ऐसा
उवाच	पूछता भया कि
किम्	क्या
पश्यथः	देखते हो

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्माने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों अच्छी तरह अलंकृत होकर सुंदर वस्त्र पहिन कर और स्वच्छ होकर जलसे भरे हुये बर्तन में अपने को देखो, ऐसा सुनकर वे दोनों यानी इन्द्र और विरोचन अलंकृत हो, सुंदर वस्त्र पहिन और स्वच्छ होकर जलसे भरे हुये बर्तन में अपने को देखते भये तब ब्रह्माने उनसे पूछा कि तुम दोनों क्या देखते हो ॥ २ ॥

मूलम् ।

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, ऊचतुः, यथा, एव, इदम्, आवाम्, भगवः, साधु, अलंकृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, स्वः, एवम्, एव, इमौ, भगवः, साधु, अलंकृतौ, सुवसनौ, परिष्कृतौ, इति, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, तौ, ह, शांतहृदयौ, प्रवव्रजतुः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तौ	=वे दोनों	ऊचतुः	=कहते भये कि
ह	=निश्चयपूर्वक	यथा एव	=जैसेही

इदम्=यह शरीर
+ आसीत्=पहिले था
+ तथैवाधुना=वैसेही अब भी है
भगवः=हे भगवन्
+ यथा=जैसे
आवाम्=हम दोनों
साधु अलंकृतौ=अच्छे प्रकार अलंकृत
सुवसनौ=सुंदर वस्त्र पहिने हुये
परिष्कृतौ=स्वच्छ
स्वः=हैं
एवम् एव=वैसेही
भगवः=हे भगवन्
इमौ=हम दोनों के ये दोनों छायात्मा
+ एव=भी
साधु अलंकृतौ=अच्छी तरह अलंकृत
सुवसनौ=अच्छे वस्त्र पहिने हुये
परिष्कृतौ=स्वच्छ
+ दृश्येते=दिखाईपड़ते हैं
इति=यह सुनकर
ह=स्पष्ट
उवाच=प्रजापति कहता भया कि
आत्मा एषः ह=यही आत्मा है
एतत्=यही
अमृतम्=अमृत है
अभयम्=अभय है
एतत्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=ऐसा सुनकर
तौ=वे दोनों
शांतहृदयौ=शांत हृदय होते हुये
प्रवव्रजतुः=वहांसे चले गये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तब उन दोनोंने कहा कि जैसे यह शरीर हम लोगों का था वैसे अब भी दिखाई देता है और जैसे हम दोनों अच्छे प्रकार अलंकृत हुये, सुन्दर वस्त्र पाहिने हुये स्वच्छ हैं, वैसेही

हम दोनोंके छाया आत्मा भी अच्छीतरह अलंकृत वस्त्र पहिनेहुये स्वच्छ दिखाई देताहै, यह सुनकर प्रजापतिने कहा कि तुम दोनों ठीक कहते हो, यही शरीर आत्मा है, यही अमृतरूप है, यही अभय है, यही ब्रह्महै, ऐसा सुनकर वे दोनों शांतहृदय होते हुये वहां से वापस चले ॥ ३ ॥

मूलम् ।

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचाऽनुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तौ, ह, अन्वीक्ष्य, प्रजापतिः, उवाच, अनुपलभ्य, आत्मानम्, अननुविद्य, व्रजतः, यतरे, एतत्, उपनिषदः, भविष्यन्ति, देवाः, वा, असुराः, वा, ते, पराभविष्यन्ति, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, एव, विरोचनः, असुरान्, जगाम, तेभ्यः, ह, एताम्, उपनिषदम्, प्रोवाच, आत्मा, एव, इह, महय्यः, आत्मा, परिचर्यः, आत्मानम्, एव, इह, महयन्, आत्मानम्, परिचरन्, उभौ, लोकौ, अवाप्नोति, इमम्, च, अमुम्, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तौ=उन दोनों को		ह=भली प्रकार	

अन्वीक्ष्य=देखकर
प्रजापतिः=ब्रह्मा
उवाच=कहता भया कि
आत्मानम्=आत्मा को
अनुपलभ्य=न पाकर
+च=और
अननुविद्य=न जान कर
व्रजतः=ये दोनों जाते हैं
+अतः=इस कारण
+यदि=जो
यतरे=दोनों में से
देवाः=देवता
वा=या
असुराः=असुर
एतदुपनिषदः=इस विपरीत ज्ञानवाले
भविष्यन्ति=होंगे
वा=तो
ते=वे
पराभविष्यन्ति=परास्त होंगे
+एतत् न श्रुत्वा=इस को न सुन कर
सः=वह विरोचन

शान्तहृदयः=शांतहृदय होता हुआ
असुरान्=असुरोंके पास
एव=निश्चय करके
जगाम=जाता भया
+च=और
तेभ्यः=उन असुरों से
इति=इस प्रकार
ह=स्पष्ट
एताम्=इस
उपनिषदम्=देहात्मज्ञान को
प्रोवाच=कहने लगा कि
इह=इस संसार में
आत्मा=शरीर
एव=ही
महय्यः=पूजनेयोग्य है
आत्मा=शरीरही
परिचर्यः=सेवने योग्य है
इति=इस प्रकार
एव=ऐसे
आत्मानम्=आत्माको
इह=संसार में
महयन्=पूजताहुआ

च=और	इमम्=इस
एव=ऐसे	च=और
आत्मानम्=आत्मा को	अमुम्=उस
परिचरन्=सेवन करता हुआ	उभौ=दोनों
+पुरुषः=पुरुष	लोकौ=लोकों को
	अवाप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब उन दोनों को ब्रह्मा ने जाते हुये देखा तब बहुत आहिस्ते से कहने लगा कि ये दोनों आत्मा को न पाकर और न जानकर जाते हैं, इस कारण ये दोनों और इनके साथी देवता और असुर विपरीत ज्ञान को प्राप्त होकर परास्त होंगे, प्रजापति के इस वचनको न सुनकर विरोचन शान्तहृदय होता हुआ अपने साथी असुरोंके पास गया, और उनसे इस देहात्मक ज्ञानको इस प्रकार कहने लगा कि इस संसार में शरीर ही पूजने योग्य आत्मा है, यही शरीर सेवन करने योग्य है, और जो पुरुष ऐसे आत्माको पूजता है, और जानता है, वह इस लोक और परलोक दोनों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाᳬं ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सᳬंस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तस्मात्, अपि, अद्य, इह, आददानम्, अश्रद्दधा-

नम्, अयजमानम्, आहुः, आसुरः, बत, इति, असुराणाम्, हि, एषा, उपनिषत्, प्रेतस्य, शरीरम्, भिक्षया, वसनेन, अलंकारेण, इति, संस्कुर्वन्ति, एतेन, हि, अमुम्, लोकम्, जेष्यन्तः, मन्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	इसलिये	हि	क्योंकि
अद्य	आजकल	एषा	यह
अपि	भी	उपनिषत्	विपरीत ज्ञान
इह	इस संसार में	असुराणाम्	असुरों का है
अददानम्	दानको न देते हुये	+ एते पुरुषाः	ऐसे स्वभाव वाले पुरुष
अश्रद्धानम्	परलोकविषे श्रद्धा को न करते हुये	प्रेतस्य	मरे हुये पुरुष के
+ च	और	शरीरम्	शरीर को
अयजमानम्	यज्ञको न करते हुये	भिक्षया	गंधमाल्यादि से
+ पुरुषम्	पुरुष को	वसनेन	वस्त्र से
+ दृष्ट्वा	देखकर	अलंकारेण	विविध प्रकार के भूषण से
बत	खेद के साथ	संस्कुर्वन्ति	सुसज्जित करते हैं
आहुः	लोग कहते हैं कि	हि	क्योंकि
आसुरःइति	यह असुर है		

मन्यन्ते इति = विरोचनसंप्रदाय के लोग ऐसा मानते हैं कि
एतेन = इसप्रकार शवसंस्कारकरनेसे
अमुम् लोकम् = परलोक को
+ ते = वे यानी मरेहुये पुरुष
जेष्यन्तः = जीत लेवेंगे

भावार्थ ।

हे सौम्य ! आजकल भी संसार में दानको न देते हुये, परलोकविषे श्रद्धा न करते हुये और यज्ञको न करते हुये पुरुष को देखकर लोक खेद के साथ ऐसा कहते हैं कि यह असुर है क्योंकि धर्मविरुद्ध ज्ञान असुरों का होता है, वे मरे हुये पुरुष को गंध माल्यादि से, अच्छे वस्त्रसे, विविध प्रकार के आभूषण से आभूषित करते हैं, क्योंकि विरोचनसंप्रदाय के मतवाले मानते हैं कि इस प्रकार शवसंस्कार करने से मरे हुये का जीव स्वर्गलोक को पहुँचता है, और वहां सुखपूर्वक रहता है ॥ ५ ॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥

मूलम् ।

अथ हैन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, इन्द्रः, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, यथा, एव, खलु, अयम्, अस्मिन्, शरीरे, साधु, अलंकृते, साधु, अलंकृतः, भवति, सुवसने, सुवसनः, परिष्कृते, परिष्कृतः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, अन्धे, अन्धः, भवति, स्रामे, स्रामः, परिवृक्णे, परिवृक्णः, अस्य, एव, शरीरस्य, नाशम्, अनु, एषः, नश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	विरोचन के चले जाने पर
ह	प्रसिद्ध
इन्द्रः	इन्द्र
देवान्	देवताओं के पास
अप्राप्य	न पहुँच कर मार्ग में
एव	ही
+ स्मृत्वा	गुरुवचन स्मरण करके
एतत्	इस
भयम्	देहात्मकज्ञान-जन्य भयको
ददर्श	देखता भया
+ च	और
+ उवाच	कहता भया कि
खलु	निश्चय करके
यथा	जैसे
एव	ही
अस्मिन्	इस
शरीरे	शीर्यमाण शरीर के
साधु	अच्छी प्रकार
अलंकृते	अलंकृत
+ सति	होने पर
अयम्	यह छायात्मा भी
साधु	अच्छी तरह
अलंकृतः	अलंकृत

भवति=होता है	भवति=होता है
सुवसने=सुंदर वस्त्र पहिरने पर	स्रामे=काना
सुवसनः=वह भी सुन्दर वस्त्रवाला होता है	+सति=होने पर
परिष्कृते=स्वच्छ	स्रामः=काना
+सति=होनेपर	+भवति=होताहै
परिष्कृतः=वह भी स्वच्छ दिखाई देता है	परिवृक्णे=छिन्न हस्त
एवम् एव=इसी प्रकार	+ सति=होने पर
अयम्=यह छायात्मा	परिवृक्णः=छिन्न हस्त होता है
अस्मिन्=इस शरीर के	+च=और
अन्धे=अंधा	अस्य=इस शरीर के
+सति=होनेपर	नाशम्=नाश के
अन्धः=अंधा	अनु=पीछे
	एषः=यह छायात्मा
	एव=भी
	नश्यति=नष्ट होजाताहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा से उपदेश पाकर इन्द्र और विरोचन दोनों अपने अपने स्थान को चले, विरोचन विना विचार किये हुये असुरों के पास पहुँचगया, पर इन्द्र राहमें सोचने लगा कि जो उपदेश प्रजापति ने हम दोनों को किया है वह कहांतक ठीक है, और अपने मनमें कहता भया कि जैसे शरीर के अलंकृत होने पर छायात्मा भी अलंकृत दिखाई देता है, सुन्दर वस्त्र पहिरने पर वह भी सुंदर वस्त्र पहिने दिखाई देता है, और स्वच्छ होने पर स्वच्छ दिखाई देता है, और शरीर अंधा होने पर अंधा दिखाई

देता है, काना होने पर काना दिखाई देता है, छिन्नहस्त होने पर छिन्नहस्त दिखाई देता है, जब यह शरीर नष्ट हो जाता है तब छायात्मा भी नष्ट होजाताहै, पर मैंने सुना है कि आत्मा अविनाशी, अङ्गभंगरहित है, इस कारण शरीर की छाया जो जल में दिखाई देती है वह आत्मा नहीं हो सक्ती है, आत्मा कोई औरही वस्तु है ॥ १ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छांतहृदयः प्राव्राजीः सार्द्धं विरोचनेन किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शांतहृदयः, प्राव्राजीः, सार्द्धम्, विरोचनेन, किम्, इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, यथा, एव, खलु, अयम्, भगवः, अस्मिन्, शरीरे, साधु, अलंकृते, साधु, अलंकृतः, भवति, सुवसने, सुवसनः, परिष्कृते, परिष्कृतः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, अन्धे, अंधः, भवति, स्रामे, स्रामः,

परिवृक्णे, परिवृक्णः, अस्य, एव, शरीरस्य, नाशम्, अनु, एषः, नश्यति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह जिज्ञासु इन्द्र	इच्छन्	इच्छा करता हुआ
समित्पाणिः	समिधा हाथ में लिये	आगमः	लौट आया
पुनः	फिर	+ तदा	तब
एयाय	प्रजापति के पास गया	इति	आगे कहे हुये प्रकार
ह	तब	सः	वह इन्द्र
प्रजापतिः	प्रजापति	उवाच ह	कहता भया कि
तम्	उस इन्द्र से	यथा	जैसे
उवाच	पूछता भया कि	अयम्	यह छायात्मा
मघवन्	हे इन्द्र	खलु	निश्चय करके
यत्	जब	भगवः	हे भगवन्
शान्तहृदयः	तू शान्तचित्त	अस्मिन्	इस
+ सन्	होता हुआ	शरीरे	शरीर के
विरोचनेन	विरोचन के	साधु	अच्छी प्रकार
सार्धम्	साथ	अलंकृते	अलंकृत
प्राव्राजीः	चला गया तो	+ सति	होने पर
पुनः	फिर	साधु	अच्छी तरह
किम्	क्या	अलंकृतः	अलंकृत
		भवति	होता है

सुवसने=सुन्दर वस्त्र प-हिरने पर	परिवृक्णे=छिन्नहस्त
	+सति=होने पर
सुवसनः=सुन्दर वस्त्र वाला होता है	परिवृक्णः=छिन्नहस्त होता है
परिष्कृते=स्वच्छ	अस्य=इसही शरीर के
+ सति=होनेपर	नाशम्=नाश के
परिष्कृतः=स्वच्छ होताहै	अनु=पीछे
एवम् एव=इसी तरह	एषः=यह छायात्मा
अयम्=यह छायात्मा	एव=भी
एव=भी	नश्यति=नष्ट होता है
अस्मिन्=इस	अत्र=इस देहात्म-ज्ञानके विषयमें
शरीरे=शरीर के	
अन्धे=अन्धे	+ तस्मात्=इसलिये
+ सति=होने पर	अहम्=मैं
अन्धः=अन्धा	भोग्यम्=कोई फल
भवति=होता है	न=नहीं
स्रामे=काने	पश्यामि=देखता हूं
+सति=होने पर	इति=इस प्रकार इन्द्र ने कहा
स्रामः=काना होताहै	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र ऐसा सोचता हुआ हाथ में समिध लिये हुये प्रजापति के पास फिर वापस आया, तब प्रजापति ने उसको देखकर पूछा कि हे इन्द्र ! तू शान्तचित्त होताहुआ विरोचन के साथ चलागया था फिर क्या इच्छा करके मेरे पास

लौट आया, तब इन्द्रने कहा हे भगवन्! जैसे यह छायात्मा इस शरीर के अलंकृत होनेपर अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्र पहिरने पर सुन्दर वस्त्रवाला होताहै, स्वच्छ होनेपर स्वच्छ होता है, शरीर के अन्धे होनेपर अन्धा होता है, काना होने पर काना होताहै, छिन्नहस्त होनेपर छिन्नहस्त होता है, और नाश होने पर नाश होजाता है, इसलिये उसविषे जो आपने मुझको उपदेश किया है उसमें कोई फल मैं नहीं देखताहूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्या स्यामि, वस, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मघवन्=हे इन्द्र		उवाच=प्रजापति कहता भया कि	
एवम् एव=ऐसाही		+ इन्द्र=हे इन्द्र	
एषः=यह आत्मा है		एतम् एव=इसीछायात्माको	
इति=ऐसा कहकर		ते=तेरेलिये	
तु=फिर			

भूयः=फिर
ह=भली प्रकार
अनुव्याख्यास्यामि=मैं कहूंगा
+ परन्तु=परन्तु
अपराणि=फिर भी
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्षतक
+ त्वम्=तू
वस=मेरे निकट वास कर
इति=तब
सः ह=वह इन्द्र श्रद्धापूर्वक
अपराणि=दुबारा
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्षतक
उवास=प्रजापति के समीप ब्रह्मचर्य के लिये वास करता भया
ह=तब
+प्रजापतिः=प्रजापति
तस्मै=उस इन्द्रको
उवाच=उपदेश करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुनकर प्रजापति ने कहा कि हे इन्द्र ! ऐसाही यह आत्मा है मैं तेरेलिये उस आत्माका उपदेश फिर करूंगा, परन्तु तुझको मेरे पास फिर बत्तीस वर्षतक रहना होगा, तब वह इन्द्र श्रद्धापूर्वक फिर बत्तीस वर्षतक प्रजापति के पास रहा, और तब प्रजापति ने इन्द्रको दूसरी बार आत्मा का उपदेश किया ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥

मूलम् ।

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति

होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदꣳ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यः, एषः, स्वप्ने, महीयमानः, चरति, एषः, आत्मा इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, प्रवव्राज, सः, ह, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, तत्, यदि, अपि, इदम्, शरीरम्, अन्धम्, भवति, अनन्धः, सः, भवति, यदि, स्रामम्, अस्रामः, न, एव, एषः, अस्य, दोषेण, दुष्यति ॥

अन्वयः — पदार्थ

यः=जो
स्वप्ने=स्वप्न विषे
महीयमानः=स्त्री पुत्रादि करके पूज्य होता हुआ
चरति=विचरता है
एषः=वही यह
आत्मा=आत्मा है
एतत्=यही
अमृतम्=अमर है
एतत्=यही
अभयम्=अभय है
ब्रह्म=यही सर्वत्र व्यापक है
इति=ऐसा
ह=जब
उवाच=प्रजापति ने कहा
इति=तब
सः ह=वह इन्द्र निश्चय करके
शान्तहृदयः=शान्तचित्त

\+ भूत्वा=होकर
प्रवव्राज=प्रजापति के पाससे जाता भया
\+ परम्=पर
सः ह=वह
देवान्=देवों के पास
अप्राप्य एव=न पहुँचकर
एतत्=आगे कहे हुये इस
भयम्=भयको
ददर्श=देखता भया यानी विचारता भया कि
यद्यपि=अगर
इदम्=यह
शरीरम्=शरीर
अन्धम्=अन्धा है
तत्=तो
सः=वह आत्मा
अनन्धः=अन्धा नहीं
भवति=होता है
यदि=अगर
स्रामम्=यह शरीर काना है
\+ परम्=तो
अस्रामः=वह आत्मा काना नहीं होता है
एषः=यह आत्मा
अस्य=इस शरीर के
दोषेण=दोष से
न एव=नहीं
दुष्यति=दूषित होताहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब प्रजापति ने कहा हे इन्द्र ! जो स्वप्नविषे स्त्री पुत्रादिकों करके पूज्य होता हुआ विचरता है वही यह आत्मा है, जिसको तू जानने की इच्छा करता है, यही अमर है, यही अभय है, यही सर्वत्र व्यापक है, तब ऐसा सुनकर वह इन्द्र शान्तचित्त होताहुआ प्रजापति के पास से अपने देवगणों की तरफ चलता भया, पर वहां न पहुँचकर राहमें ही विचारता भया कि जब यह शरीर अन्धा दिखाई देता है, तब स्वप्नात्मा

अन्धा नहीं दिखाई देता है, जब यह शरीर काना दिखाई देता है तब स्वप्नात्मा काना नहीं दिखाई देता है, जो जो दोष जाग्रत् शरीर के अन्दर दिखाई देता है वह स्वप्नात्मा में दिखाई नहीं देता है ॥ १ ॥

मूलम् ।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, वधेन, अस्य, हन्यते, न, अस्य, स्राम्येण, स्रामः, घ्नन्ति, तु, एव, एनम्, विच्छादयन्ति, इव, अप्रियवेत्ता, इव, भवति, अपि, रोदिति, इव, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस शरीर के	+ इति प्रतीयते	ऐसा प्रतीत होता है कि
वधेन	वधसे	एनम्	इसको
+ अयम्	यह स्वप्नात्मा	एव	मानो
न हन्यते	हत नहीं होता है	+ केचन	कोई
अस्य	इस शरीर के	घ्नन्ति	मार रहे हैं
स्राम्येण	काना होनेसे	इव	मानो
न स्रामः	वह काना नहीं होता है	+ एनम्	इसको
तु	परन्तु	विच्छादयन्ति	कोई काट रहे हैं

इव=मानो	अत्र=इसके ऐसी दशा में
+ अयम्=यह	+ भगवन्=हे भगवन्
अप्रियवेत्ता=दुःखी	अहम्=मैं
भवति=होरहा है	भोग्यम्=कोई फल
अपि=और	न=नहीं
इव=मानो	पश्यामि=देखताहूं
रोदिति=रोता है	इति=ऐसाविचारकरके

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र फिर भी विचारता है कि इस शरीर के वध से स्वप्नात्मा हत नहीं होता है, इस शरीर के काना होने से स्वप्नात्मा काना नहीं होता है, परन्तु ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि मानो कोई इसको स्वप्न में मार रहे हैं, मानो इसको कोई काटरहे हैं, मानो यह अतिदुःखी होरहा है, मानो यह रोरहा है, इसके ऐसी दशा में हे भगवन् ! मैं कोई फल नहीं देखताहूं यानी मेरा कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ २ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन् यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शान्तहृदयः, प्राव्राजीः, किम्,

इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, तत्, यदि, अपि, इदम्, भगवः, शरीरम्, अन्धम्, भवति, अनन्धः, सः, भवति, यदि, स्रामम्, अस्रामः, न, एव, एषः, अस्य, दोषेण, दुष्यति ॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	वह इन्द्र
समित्पाणिः	समिधा हाथ में लेकर
पुनः	फिर
एयाय	प्रजापति के पास गया
ह	तब
प्रजापतिः	प्रजापति
तम्	उस इन्द्र से
उवाच	कहता भया कि
मघवन्	हे इन्द्र
यत्	जब
शान्तहृदयः	तू शान्तहृदय
+ सन्	होता हुआ
प्राव्राजीः	चलागया था तो
पुनः	फिर
किम्	क्या
इच्छन्	इच्छा करता हुआ
आगमः	मेरेपासआया
इति	ऐसा सुनकर
सः	वह इन्द्र
उवाच	उत्तर देता भया कि
भगवः	हे भगवन्
यदि	जब
इदम्	यह
शरीरम्	शरीर
अन्धम्	अन्धा
भवति	होता है
तत्	तब
सः	वह स्वप्नदर्शी आत्मा
अनन्धः	अन्धा नहीं
भवति	होताहै
यदि	जब

स्राममू=यह शरीर काना होता है	एषः=यह स्वप्नात्मा
अपि=तब	अस्य=शरीर के
अस्रामः=स्वप्नद्रष्टाकाना नहीं होताहै	दोषेण=दोष करके
ह=स्पष्ट है कि	एव=कभी
	न=नहीं
	दुष्यति=दूषित होताहै

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा विचार करके वह इन्द्र हाथमें समिधा लिये हुये फिर प्रजापति के पास गया, उसको प्रजापति देख कर कहता भया कि जब तू शान्तचित्त होताहुआ चलागया तो फिर क्या इच्छा करके मेरे पास लौट आया, तब इन्द्र ने उत्तर दिया कि हे भगवन् ! मैं देखताहूं कि जब ये जाग्रत्वाला शरीर अन्धा होताहै तब स्वप्नवाला शरीर अन्धा नहीं दिखाई देता है, और जब जाग्रत्वाला शरीर काना होता है तब स्वप्नात्मा काना नहीं होताहै, इससे स्पष्ट है कि स्वप्नात्मा जाग्रत् शरीर के दोषसे दूषित नहीं होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ।

न वधेनास्य हन्यते नाऽस्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसाऽपराणि द्वात्रिंशतं शतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिंशतं शतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

इति दशमः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

न, वधेन, अस्य, हन्यते, न, अस्य, स्राम्येण, स्रामः, घ्नन्ति, तु, एव, एनम्, विच्छादयन्ति, इव, अप्रियवेत्ता, इव, भवति, अपि, रोदिति, इव, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति, एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्यास्यामि, वस, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, द्वात्रिंशतम्, वर्षाणि, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अस्य	इस शरीर के	+ केचन	कोई
वधेन	वध से	घ्नन्ति	मार रहे हैं
+ सः	वह स्वप्नात्मा	इव	मानो
न	नहीं	+ केचन	कोई
हन्यते	हत होताहै	विच्छाद-यन्ति	काट रहे हैं
अस्य	इसके	इव	मानो
स्राम्येण	काना होनेसे	+ सः	वह आत्मा
स्रामः	वह काना	अप्रियवेत्ता	दुःखी
न	नहीं होताहै	भवति	होरहा है
तु	परन्तु	अपि	और
+ इति प्रतीयते	ऐसा प्रतीत होताहै कि	इव	मानो
एव	मानो	+ सः	वह
एनम्	इस स्वप्नात्मा को	रोदिति	रोता है
		अत्र	ऐसी दशामें

+ भगवः=हे भगवन्
अहम्=मैं
भोग्यम्=कोई फल
न=नहीं
पश्यामि=देखताहूं
इति=इसप्रकारइन्द्र के कहनेपर
+प्रजापतिः=प्रजापतिब्रह्मा
इति=ऐसा
उवाच=कहता भया कि
मघवन्=हे इन्द्र
एवम् एव=इसी तरह का
एषः=यहस्वप्नात्माहै
तु=परन्तु
एव=निश्चय करके
एतम्=इस आत्माको
अहम्=मैं
ते=तेरेलिये
भूयः=फिर
अनुव्या- ख्यास्यामि } =कहूंगा
अपराणि=फिर भी
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्षतक
वस=मेरेपास वास कर
इति=तब
सः=वह इन्द्र
ह=निश्चय करके
अपराणि=फिर
द्वात्रिंशतम्=बत्तीस
वर्षाणि=वर्षतक
उवास=रहता भया
तस्मै=उस इन्द्र से
ह=स्पष्ट
उवाच=ब्रह्मा कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्र कहताहै कि इस शरीर के वध से वह स्वप्नात्मा हत नहीं होता है, और न इसके काना होने से वह काना होता है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई इस स्वप्नात्मा को मार रहे हैं, मानो कोई काट रहे हैं, मानो वह स्वप्नात्मा दुःखी होरहा है और रोरहा है, ऐसी हालत में हे भगवन् ! मैं

कोई फल नहीं देखताहूं, यानी मेरा कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता है ऐसा सुन कर ब्रह्मा कहता भया कि हे इन्द्र! जैसा तू कहता है वैसेही यह स्वप्नात्मा है, परन्तु मैं तेरे लिये इस आत्मा को फिर कहूंगा, तू बत्तीस वर्षतक मेरे पास रह कर फिर तप कर, तब वह इन्द्र फिर बत्तीस वर्ष रहता भया, और ब्रह्मा उस इन्द्रको उपदेश करना भया ॥ ४ ॥ इति दशमः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाहं खल्वयमेवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्र, एतत्, सुप्तः, समस्तः, संप्रसन्नः, स्वप्नम्, न, विजानाति, एषः, आत्मा, इति, ह, उवाच, एतत्, अमृतम्, अभयम्, एतत्, ब्रह्म, इति, सः, ह, शान्तहृदयः, प्रवव्राज, सः, ह, अप्राप्य, एव, देवान्, एतत्, भयम्, ददर्श, न, अहम्, खलु, अयम्, एवम्, संप्रति, आत्मानम्, जानाति, अयम्, अहम्, अस्मि, इति, नो, एव, इमानि, भूतानि, विनाशम्, एव, अपीतः, भवति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्=सो	
एतत्=यह आत्मा	
यत्र=जिस सुषुप्ति अवस्था में	
सुप्तः=सोया हुआ	
समस्तः=सम्यक् प्रकार	
संप्रसन्नः=निजानन्द का अनुभव करता हुआ	
स्वप्नम्=स्वप्नको	
न=नहीं	
विजानाति=देखता है	
एषः=यही	
आत्मा=पापरहित आत्मा है	
एतत्=यही	
अमृतम्=अमर है	
+ एतत्=यही	
अभयम्=अभय है	
एतत्=यही	
ब्रह्म=व्यापक ब्रह्म है	
इति ह=ऐसा निश्चय करके जब	

अन्वयः	पदार्थ
+प्रजापतिः=ब्रह्मा	
उवाच=कहता भया	
+ तदा=तब	
इति=ऐसा सुनकर	
सः=वह इन्द्र	
ह=भली प्रकार	
शान्तहृदयः=शान्तहृदय होता हुआ	
प्रवव्राज=चलागया	
ह=पर	
सः=वह	
देवान्=देवतों के पास	
अप्राप्य=न जाकर राह में	
एव=ही	
एतत्=आगे कहे हुये	
भयम्=भय यानी दोष को	
ददर्श=देखताभया कि	
+ यः=जो	
अयम्=यह सुषुप्तात्मा है	
अयम्=वही	

अहम्=मैं
अस्मि=हूं
एवम्=इस प्रकार
संप्रति=अच्छीतरह से
आत्मानम्=अपने को
खलु=निश्चयपूर्वक
+पुरुषः=पुरुष
न=नहीं
जानाति=जानता है
+ च=और
इमानि=इन
भूतानि=प्राणियोंको भी
नो=नहीं
+जानामि=जानता है
+ तस्मात्=इस कारण
+ अयम्=यह आत्मा
एव=मानो
विनाशम्=विनाश को
अपीतः=प्राप्त
भवति=है
अत्र=ऐसी दोषयुक्त अवस्था में
अहम्=मैं
भोग्यम्=कोई फल गुरुके उपदेशविषे
न=नहीं
पश्यामि=देखताहूं
इति=इस प्रकार संशय युक्त होता हुआ इन्द्र ब्रह्माके पास लौट आया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्माने इन्द्र से कहा कि जब सुषुप्ति में सोया हुआ पुरुष अपने आनन्द को अनुभव करता है और स्वप्नको नहीं देखता है वही पापरहित आत्मा है, यही अमर है, यही अभय है, यही व्यापक ब्रह्म है, ऐसा सुनकर वह इन्द्र भली प्रकार शान्तहृदय होता हुआ ब्रह्माके पास से चलागया परन्तु रास्ते में विचारने लगा और आगे कहेहुये दोषको इस प्रकार देखताभया कि जो सुषुप्त आत्मा है वही मैंहूं, ऐसा मैं अपने को सुषुप्ति अवस्था में निश्चयपूर्वक नहीं जानताहूं और न इन स्थितहुये

भूतों को वहांपर जानताहूं, इसलिये यह आत्मा ऐसा मालूम होता है कि मानो यह नष्ट होगया है ऐसी दोषयुक्त अवस्था में प्रजापति के उपदेश बिषे कोई फल नहीं देखताहूं इस प्रकार संदिग्ध होताहुआ इन्द्र देवताओं के पास न जाकर ब्रह्मा के पास लौट आया ॥ १ ॥

मूलम् ।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तᳬं ह प्रजापति-रुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमि-च्छन्पुनरागम इति स होवाच नाह खल्वयं भगव एवᳬं संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाह-मत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, समित्पाणिः, पुनः, एयाय, तम्, ह, प्रजापतिः, उवाच, मघवन्, यत्, शान्तहृदयः, प्राव्राजीः, किम्, इच्छन्, पुनः, आगमः, इति, सः, ह, उवाच, नाह, खलु, अयम्, भगवः, एवम्, संप्रति, आत्मानम्, जानाति, अयम्, अहम्, अस्मि, इति, नो, एव, इमानि, भूतानि, विनाशम्, एव, अपीतः, भवति, न, अहम्, अत्र, भोग्यम्, पश्यामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सः	वह इन्द्र	पुनः	फिर
समित्पाणिः	समिधा हाथमें लेकर	एयाय	प्रजापति के पास गया

ह=तब
प्रजापतिः=प्रजापति
तम्=उससे
उवाच=बोला कि
मघवन्=हे इन्द्र तू
शान्तहृदयः=शान्तचित्त
+सन्=होता हुआ
प्राव्राजीः=चला गया था
पुनः=फिर
किम्=क्या
इच्छन्=इच्छा करता हुआ
आगमः=आया है
इति=ऐसा सुनकर
सः ह=वह इन्द्र
उवाच=कहता भया कि
भगवः=हे भगवन्
+ यः=जो
अयम्=यह सुषुप्तात्मा है
अयम्=वही
अहम्=मैं
अस्मि=हूं
एवम्=इस प्रकार
+ सः=वह सुषुप्तात्मा
आत्मानम्=अपने को
संप्रति=अच्छीतरह
न=नहीं
जानाति=जानता है
+ च=और
न=न
इमानि=इन
भूतानि=प्राणियोंको भी
जानाति=जानता है
अतः=इसलिये
एव=मानो
+ सः=वह सुषुप्तात्मा
विनाशम्=नाशको
अपीतः=प्राप्त
भवति=है
अत्र=इस अवस्था में
अहम्=मैं
फलम्=कोई फल इस उपदेश विषे
न=नहीं
पश्यामि=देखता हूं
इति=ऐसा इन्द्रने कहा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वह इन्द्र हाथ में समिधा लिये हुये फिर प्रजापति के पास आया तब प्रजापति ने उससे पूछा कि हे इन्द्र ! तू शान्तचित्त होता हुआ चला गया था, अब फिर क्या इच्छा करके मेरे पास लौट आया है, वह इन्द्र ऐसा सुनकर कहता भया कि हे भगवन् ! जो यह सुषुप्तात्मा है वही मैं हूं इस प्रकार वह सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त हुआ आत्मा नहीं जानता है, और न सामने स्थित हुये प्राणियों को जानता है, इसलिये सुषुप्तात्मा नष्ट हुआ सा मालूम होता है, जब आत्मा का ऐसा हाल है तब मैं कोई फल आपके उपदेश में नहीं देखता हूं ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ संपेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳ ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥
इत्येकादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, मघवन्, इति, ह, उवाच, एतम्, तु, एव, ते, भूयः, अनुव्याख्यास्यामि, नो, एव, अन्यत्र, एतस्मात्, वस, अपराणि, पञ्च, वर्षाणि, इति, सः, ह, अपराणि, पञ्च, वर्षाणि, उवास, तानि, एकशतम्, संपेदुः, एतत्, तत्, यत्, आहुः, एकशतम्,

ह, वै, वर्षाणि, मघवान्, प्रजापतौ, ब्रह्मचर्यम्, उवास, तस्मै, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ
मघवन्	हे इन्द्र
एषः	यह आत्मा
एवम् एव	ऐसाही है जैसा तूने कहा है
इति	इस प्रकार
उवाच	ब्रह्मा कहता भया
तु	परन्तु
ते	तेरेलिये
एतम्	इसी आत्माको
एव	निश्चय करके
भूयः	फिर
अनुव्याख्यास्यामि	मैं कहूंगा
एतस्मात्	इस कहे हुये सुषुप्तात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
+ आत्मा	कोई दूसरा आत्मा
नो	नहीं है
+ त्वम्	तू
अपराणि	और
पञ्च	पांच
वर्षाणि	वर्ष
वस	मेरे पास रह
इति	ऐसा कहेजाने पर
सः	वह इन्द्र
अपराणि	और
पञ्च	पांच
वर्षाणि	वर्ष
उवास	प्रजापति के पास वास करता भया
+ च	और
यत्	जब
मघवान्	इन्द्र
एक शतम्	एक सौ एक
वर्षाणि	वर्षतक
प्रजापतौ	प्रजापति के पास

ब्रह्मचर्यम्=ब्रह्मचर्य के निमित्त	एतत्=इस उपदेश को
उवास=वास करता भया	ह=साफ़ साफ़
+ च=और	+ प्रजापतिः=ब्रह्मा
तानि=वे	एव=निश्चय के साथ
एकशतम्=एकसौ एकवर्ष	उवाच=कहता भया
संपेदुः=व्यतीत हुये	इति=इसीप्रकार
तत्=तब	शिष्टाः=यथार्थ वक्ता
तस्मै=उसइन्द्रकेलिये	आहुः=कहते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्मा कहता है कि हे इन्द्र ! जैसा तैने कहा है वैसाही यह आत्मा है, पर मैं तेरे लिये इसी आत्मा को फिर से कहूंगा सुन, इस कहेहुये सुषुप्ति आत्मा से पृथक् कोई दूसरा आत्मा नहीं है; तू पांचवर्ष और मेरे पास ब्रह्मचर्य व्रत करके रह, जब ऐसा कहागया तब वह इन्द्र फिर पांचवर्ष रहता भया, और जब इन्द्र एकसौएक वर्ष प्रजापति के पास ब्रह्मचर्य व्रत करते हुये रहा, और जब एकसौएक वर्ष व्यतीत होगये तब उस इन्द्रको ब्रह्मा इस आत्मविषयक उपदेश को साफ़ साफ़ कहता भया इस प्रकार यथार्थवक्ता कहते हैं ॥ ३ ॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥

मूलम् ।

मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै स-

शरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

मघवन्, मर्त्यम्, वा, इदम्, शरीरम्, आत्तम्, मृत्युना, तत्, अस्य, अमृतस्य, अशरीरस्य, आत्मनः, अधिष्ठानम्, आत्तः, वै, सशरीरः, प्रियाप्रियाभ्याम्, न, वै, सशरीरस्य, सतः, प्रियाप्रिययोः, अपहतिः, अस्ति, अशरीरम्, वाव, सन्तम्, न, प्रियाप्रिये, स्पृशतः ॥

अन्वयः	पदार्थ
मघवन्	हे इन्द्र !
इदम्	यह
शरीरम्	शरीर
मर्त्यम्	मरणधर्मवाला है
वा	और
मृत्युना	मृत्यु करके
आत्तम्	गृहीत है
तत्	वह शरीर
अस्य	इस
अमृतस्य	अमर
अशरीरस्य	शरीररहित
आत्मनः	जीवात्मा के
अधिष्ठानम्	भोगने का अधिष्ठान है
+ च	और
वै	निश्चय करके
सशरीरः	शरीरसम्बन्धी
+ आत्मा	आत्मा
प्रियाप्रियाभ्याम्	सुखदुःखकरके
आत्तः	गृहीत है
+ हि	क्योंकि
वै	निश्चय करके

सशरीरस्य सतः = शरीरोपाधिविशिष्ट विद्यमान आत्मा के	अशरीरम् = अशरीरी
प्रियाप्रिययोः = सुख दुःखका	सन्तम् = आत्मा यानी ब्रह्मको
अपहतिः = नाश	प्रियाप्रिये = सुख दुःख
न = नहीं	वाव = कभी
अस्ति = होताहै	न = नहीं
+ च = और	स्पृशतः = स्पर्श करते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म सर्वाधिष्ठान निराकार निरवयव में जीवों के अदृष्टफल देनेकी फुरना होती है तब शुद्ध विमल इच्छा उस ब्रह्म में प्रकट हो आती है, उसी इच्छा को माया भी कहते हैं, जब ब्रह्मका मेल माया के साथ होताहै तब ब्रह्मकी संज्ञा ईश्वर कहलाती है यानी मायाविशिष्ट ब्रह्म का नाम ईश्वर है यही सृष्टि का कर्ता कहा जाता है, शुद्ध ब्रह्म सृष्टिका कर्ता नहीं होताहै, उस माया या प्रकृति में तीन गुणहैं, सत्, रज, तम, इस कारण यह त्रिगुणात्मक माया कहलाती है, इसीसे सांख्यशास्त्रानुसार महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) पञ्चमहाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) पांच कर्मेन्द्रिय (हस्त, पाद, लिङ्ग, गुदा, वाणी) पांच ज्ञानेन्द्रिय (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा, त्वचा) और मन, इन चौबीस तत्त्वों के समुदाय को अविद्या यानी मलिन माया कहते हैं, इसी अविद्याविशिष्टचैतन्य को समष्टि जीव कहते हैं, और एकादश इन्द्रिय यानी (पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय) और एक मन (अथवा अन्तःकरणचतुष्टय)विशिष्टचैतन्य व्यष्टिजीव कहा जाता है इसलिये जो सत् चित् आनन्दब्रह्म में है वही सत् चित् आनन्द माया में भी है, वही

अविद्या में है, वही सत् चित् आनन्द माया और अविद्या के कार्यों में भी है, इस कारण सत् चित् आनन्द की एकता छोटे उपाधि व्यष्टिशरीर और बड़े उपाधि समष्टि में बराबर है, और सूक्ष्म और निराकार होने के कारण आकाशवत् सबमें व्यापक है, प्रकृति या मायाका कोई कार्य छोटे से छोटा ऐसा नहीं है जिसमें ब्रह्म स्थित न हो माया में दो शब्द हैं, मा और या, माके माने नहीं, और या माने जो यानी जो नहीं है परन्तु प्रतीत होता है वह माया है, जैसे रज्जुविषे सर्प, रज्जु में सर्प तीन काल में भी नहीं हुआ है, परन्तु द्रष्टामें भ्रान्ति के कारण सर्प प्रतीत होताहै वैसेही माया असत्य है, कभी न हुई है, न है, न होगी, परन्तु जीवों के भ्रान्ति के कारण अधिष्ठान चैतन्य ब्रह्म में प्रतीत होती है भ्रान्ति के दूर होनेपर मायाका कहीं पता नहीं लगता है, और न उसके कार्य का कहीं पता लगता है जब मायाका लोप होगया, तब केवल अधिष्ठान चैतन्य रहगया, जो सूक्ष्म अन्तरदृष्टि से सबमें कारणब्रह्म को देखता है वह शरीर रहते हुये भी मुक्त है, क्योंकि वह माया और माया के कार्य से अपने को पृथक् देखता है, और जिस तरह से वह अपने को पृथक् पाता है सो सुनो । हे इन्द्र ! मैं कहताहूं—पुरुषका स्थूल शरीर यानी अन्नमयकोश तमोगुण से बनता है, और सूक्ष्म शरीर रजोगुण के कार्य पांच कर्मेन्द्रिय, सतोगुण के कार्य पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, (अन्तःकरणचतुष्टय) से बनता है, जब सूक्ष्म शरीर में सत् चित् आनन्दब्रह्म और उसके प्रतिबिम्ब का मेल होता है तब वह जीव कहलाता है, वही सुख दुःखका भोक्ता होता है, वही कर्मानुसार लोक लोकान्तर में जाता है, उसीके अन्तःकरण में कर्मों के संस्कार स्थित रहते हैं, वही उसके शरीर के उत्पत्ति का कारण बनता है ॥

हे इन्द्र ! जब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरका मेल होताहै,

तब जीवकी उत्पत्ति होती है, और जब स्थूल शरीरका वियोग सूक्ष्म शरीर से होताहै तब मृतक होताहै, स्थूल शरीर बारबार जन्मता मरता है, ऐसी गति सूक्ष्म शरीर की नहीं होती है, यह स्थूल शरीर की अपेक्षा अमर होता है, यही बार बार आता और जाता है, यही कर्मानुसार लोक लोकान्तर में घूमता है, और दुःख सुख उठाता है, इसका नाश तब होता है, जब इसके अन्दर रहनेवाले अविनाशी चैतन्य जीवात्मा को ज्ञान प्राप्त होता है, क्योंकि अज्ञान जो सूक्ष्म शरीर का कारण है, ज्ञानही करके नाश होता है, कर्म या उपासना करके नहीं, जब ज्ञान करके अज्ञान नाश होताहै तब उसके साथही उसका कार्य भी यानी सूक्ष्म शरीर नाश होजाता है, और सूक्ष्म शरीर के नाश होतेही जिससे जीवात्मा बद्ध रहता है, वह मुक्त हो जाता है, और फिर वह जीवात्मा ईश्वर या ब्रह्म में ही लीन होजाता है ॥

हे इन्द्र ! तेरे समझाने के वास्ते स्थूलदृष्टि करके मैंनें तुझे आत्मा को नेत्र, दर्पण और जल विषे बताया था, परन्तु वह नेत्रस्थ, दर्पणस्थ, जलस्थ छायात्मा आत्मा नहीं है, वह केवल स्थूलनाशी इस शरीर का प्रतिबिम्ब है, जैसे यह नाशवान् है वैसेही वहभी नाशवान् है, और जब तप करनेके पश्चात् अन्तः-करण के शुद्ध होनेपर तूने विचार करते करते देखा कि यह छायात्मा आत्मा के लक्षण से विपरीत है तब तू संदिग्ध होता हुआ मेरे पास लौट आया, और आत्मा के बारे में प्रश्न किया तब तेरी उत्कृष्ट जिज्ञासा देखकर पहिले की अपेक्षा सूक्ष्म विचार के साथ उपदेश तुझको फिर कियागया यह कहते हुये कि जो स्वप्नविषे पुरुष है वही आत्मा है, क्योंकि वह वहांपर अनेक प्रकार की सृष्टि को देखता है और उससे पृथक् रहता है, पर जब विचार करने पर तूने उसको दोषयुक्त पाया और समझा कि इस आत्मा को स्वप्न में भी दुःख सुख होताहै क्योंकि

वह अपनेको कभी मरता हुआ और कभी पैदा होता हुआ देखता है और जो जो उसकी अवस्था जाग्रत् में होती है वही वही स्वप्न में भी होती है और जब उसको आत्मा के लक्षण से विपरीत पाया तो फिर संदिग्ध होता हुआ और आत्मा के जानने की इच्छा करता हुआ मेरे पास लौट आया ॥

हे इन्द्र ! मैं तेरी जिज्ञासा देखकर अतिप्रसन्न हूं जो आत्मा अजर, अमर, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, एकरस, अविनाशी है, वही तेरा रूप है, उससे तू पृथक् नहीं है, जो कुछ तू जाग्रत् और स्वप्न में देखता है वह सब तेरे मनका कार्य है, मनके लय होतेही उन सबका लय होजाता है, जब तू सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तो मन लय होजाता है, यानी कार्य-रहित होजाता है, उसके लय होतेही सब सृष्टि लय होजाती है, और उसके साथही भय, सुख, दुःख आदि सब लय होजाते हैं, यानी उनका कहीं पता नहीं रहता है, फिर तू कैसा निडर अपने आनन्दस्वरूप की प्राप्ति में होजाता है, वहां न ईश्वर का भय है, न ब्रह्मा, विष्णु, महेशका भय है, और न देवता आदिका भय है, न राजाका, तू तीनों "आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक" तापों से रहित सुखपूर्वक अपने वास्तविकरूप में स्थित रहता है ॥

हे इन्द्र ! जो वस्तु वहां होती है, उसका तू ज्ञाता भी होता है, वहांपर, दो वस्तु रहती हैं, एक तो अज्ञान, और दूसरा आनन्द, इन दोनों को तू सुषुप्ति अवस्था में अनुभव करता है, परन्तु मन आदि करण के लीन होने के कारण प्रकट नहीं कर सक्ता है, जब तू जाग्रत् अवस्था में प्राप्त होताहै और तेरे करण मन, बुद्धि आदि तेरे साथ होजाते हैं, तब तू उनके द्वारा उस अनुभव कियेहुये अज्ञान और आनन्द को प्रकट करता है यह कहते हुये कि हे मित्रो ! मैं ऐसे आनन्द से सोया कि खबर न रही, यह ज्ञान जो तुझे जाग्रत् में होता है वह स्मृतिज्ञान है,

स्मृतिज्ञान बगैर साक्षात्कार ज्ञान के होता नहीं है, इस कारण यह सिद्ध होता है कि सुषुप्ति को प्राप्त हुआ आत्मा अज्ञान जिस करके वह आच्छादित रहता है और आनन्द जो उसका स्वरूप है उन दोनों को वहां अनुभव करता है ॥

हे इन्द्र ! जब तेरा मन जोकि सूक्ष्म शरीर का सर्दार है नाश होजायगा तब तू अपने वास्तविक रूप को प्राप्त होगा, और यदि तू अभी विचार करते करते समझ जाय कि तू अपने सूक्ष्म शरीर से पृथक् है तो अबभी मुक्त है, "यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्रम्य तिष्ठसि ॥ अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि" क्योंकि तेरा चैतन्य आत्मा ईश्वर चैतन्य आत्मा से पृथक् नहीं है, भेद केवल इतनाही है कि माया ईश्वर के आधीन है, और माया के आधीन तू है, जैसे ईश्वर चाहता है वैसे माया रचती है, और जैसे माया चाहती है वैसे तू रचता है अथवा जैसे माया नचाती है वैसेही तू नाचता है जब तू समझेगा कि मैंही ब्रह्महूं, मैंही ईश्वरहूं, मैंही चैतन्यात्माहूं, तो ईश्वरवत् अपने को अभय, अमर, अविनाशी, आनन्दस्वरूप पावेगा "मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि ॥ किंवदन्तीह सत्येयं सा मतिः या गतिर्भवेत्" हे इन्द्र ! हे सौम्य ! सुषुप्ति आत्मा से पृथक् कोई दूसरा आत्मा नहीं है, यही ईश्वर है, यही ब्रह्म है और सोई तू है ॥ १ ॥

मूलम् ।

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अशरीरः, वायुः, अभ्रम्, विद्युत्, स्तनयित्नुः,

अशरीराणि, एतानि, तत्, यथा, एतानि, अमुष्मात्, आकाशात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उपसंपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वायुः	वायु	अमुष्मात्	उस
अशरीरः	शरीररहित है	आकाशात्	आकाश से
+ च	और	समुत्थाय	निकल करके
अभ्रम्	बादल	परम्	परम
विद्युत	बिजुली	ज्योतिः	ज्योति में
स्तनयित्नुः	मेघध्वनि	उपसंपद्य	प्राप्त होकर
एतानि	येभी	स्वेन	अपने
अशरीराणि	शरीररहित हैं	रूपेण	रूप से
तत्	सो	अभिनिष्पद्यन्ते	अपनेकारण में लीन होते हैं
यथा	जैसे		
एतानि	येसब यानीवायु, बादल, बिजुली, मेघध्वनि		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह मन्त्र आधा है, इसका आधा भाग आगे वाला मन्त्रहै, जैसे वायु, बादल, बिजुली, मेघध्वनि शरीररहित हैं और आकाश से निकल कर आकाश में ही प्राप्त होकर अपने कारण में लीन होते हैं इस मन्त्र में जो " अशरीराणि " कहा है यानी शरीररहित कहा है वह उपाधि दृष्टि से अलग करके कहा है जैसे वायु शरीररहित है पर जब वृक्षादिकों का

संबन्ध होता है तब वृक्ष कम्पायमान होता है उस समय उसकी यानी वायु की गति नयनगोचर होती है ऐसेही औरों के विषय में भी जान लेना ॥ २ ॥

मूलम् ।

एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, एव, एषः, संप्रसादः, अस्मात्, शरीरात्, समुत्थाय, परम्, ज्योतिः, उपसंपद्य, स्वेन, रूपेण, अभिनिष्पद्यते, सः, उत्तमपुरुषः, सः, तत्र, पर्येति, जक्षत्, क्रीडन्, रममाणः, स्त्रीभिः, वा, यानैः, वा, ज्ञातिभिः, वा, न, उपजनम्, स्मरन्, इदम्, शरीरम्, सः, यथा, प्रयोग्यः, आचरणे, युक्तः, एवम्, एव, अयम्, अस्मिन्, शरीरे, प्राणः, युक्तः ॥

अन्वयः	पदार्थ
एवम् एव	वैसेही
वा	निश्चय करके
एषः	यह मुक्त
संप्रसादः	जीवात्मा
अस्मात्	इस
शरीरात्	शरीर से
समुत्थाय	निकल कर
परम्	सर्वोत्कृष्ट

ज्योतिः=ज्योति को
उपसंपद्य=प्राप्त होकर
स्वेन=अपने निज
रूपेण=रूप के साथ
अभिनि-ष्पद्यते=मिल जाता है
सः=वही
उत्तमपुरुषः=स्वरूपावस्थित उत्तम पुरुष है
सः=वही
तत्र=मुक्तावस्था में
जक्षत्=हँसता हुआ
स्त्रीभिः=अपनी स्त्रियों के साथ
क्रीडन्=क्रीड़ा करता हुआ
वा=और
यानैः=विविध भांति की सवारियों के साथ
वा=अथवा
ज्ञातिभिः=ज्ञातिसंबंधियों के साथ
रममाणः=रमता हुआ

+ च=और
उपजनम्=स्त्री पुरुष के योगसेउत्पन्न हुये
इदम्=इस यानी अपने
शरीरम्=शरीर को
न स्मरन्=न स्मरण करता हुआ
पर्यैति=इधर उधर विचराकरताहै
+ च=और
यथा=जैसे
आचरणे=रथमें
+आकर्षणाय=खींचने के लिये
सः=वह
प्रयोग्यः युक्तः=घोड़ा जोता जाता है
एवम् एव=इसी प्रकार
अस्मिन्=इस
शरीरे=शरीर में
अयम्=यह
प्राणः=पञ्चप्राण

+कर्मफल-भोगार्थम् = कर्मफल भोगार्थ | नियुक्तः=जुता रहता है

भावार्थ ।

वैसेही हे सौम्य ! यह मुक्त जीवात्मा इस स्थूल शरीर से निकल कर सर्वोत्कृष्ट ज्योति को प्राप्त होकर अपने निजरूप के साथ मिलजाता है, सोई यह अन्तःकरणविशिष्ट उत्तम पुरुष है, यही मुक्तावस्था में हँसता हुआ अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ और विविध भांति की सवारियों पर चढ़ता हुआ और जातिसंबन्धियों के साथ रमता हुआ और अपने शरीर को न अनुभव करता हुआ इधर उधर बिचरा करता है और जैसे रथ में घोड़ा जोता रहता है उसी प्रकार उसके शरीर में पञ्चप्राण कर्मफलभोगार्थ जुते रहते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ।

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदछं शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यत्र, एतत्, आकाशम्, अनुविषण्णम्, चक्षुः, सः, चाक्षुषः, पुरुषः, दर्शनाय, चक्षुः, अथ, यः, वेद, इदम्, जिघ्राणि, इति, सः, आत्मा, गन्धाय, घ्राणम्, अथ, यः, वेद, इदम्, अभिव्याहराणि, इति, सः, आत्मा, अभिव्याहाराय, वाक्, अथ, यः,

वेद, इदम्, शृणवानि, इति, सः, आत्मा, श्रवणाय, श्रोत्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	देहसे आत्मा को पृथक् मानने पर
यत्र	जिस संसारी दशा में
आकाशम्	देहछिद्र बिषे
एतत्	यह
चक्षुः	नेत्र
अनुविषण्णम्	स्थित है
+ तत्र	उसी में
सः	वह
चाक्षुषः	चक्षुस्थ पुरुष
+ वसति	वास करता है
+ तस्य	उसको
दर्शनाय	रूप ज्ञान के लिये
चक्षुः	नेत्र
+ साधनम्	साधन है
अथ	और
इदम्	इस वस्तु को
जिघ्राणि	सूंघूं मैं

अन्वयः	पदार्थ
इति	ऐसा
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है
+ तस्य	उसको
गन्धाय	गन्ध ग्रहणार्थ
घ्राणम्	घ्राणेन्द्रिय
+ साधनम्	साधन है
अथ	और
इदम्	इसको
अभिव्याहराणि	कहूं मैं
इति	ऐसा
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
आत्मा	आत्मा है
+ तस्य	तिसको
अभिव्याहाराय	भाषणार्थ
वाक्	वागिन्द्रिय

+ साधनम्=साधन है
अथ=और
इदम्=इसको
शृणवानि=सुनूं मैं
इति=इस प्रकार
यः=जो
वेद=जानता है
सः=वही
आत्मा=आत्मा है
+ तस्य=तिसको
श्रवणाय=सुनने के लिये
श्रोत्रम्=कर्णेन्द्रिय
+ साधनम्=साधन है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब मुक्त पुरुषको आत्मा से देह पृथक् प्रतीत होताहै तब शरीर बिषे जो छिद्र है उसमें जो नेत्र स्थित है उसी में जीवात्मा वास करता है, उसके रूप ज्ञान के लिये नेत्र साधन है, और जब वह कहता है कि इस वस्तु को मैं सूंघूं तो जो इस तरह जानता है वही आत्मा है, उसके गन्ध ग्रहणार्थ घ्राणेन्द्रिय साधन है, और जब वह कहता है कि इसको कहूं मैं तो जो ऐसा जानता है वही आत्मा है उसके भाषणार्थ वाक् इन्द्रिय साधन है, और जब यह कहता है कि मैं इसको सुनूं तो जो इसप्रकार जानता है वही आत्मा है, उसके सुनने के लिये कर्णेन्द्रिय साधन है, तात्पर्य इस मन्त्रका यह है कि जो इन्द्रियों में बैठा हुआ इन्द्रियों के व्यवहारों को जानता है और जिसको इन्द्रियां नहीं जानती हैं और जिसकी शक्ति लेकर सब इन्द्रियां अपने अपने व्यवहारों के करने में समर्थ हैं वही आत्मा है, वह बाह्यविषयों का भोक्ता और ज्ञाता अपने साधन इन्द्रियों द्वारा होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ।

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोस्य

दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैता-न्कामान्पश्यन् रमते य एते ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यः, वेद, इदम्, मन्वानि, इति, सः, आत्मा, मनः, अस्य, दैवम्, चक्षुः, सः, वा, एषः, एतेन, दैवेन, चक्षुषा, मनसा, एतान्, कामान्, पश्यन्, रमते, ये, एते, ब्रह्मलोके ॥

अन्वयः	पदार्थ
अथ	और
इदम्	इसको
मन्वानि	मनन करूं मैं
इति	ऐसा
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वही
एषः	यह
आत्मा	आत्मा है
अस्य	उसको
+ मननाय	मनन करनेके लिये
दैवम्	अलौकिक
चक्षुः	दर्शन साधन
मनः	मन है
सः	वही
एतेन	इस
दैवेन	दिव्य
चक्षुषा	सूक्ष्मरूप
+ मनसा	मनकरके
ये	जो
एते	ये
ब्रह्मलोके	इस ब्रह्मरूपी लोक में
+ सन्ति	मौजूद हैं
एतान्	उन सब
कामान्	पदार्थों को
पश्यन्	देखता हुआ
रमते	आनन्द भुक् होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! और जो कहता है इसको मैं मनन करूं और जो इसको ऐसा जानता है वही यह आत्मा है और उसके मनन करने के लिये यह अलौकिक दर्शन साधन मनहै, वही इस दिव्य सूक्ष्म 'मन' करके इस ब्रह्मरूपी लोक में जो कुछ मौजूद हैं उन सबको देखता हुआ आनन्दभुक् होताहै इस मन्त्र में मन इन्द्रिय को दैवचक्षु कहा है इसका कारण यह है कि सब इन्द्रियों का राजा मन है वे सब इन्द्रियां इसके आधीन हैं जिधर मन जाता है उसी तरफ़ सब इन्द्रियां दौड़ती हैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों के विषयको मनही मनन कर सकता है इसीके द्वारा मुक्तात्मा जीव सब कामनाओं का भोक्ता है ॥ ५ ॥

मूलम् ।

तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तम्, वा, एतम्, देवाः, आत्मानम्, उपासते, तस्मात्, तेषाम्, सर्वे, च, लोकाः, आत्ताः, सर्वे, च, कामाः, सः, सर्वान्, च, लोकान्, आप्नोति, सर्वान्, च, कामान्, यः, तम्, आत्मानम्, अनुविद्य, विजानाति, इति, ह, प्रजापतिः, उवाच, प्रजापतिः, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तम्	पूर्वोक्त	यः	जो उपासक
एतम् आत्मनम्	इस आत्माको	तम्	उस
वा	ही	आत्मानम्	आत्मा को
देवाः	देवतालोग	अनुविद्य	जानकर
उपासते	उपासनाकरते हैं	विजानाति	साक्षात्करता है
तस्मात्	केवल उपासना करके	सः	वह
तेषाम्	उन देवताओं को	सर्वान् च	सब
सर्वे च	सब	लोकान्	लोकों को
लोकाः	लोक	च	और
च	और	सर्वान्	सब
सर्वे	सब	कामान्	कामों को
कामाः	कामनायें	आप्नोति	प्राप्त होता है
आप्ताः	प्राप्त होती हैं	इति ह	इस प्रकार
		प्रजापतिः	ब्रह्मा
		उवाच	इन्द्र से कहता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऊपर कहेहुये आत्मा की देवतालोग उपासना करते हैं और उस उपासना के बल करके उन देवताओं को सब लोक और सब कामनायें प्राप्त होती हैं जो उपासक पुरुष उस आत्मा को जानकर साक्षात् करता है वह भी सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होता है इस प्रकार ब्रह्मा ने इन्द्र को उपदेश किया ॥ ६ ॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथाष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभिसंभवामीति ॥ १ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

श्यामात्, शबलम्, प्रपद्ये, शबलात्, श्यामम्, प्रपद्ये, अश्वः, इव, रोमाणि, विधूय, पापम्, चन्द्रः, इव, राहोः, मुखात्, प्रमुच्य, धूत्वा, शरीरम्, अकृतम्, कृतात्मा, ब्रह्मलोकम्, अभिसंभवामि, इति, अभिसंभवामि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थ
श्यामात्=	दुःखमय व जड़मय योनि से
शबलम्=	दुःख सुख मिश्रितमनुष्यादि योनि को
प्रपद्ये=	पाता है
+ च पुनः=	और फिर
शबलात्=	दुःख सुख मिश्रितयोनि से
श्यामम्=	दुःख और जड़मय योनि को
प्रपद्ये=	प्राप्त होता है
+ परन्तु=	परन्तु
इव=	जैसे

अश्वः=घोड़ा
रोमाणि=रोमों को
विधूय=झाड़कर
+ च=और
चन्द्रः=चन्द्रमा
इव=जैसे
राहोः मुखात्=राहु के मुख से
प्रमुच्य=छूटकर
+ निर्मलः + भवति=निर्मल होता है
+ तथा + एव=वैसेही
+ ब्रह्मविद्यया=ब्रह्मविद्या करके
कृतात्मा=ब्रह्म को प्राप्त हुआ जीवात्मा
पापम्=पापजनकदुर्वासनाओं को
+ विधूय=दूर करके
+ च=और
शरीरम्=शरीर को
धूत्वा=त्याग करके
अकृतम्=अविनाशी
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्मको
अभिसंभवामि=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! दुःखमय और जड़मय योनि से जीव दुःख सुख मिश्रित मनुष्यादि योनि को प्राप्त होता है, और फिर दुःख सुख मिश्रित योनि से कर्मानुसार दुःख और जड़मय योनि को प्राप्त होता है पर जैसे घोड़ा लेट पोट कर रोमों को झाड़कर और जैसे चन्द्रमा राहुके मुखसे छूटकर निर्मल होता है वैसेही यह जीव ब्रह्मविद्याके बल से ब्रह्म को प्राप्त होता हुआ पापजन्य दुर्वासनाओं को दूर करके और शरीर को त्याग करके अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

---

१ इहां पर "प्रपद्ये" और "अभिसंभवामि" उत्तम पुरुष के रूप हैं परन्तु प्रथम पुरुष का अर्थ देते हैं ॥

अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥

मूलम् ।

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कꣳश्येतं लिन्दु माभिगां लिन्दु माभिगाम् ॥ १ ॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

आकाशः, वै, नाम, नामरूपयोः, निर्वहिता, ते, यदन्तरा, तत्, ब्रह्म, तत्, अमृतम्, सः, आत्मा, प्रजापतेः, सभाम्, वेश्म, प्रपद्ये, यशः, अहम्, भवामि, ब्राह्मणानाम्, यशः, राज्ञाम्, यशः, विशाम्, यशः, अहम्, अनुप्रापत्सि, सः, ह, अहम्, यशसाम्, यशः, श्येतम्, अदत्कम्, अदत्कम्, श्येतम्, लिन्दु, मा, अभिगाम्, लिन्दु, मा, अभिगाम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नाम	=प्रसिद्ध	यदन्तरा	=जिसमें
आकाशः	=ब्रह्म	ते	=ये नामरूप
वै	=निश्चय करके	+ वर्तमाने	=वर्तमान हैं
नामरूपयोः	=जगत् के नाम रूपका	तत्	=वही
		ब्रह्म	=ब्रह्म है
निर्वहिता	=प्रकाशक है	तत्	=वही

अमृतम्=अमृत है
सः=वही
आत्मा=आत्मा है
+ कश्चित्=कोई
+ मुमुक्षुः=मुमुक्षु
+ ईश्वरम्=ईश्वर से
+ प्रार्थयते=प्रार्थना करता है
+ अहम्=मैं
प्रजापतेः=परमात्मा के
सभाम् वेश्म=शरण को
प्रपद्ये=प्राप्त होऊं
ब्राह्मणानाम्=ब्राह्मणों के मध्य में
अहम्=मैं
यशः=यश
भवामि=होऊं
राज्ञाम्=राजाओं के मध्य में
यशः=यश
+भवामि=होऊं
विशाम्=वैश्यों के मध्य में
यशः=यश
+भवामि=होऊं
अहम्=मैं
यशः=यशको
अनुप्रापत्सि=प्राप्त होऊं
सः=वही
अहम्=मैं
यशसाम्=यशस्वियों के मध्य
ह=निश्चयपूर्वक
यशः=यशस्वी होऊं
श्येतम्=पक्वबदरीफल सम
अदत्कम् } = { दन्त न होने पर भी यश, वीर्य, बल और धर्म का नाश करने वाले
अदत्कम् }
श्येतम् लिन्दु=जन्मयोनि को
मा=मत
अभिगाम्=प्राप्त होऊं
लिन्दु=जन्म को
मा=मत
अभिगाम्=प्राप्त होऊं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्म जगत् के नामरूप का प्रकाशक है और उसी ब्रह्म में नामरूप आधेयरूप से स्थित है, वही ब्रह्म हृदय विषे स्थित है, यही अमृत है, यही आत्मा है, कोई मुमुक्षु ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि मैं परमात्मा की शरण को प्राप्त होऊं, ब्राह्मणों के मध्य में मैं यश होऊं, राजाओं के मध्यमें मैं यश होऊं, वैश्यों के मध्यमें मैं यश होऊं, मैं यश को प्राप्त होऊं, मैं यशस्वियों के मध्यमें यशस्वी होऊं, मैं पक्के बदरी फलवत् दन्त न होनेपर भी यश, वीर्य, बल और धर्म के नाश करनेवाली जन्मयोनिको न प्राप्त होऊं॥ १ ॥इति चतुर्दशः खण्डः॥

अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥

मूलम् ।

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद् वेदमधीत्य यथा विधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १ ॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

पदच्छेदः ।

तत, ह, एतत्, ब्रह्मा, प्रजापतये, उवाच, प्रजापतिः, मनवे, मनुः, प्रजाभ्यः, आचार्यकुलात्, वेदम्, अधीत्य, यथा, विधानम्, गुरोः, कर्मातिशेषेण, अभिसमावृत्य,

कुटुम्बे, शुचौ, देशे, स्वाध्यायम्, अधीयानः, धार्मिकान्, विदधत्, आत्मनि, सर्वेन्द्रियाणि, संप्रतिष्ठाप्य, अहिंसन्, सर्वभूतानि, अन्यत्र, तीर्थेभ्यः, सः, खलु, एवम्, वर्तयन्, यावदायुषम्, ब्रह्मलोकम्, अभिसंपद्यते, न, च, पुनः, आवर्तते, न, च, पुनः, आवर्तते ॥

अन्वयः	पदार्थ
तत्	वही
एतत्	यह ज्ञान है
+ यत्	जिसको
ब्रह्मा	ब्रह्माऋषि
प्रजापतये	कश्यप से
उवाच ह	कहता भया
+ च	और
प्रजापतिः	कश्यप
मनवे	अपने पुत्र मनुको
च	और
मनुः	मनु
प्रजाभ्यः	इतर प्रजाको
+ उवाच	कहता भया
+ अधुना	अब
+ कर्मविशिष्ट फलदातृत्वम्	कर्मोंका विशेष फलदातृत्व
+ उच्यते	कहाजाता है
गुरोः	गुरुकी

अन्वयः	पदार्थ
कर्मातिशेषेण	भली प्रकार सेवा करके
यथाविधानम्	विधिपूर्वक
वेदमधीत्य	वेदको पढ़
आचार्यकुलात्	गुरुके घरसे
अभिसमावृत्य	लौटकर
+ दारान्	स्त्रीको
+ न्यायतः	शास्त्रानुसार
+ आहृत्य	ब्याहकर
कुटुम्बे	अपने कुटुम्ब में
+ स्थित्वा	स्वकर्मानुष्ठान के साथ रहकर
शुचौ देशे	पवित्र स्थानमें
स्वाध्यायम्	वेदशास्त्र को
अधीयानः	पढ़ता हुआ
धार्मिकान्	पुत्रशिष्यादि को धार्मिक

विदधत्=करता हुआ
आत्मनि=हृदयस्थ
आत्मा में
सर्वेन्द्रियाणि=सब इन्द्रियों
को
प्रतिष्ठाप्य=लगाता हुआ
तीर्थेभ्यः=शास्त्राज्ञा
(यज्ञादिक)से
अन्यत्र=अलग
सर्वभूतानि=प्राणिमात्र को
अहिंसन्=दुःख न देता
हुआ
यावदायुषम्=जीवन पर्यन्त

एवम्=इसतरह
वर्तयन्=वर्तता हुआ
सः=वह
खलु=निश्चयपूर्वक
ब्रह्मलोकम्=ब्रह्मको
अभिसंपद्यते=प्राप्त होताहै
च=और
पुनः=फिर
न=नहीं
आवर्तते=जन्म के क्लेश
को पाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह वही ज्ञान है जिसको ब्रह्माऋषि ने प्रजापति से कहाथा और कश्यप प्रजापति ने अपने पुत्र मनुको दियाथा और मनुने और प्रजाओं को दियाथा अब कर्मों का विशेष फल कहा जाता है सुनो गुरुकी भली प्रकार सेवा करके विधिपूर्वक वेदको पढ़कर गुरु के घरसे लौटकर स्त्रीको शास्त्रानुसार विवाह कर अपने कुटुम्ब में अपने कर्मानुष्ठान के साथ रहकर पवित्र स्थानों में वेदशास्त्रों को पढ़ता हुआ पुत्र और शिष्यादिकों को धार्मिक बनाता हुआ हृदयस्थात्मा में सब इन्द्रियों को लगाता हुआ यज्ञादि से अलग किसी प्राणिमात्र को दुःख न देता हुआ और जीवनपर्यन्त ऐसाही करता हुआ ज्ञानी ब्रह्मको प्राप्त होता है और आवागमन से रहित होताहै॥१॥ इति पञ्चदशःखण्डः॥

इति छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे भाषानुवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥